Guidance And Counseling

DEDU502

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

LOVELY
PROFESSIONAL
UNIVERSITY

निर्देशन तथा परामर्श

GUIDANCE AND COUNSELING

Copyright © 2012
All rights reserved with publishers

Produced & Printed by
USI PUBLICATIONS
2/31, Nehru Enclave, Kalkaji Extn.,
New Delhi-110019
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम (SYLLABUS)

निर्देशन तथा परामर्श

(GUIDANCE AND COUNSELING)

उद्देश्य: 1. विद्यार्थियों को निर्देशन तथा परामर्श की अवधारणा की जानकारी उपलब्ध करवाना।

2. विद्यार्थियों को निर्देशन सेवाओं की प्रमाणित तथा अप्रमाणित विधियों से अवगत करवाना।

3. विद्यार्थियों को परामर्श के प्रकार तथा प्रभावी परामर्शदाता की विशिष्टताओं से परिचित करवाना।

Objectives:

1. understand the concepts of guidance and counseling.
2. understand testing and non-testing techniques in guidance service.
3. understand the types of counseling and qualities of an effective counselor.

Sr. No.	Content
1	Guidance: Meaning, Nature and Scope, Guidance: Goals and Principles, Need for Guidance with Reference to India
2	Guidance Services: Concept and Importance; Services: Placement Service, Follow-up Service
3	Educational and Vocational Guidance ; Organizing Guidance Services at School and College Level
4	Personal and Group Guidance: Concept, Aims and Methods, Personal Guidance at School Level and Personal Guidance at College Level
5	Counseling: Concept, Need and Goals with Reference to India, Counseling: Principles and Counseling Process
6	Types of Counseling: Directive Counseling, Non-Directive Counseling, Eclectic Counseling, Interview Process in Counseling
7	Counseling Services: Individual Counseling, Group Counseling
8	Organizing Counseling Services at School Level, Organizing Counseling Services at College Level
9	Psychotherapy: Meaning and Process, Dealing with Psychological Disturbance, Psychotherapy: Cognitive Approach, Environmental Approach ; Counselor: Role and Qualities
10	Testing and Non-Testing Techniques: Psychological Tests, Case Study, Rating Scale, Observation, Interview, Inventories, Problems of Guidance and Counseling in India and their Solutions

विषय-सूची

इकाई (Units)	(CONTENTS)	पृष्ठ संख्या (Page No.)
1.	निर्देशन : अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र (Guidance : Meaning, Nature and Scope)	1
2.	निर्देशन–उद्देश्य और सिद्धांत (Guidance : Goals and Principles)	12
3.	भारत के संदर्भ में निर्देशन की आवश्यकता (Need for Guidance with reference to India)	25
4.	निर्देशन सेवाएँ (Guidance Services)	33
5.	सेवाएँ: स्थापन सेवा, अनुगामी सेवा (Services: placement service, follow-up service)	53
6.	शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन (Educational and Vocational Guidance)	68
7.	विद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर पर निर्देशन सेवाएँ संगठित करना (Organizing Guidance Services at School and College level)	94
8.	व्यक्तिगत एवं सामूहिक निर्देशन (Personal and Group Guidance)	114
9.	विद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance at School Level)	127
10.	महाविद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance at College Level)	134
11.	परामर्श : अवधारणा, आवश्यकता तथा भारत के संदर्भ में उद्देश्य (Counseling: Concept, Need and Goals with Reference to India)	142
12.	परामर्श : सिद्धान्त और प्रक्रिया (Counseling: Principles and Process)	152
13.	परामर्श के प्रकार : निदेशात्मक परामर्श (Types of Counseling : Directive Counseling)	158
14.	परामर्श के प्रकार : अनिदेशात्मक परामर्श (Types of Counseling : Non-Directive Counseling)	162
15.	परामर्श के प्रकार : समाहारक परामर्श (Types of Counseling : Non-Directive Counseling)	167
16.	परामर्श में साक्षात्कार प्रक्रिया (Interview Process in Counseling)	171

17. परामर्श सेवाएँ : व्यक्तिगत परामर्श (Counseling Services : Individual Counseling) 177

18. परामर्श सेवाएँ (Counseling Services) 182

19. मनो–उपचार (Psychotherapy) 187

20. मनोपचार–मनोविकार (Psychotherapy—Psychological Disturbance) 196

21. मनोचिकित्सा: ज्ञानात्मक उपागम (Psychotherapy—Cognitive Approach) 207

22. मनोउपचार–पर्यावरणीय उपचार उपागम (Psychotherapy—Environmental Approach) 213

23. परामर्शदाता (Counselor) 218

24. परीक्षणात्मक तथा अपरीक्षणात्मक तकनीकें: मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Testing and Non-testing Techniques: Psychological Tests) 233

25. एकल अध्ययन (Case Study) 249

26. अनुस्थिति मापनी (Rating Scale) 264

27. निरीक्षण (Observation) 271

28. साक्षात्कार (Interview) 280

29. रूची परीक्षण (Inventories) 295

30. भारत में निर्देशन तथा परामर्श की समस्याएँ तथा उनका समाधान (Problems of Guidance and Counseling in India and their Solution) 307

नोट

इकाई–1: निर्देशन : अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र
(Guidance : Meaning, Nature and Scope)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 निर्देशन का अर्थ (Meaning of Guidance)

1.2 निर्देशन की विशेषताएँ (Characteristics of Guidance)

1.3 निर्देशन की प्रकृति (Nature of Guidance)

1.4 निर्देशन के क्षेत्र (Scope of Guidance)

1.5 सारांश (Summary)

1.6 शब्दकोश (Keywords)

1.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- निर्देशन का अर्थ, विशेषताओं तथा उद्देश्यों की व्याख्या करने में।
- निर्देशन की प्रकृति तथा क्षेत्र का विश्लेषण करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

समाज के आदिकाल से लेकर अब तक के विकास-क्रम पर यदि दृष्टिपात करें तो यह ज्ञात होगा कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था एवं समाज की संरचना अधिक जटिल हो चुकी है। शाश्वत मूल्यों के प्रति अनास्था, अनिश्चितता एवं अस्थिरता पर आधारित दृष्टिकोण व्यक्ति की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की सतत् वृद्धि एवं मानवीय क्षमताओं में न्यूनता, समाज के इस स्वरूप के लिये उत्तरदायी कारणों के रूप में उभर कर सामने आ रहे हैं। इन कारणों के परिणामस्वरूप ही, प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में विविध समस्याओं का उदय हो रहा है। पारिवारिक, सामाजिक व्यवसायिक आर्थिक, शैक्षिक आदि क्षेत्रों में, प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में समस्या ग्रस्त दिखाई देता है। जन्म के पश्चात् से ही व्यक्ति जैसे-जैसे समाज के सम्पर्क में आता है, वह स्वयं को अनेक समस्याओं से घिरा हुआ पाता है। घर में, समाज में, विद्यालय में अथवा अपने दिनचर्या से सम्बन्धित कार्यों में उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिये, उसे किसी न किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है। निर्देशन का उपयोग, इसी उद्देश्य की पूर्ति में सहायक है। अत: सामाजिक जटिलता के मध्य, व्यक्ति को उपयुक्त एवं समुचित पथ पर अग्रसारित करने, उसका अधिकाधिक विकास करने तथा समाज के साथ समायोजन करने की भावना एवं कौशल का विकास करने हेतु, निर्देशन को महत्व प्रदान किया जा रहा है।

नोट

1.1 निर्देशन का अर्थ (Meaning of Guidance)

निर्देशन क्या है? इस सम्बन्ध में समस्त विद्वान एकमत नहीं है। वर्तमान युग के विवादग्रस्त प्रत्ययों में, यह एक ऐसा प्रत्यय है, जिसे विभिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है, फिर भी, सामान्यत: निर्देशन को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसके आधार पर किसी एक अथवा अनेक व्यक्तियों को किसी न किसी प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है। इस सहायता के आधार पर, समस्याओं के सम्बन्ध में विवेकयुक्त निष्कर्ष निकालने, वांछित निर्णय लेने तथा अपने लक्ष्यों, उद्देश्यों को प्राप्त करने में सुगमता होती है। निर्देशन के आधार पर ही, व्यक्ति को अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, कौशलों तथा व्यक्तिगत से सम्बन्धित विशेषताओं का ज्ञान हो जाता है तथा वह स्वयं में निहित विशेषताओं का समुचित उपयोग करने में सक्षम हो जाता है। निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करना नहीं है, अपितु इसके आधार पर किसी व्यक्ति को इस योग्य बनाया जाता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान करने में स्वयं ही सक्षम हो सके। अनेक विद्वानों ने निर्देशन को एक ऐसी विशिष्ट सेवा के रूप में ही परिभाषित किया है, जिसके आधार पर जीवन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिये सहायता प्रदान की जाती है, इस प्रकार किसी भी व्यक्ति को अपनी समस्याओं के वांछित समाधान के लिये सहायता प्रदान करना ही निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है। व्यक्ति अथवा समाज से सम्बन्धित किसी भी पक्ष अथवा क्षेत्र के सन्दर्भ में इस प्रकार की सहायता प्रदान की जानी संभव है। उदाहरणार्थ विद्यालय में नियुक्त परामर्शदाता के द्वारा, विद्यालय में अध्ययन करने वाले छात्रों को अनेक प्रकार के सुझाव दिये जा सकते हैं। छात्रों को अपनी रूचि, योग्यता एवं अभिवृत्ति के पाठ्यक्रम का चयन करने, नवीन शैक्षिक नीतियों, पाठ्यक्रमों, शिक्षण विधियों तथा अधिगम संसाधनों के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाओं का संचार करने तथा छात्रों को आत्म-निर्देशन की दिशा में प्रेरित करने, स्वतन्त्र अध्ययन पर आधारित विधियों का प्रयोग करने में सहायता प्रदान कर सकता है, इसी प्रकार व्यवसायिक निर्देशन के क्षेत्र में व्यवसाय हेतु अपेक्षित योग्यताओं, कौशलों, क्षमताओं तथा विद्यार्थियों की अभिरूचि के आधार पर किसी विशिष्ट व्यवसाय के चयन हेतु सुझाव दिये जा सकते हैं। व्यक्ति की मनो-शारीरिक विशेषताओं, मनो-विकारों, संवेगात्मक अस्थिरताओं आदि की समुचित जानकारी के आधार पर व्यक्ति को वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु सहायता प्रदान की जानी संभव है, इस प्रकार की सहायता, वैयक्तिक निर्देशन के क्षेत्र में प्रदान की जाती है।

निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत, निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति में निहित विशेषताओं तथा शैक्षिक, व्यावसायिक क्षेत्र में सम्बन्धित अध्ययन आवश्यक है। इस समन्वित जानकारी के अभाव में निर्देशन की प्रक्रिया का सम्पन्न हो पाना नितान्त असम्भव है। व्यक्ति में निहित विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के लिये व्यक्ति की योग्यताओं, रूचियों आदि का मापन करने वाले साधनों तथा मापनियों की आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक होता है। व्यक्ति में निहित क्षमताओं, योग्यताओं आदि की जानकारी प्राप्त करने के लिये व्यक्तित्व परख, अभिवृत्ति परीक्षण, रूचि अनुसूची, बुद्धि परीक्षण आदि का विशेष महत्व है। यद्यपि समुचित जानकारी हेतु पूर्णतया वैध एवं प्रमाणीकृत परीक्षणों को ही विश्वसनीय निर्देशन के लिये प्रयुक्त किया जाना चाहिये, परन्तु कुछ व्यक्तिनिष्ठ या आत्मनिष्ठ साधनों का प्रयोग भी निर्देशन के अन्तर्गत किया जा सकता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार, निर्देशन एवं शिक्षा, दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं इनके अनुसार जिस प्रकार शिक्षा एक व्यापक प्रक्रिया है, उसी प्रकार निर्देशन भी एक व्यापक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये। इस प्रक्रिया के माध्यम से बालकों के विभिन्न पक्षों के विकास हेतु, उसी प्रकार सहायता प्रदान की जाती है, जिस प्रकार शिक्षा के द्वारा बालक के मानसिक, भावात्मक एवं शारीरिक पक्ष का विकास करने हेतु सहायता प्रदान की जाती है। इस प्रकार निर्देशन एक व्यापक प्रक्रिया है क्योंकि इसका क्षेत्र असीमित है। व्यक्ति के जीवन से सम्बद्ध प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में यह सहायता प्रदान की जा सकती है। इसके अतिरिक्त शिक्षा के समान ही निर्देशन की प्रक्रिया भी जीवनपर्यन्त संचालित रहती है, जन्म से लेकर मृत्यु तक जहाँ कहीं भी, जिस रूप में भी व्यक्ति को सहायता प्राप्त

नोट

होती है, वह सहायता निर्देशन के अन्तर्गत ही सम्मिलित की जाती है, इस प्रकार की सहायता प्रदान करने वाले व्यक्ति को निर्देशन-प्रदाता अथवा निर्देशन-कर्मी के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं, विद्यालय में कार्य करने वाले शिक्षक प्रधानाचार्य, सह-कर्मी, परिवार के सदस्य तथा समाज में मित्र, सह-पाठी, प्रवचक आदि व्यक्ति निर्देशन प्रदाता के रूप में ही स्वीकार किये जाने चाहिये।

इन तथ्यों के आधार पर स्पष्ट है कि निर्देशन की प्रक्रिया सुधारात्मक आयाम के स्थान पर विकासात्मक आयाम के रूप में ही परिभाषित की जानी अधिक सार्थक है, क्योंकि विशिष्ट सेवा के रूप में यह प्रक्रिया *समस्या-केन्द्रित* होने के स्थान पर *सेवार्थी-केन्द्रित* ही अधिक होती है। विशिष्ट सेवा के रूप में अर्थापित इस आयाम के अनेक दोष हैं। इस रूप में परिभाषित निर्देशन को विद्यालय की आनुषंगिक सेवा के रूप में पहचाना जाता है। यह सेवा कुछ विशिष्ट प्रकार के बालकों तक ही सीमित रहती है तथा सामान्य श्रेणी के बालकों को इस प्रकार के निर्देशन के माध्यम से कोई विशेष सहायता प्राप्त नहीं हो पाती है। इसके विशिष्ट सेवा आयाम के अन्तर्गत विद्यालय में कार्यरत परामर्शदाता की भूमिका ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझी जाती है। इसके परिणामस्वरूप, विद्यालय में कार्यरत अन्य व्यक्तियों की भूमिका प्राय: उपेक्षित भी रहती है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति को एक यन्त्र के समान समझकर सहायता प्रदान की जाती है, जबकि उचित यह है कि व्यक्ति को एक गतिशील प्राणी के रूप में ही सहायता प्रदान करने की व्यवस्था की जानी चाहिये।

एक अन्य आयाम के आधार पर निर्देशन को सहायता प्रदान करने वाली प्रक्रिया के रूप में प्रदर्शित किया जाता है जिसके अन्तर्गत निर्देशन का उत्तरदायित्व सभी का स्वीकार किया जाता है या किसी का भी नहीं। शिक्षक योग्यता, रूचि, क्षमता, निपुणता इत्यादि को, इस प्रकार के निर्देशन में विशेष महत्व प्रदान किया जाता है।

नोट्स निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करना नहीं है, अपितु इसके आधार पर किसी व्यक्ति को इस योग्य बनाया जाता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान करने में स्वयं ही सक्षम हो सके।

निर्देशन के उपरोक्त अर्थ को स्पष्ट करने के अतिरिक्त, इसके आशय के सन्दर्भ में कुछ परिभाषाओं का भी उल्लेख किया जा सकता है। यद्यपि निर्देशन की कोई सर्वमान्य परिभाषा अभी तक प्रस्तुत नहीं की जा सकती है, परन्तु फिर भी, इन परिभाषाओं के आधार पर निर्देशन के अर्थ को समझने में सहायता प्राप्त हो सकेगी। इस प्रकार की कुछ परिभाषाएँ अग्रलिखित हैं—

शर्ले हैमरिन (Shirley Hamrin) के शब्दों में—"व्यक्ति के स्वयं को पहचानने में इस प्रकार सहायता प्रदान करना, जिससे वह अपने जीवन में आगे बढ़ सके, इस प्रक्रिया को निर्देशन कहा जाता है।"

लेस्रूटर डी. क्रो तथा एलाईस क्रो (Lester D. Crow and Alice Crow)—ने अपनी पुस्तक *'एन इन्ट्रोडक्शन टू गाइडैन्स'* में निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा है—"निर्देशन से तात्पर्य, निर्देशन के लिये स्वयं निर्णय लेने की अपेक्षा निर्णय कर देना नहीं है और न ही दूसरे के जीवन का बोझ ढोना है। इसके विपरीत, योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा, दूसरे व्यक्ति को, चाहे वह किसी भी आयु वर्ग का हो, अपनी जीवन क्रियाओं को स्वयं गठित करने, अपने निजी दृष्टिकोण विकसित करने, अपने निर्णय स्वयं ले सकने तथा अपना भार स्वयं वहन करने में सहायता करना ही वास्तविक निर्देशन है।"

"Guidance is not giving directions. It is not the imposition of one person's point of view upon another person. It is not making decisions for an individual which he should make for himself. It is not carrying the burdens of another's life. Rather, guidance is assistance made available be personally qualified and adequately trained men or women to an individual of any age to help him manage his own life active, development his own point of view, make this own decisions, and carry out his own burden."

–*Crow and Crow*

नोट

आर्थर जे. जौन्स के शब्दों में–"निर्देशन एक प्रकार की सहायता है जिसके अन्तर्गत, एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति को उसके समक्ष आए विकल्पों के चयन, समायोजन एवं समस्याओं के समाधान के प्रति सहायक होता है। यह निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति में स्वाधीनता का प्रवृत्ति एवं अपने उत्तरदायी बनने की योग्यता में वृद्धि लाती है। यह विद्यालय अथवा परिवार की परिधि में आबद्ध न रहकर एक सार्वभौम सेवा का रूप धारण कर लेती है। यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र यथा परिवार, व्यापार एवं उद्योग, सरकार, सामाजिक जीवन, अस्पताल व कारागृहों में व्यक्त होती है। वस्तुतः निर्देशन का क्षेत्र, प्रत्येक ऐसी परिस्थिति में विद्यमान होती है, जहाँ इस प्रकार के व्यक्ति हों जिन्हें सहायता की आवश्यकता हो और जहाँ सहायता प्रदान करने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति हों।"

"Guidance is the help given by one person to another in making choices and adjustments and in solving problems. Guidance aims at wading the recipient to grow in his independence and ability to be responsible for himself. It is a service that is universal not confined to the school or the family. It is found in all phases of life in the time, in business and industry, in government. In social life, in hospitals and in prisons indeed it is present where there are people who need help and wherever there are people who can help"

–Arthur J. Hones

गाइडेन्स कमेटी ऑफ सॉल्ट सिटी स्कूल–ने निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा है कि–"वास्तविक अर्थ में प्रत्येक प्रकार की शिक्षा के अन्तर्गत, किसी न किसी प्रकार का निर्देशन प्राप्त है। इसके द्वारा शिक्षा को वैयक्तिक बनाने की चेष्टा प्रकट होती है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक शिक्षक का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने छात्र की रूचियों, योग्यताओं एवं भावनाओं को समझे वह उसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिये, शैक्षिक कार्यक्रमों में अनुकूल परिवर्तन लायें। दूसरे अर्थ में, निर्देशन को एक विशेष प्रकार की सेवाओं की श्रृंखला कहा जाता है। इसके अन्तर्गत, विद्यालयी कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिये वे क्रियायें सम्मिलित हैं। इसके अन्तर्गत, विद्यालयी कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिये वे क्रियायें सम्मिलित की जाती हैं जो छात्रों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। इसके अन्तर्गत, निम्नलिखित योजनायें उल्लेखनीय हैं–

(1) छात्रों की वास्तविक आवश्यकताओं एवं समस्याओं की जानकारी प्राप्त करना।

(2) छात्रों के सम्बन्ध में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उनकी वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुदेशन को अनुकूलित करने में सहायता प्राप्त करना।

(3) शिक्षकों में बालक की वृद्धि एवं विकास के सम्बन्ध में, अधिकाधिक अवबोध की क्षमता का विकास करना।

(4) विशिष्ट सेवायें यथा–अभिविन्यास, वैयक्तिक तालिका, उपबोधन व्यापक सूचना एवं समूह निर्देशन से वंचित छात्रों के अनुवर्तन इत्यादि का प्रावधान करना।

(5) कार्यक्रम की सफलता ज्ञान करने वाले शोधों का संचालन।

डब्ल्यू. एल. रिन्कल व आर. एल. गिलक्रस्ट के अनुसार–"निर्देशन का आशय है–छात्र में उपयुक्त एवं प्राप्त हो सकने योग्य उद्देश्यों के निर्धारण कर सकने तथा उन्हें प्राप्त करने हेतु वांछित योग्यताओं का विकास कर सकने में सहायता प्रदान करना या प्रेरित करना। इसके आवश्यक अंग इस प्रकार हैं–उद्देश्यों का निरूपण, अनुकूल अनुभवों का प्रावधान करना, योग्यताओं का विकास करना तथा उद्देश्यों की प्राप्ति करना। बुद्धिमत्तापूर्ण निर्देशन के अभाव में शिक्षण को उत्तम शिक्षा की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है तथा अच्छे शिक्षण के अभाव में दिया गया निर्देशन भी अपूर्ण होता है। इस प्रकार शिक्षण एवं निर्देशन एक दूसरे के पूरक हैं।"

"Guidance means to stimulate and helps the students to set up worthwhile. Achievable purpose and develop abilities, which will make it possible form to achieve his purposes. The essentials elements are the setting up of purpose, the provision of experiences, the development of abilities, and the achievement of purposes. Teaching withoug intelligent guidance can not be good teaching is incomplete. Teaching and guidance are inseparable."

–Rinkal and guilcrust

अमेरिका की नेशनल वोकेशलन गाइडेन्स ऐसोसिएशन ने निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा है—"निर्देशन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति को विकसित करने, अपने सम्बन्ध में पर्याप्त एवं समन्वित करने तथा कार्य क्षेत्र में अपनी भूमिका को समझने में सहायता प्राप्त होती है। साथ ही इसके द्वारा व्यक्ति अपनी इस धारणा को यथार्थ में परिवर्तित कर देता है।"

Guidance is the process of helping persons to develop and acept and integrated and adequate picture of himself and of his role in the world of work, to test this concept against reality and to convert it into reality with satisfaction to himself and benefit to society."

–A.N.V.G. Association

मायर्स के अनुसार—"निर्देशन, व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों व प्रशिक्षण से अर्जित क्षमताओं को संरक्षित रखने का एक मूल प्रयास है। इस संरक्षण के लिये वह व्यक्ति को उन समस्त साधनों से सम्पन्न बनाता है, जिससे वह अपनी तथा समाज की सन्तुष्टि के लिये, अपनी उच्चतम शक्तियों का अन्वेषण कर सकें।"

ट्रेसलर के मतानुसार—"निर्देशन वह है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यताओं एवं रूचियों को समझने, उन्हें यथासम्भव विकसित करने, उन्हें जीवन लक्ष्यों से संयुक्त करने तथा अन्तत: अपनी सामाजिक व्यवस्था के वांछनीय सदस्य की दृष्टि से एक पूर्ण एवं परिपक्व आत्म-निर्देशन की स्थिति तक पहुँचने में सहायक होता है।"

लफेवर की दृष्टि में—"निर्देशन, शैक्षिक प्रक्रिया की उस व्यवस्थित एवं गठित अवस्था को कहा जाता है जो युवा वर्ग को अपने जीवन में ठोस बिन्दु व दिशा प्रदान करने की क्षमता को बढ़ाने में सहायता प्रदान करता है जिससे उसकी व्यक्तिगत अनुभव में समृद्धि के साथ-साथ अपने प्रजातान्त्रिक समाज में अपना निजी योगदान सम्भव हो सके।"

स्ट्रप्स एवं लिण्डक्विस्ट के अनुसार—निर्देशन व्यक्ति के अपने लिये एवं समाज के लिये अधिकतम लाभदायक दिशा में उसकी सम्भावित, अधिकतम क्षमता तक विकास में सहायक तथा निरनतर चलने वाली प्रक्रिया है।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **सही विकल्प चुनिए** (Multiple Choice Questions)—

(*i*) निर्देशन प्रक्रिया होती है—

(*a*) बाल केन्द्रित (*b*) उद्देश्य केन्द्रित

(*c*) समस्या केन्द्रित (*d*) उपरोक्त सभी।

(*ii*) निर्देशन प्रक्रिया का उद्देश्य होता है—

(*a*) व्यक्तित्व का विकास (*b*) सामाजीकरण

(*c*) नागरिकता का विकास (*d*) उपरोक्त सभी।

(*iii*) निर्देशन की व्यवस्था की जाती है—

(*a*) समस्या की जानकारी (*b*) सहायता करने

(*c*) अनुसरण करने (*d*) उपरोक्त सभी।

(*iv*) निर्देशन एक सहायक प्रविधि है—

(*a*) शिक्षण की (*b*) अनुदेशन की

(*c*) प्रशिक्षण की (*d*) उपरोक्त सभी की।

(*v*) निर्देशन एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया है—

(*a*) औपचारिक (*b*) अनौपचारिक

(*c*) दोनों ही (*d*) उपरोक्त कोई नहीं।

नोट

1.2 निर्देशन की विशेषतायें (Characteristics of Guidance)

उपरोक्त परिभाषाओं के निर्देशन की विशेषताओं, कार्यों एवं उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है। निर्देशन की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं–

(1) निर्देशन जीवन में आगे बढ़ने में सहायक होती है। शिक्षण की भाँति निर्देशन भी विकास की प्रक्रिया है।

(2) निर्देशन द्वारा व्यक्ति को अपने निर्णय स्वयं ले सकने में सक्षम बनाना है तथा अपना भार स्वयं वहन करने में सहायता करना है।

(3) इसके अन्तर्गत एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति को उसकी समस्याओं एवं समायोजन के विकल्पों के चयन में सहायक होता है। यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करती है।

(4) निर्देशन शिक्षा की प्रक्रिया के अन्तर्गत व्याप्त होता है। प्रत्येक शिक्षा को अपने छात्र की रूचियों, योग्यताओं एवं क्षमताओं को समझकर उनके अनुकूल सीखने की परिस्थितियों को प्रस्तुत करे जिससे उनकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की जा सके।

(5) निर्देशन में छात्रों की वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुरूप अनुदेशन को अनुकूलित करने में सहायता प्रदान करती है।

(6) प्रभावशाली शिक्षण तथा अनुदेशन में निर्देशन प्रक्रिया निहित होती है। बुद्धिमत्तापूर्ण निर्देशन के अभाव में शिक्षण प्रक्रिया अपूर्ण होती है।

(7) निर्देशन द्वारा व्यक्ति को विकसित करने, अपने सम्बन्ध में पर्याप्त एवं समन्वित जानकारी कराने तथा व्यवसायिक जीवन में अपनी भूमिका को समझने में सहायता प्रदान करना है।

(8) निर्देशन व्यक्ति की जन्मजात योग्यताओं व शक्तियों तथा प्रशिक्षण से अनेक कौशलों को संरक्षित रखने का मूल प्रयास है।

(9) निर्देशन व्यक्ति के अपने लिये एवं समाज के लिये अधिक लाभदायक दिशा में उसकी अधिकतम क्षमता के विकास में निरन्तर सहायक होता है।

(10) निर्देशन, शिक्षा प्रक्रिया की वह अवस्था है जिसमें छात्र को उसकी योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुरूप अध्ययन पाठ्यक्रमों के चयन में तथा रोजगार के चयन में सहायता प्रदान करता है।

निर्देशन की विशेषताओं से ज्ञात होता है कि निर्देशन मानव जीवन के विकास एवं समायोजन की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो जीवन पर्यन्त निरंतर चलती है। निर्देशन शिक्षा का अभिन्न अंग है। व्यक्ति की सभी प्रकार की समस्याओं तथा समायोजन के समाधान में सहायक होती है। निर्देशन शिक्षा की सहायक प्रविधि है।

क्या आप जानते हैं व्यक्ति की मनो-शारीरिक विशेषताओं, मनों-विकारों, संवेगात्मक अस्थिरताओं आदि की समुचित जानकारी के आधार पर व्यक्ति को वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु सहायता प्रदान की जानी संभव है, इस प्रकार की सहायता, वैयक्तिक निर्देशन के क्षेत्र में प्रदान की जाती है।

1.3 निर्देशन की प्रकृति (Nature of Guidance)

निर्देशन एक ऐसी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो मानवीय जीवन में, एक विशिष्ट सेवा के रूप में अपना योगदान देती है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत एक अधिक योग्य, निपुण अथवा सक्षम व्यक्ति अपने से कम योग्य, अकुशल अथवा

नोट

असक्षम व्यक्ति को सहायता प्रदान करता है, सुझावों के रूप में, वैचारिक स्तर पर प्रदान की जाने वाली यह सहायता किसी भी क्षेत्र में प्रदान की जा सकती है। निर्देशन की यह विशेषता है कि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत, व्यक्ति पर कुछ थोपने के स्थान पर उसके स्वाभाविक विकास को ही महत्व प्रदान किया जाता है तथा व्यक्ति को विकास पथ पर अग्रसारित करने में सहायता प्रदान करना ही इस प्रक्रिया का महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है। इस प्रकार सुझाव परक सहायता के आधार पर व्यक्ति की सफलता की सम्भावनाओं में वृद्धि करना तथा व्यक्ति एवं समाज का कल्याण करने हेतु निर्देशन सेवाओं का अत्यधिक महत्व है।

दार्शनिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक तीनों प्रकार से निर्देशन का महत्व होता है। इन तीनों क्षेत्रों से सम्बन्धित आधारों अथवा सिद्धान्तों का ध्यान रखकर ही इस प्रक्रिया का संचालन किया जाता है। उदाहरणार्थ, दार्शनिक दृष्टि से व्यक्ति के समग्र अथवा सर्वांगीण तथा समन्वित विकास पर बल दिया जाता है तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार व्यक्ति के स्वाभाविक तथा वैयक्तिक विभिन्नताओं पर आधारित विकास को महत्व प्रदान किया जाता है। निर्देशन की प्रक्रिया के माध्यम से जितने भी प्रयास किए जाते हैं; उन समस्त प्रयासों का उद्देश्य व्यक्ति का समग्र एवं समन्वित विकास करना ही है। साथ ही निर्देशन के अन्तर्गत प्रदान की जाने वाली सुझावात्मक सहायता, वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर ही प्रदान की जाती है। यही कारण है कि इस प्रक्रिया में व्यक्ति के सहज एवं स्वाभाविक विकास को ही प्रमुखता प्रदान की जाती है। इस प्रकार सामाजिक आवश्यकताओं, अपेक्षाओं, मान्यताओं, मानदण्डों, मूल्यों आदि के आधार पर व्यक्ति को विकसित होने में सहायता प्रदान करना भी निर्देशन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। निर्देशन के द्वारा समायोजन की क्षमता के विकास में सहायक होना तथा सामाजिक समस्याओं एवं सामाजिक आवश्यकताओं से व्यक्ति को परिचित कराकर, समाज कल्याण की दिशा में प्रेरित करना, यह सिद्ध करता है कि निर्देशन के अन्तर्गत, समाजशास्त्रीय आधारों को भी समान रूप से महत्व प्रदान किया जाता है। अत: यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें ज्ञान की तीनों शाखाओं (दर्शन, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र) से सम्बन्धित सैद्धान्तिक आधारों को समन्वित महत्व प्रदान किया जाता है।

निर्देशन की उपरोक्त प्रकृति के आधार पर उसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। इन विशेषताओं का उल्लेख निम्नलिखित हैं–

(1) निर्देशन की उपरोक्त पद्धति व्यक्ति एवं समूह दोनों से ही सम्बन्धित होती है।

(2) निर्देशन का स्वरूप बहु-पक्षीय होता है।

(3) निर्देशन के सम्बन्ध में विविध प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिए, विभिन्न विधियों एवं प्रविधियों का प्रयोग संयुक्त रूप से किया जा सकता है।

(4) निर्देशन का सम्बन्ध व्यक्ति के समग्र पक्षों के विकास से होता है।

(5) व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) एवं वस्तुनिष्ठ (Objective) दोनों ही प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग, निर्देशन के अन्तर्गत किया जा सकता है।

(6) निर्देशन के आधार पर व्यक्ति एवं समाज, दोनों की ही प्रगति एवं विकास हेतु प्रयास किया जाता है।

(7) यह समस्या केन्द्रित (Problem Centered) एवं प्रार्थी केन्द्रित (Client Centered) प्रक्रिया है।

(8) व्यक्ति को आत्म-निर्देशन के योग्य बनाना ही इस प्रक्रिया का प्रमुख उद्देश्य है।

(9) यह विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन की क्षमता का विकास करने में सहायक है।

(10) इस प्रक्रिया का तात्कालिक उद्देश्य, व्यक्ति की तात्कालिक समस्याओं के समाधान में सहायता करना है।

1.4 निर्देशन के क्षेत्र (Scope of Guidance)

व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी प्रकार की समस्या का होना स्वाभाविक है। इन समस्याओं का समाधान किये बिना प्रगति-पथ पर निरंतर आगे बढ़ते रहना नितान्त असम्भव है। कोई भी व्यक्ति

नोट

जिस क्षण इन समस्याओं का समाधान करने की दिशा में हतोत्साहित हो जाता है, उसी क्षण उसकी प्रगति अवरूद्ध हो जाती है। इस दृष्टि से समस्या समाधान की क्षमता का विकास कितना अधिक महत्वपूर्ण है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति में इस क्षमता का विकास करने में सर्वाधिक सहायक है, साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि जीवन से सम्बन्धित प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान करने की योग्यता का विकास करने में निर्देशन सहायक है। इस आधार पर निर्देशन के क्षेत्र की कल्पना करना कठिन नहीं है। वस्तुत: जहाँ-जहाँ भी समस्या है वहाँ, निर्देशन प्रदान करने की सम्भावना निहित है। अत: निर्देशन का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। फिर भी इस प्रक्रिया का क्षेत्र प्रमुख रूप से शिक्षा, व्यवसाय एवं वैयक्तिक समस्याओं के समाधान तक ही सीमित रहता है। विशेषकर भारत में निर्देशन सेवाओं का कार्य क्षेत्र अभी तक सीमित ही है।

शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में निर्देशन प्रक्रिया का उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है यथा–(1) वांछित पाठ्यक्रम पर आधारित विषयों का चयन करने में (2) पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के चयन हेतु (3) नवीन पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में निर्णय लेने में (4) अधिगम प्रक्रिया के निरन्तर, अपेक्षित उपलब्धि स्तर बनाये रखने की दृष्टि से (5) राष्ट्रीय एकता पर आधारित कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु प्रेरित करने की दृष्टि से (6) अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या का समाधान करने के लिये (7) प्रौढ़ शिक्षा पर आधारित कार्यक्रमों की दिशा में प्रेरित करने हेतु, आदि।

शैक्षिक क्षेत्र के समान ही व्यावसायिक क्षेत्र में भी निर्देशन की भूमिका का विशेष महत्व है। इस क्षेत्र में यह प्रक्रिया अनेक दृष्टिकोण से सहायक हैं। उदाहरणार्थ–(1) योग्यतानुकूल व्यवसाय का चयन करने में (2) व्यावसायिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों से परिचित कराने के लिए (3) व्यवसायिक अवसरों में विविधता की दृष्टि से (4) श्रम एवं उद्योग की परिस्थितियों में वांछित परिवर्तन करने के लिए (5) विशिष्टीकरण की दिशा में प्रेरित करने हेतु तथा (6) नव-विकसित तकनीकी से परिचित कराने के लिए, आदि।

इसी प्रकार वैयक्तिक समस्याओं के समाधान हेतु भी निर्देशन का व्यापक उपयोग किया जा सकता है, यथा–(1) संकट कालीन स्थिति के निरन्तर मानसिक एवं संवेगात्मक सन्तुलन बनाए रखने में (2) व्यक्तिगत समस्या का समाधान करने हेतु वांछित निर्णय शक्ति का विकास करने में (3) व्यक्ति समायोजन में वृद्धि करने हेतु (4) पारिवारिक संघर्ष से मुक्त होने में (5) पारिवारिक जीवन में समायोजन की दृष्टि से (5) अवकाश के समय का सदुपयोग करने के लिए, इत्यादि।

शैक्षिक, व्यवसायिक एवं वैयक्तिक क्षेत्रों में निर्देशन की उपरोक्त भूमिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्देशन का क्षेत्र अधिक व्यापक है। इन क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान में व्यक्ति को सक्षम बनाने के अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि इन समस्याओं के समाधान हेतु व्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए एक निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्ति को अनेक विषयों के समन्वित अध्ययन की आवश्यकता होती है। विशेषकर मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं दर्शन का अध्ययन, एक निर्देशन प्रदाता के लिए परम् आवश्यक है। समाज की आवश्यकताओं, परिस्थितियों एवं तात्कालिक समस्याओं का अध्ययन तथा व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया को समझाने के उपरांत ही यह सम्भव हो सकता है कि कोई व्यक्ति निर्देशन प्रदान करने की दिशा में कौशल प्राप्त कर सके। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि उसे निर्देशन की विधि एवं व्यक्ति की जानकारी प्रदान करने वाले परीक्षणों के प्रशासन व आकलन का समुचित ज्ञान हो।

टास्क विविध क्षेत्रों में निर्देशन की उपयोगिता लिखिए।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. निर्देशन प्रक्रिया व्यक्ति की .... करती है।
2. निर्देशन .... की एक प्रक्रिया है।
3. निर्देशन की प्रक्रिया .... केन्द्रित होती है।
4. निर्देशन की प्रक्रिया से .... का विकास होता है।
5. निर्देशन की प्रक्रिया में समस्या सम्बन्धी .... दी जाती है।

1.5 सारांश (Summary)

- निर्देशन की प्रक्रिया सुधारात्मक आयाम के स्थान पर विकासात्मक आयाम के रूप में ही परिभाषित की जानी अधिक सार्थक है, क्योंकि विशिष्ट सेवा के रूप में यह प्रक्रिया *समस्या-केन्द्रित* होने के स्थान पर *सेवार्थी-केन्द्रित* ही अधिक होती है। विशिष्ट सेवा के रूप में अर्थापित इस आयाम के अनेक दोष हैं। इस रूप में परिभाषित निर्देशन को विद्यालय की आनुषंगिक सेवा के रूप में पहचाना जाता है।
- यद्यपि निर्देशन की कोई सर्वमान्य परिभाषा अभी तक प्रस्तुत नहीं की जा सकी है, परन्तु फिर भी, इन परिभाषाओं के आधार पर निर्देशन के अर्थ को समझने में सहायता प्राप्त हो सकेगी। इस प्रकार की कुछ परिभाषाएँ अग्रलिखित हैं—

  (*i*) **शर्ले हैमरिन** (Shirley Hamrin) के शब्दों में—"व्यक्ति के स्वयं के पहचानने में इस प्रकार सहायता प्रदान करना, जिससे वह अपने जीवन में आगे बढ़ सके, इस प्रक्रिया को निर्देशन कहा जाता है।"

  (*ii*) **लेस्रूटर डी. क्रो** (Lester D. Crow and Alice Crow)—ने अपनी पुस्तक *'एन इन्ट्रोडक्सन टू गाइडैन्स'* में निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा है—"निर्देशन से तात्पर्य, निर्देशन के लिये स्वयं निर्णय लेने की अपेक्षा निर्णय कर देना नहीं है और न ही दूसरे के जीवन का बोझ ढोना है। इसके विपरीत, योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा, दूसरे व्यक्ति को, चाहे वह किसी भी आयु वर्ग का हो, अपनी जीवन क्रियाओं को स्वयं गठित करने, अपने निजी दृष्टिकोण विकसित करने, अपने निर्णय स्वयं ले सकने तथा अपना भार स्वयं वहन करने में सहायता करना ही वास्तविक निर्देशन है।"
- उपरोक्त परिभाषाओं के निर्देशन की विशेषताओं, कार्यों एवं उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है। निर्देशन की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं—

  (1) निर्देशन जीवन में आगे बढ़ने में सहायक होती है। शिक्षण की भाँति निर्देशन भी विकास की प्रक्रिया है।

  (2) निर्देशन द्वारा व्यक्ति अपने निर्णय स्वयं ले सकने में सक्षम बनाना है तथा अपना भार स्वयं वहन करने में सहायता करना है।

  (3) इसके अन्तर्गत एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति को उसकी समस्याओं एवं समायोजन के विकल्पों के चयन में सहायक होता है। यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करती है।

  (4) निर्देशन शिक्षा की प्रक्रिया के अन्तर्गत व्याप्त होता है। प्रत्येक शिक्षक को अपने छात्र की रूचियों, योग्यताओं एवं क्षमताओं को समझकर उनके अनुकूल सीखने की परिस्थितियों को प्रस्तुत करे जिससे उनकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो।

  (5) निर्देशन में छात्रों की वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुरूप अनुदेशन को अनुकूलित करने में सहायता प्रदान करती है।

नोट

- निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं–
  (1) वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के योग्य बनाना।
  (2) वातावरण से समुचित समायोजन हेतु सहायता करना।
  (3) योग्यतानुसार शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों की जानकारी प्रदान करना।
  (4) व्यक्ति में निहित योग्यताओं एवं शक्तियों से परिचित करना, तथा
  (5) निहित विशेषताओं के विकास में सहायता प्रदान करना।
- निर्देशन के अन्तर्गत, निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्ति के द्वारा किसी भी व्यक्ति से सम्बन्धित समस्या का समाधान स्वयं नहीं किया जाता है वरन् समस्या से सम्बन्धित व्यक्ति को ही इस योग्य बनाया जाता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्देशन के द्वारा व्यक्ति में निहित योग्यताओं एवं क्षमताओं की जानकारी प्राप्त की जाती है और व्यक्ति को इन विशेषताओं से परिचित कराया जाता है।
- निर्देशन एक ऐसी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो मानवीय जीवन में, एक विशिष्ट सेवा के रूप में अपना योगदान देती है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत एक अधिक योग्य, निपुण अथवा सक्षम व्यक्ति अपने से कम योग्य, अकुशल अथवा असक्षम व्यक्ति को सहायता प्रदान करता है, सुझावों के रूप में, वैचारिक स्तर पर प्रदान की जाने वाली यह सहायता किसी भी क्षेत्र में प्रदान की जा सकती है। निर्देशन की यह विशेषता है कि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत, व्यक्ति पर कुछ थोपने के स्थान पर उसके स्वाभाविक विकास का ही महत्त्व प्रदान किया जाता है तथा व्यक्ति को विकास पथ पर अग्रसारित करने में सहायता प्रदान करना ही इस प्रक्रिया का महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है।
- निर्देशन की उपरोक्त प्रकृति के आधार पर उसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। इन विशेषताओं का उल्लेख निम्नलिखित हैं–
  (1) निर्देशन की उपरोक्त पद्धति व्यक्ति एवं समूह दोनों से ही सम्बन्धित होती है।
  (2) निर्देशन का स्वरूप बहु-पक्षीय होता है।
  (3) निर्देशन के सम्बन्ध में विविध प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिए, विभिन्न विधियों एवं प्रविधियों का प्रयोग संयुक्त रूप से किया जा सकता है।
  (4) निर्देशन का सम्बन्ध व्यक्ति के समग्र पक्षों के विकास से होता है।
  (5) व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) एवं वस्तुनिष्ठ (Objective) दोनों ही प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग, निर्देशन के अन्तर्गत किया जा सकता है।
  (6) निर्देशन के आधार पर व्यक्ति एवं समाज, दोनों की ही प्रगति एवं विकास हेतु प्रयास किया जाता है।
- व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी प्रकार की समस्या का होना स्वाभाविक है। इन समस्याओं का समाधान किये बिना प्रगति-पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते रहना नितांत असम्भव है।
- शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में निर्देशन प्रक्रिया का उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है यथा–(1) वांछित पाठ्यक्रम पर आधारित विषयों का चयन करने में (2) पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के चयन हेतु (3) नवीन पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में निर्णय लेने में (4) अधिगम प्रक्रिया के निरन्तर, अपक्षित उपलब्धि स्तर बनाये रखने की दृष्टि से (5) राष्ट्रीय एकता पर आधारित कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु प्रेरित करने की दृष्टि से (6) अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या का समाधान करने के लिये (7) प्रौढ़ शिक्षा पर आधारित कार्यक्रमों की दिशा में प्रेरित करने हेतु, आदि।
- शैक्षिक क्षेत्र के समान ही व्यावसायिक क्षेत्र में भी निर्देशन की भूमिका का विशेष महत्व है। इस क्षेत्र में यह प्रक्रिया अनेक दृष्टिकोण से सहायक हैं। उदाहरणार्थ–(1) योग्यतानुकूल व्यवसाय का चयन करने में (2)

नोट

व्यवसायिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों में परिचित कराने के लिए (3) व्यवसायिक अवसरों में विविधता की दृष्टि से (4) श्रम एवं उद्योग की परिस्थितियों में वांछित परिवर्तन करने के लिए (5) विशिष्टीकरण की दिशा में प्रेरित करने हेतु तथा (6) नव-विकसित तकनीकी से परिचित कराने के लिए, आदि।

1.6 शब्दकोश (Keywords)

- **आबद्ध**—बँधकर।
- **अनुदेशन**—निर्देश।

1.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निर्देशन का अर्थ बताइए? विभिन्न प्रत्ययों के आधार पर इस प्रत्यय का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. निर्देशन का आशय स्पष्ट करते हुए, निर्देशन एवं परामर्श का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. शिक्षा, शिक्षण एवं अनुदेशन से निर्देशन का प्रत्यय किस प्रकार भिन्न है?
4. निर्देशन की विशेषताओं एवं आवश्यकताओं का विवेचन कीजिए।
5. निर्देशन के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. (*i*) (*c*) (*ii*) (*d*) (*iii*) (*d*) (*iv*) (*d*)
(*v*) (*c*)

2. 1. सहायता 2. विकास 3. समस्या 4. व्यक्तित्व
5. जानकारी

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)* – डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. ए. शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–2: निर्देशन–उद्देश्य और सिद्धांत (Guidance : Goals and Principles)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 निर्देशन के लक्ष्य (Goals of Guidance)

2.2 निर्देशन के सिद्धांत (Principles of Guidance)

2.3 सारांश (Summary)

2.4 शब्दकोश (Keywords)

2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

2.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- निर्देशन के लक्ष्य तथा सिद्धान्तों का विश्लेषण करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

विश्व की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। मानवीय आवश्यकताओं पर इस प्रकार की परिवर्तित परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना प्रत्येक व्यक्ति को करना पड़ता है। प्राय: उचित निर्देशन सहायता प्राप्त न कर पाने के कारण समाज में अनेक व्यक्ति या तो इन समस्याओं से भयभीत होकर पलायन करने लगते हैं अथवा व्यर्थ ही अपनी मानवीय क्षमता का अपव्यय करते हुए, इन समस्याओं से संघर्ष करते रहते हैं अत: निर्देशन ऐसी विकास की प्रक्रिया है जिसके आधार पर इन समस्याओं के समाधान की क्षमता का विकास प्रत्येक व्यक्ति में किया जा सकता है। समस्याओं के विविध पक्षों, कारणों, परिणामों, परिस्थितियों आदि से व्यक्ति को अवगत कराने के साथ ही, इसके आधार पर उन वैयक्तिक एवं सामाजिक विशेषताओं का भी विकास किया जा सकता है जिनके आधार पर किसी भी समस्या का समाधान स्वयं किया जा सकता है। यही कारण है कि इस प्रक्रिया को स्व-निर्देशन में दक्ष करने की प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है। वस्तुत: शिक्षा के उपरान्त निर्देशन ही एकमात्र ऐसी प्रक्रिया है जो समस्या समाधान के क्षेत्र में व्यक्ति को तैयार करने में सहायक है। यही कारण है कि शिक्षा के उपरान्त निर्देशन की प्रक्रिया को ही सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। इस दृष्टि से निर्देशन की समस्त आधारभूत प्रक्रिया कुछ विशिष्ट मान्यताओं एवं अधिनियमों पर आधारित होती है। इन मान्यताओं एवं अधिनियमों पर ही प्रस्तुत अध्याय में प्रकाश डाला गया है।

2.1 निर्देशन के लक्ष्य (Goals of Guidance)

निर्देशन एक सोद्देश्य क्रिया है। इसके आधार पर व्यक्ति को इस प्रकार सहायता प्रदान की जाती है; जिससे वह अपनी विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु स्वयं निर्णय ले सके तथा अपने जीवन से सम्बन्धित विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति सफलतापूर्वक कर सके। *चाश्शेम* के शब्दों में भी निर्देशन का उद्देश्य उन सजीव तथा क्रियात्मक निहित शक्तियों का विकास करना है जिनकी सहायता से वह अपने जीवन की समस्याओं को सुगमता एवं सरलतापूर्वक हल करने के योग्य बन जाए।"

निर्देशन की आवश्यकता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होती है। इसी कारण निर्देशन के अनेक उद्देश्य होते हैं। परन्तु फिर भी निर्देशन का एक ही महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है और वह उद्देश्य है जीवन से सम्बन्धित विविध परिस्थितियों के समुचित चयन, विश्लेषण एवं समायोजन हेतु इस प्रकार सहायता प्रदान करना जिससे वह इन समस्याओं का समाधान करने में स्वयं सक्षम हो सके। फिर भी व्यक्ति एवं समाज से सम्बन्धित अनेक प्रकार की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं–

(1) वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के योग्य बनाना।

(2) वातावरण से समुचित समायोजन हेतु सहायता करना।

(3) योग्यतानुसार शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों की जानकारी प्रदान करना।

(4) व्यक्ति में निहित योग्यताओं एवं शक्तियों से परिचित कराना, तथा

(5) निहित विशेषताओं के विकास में सहायता प्रदान करना।

उपरोक्त बिन्दुओं का विवरण इस प्रकार किया जा सकता है–

(1) वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के योग्य बनाना (Developing Competency to Solve the Problems related to Individual and Social Progress)–निर्देशन के अन्तर्गत, निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्ति के द्वारा किसी भी व्यक्ति से सम्बन्धित समस्या का समाधान स्वयं नहीं किया जाता है वरन् समस्या से सम्बन्धित व्यक्ति को ही इस योग्य बनाया जाता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्देशन के द्वारा व्यक्ति में निहित योग्यताओं एवं क्षमताओं की जानकारी प्राप्त की जाती है और व्यक्ति को इन विशेषताओं से परिचित कराया जाता है। इस विषय के आधार पर ही वह अपने विकास की प्रक्रिया, उपलब्ध अवसरों तथा समाज की विभिन्न परिस्थितियों को पहचानना सीखता है। यह पहचान ही व्यक्ति को इस योग्य बनाती है कि व्यक्ति अपने विकास पथ पर निरन्तर अग्रसरित होते हुए समाज में समायोजन कर सके तथा समाज की प्रगति हेतु भी अपना योगदान दे सके। अतः संक्षेप में यह भी कहा जा सकता है कि निर्देशन का उद्देश्य आत्म-प्रदर्शन हेतु व्यक्ति को सक्षम बनाना है। 'आत्म दीपौ भव' की शाश्वत विचारधारा को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करके यह व्यक्ति को अपना पथ स्वयं ही प्रशस्त करने में सहायता प्रदान करता है। *क्रोर्दे* व *क्रो* के अनुसार भी निर्देशन का लक्ष्य दिशा देना नहीं है, अपनी विचारधाराओं को दूसरे पर आरोपित करना भी नहीं है, यह उन निर्णयों का जिन्हें एक व्यक्ति को अपने लिए निश्चित करना चाहिए, निश्चित करना नहीं है, यह दूसरे के दायित्व को अपने ऊपर लेना भी नहीं है, वरन निर्देशन तो वह सहायता है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन का पथ स्वयं प्रशस्त करता है, अपनी विचारधारा का विकास करता है, अपने निर्णय निश्चित करता है तथा अपना दायित्व सम्भालता है।"

(2) वातावरण से समुचित समायोजन हेतु सहायता (Assistance to Adjust Adequately with the Environment)–समायोजन का व्यक्ति के जीवन में विशेष महत्व होता है। इसके अभाव में किसी भी व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र की प्रगति सम्भव नहीं है। कोई व्यक्ति समाज में समायोजित हो सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को अपनी रुचि, योग्यता एवं अभियोग्यता के अनुरूप अवसर प्राप्त हो। वह समाज की आवश्यकता एवं परिस्थितियों को पहचान सके तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्वयं को समायोजित कर सके। वर्तमान समाज की परिवर्तित परिस्थितियों में इस प्रकार के समायोजन की और भी अधिक आवश्यकता है। आज के युग की परिस्थितियाँ

नोट

पहले की अपेक्षाकृत अधिक विषम हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संघर्षरत होकर ही आज प्रगति की जा सकती है। उदाहरण के लिए व्यवसायिक क्षेत्र में उपलब्ध अवसर आज जनसंख्या के अनुपात में कम है। विभिन्न व्यवसायों के लिए जो स्थान विज्ञापित किये भी जाते हैं उन पदों पर चयन हेतु, अभ्यर्थियों की एक विशाल संख्या आवेदन भेजती है तथा सन्तोषप्रद साक्षात्कार अथवा लिखित परीक्षा देने के उपरान्त भी यह आवश्यक नहीं होता कि योग्य व्यक्तियों का चयन किया ही जायेगा। इस प्रकार की अनिश्चितता, अपूर्णता एवं असंगतता की स्थिति में व्यक्ति का निराश एवं हताश होना स्वाभाविक है। यह परिस्थिति ही अनेक प्रकार के असामाजिक व्यवहारों को जन्म देती है जिसके फलस्वरूप न केवल व्यक्ति की क्षमताओं का ह्रास होता है, वरन् पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश भी तनावग्रस्त हो जाता है। योग्यता होते हुए भी अवसर प्राप्त न हो पाना अथवा योग्यता के प्रतिकूल अवसर की प्राप्ति करना, दोनों की प्रकार की स्थितियाँ व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र के लिए दुखदायी होता है। जो व्यक्ति साधन सम्पन्न होते हैं, अवसर की प्राप्ति जिनकी तात्कालिक आवश्यकता नहीं होती, जिनका परिवेश, योग्यताएँ एवं आकांक्षाएं अधिक उच्च स्तर की नहीं होती अथवा जिनकी वैयक्तिक एवं पारिवारिक आवश्यकताएँ न्यूनतम होती हैं वे इस प्रकार की समस्याओं के समायोजन करने में सक्षम हो जाते हैं लेकिन वे व्यक्ति जो वास्तव में योग्य होते हैं, व्यावसायिक अवसर जिनकी ज्वलन्त आवश्यकता होती है उनके लिए इन विषम परिस्थितियों से समायोजन कर पाना अत्यन्त कठिन होता है। हमारे देश अनेक प्रतिभा सम्पन्न इन विषम परिस्थितियों के कारण सदैव के लिए कुण्ठाग्रस्त होकर रह जाते हैं। अथवा छोटे-छोटे व्यक्तिगत प्रतिष्ठानों में अल्प वेतन पर अपना शोषण कराने के लिए विवश होते रहते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों का भावात्मक सन्तुलन बनाए रखने की विशेष आवश्यकता होती है। निर्देशन के आधार पर छात्रों को उनकी योग्यता के अनुरूप अवसरों को उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान की जाती है तथा उनकी विद्यालय सम्बन्धी समस्याओं के सन्दर्भ में वांछित सुझाव दिये जाते हैं। व्यावसायिक क्षेत्र में व्यक्ति की रुचि, अभिरुचि आदि के अनुरूप अवसरों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की जाती है तथा समाज की विषम परिस्थितियों से धैर्यपूर्वक सामंजस्य करने हेतु भी सहायता प्रदान की जाती है।

(3) योग्यतानुसार शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों की जानकारी प्रदान करना (To Provide Information about Educational and Vocational Opportunities)—प्रत्येक बालक कुछ विशिष्ट वंशानुगत विशेषताओं को लेकर जन्म लेता है तथा जन्म के उपरान्त अपने सामाजिक परिवेश से भी अनेक प्रकार की बौद्धिक, संवेगात्मक एवं गतिशील विशेषताओं को भी अर्जित करता है। व्यक्ति का समस्त व्यक्तित्व इन विशेषताओं का ही परिणाम होता है। व्यक्ति के विकास की गति को तीव्र करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उसमें निहित विशेषताओं का समुचित अध्ययन किया जाये तथा उसमें निहित योग्यताओं, क्षमताओं, रुचियों, अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों के अनुरूप दिशा में ही उसे प्रेरित किया जाए यह अनुरूपता अथवा अवसर एवं योग्यता के मध्य उचित सामंजस्य ही व्यक्ति एवं समाज की प्रगति का आधार होता है। प्रगतिशील देशों की प्रगति का यही प्रमुख रहस्य है, जिस देश में मानवीय प्रतिभा एवं क्षमता का समयानुकूल एवं पर्याप्त उपयोग करने की दिशा में सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है वही देश प्रगति की दौड़ में सबसे आगे होता है। अत: प्रगति के लिए वह आवश्यक है कि शिक्षा, व्यवसाय, उद्योग एवं समाज की आवश्यकताओं तथा व्यक्ति में निहित योग्यताओं एवं क्षमताओं के मध्य सन्तुलन स्थापित किया जाए। हमारे देश में माध्यमिक स्तर तक शिक्षा अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या की पृष्ठभूमि में निहित एक कारण यह भी है कि शिक्षा प्रदान करते समय छात्रों की वैयक्तिक भिन्नता का ध्यान नहीं रखा जाता है। परिणामत: छात्रों की क्षमता का अपव्यय होता है और वे वांछित शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। विशेषकर हाईस्कूल स्तर पर छात्रों के पाठ्यक्रम का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। निर्देशन के माध्यम से छात्रों को यह ज्ञात हो सकता है कि वे किस वर्ग से सम्बन्धित पाठ्यक्रम का चयन करें। इसके साथ ही सीखने की वांछित विधियों तथा विद्यालय वातावरण से समायोजन करने की समस्याओं के समाधान हेतु भी निर्देशन सहायक हो सकता है। इसी प्रकार अग्रिम शिक्षा से लाभान्वित होने तथा अभिरुचि के अनुकूल व्यवसाय का चयन करने में भी, निर्देशन सेवाओं का प्रभावी उपयोग किया जा सकता है।

(4) व्यक्ति में निहित योग्यताओं एवं शक्तियों से परिचित कराना (To Acquaint with Existing Abilities and Powers)—वैयक्तिक विभिन्नताओं के सिद्धान्त के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति, किसी न किसी दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होता है। शारीरिक रचना के आधार पर विभिन्न प्रकार की वैयक्तिक विभिन्नताएँ प्रतिदिन देखते हैं। इसी प्रकार अनेक प्रमाणीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के आधार पर यह भी सिद्ध हो चुका है कि मानसिक एवं संवेगात्मक दृष्टि से भी प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी प्रकार की विभिन्नता पाई जाती है, यही कारण

नोट

है कि प्रत्येक व्यक्ति की जीवन शैली अथवा उसका व्यवहार एक दूसरे से भिन्न होता है। व्यक्ति की रुचि, वृद्धि एवं व्यक्तित्व से सम्बन्धित अनेक कारण उसके इस व्यवहार की पृष्ठभूमि में निहित होते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह स्वाभाविक ही है कि जब तक किसी व्यक्ति को स्वयं में निहित शक्तियों का स्पष्ट ज्ञान न हो वह प्रगति नहीं कर सकता है। विद्यालयी जीवन में, छात्रों को यह जानकारी प्राप्त होनी चाहिए कि वे अपने पाठ्यक्रम अथवा विषय से सम्बन्धित समस्याओं के सम्बन्ध में किस प्रकार निर्णय लें, प्रदत्त ज्ञान को ग्रहण करने हेतु अपनी बुद्धि का उपयोग किस प्रकार करें तथा कम से कम समय में अधिक से अधिक स्थायी ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करें। इस प्रकार की जानकारी के आधार पर उन्हें यह ज्ञात हो सकता है कि अपनी शैक्षिक समस्याओं के सन्दर्भ में निर्णय ले पाने की कितनी क्षमता, उनमें विद्यमान है तथा अपनी बुद्धि से सम्बन्धित किन-किन विशिष्ट योग्यताओं अथवा शक्तियों का प्रयोग वे सफलतापूर्वक कर सकते हैं। इन योग्यताओं एवं क्षमताओं की जानकारी उपयुक्त विषयों का चयन करने, समुचित रीति से अध्ययन करने तथा सहज अधिगम के आधार पर वांछित शैक्षिक उपलब्धि करने में सहायक होती है। संगत व्यवसाय के चयन एवं उस व्यवसाय में निपुणता प्राप्त करने की दृष्टि से भी उसी प्रकार की जानकारी उपेक्षित होती है। व्यक्ति में निहित योग्यताओं, क्षमताओं, कौशलों आदि से सम्बद्ध इन विशेषताओं से परिचित करने हेतु निर्देशन सेवाओं की भूमिका को विशेष महत्व प्रदान दिया जाता है। यह निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य स्वीकार किया गया है।

क्या आप जानते हैं

निर्देशन सन्दर्भ में यूनाइटेट स्टेट्स ऑफिस ऑफ एजूकेशन ने लिखा है—'निर्देशन एक ऐसी क्रियात्मक पद्धति है जो व्यक्ति का परिचय विभिन्न उपयोगों से (जिनमें विशेष प्रशिक्षण भी सम्मिलित है तथा जिसके माध्यम से व्यक्ति की प्राकृतिक शक्तियों का बोध भी कराती हैं, जिससे वह अधिकतम वैयक्तिक एवं सामाजिक हित एवं विकास कर सके) कराती है।

(5) निहित विशेषताओं के विकास में सहायता प्रदान करना (To Assist in the Development of Existing Potentialities)—निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति में निहित विशेषताओं का परिचय ही सम्भव नहीं है वरन इन विशेषताओं का विकास करने में भी यह प्रक्रिया सहायक होती है। उदाहरण के लिए शिक्षा के क्षेत्र में, बालकों को यह जानकारी प्रदान की जा सकती है कि शरीर की विभिन्न प्रणालियाँ किस प्रकार कार्य करती हैं, इन प्रणालियों में उत्पन्न होने वाले अवरोध कौन-कौन से हैं तथा व्यायाम एवं पौष्टिक भोजन के द्वारा इन अवरोधों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है। इस प्रकार की जानकारी शरीर की उचित देखभाल करने में सहायक होती है। इसी प्रकार अभिव्यक्ति के वांछित अवसर प्राप्त करने, सृजनात्मक कार्यों के प्रति रूचि जाग्रत करने, अनुवासनात्मक भावना का विकास करने, संवेगात्मक सन्तुलन को बनाए रखने तथा छात्रों को अपने विचारों, भावनाओं, अभिवृत्तियों को प्रकट करने का अवसर एवं उन्हें प्रकट करने की नीतियों के सम्बन्ध में भी निर्देशन सहायक है। इसी प्रकार व्यवसायिक निर्देशन के क्षेत्र में व्यक्ति को इस योग्य बनाया जा सकता है कि वह अपने व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाओं को एकत्रित कर सके तथा व्यवसाय में प्रगति के लिए आवश्यक योग्यताओं, क्षमताओं एवं कौशलों का विकास कर सके। इसी प्रकार अवकाश के समय का सदुपयोग करने, पारिवारिक, व्यवसायिक एवं सामाजिक सम्बन्धों को विकसित करने तथा यौन, प्रेम, धर्म आदि से सम्बन्धित समुचित दृष्टिकोण का विकास करने में भी निर्देशन का उपयोग किया जाता है। संक्षेप में निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके आधार पर वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन से सम्बन्धित प्राय: समस्त पक्षों का विकास किया जा सकता है मानवीय विकास के इस उद्देश्य की दिशा में अपेक्षित ध्यान देने पर ही यह सम्भव हो पाता है कि व्यक्ति, वैयक्तिक एवं सामाजिक लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की दिशा में तीव्र गति से अग्रसरित हो सके। ट्रेक्सलर ने इस सम्बन्ध में उचित ही लिखा है कि निर्देशन का उद्देश्य प्रत्येक छात्र को इस प्रकार सहायता प्रदान करता है कि वह अपनी क्षमता एवं शक्तियों का विकास करते हुए उनका सम्बन्ध जीवन मूल्यों एवं जीवन के उद्देश्यों से स्थापित कर सके और अन्त में छात्रों को इस योग्य बना सके कि वह अपना पथ-प्रदर्शन स्वयं कर सकें।

नोट

इस प्रकार निर्देशन एक सोद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। यह निहित शक्तियों की जानकारी प्रदान करके व्यक्ति के अखिल विकास में सहायक होता है। विकास एवं प्रगति में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान अथवा प्रतिकूल दशाओं में समायोजन की क्षमता उत्पन्न करने की दृष्टि से निर्देशन के अन्तर्गत अनेक प्रभावपूर्ण कार्यक्रमों के संचालन की व्यवस्था की जाती है। यह एक ऐसी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसका मानव जीवन में सर्वाधिक महत्व है। इसका कारण यह है कि यदि व्यक्ति अपनी समस्याओं के समाधान में ही सक्षम न हो सके तो यह सम्भव नहीं है कि वह सतत रूप से प्रगति पथ पर अग्रसरित हो सके।

नोट्स मनोवैज्ञानिकों के अथक प्रयासों के उपरान्त विकसित परीक्षणों का उपयोग व्यक्ति में निहित मानसिक एवं संवेगात्मक विशेषताओं की वस्तुनिष्ठ जानकारी प्राप्त करने तथा व्यक्ति के विकास की दिशा एवं गति का निर्धारण करने में किया जा सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. व्यक्ति के सम्बंध में सही जानकारी प्राप्त करने के लिए, व्यक्ति का .... पर आधारित कार्यक्रमों का संचालन किया जाना चाहिए।
2. .... स्वत: ही संचरित होने वाली ऐसी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार की जानी चाहिए जो बाल्यावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक उपलब्ध रहती है।
3. किसी भी समस्या के .... एवं समुचित समाधान के लिए, व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को महत्व प्रदान किया जाना स्वाभाविक है।

2.2 निर्देशन के सिद्धांत (Principles of Guidance)

निर्देशन के अधिनियम से आशय उन मूलभूत नियमों से है, जिनके आधार पर निर्देशन की प्रक्रिया का संचालन किया जाता है। इन सिद्धान्तों का विस्तार से उल्लेख करने से पूर्व यह आवश्यक है कि *क्रो एण्ड क्रो* द्वारा प्रस्तुत उन चौदह अधिनियमों का उल्लेख कर दिया जाय जो उन्होंने अपनी पुस्तक *'एन इन्ट्रोडक्शन टू गाइडेन्स'* में प्रस्तुत किये हैं। इन अधिनियमों का उल्लेख निम्नलिखित है।

(1) व्यक्ति के सम्बन्ध में सही जानकारी प्राप्त करने के लिये, व्यक्ति का मूल्यांकन अथवा अनुसंधान पर आधारित कार्यक्रमों का संचालन किया जाना चाहिये तथा निर्देशन के क्रियान्वयन के लिये, निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्तियों को उन संचयी अभिलेखों को उपलब्ध कराया जाना चाहिये जो छात्रों की प्रगति एवं उपलब्धि का सम्पूर्ण विवरण प्रदान करने में सहायक हो। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि सही प्रकार से चयनित मानकीकृत परीक्षणों एवं मूल्यांकन के अन्य उपकरणों के माध्यम से छात्रों की उपलब्धि, रूचियों एवं मानसिक योग्यताओं के सम्बन्ध में संकलित किये गये विशिष्ट प्रकार के प्रदत्तों का आलेख रखा जाना चाहिये तथा निर्देशन के लिये उनका उपयुक्त उपयोग भी करना चाहिये।

(2) विद्यालय से सम्बन्धित निर्देशन कार्यक्रमों का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिये, इन कार्यक्रमों की सफलता ऐसे परिणामों के आधार पर ज्ञात की जानी चाहिये जो निर्देशन कार्य से सम्बद्ध निर्देशकों तथा निर्देशित व्यक्तियों में कार्यक्रम के सम्बन्ध में प्रदर्शित दृष्टिकोण के माध्यम से प्रकट होती है। तथा जिनके आधार पर यह भी भली-भाँति ज्ञात हो जाता है कि जिन व्यक्तियों को निर्देशन के आधार पर सहायता उपलब्ध कराई गई है, उनके व्यवहार में क्या परिवर्तन हुए हैं।

(3) निर्देशन से सम्बन्धित विशिष्ट समस्याओं के समाधान का उत्तरदायित्व उन्हीं व्यक्तियों को सौंपा जाना चाहिये जो उन विशिष्ट समस्याओं के समाधान अथवा समायोजन की प्रक्रिया को संचालित करने में अपेक्षाकृत अधिक दक्ष हों।

(4) यह आवश्यक है कि शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापकों को भी निर्देशन सम्बन्धी उत्तरदायित्व सौंपे जाएँ, जिससे वे भी निर्देशन कार्यों में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकें।

(5) निर्देशन स्वत: ही संचरित होने वाली ऐसी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये जो बाल्यावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक उपलब्ध रहती है।

(6) निर्देशन सेवा का लाभ मात्र उस व्यक्ति तक सीमित नहीं रहना चाहिये जो स्पष्ट अथवा अप्रत्यक्ष रूप में इसकी आवश्यकता प्रकट करते हैं, वरन् यह उन व्यक्तियों के लिये भी उपलब्ध रहनी चाहिये जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उससे लाभान्वित हो सकते हैं।

(7) पाठ्यक्रम की सामग्रियों एवं शिक्षण पद्धतियों में निर्देशन का दृष्टिकोण परिलक्षित होना चाहिये।

(8) वैयक्तिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में निर्देशन का कार्यक्रम, लचीला होना आवश्यक है।

(9) निर्देशन का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पक्ष से होता है। इसके अन्तर्गत, अधिकांशत: उन क्षेत्रों में सम्मिलित किया जाता है, जिनके अन्तर्गत व्यक्ति के शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य, उसके परिवार, विद्यालय, व्यवसायिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं अथवा माँगों तथा सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। साथ ही निर्देशन के अन्तर्गत यह भी अध्ययन किया जाता है कि इन क्षेत्रों में उत्पन्न परिस्थितियों का व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव होता है?

(10) व्यक्ति के व्यक्तित्व से सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष का विशेष महत्त्व होता है। यह आवश्यक है कि वे निर्देशन सेवाएँ जिनका लक्ष्य किसी विशिष्ट अनुभव क्षेत्र में सामंजस्य स्थापित करना है, व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को ही प्राथमिकता प्रदान करे।

(11) वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवेश में विभिन्न प्रकार की विषमताओं के परिणामस्वरूप अनेक असामंजस्यपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इनके समाधान के लिये यह आवश्यक है कि अनुभवी एवं प्रशिक्षित निदेशक व परामर्शदाता तथा समस्याओं से सम्बन्धित व्यक्तियों के मध्य सहयोग स्थापित हो।

(12) यद्यपि सभी मनुष्यों में अनेक प्रकार की समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, परन्तु फिर भी बालकों, किशोरों एवं प्रौढ़ों की पहचान तथा निर्देशन के माध्यम से उनको वांछित सहायता प्रदान करना आवश्यक है।

(13) निर्देशन का कार्य व्यक्ति को प्रेरक, उपयोगी व उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करना तथा उन उद्देश्यों की वैयक्तिक दृष्टि से क्रियान्वित करना है।

क्या आप जानते हैं निर्देशन का उत्तरदायित्व ऐसे सुयोग्य एवं सुप्रशिक्षित अध्यक्ष पर होना चाहिये, जो अपना कार्य निर्देशन प्रदाताओं, निर्देशन प्राप्तकर्त्ताओं व निर्देशन से सम्बन्धित अभिकरणों के पूर्ण सहयोग से सम्पन्न कर सके।

निर्देशन के क्षेत्र में *क्रो एण्ड क्रो* को पर्याप्त मान्यता है। इसी कारण यहाँ उन सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त *लीफिवर* एवं *टेलेस, जोन्स ट्रेक्सलर* आदि के द्वारा भी निर्देशन के सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है। उपरोक्त समस्त विद्वानों द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों के अन्तर्गत कुछ सिद्धान्त ऐसे भी हैं जिनको अधिकांश विद्वानों के द्वारा स्वीकार किया गया है। उन सिद्धान्तों का उल्लेख करना आवश्यक है। इसके अनुसार निर्देशन के अधिनियम निम्नलिखित हैं—

नोट

(1) निर्देशन प्रदत्तों के वस्तुनिष्ठ विश्लेषण पर आधारित होना आवश्यक है। (Guidance should be based on the objective analysis of data)

(2) निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के लिये नैतिक आचार संहिता की आवश्यकता है। (Need to prepare a code of conduct for those who provide guidance)

(3) निर्देशन जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। (Guidance is a life long process)

(4) व्यक्ति के आधारभूत योग्यताओं को स्वीकृति। (The acceptance of the fundamental worth of an individual)

(5) व्यक्ति के समस्त व्यक्तित्व को महत्व प्रदान करना। (To give importance to the whole personality of an individual)

(6) व्यक्ति में स्व-निर्देशित करने की योग्यता का विकास करना। (To develop the ability to guide himself)

(7) निर्देशन सेवाओं के अन्तर्गत वैयक्तिक विभिन्नताओं को महत्व देना चाहिये। (Guidance should be provided according to the individual differences)

(8) निर्देशन प्रदान करने वालों को प्रशिक्षित होना चाहिये। (Those who provide guidance should be trained)

(9) विभिन्न कार्यकर्ताओं की भूमिका में समन्वय करना। (Co-ordination in the worker at those who are engaged in the process guidance)

(10) तात्कालिक राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की जानकारी देना। (Knowledge at the existing political and social condition)

(11) व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तनीय होना (Flexible according to the needs of an individual and the society) तथा

(12) सामान्य व्यक्तियों के लिये निर्देशन की उपलब्धता का होना।

(Availability of guidance for normal people too)

(1) निर्देशन प्रदत्त वस्तुनिष्ठ विश्लेषण पर आधारित होना आवश्यक है—प्राय: निर्देशन के अन्तर्गत, प्रदत्तों के संकलन एवं उनके विश्लेषण पर आधारित निष्कर्षों को ही अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। समस्या के सही समाधान के लिए प्रदत्तों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया जाना आवश्यक भी है, इसके अभाव में निर्देशित प्रक्रिया का प्रयोग किया जाना पूर्णतया निरर्थक भी है। प्रदत्तों के विश्लेषण में व्यक्तिनिष्ठता के समावेश का आशय यह है कि निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति के हितों की उपेक्षा की जा रही है। अत: यह आवश्यक है कि निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्ति को प्रदत्तों के समुचित संकलन करने की जानकारी प्राप्त हो तथा उन प्रदत्तों के विश्लेषण करने की वस्तुनिष्ठ विधियों में भी वह भली-भाँति परिचित हो।

(2) निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के लिये नैतिक आचार संहिता की आवश्यकता—कोई भी व्यक्ति अपनी समस्या को किसी के भी समक्ष प्रस्तुत करने से पहले यह अपेक्षा करता है कि वह जिसके भी समक्ष अपनी बात कहे, वह व्यक्ति उसकी बात को प्रचार करने के स्थान पर उसकी गोपनीयता को बनाएँ रखे। प्राय: इस विश्वास के अभाव में ही समयाग्रस्त व्यक्ति अपनी समस्या के समाधान के लिए किसी से भी कुछ सहायता प्राप्त करने में संकोच करता है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि इस स्थिति में दूषित प्रवृत्ति के व्यक्ति उसका शोषण करने अथवा उसका उपहास करने का अवसर प्राप्त कर सकते हैं। अनेक शोधकर्ता, रूचि, अभिरूचि आदि से सम्बन्धित प्रश्नावलियों को भरवाने के लिए जब विभिन्न व्यक्तियों से आग्रह करते हैं तो अनेक व्यक्ति इसी भय के कारण इस आग्रह को अस्वीकार कर देते हैं। अत: निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति का विश्वास बनाए रखना निर्देशन प्रदानकर्ता का प्रमुख कर्त्तव्य होता है। यदि किसी रूप में निर्देशनकर्ता को कोई जानकारी प्रदान करनी ही हो तो वह जानकारी किसी नोटिस, फाईल आदि के रूप में न देकर वैयक्तिक रूप में ही प्रदान की जानी चाहिए। इस प्रकार प्राप्त जानकारी एवं सूचनाओं के सम्बन्ध में अत्यधिक सावधानी अपेक्षित है।

नोट

(3) निर्देशन जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है—निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसकी आवश्यकता जीवनपर्यन्त होती है। उसका कारण यह है कि जैसे-जैसे व्यक्ति आगे की दिशा में बढ़ता है उसे विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं इन समस्याओं का वांछित स्तर पर समाधान किए बिना किसी भी प्रकार की प्रगति करना सम्भव नहीं है। जीवन है तो समस्याएं हैं और समस्याएं है तो स्वाभाविक रूप से उनके समाधान की भी आवश्यकता है। समस्याओं के समाधान की आवश्यकता के अनुपात की दृष्टि से व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्नता हो सकती है परन्तु यह स्पष्ट है कि किसी न किसी समय, किसी न किसी रूप में समस्या समाधान की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को होती है। प्रत्येक स्तर पर यह आवश्यकता व्यक्ति को अनुभव होती है। व्यक्ति अपने परिवार के मध्य शिक्षा प्राप्ति के निरन्तर, व्यवसायिक क्षेत्र में तथा पद निवृत्ति या वृद्धावस्था की स्थिति में समायोजन, सहज अधिगम, अधिक उपलब्धि, अवकाश के समय का सदुपयोग करने आदि अनेक प्रकार से समस्याओं के समाधान की योग्यता एवं क्षमता अर्जित करना चाहता है।

(4) व्यक्ति के आधारभूत योग्यताओं को स्वीकृति—समाज की प्रगति, व्यक्तियों पर ही आश्रित होती है। प्रत्येक व्यक्ति का समाज के विकास में कुछ न कुछ योगदान रहता है। अतः यदि सम्पूर्ण समाज को अधिकाधिक सशक्त बनाना है तो समाज के प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व को समान रूप से महत्व प्रदान करना होगा। इसका स्पष्ट आशय यह है कि हम व्यक्ति के मूलभूत महत्व को स्वीकृति प्रदान करें। व्यक्ति के विकास एवं प्रगति के समान अवसर उपलब्ध कराकर ही ऐसा किया जाना सम्भव है। वस्तुतः यदि किसी समाज के व्यक्तियों को अपने विकास एवं प्रगति हेतु पर्याप्त अवसर एवं सुविधाएं उपलब्ध होती हैं तो वह समाज निश्चित रूप से प्रगति की दिशा में अग्रसरित होता है। उसके विपरीत जिस समाज अथवा राष्ट्र में व्यक्तियों के विकास हेतु किसी सुनियोजित व्यवस्था का अभाव रहता है, वह समाज अन्य देशों की तुलना में पिछड़ जाता है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए निर्देशन प्रक्रिया के अन्तर्गत, इस अधिनियम की व्यावहारिक परिस्थिति पर बल दिया जाता है। शिक्षा, व्यवसाय, परिवार आदि विविध क्षेत्रों में व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुरूप अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने एवं प्राप्त करने पर बल देकर, निर्देशन प्रक्रिया के अन्तर्गत, व्यक्ति के आधारभूत महत्व को ही स्वीकृति प्रदान की जाती है।

(5) व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को महत्व प्रदान करना—किसी भी समस्या के वस्तुनिष्ठ एवं समुचित समाधान के लिए, व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को महत्व प्रदान किया जाना स्वाभाविक है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति के किसी भी पक्ष से सम्बन्धित समस्या का उसकी विभिन्न मनोशारीरिक विशेषताओं से सम्बन्ध होता है। अतः व्यक्तित्व का समग्र रूप में अध्ययन आवश्यक हैं उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति के समक्ष, उपयुक्त व्यवसाय के चयन की समस्या है तो उसकी इस समस्या के अध्ययन एवं उचित समाधान के लिए केवल उसकी अभिरूचि का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है अपितु यह भी आवश्यक है कि उसकी रूचि, बुद्धि, शारीरिक स्थिति, व्यवहार, समायोजन की क्षमता का भी समन्वित रूप से अध्ययन किया जाए। यह सम्भव है कि एक व्यक्ति किसी पाठ का प्रभावी शिक्षण करने में दक्ष हो। परन्तु वह मद्यपान का अभ्यस्त हो, शीघ्र क्रोधित हो जाता हो तथा अपने से छोटे व बड़े व्यक्तियों के व्यवहार करने में पूर्णतया अकुशल हो। शिक्षण व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों पर यदि हम दृष्टि डालें तो ऐसे अनेक शिक्षक दिखाई दे जायेंगे जिनका शिक्षण उत्तम कोटि का होता है परन्तु उनका चरित्र एवं व्यवहार अति निकृष्ट कोटि का होता है। इस प्रकार की स्थिति किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र रूप में अध्ययन न कर पाने तथा उसे मात्र औपचारिक साक्षात्कार अथवा लिखित परीक्षा के आधार पर ही शिक्षक बनने के अवसर प्रदान किए जाने के कारण उत्पन्न होता है।

(6) व्यक्ति में स्व-निर्देशित करने की योग्यता का विकास करना—व्यक्ति प्रगति की दिशा में अग्रसरित हो अथवा प्रगति करे, उसे अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना ही पड़ता है। यह सम्भव है कि समस्या के उत्पन्न होते ही, प्रत्येक स्थान पर, तत्काल कोई समाधान प्राप्त कराने वाला मिल जाएगा अतः उचित यह है कि प्रत्येक समस्या के समाधान हेतु व्यक्ति को आश्रित बनाने के स्थान पर व्यक्ति में ही इस प्रकार की योग्यताओं का विकास किया जाए कि वे धीरे-धीरे स्वयं ही अपनी समस्याओं का समाधान कर सकें। यही कारण है कि निर्देशन

नोट

को समस्या-समाधान की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करने के स्थान पर एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है जो व्यक्ति को स्व:निर्देशित करने में सहायक होती है। निर्देशन के माध्यम से यह प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति में विभिन्न परिस्थितियों को समझने की योग्यता का विकास हो सके तथा वह अपनी विवेक शक्ति के आधार पर उचित एवं अनुचित के मध्य निर्णय लेने में सक्षम हो सके। इस प्रक्रिया के निरन्तर, निर्देशन प्राप्त करने वाले पर किसी भी समस्या का समाधान थोपने के स्थान पर, निर्देशन प्राप्तकर्त्ता को ही इस योग्य बनाया जाता है कि वह समाधान खोजने की क्षमता में स्वयं निपुण हो जाए। *लेस्टर डी. क्रो* तथा *एलिस क्रो* के अनुसार भी निर्देशन से तात्पर्य निर्देशन देना नहीं है, एक व्यक्ति का दृष्टिकोण दूसरे पर थोपना नहीं, दूसरे व्यक्ति के लिए स्वयं निर्णय लेने की अपेक्षा स्वयं निर्णय करना नहीं है और न ही दूसरे के जीवन का बोझ ढोना है। इसके विपरीत, योग्य एवं सुप्रशिक्षित व्यक्तियों के द्वारा दूसरे व्यक्ति की चाहे वह किसी आयु वर्ग का हो अपनी जीवन क्रियाओं को स्वयं गठित करने, अपने निजी दृष्टिकोण विकसित करने, अपने निर्णय स्वयं ले सकने तथा अपना भार अपने आप वहन करने में सहायता करना ही वास्तविक निर्देशन है।

(7) निर्देशन सेवाओं के अन्तर्गत वैयक्तिक विभिन्नताओं को महत्व देना चाहिये—प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में एक दूसरे से भिन्न होता है। वातावरण एवं वंशानुगत विशेषताओं से सम्बन्धित अनेक कारण इस वैयक्तिक भिन्नता के लिए उत्तरदायी होता है। व्यक्ति की रूचि, अभिरूचि, बुद्धि आदि से सम्बन्धित योग्यताओं पर इन कारकों का प्रभाव होता है। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने से पूर्व, उसकी इन योग्यताओं का वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाए तथा उन योग्यताओं के अनुरूप अवसरों की दिशा में ही उसे प्रेरित किया जाए। ऐसा न कर पाने का दुष्परिणाम यह होता है कि व्यक्ति प्राप्त अवसर का समुचित लाभ न तो स्वयं उठा पाता है और न ही उस अवसर के माध्यम से, दूसरों के लिए कुछ कर पाता है। इसीलिए वैयक्तिक विभिन्नताओं को गम्भीरतापूर्वक महत्व दिया जाना चाहिए, यह किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा निर्मित अनेक परीक्षण इस उद्देश्य की पूर्ति में विशेष सहायक हो सकते हैं।

(8) निर्देशन प्रदान करने वालों को प्रशिक्षित होना चाहिये—आधुनिक युग में ज्ञान का अत्यधिक विस्तार हुआ है। प्रत्येक क्षेत्र में विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति के कारण आज यह सम्भव नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति समस्त क्षेत्रों की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक जानकारी, समान रूप से रख सकें। एक निर्देशन प्रदाता का कार्य क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत होता है इसी प्रकार उसे पर्याप्त अध्ययन एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। शैक्षिक व्यावसायिक एवं वैयक्तिक क्षेत्रों से सम्बन्धित अनेक समस्याओं के समाधान हेतु व्यक्ति को सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से उसे व्यक्ति के विभिन्न पक्षों एवं समाज की जानकारी होना आवश्यक है। व्यक्ति एवं समाज से सम्बन्धित इन पक्षों की जानकारी न केवल पृथक-पृथक रूप में वरन् समन्वित रूप में होनी भी आवश्यक है। विशेषकर देश, समाजशास्त्र एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के व्यावहारिक पक्षों, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रशासन एवं मूल्यांकन तथा निर्देशन व परामर्श की विभिन्न प्रविधियों की जानकारी एवं निर्देशन प्रदाता के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार समाज के स्वरूप, सामाजिक परिस्थितियों एवं समाज में होने वाले परिवर्तनों से अनभिज्ञ रहकर भी वह किसी समस्या के समाधान में सहायक नहीं हो सकता है।

(9) विभिन्न कार्यकर्ताओं की भूमिका में समन्वय करना—निर्देशन प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न कार्यकर्त्ताओं की भूमिका का समन्वित महत्व होता है। इस प्रक्रिया की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समस्त प्रकार के निर्देशन कर्मियों के कार्य में उचित समन्वय स्थापित किया जाये। निर्देशन का क्षेत्र व्यापक होने के कारण, कार्य का विशिष्टीकरण एवं वशिष्टीकरण में योग्य व्यक्तियों को उन कार्यों के सम्पादन का उत्तरदायित्व सौंपना ही वर्तमान परिस्थितियों में उचित है। आज यह सम्भव ही नहीं है कि एक व्यक्ति समस्त क्षेत्रों में निर्देशन प्रदान करने की दृष्टि से योग्य हो। अत: निर्देशन प्रक्रिया से सम्बन्धित कार्यों का वितरण इसी दृष्टि से किया जाना चाहिए कि प्रत्येक कार्यकर्त्ता को अपनी योग्यता के अनुरूप कार्य करने का अवसर प्राप्त हो सके तथा प्रत्येक कार्यकर्त्ता एक दूसरे के कार्य को महत्व प्रदान करते हुए अपनी भूमिका का निर्वाह करे। साथ ही यह भी आवश्यक है कि समस्त निर्देशन कर्मियों के कार्यों का समन्वय करने के लिए एक निर्देशन कार्य समन्वय अधिकारों की भी नियुक्ति की जाए। निर्देशन कार्यक्रम की व्यापक सफलता के

लिए केवल निर्देशन कर्मियों की भूमिका का ही महत्व नहीं है, अपितु अभिभावकों, विद्यालयों, अधिकारियों एवं शिक्षकों तथा समाज के अन्य व्यक्तियों को भी इस दिशा में सहयोग हेतु प्रेरित करना चाहिए।

(10) तात्कालिक राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की जानकारी—व्यक्ति एवं समाज के विकास में तत्कालिक सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का विशेष योगदान रहता है। एक निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्ति को इन परिस्थितियों से परिचित रहना नितान्त आवश्यक होता है। व्यक्ति के सामाजिक पक्ष का विकास करने तथा उसे समाज के योग्य सदस्य बनाने के लिए समय-समय पर उत्पन्न सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए, इनकी जानकारी के अभाव में समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का निदान एवं समाधान कर पाना कठिन है। समाज की परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में रखकर ही समस्याओं का समाधान करने हेतु सहायता प्रदान की जानी सम्भव है। इसी के आधार पर यह सम्भव है कि व्यक्ति को समाज का योग्य सदस्य बनाते हुए व्यक्ति एवं समाज की प्रगति हेतु वांछित सफलता प्राप्त की जा सके। अतः एक निर्देशन कर्मी के लिए निर्देशन पद्धति एवं व्यक्ति के अध्ययन की जानकारी ही अपेक्षित नहीं है, अपितु यह भी आवश्यक है कि समाज की दीर्घकालीन एवं सामाजिक परिस्थितियों से भी परिचित रहे।

(11) व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तनीय—प्रत्येक समाज की अपनी निजी आवश्यकताएं होती है और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के माध्यम से ही यह सम्भव है कि उस समाज के अस्तित्व को बनाए रखा जा सके अथवा उसे प्रगति की दिशा में अग्रसरित किया जा सके। समाज की इन आवश्यकताओं की निरन्तर जानकारी आवश्यक होती है, व्यक्ति की प्रत्येक समस्या किसी न किसी रूप में उन सामाजिक आवश्यकताओं से ही संयुक्त रहती है और उसकी इन समस्याओं पर सामाजिक आवश्यकताओं का प्रभाव, किसी न किसी रूप में अवश्य होता है। परिवेशजन्य, इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही व्यक्ति का विकास किया जाना चाहिए, अन्यथा व्यक्ति व समाज, दोनों ही प्रगति की दौड़ में पीछे रह जाते हैं। वस्तुतः समाज में उत्पन्न समस्याएँ सामाजिक परिवेश के रूप में परिवर्तित होती है। अतः निर्देशन के स्वरूप एवं कार्य पद्धतियों में भी इन समस्याओं एवं सामाजिक परिवेश में परिवर्तन के अनुरूप परिवर्तन की सम्भावना रखनी चाहिए।

(12) सामान्य व्यक्तियों के लिए निर्देशन की उपलब्धता—निर्देशन कार्यक्रमों का संचालन करते समय, यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि अधिकाधिक व्यक्तियों को निर्देशन सेवाओं का लाभ प्राप्त हो सके। यह सत्य है कि विशिष्ट समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों को निर्देशन की आवश्यकता अधिक होती है। परन्तु समस्याओं का उदय केवल मानसिक रूप से पिछड़े संवेगात्मक दृष्टि से असन्तुलित तथा शारीरिक दृष्टि से बाधित व्यक्तियों के जीवन में ही नहीं होता है वरन् सामान्य व्यक्तियों के जीवन में भी अनेक ऐसी समस्याएँ आती है जिनका समाधान, सहज ही सम्भव नहीं होता है। वांछित निर्देशन सहायता उपलब्ध न हो पाने की स्थिति में केवल यही उपाय शेष रह जाता है।

टास्क निर्देशन कार्यकर्ता के लिए नैतिक आचरण संहिता की आवश्यकता क्यों है?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. निम्नलिखित कथनों में से 'सही' अथवा गलत लिखिए (State whether the following statements are 'True' or 'False')—

1. निर्देशन के आधार पर व्यक्ति को इस प्रकार सहायता प्रदान की जाती है, जिससे वह अपनी समस्याओं के समाधान हेतु स्वयं निर्णय ले सके।
2. समायोजन निर्देशन के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है।
3. छात्रों को निर्देशन के आधार पर उनकी योगयता के अनुरूप अवसरों को उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान की जाती है।
4. प्रत्येक बालक में विशिष्ट वंशानुगत विशेषताएँ नहीं होती हैं।

नोट

2.3 सारांश (Summary)

- निर्देशन एक सोद्देश्य क्रिया है। इसके आधार पर व्यक्ति को इस प्रकार सहायता प्रदान की जाती है; जिससे वह अपनी विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु स्वयं निर्णय ले सके तथा अपने जीवन से सम्बन्धित विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति सफलतापूर्वक कर सके।
- निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं–
  (1) वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के योग्य बनाना।
  (2) वातावरण से समुचित समायोजन हेतु सहायता करना।
  (3) योग्यतानुसार शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों की जानकारी प्रदान करना।
  (4) व्यक्ति में निहित योग्यताओं एवं शक्तियों से परिचित करना, तथा
  (5) निहित विशेषताओं के विकास में सहायता प्रदान करना।
- निर्देशन के अन्तर्गत, निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्ति के द्वारा किसी भी व्यक्ति से सम्बन्धित समस्या का समाधान स्वयं नहीं किया जाता है वरन् समस्या से सम्बन्धित व्यक्ति को ही इस योग्य बनाया जाता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्देशन के द्वारा व्यक्ति में निहित योग्यताओं एवं क्षमताओं की जानकारी प्राप्त की जाती है और व्यक्ति को इन विशेषताओं से परिचित कराया जाता है।
- **वातावरण से समुचित समायोजन हेतु सहायता** (Assistance to Adjust Adequately with the Environment)–समायोजन का व्यक्ति के जीवन में विशेष महत्व होता है। इसके अभाव में किसी भी व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र की प्रगति सम्भव नहीं है। कोई व्यक्ति समाज में समायोजित हो सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को अपनी रुचि, योग्यता एवं अभियोग्यता के अनुरूप अवसर प्राप्त हो।
- प्रत्येक बालक कुछ विशिष्ट वंशानुगत विशेषताओं को लेकर जन्म लेता है तथा जन्म के उपरान्त अपने सामाजिक परिवेश से भी अनेक प्रकार की बौद्धिक, संवेगात्मक एवं गतिशील विशेषताओं को भी अर्जित करता है। व्यक्ति का समस्त व्यक्तित्व इन विशेषताओं का ही परिणाम होता है। व्यक्ति के विकास की गति को तीव्र करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उसमें निहित विशेषताओं का समुचित अध्ययन किया जाये तथा उसमें निहित योग्यताओं, क्षमताओं, रुचियों, अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों के अनुरूप दिशा में ही उसे प्रेरित किया जाए यह अनुरूपता अथवा अवसर एवं योग्यता के मध्य उचित सामंजस्य ही व्यक्ति एवं समाज की प्रगति का आधार होता है। प्रगतिशील देशों की प्रगति का यही प्रमुख रहस्य है।
- वैयक्तिक विभिन्नताओं के सिद्धान्त के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति, किसी न किसी दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होता है।
- निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत, निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति में निहित विशेषताओं तथा शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैश्क्तिक क्षेत्र में सम्बन्धित अध्ययन आवश्यक है। इस समन्वित जानकारी के अभाव में निर्देशन की प्रक्रिया का सम्पन्न हो पाना नितान्त असम्भव है। व्यक्ति में निहित विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के लिये व्यक्ति की योगयताओं, रूचियों आदि का मापन करने वाले साधनों तथा मापनियों की आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक होता है।
- निर्देशन के अधिनियम से आशय उन मूलभूत नियमों से है, जिनके आधार पर निर्देशन की प्रक्रिया का संचालन किया जाता है।
  (1) व्यक्ति के सम्बन्ध में सही जानकारी प्राप्त करने के लिये, व्यक्ति का मूल्यांकन अथवा अनुसंधान पर आधारित कार्यक्रमों का संचालन किया जाना चाहिये तथा निर्देशन की क्रियान्वयन के लिये, निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्तियों को उन संचयी अभिलेखों को उपलब्ध कराया जाना चाहिये जो छात्रों की प्रगति एवं उपलब्धि का सम्पूर्ण विवरण प्रदान करने में सहायक हो।

नोट

(2) विद्यालय से सम्बन्धित निर्देशन कार्यक्रमों का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिये, इन कार्यक्रमों की सफलता ऐसे परिणामों के आधार पर ज्ञात की जानी चाहिये जो निर्देशन कार्य से सम्बद्ध निर्देशकों तथा निर्देशित व्यक्तियों में कार्यक्रम के सम्बन्ध में प्रदर्शित दृष्टिकोण के माध्यम से प्रकट होती है।

(3) निर्देशन से सम्बन्धित विशिष्ट समस्याओं के समाधान का उत्तरदायित्व उन्हीं व्यक्तियों को सौंपा जाना चाहिये जो उन विशिष्ट समस्याओं के समाधान अथवा समायोजन की प्रक्रिया को संचालित करने में अपेक्षाकृत अधिक दक्ष हों।

(4) यह आवश्यक है कि शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापकों को भी निर्देशन सम्बन्धी उत्तरदायित्व सौंपे जाएँ, जिससे वे भी निर्देशन कार्यों में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकें।

(5) निर्देशन स्वत: ही संचरित होने वाली ऐसी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये जो बाल्यावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक उपलब्ध रहती है।

(6) निर्देशन सेवा का लाभ मात्र उन व्यक्ति तक सीमित नहीं रहना चाहिये जो स्पष्ट अथवा अप्रत्यक्ष रूप में इसकी आवश्यकता प्रकट करते हैं, वरन् यह उन व्यक्तियों के लिये भी उपलब्ध रहनी चाहिये जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उससे लाभान्वित हो सकते हैं।

- निर्देशन के क्षेत्र में *क्रो एण्ड क्रो* को पर्याप्त मान्यता है। इनके अतिरिक्त *लीफिवर* एवं *टलेस, जोन्स ट्रेक्सलर* आदि के द्वारा भी निर्देशन के सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है।

  (1) निर्देशन प्रदत्तों के वस्तुनिष्ठ विश्लेषण पर आधारित होना आवश्यक है।
  (2) निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के लिये नैतिक आचार संहिता की आवश्यकता है।
  (3) निर्देशन जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।
  (4) व्यक्ति के आधारभूत योग्यताओं को स्वीकृति देना।
  (5) व्यक्ति के समस्त व्यक्तित्व को महत्व प्रदान करना।
  (6) व्यक्ति में स्व-निर्देशित करने की योग्यता का विकास करना।
  (7) निर्देशन सेवाओं के अन्तर्गत वैयक्तिक विभिन्नताओं को महत्व देना।
  (8) निर्देशन प्रदान करने वालों को प्रशिक्षित होना।
  (9) विभिन्न कार्यकर्ताओं की भूमिका में समन्वय करना।
  (10) तात्कालिक राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की जानकारी देना।

- **निर्देशन प्रदत्त वस्तुनिष्ठ विश्लेषण पर आधारित होना आवश्यक है**—प्राय: निर्देशन के अन्तर्गत, प्रदत्तों के संकलन एवं उनके विश्लेषण पर आधारित निष्कर्षों को ही अधिक महत्व प्रदान किया जाता है।
- **निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के लिये नैतिक आचार संहिता की आवश्यकता**—कोई भी व्यक्ति अपनी समस्या को किसी के भी समक्ष प्रस्तुत करने से पहले यह अपेक्षा करता है कि वह जिसके भी समक्ष अपनी बात कहे, वह व्यक्ति उसकी बात को प्रचार करने के स्थान पर उसकी गोपनीयता को बनाएँ रखे।
- **निर्देशन जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है**—निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसकी आवश्यकता जीवनपर्यन्त होती है। उसका कारण यह है कि जैसे-जैसे व्यक्ति आगे की दिशा में बढ़ता है उसे विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं इन समस्याओं का वांछित स्तर पर समाधान किए बिना किसी भी प्रकार की प्रगति करना सम्भव नहीं है।
- **व्यक्ति के आधारभूत योग्यताओं को स्वीकृति**—समाज की प्रगति, व्यक्तियों पर ही आश्रित होती है। प्रत्येक व्यक्ति का समाज के विकास में कुछ न कुछ योगदान रहता है।
- **व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को महत्व प्रदान करना**—किसी भी समस्या के वस्तुनिष्ठ एवं समुचित समाधान के लिए, व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को महत्व प्रदान किया जाना स्वाभाविक है।
- **व्यक्ति में स्व-निर्देशित करने की योग्यता का विकास करना**—व्यक्ति प्रगति की दिशा में अग्रसरित हो अथवा प्रगति करे, उसे अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना ही पड़ता है। यह सम्भव है कि समस्या

नोट

के उत्पन्न होते ही, प्रत्येक स्थान पर, तत्काल कोई समाधान प्राप्त कराने वाला मिल जाएगा अत: उचित यह है कि प्रत्येक समस्या के समाधान हेतु व्यक्ति को आश्रति बनाने के स्थान पर व्यक्ति में ही इस प्रकार की योग्यताओं का विकास किया जाए कि वे धीरे-धीरे स्वयं ही अपनी समस्याओं का समाधान कर सकें।

- **निर्देशन सेवाओं के अन्तर्गत वैयक्तिक विभिन्नताओं को महत्त्व देना चाहिये**–प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में एक दूसरे से भिन्न होता है।
- **निर्देशन प्रदान करने वालों को प्रशिक्षित होना चाहिये**–आधुनिक युग में ज्ञान का अत्यधिक विस्तार हुआ है। प्रत्येक क्षेत्र में विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति के कारण आज यह सम्भव नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति समस्त क्षेत्रों की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक जानकारी, समान रूप से रख सकें।
- **विभिन्न कार्यकर्ताओं की भूमिका में समन्वय करना**–निर्देशन प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न कार्यकर्त्ताओं की भूमिका का समन्वित महत्व होता है। इस प्रक्रिया की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समस्त प्रकार के निर्देशन कर्मियों के कार्य में उचित समन्वय स्थापित किया जाये।
- **तात्कालिक राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की जानकारी**–व्यक्ति एवं समाज के विकास में तत्कालिक सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का विशेष योगदान रहता है। एक निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्ति को इन परिस्थितियों से परिचित रहना नितान्त आवश्यक होता है।
- **व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तनीय**–प्रत्येक समाज की अपनी निजी आवश्यकताएँ होती हैं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के माध्यम से ही यह सम्भव है।
- **सामान्य व्यक्तियों के लिए निर्देशन की उपलब्धता**–निर्देशन कार्यक्रमों का संचालन करते समय, यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि अधिकाधिक व्यक्तियों को निर्देशन सेवाओं का लाभ प्राप्त हो सके।

2.4 शब्दकोश (Keywords)

- **अर्जित**–ग्रहण करना।
- **सतत्**–लगातार।

2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निर्देशन के मुख्य अधिनियम बताइए और महत्व भी स्पष्ट कीजिए।
2. निर्देशन के विभिन्न लक्ष्यों का उल्लेख करें।
3. निर्देशन के लक्ष्यों तथा मुख्य अधिनियमों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. मूल्यांकन	2. निर्देशन	3. वस्तुनिष्ठ।	
2.	1. सही	2. गलत	3. सही	4. गलत

2.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)* – डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—3: भारत के संदर्भ में निर्देशन की आवश्यकता (Need for Guidance with Reference to India)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
3.1 भारतीय बालकों के लिए निर्देशन की आवश्यकता (Need of Guidance for Indian Students)
3.2 निर्देशन का उत्तरदायित्व (Responsibility of Guidance)
3.3 निर्देशार्थी को समझना (Understanding the Guidance Seeker)
3.4 सारांश (Summary)
3.5 शब्दकोश (Keywords)
3.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
3.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी सक्षम होंगे—

- भारतीय बालकों के लिए निर्देशन की आवश्यकता के बारे में जानने में;
- निर्देशन का उत्तरदायित्व समझने में;
- निर्देशनार्थी को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आजकल शिक्षा का अत्यधिक प्रसार हो रहा है। प्रति वर्ष छात्रों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। छात्र अपनी शक्ति का अपव्यय न करें, इसके लिये उन्हें उचित शैक्षिक संदर्शन की आवश्यकता है। आजकल प्रत्येक क्षेत्र में वस्तुओं की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। अवकाश का समय बिताने के लिये व्यक्ति उपन्यास, कथा, काव्य आदि का अनुशीलन करे या चित्रपट अथवा नाटकगृह की सैर करे। पग-पग पर उचित निर्णय करने के लिये व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता है।

धर्म के क्षेत्र में भी हमारे देश में भ्रम व्याप्त है। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि अनेकों धर्म हमारे देश में प्रचलित हैं। यही नहीं, हिन्दुओं में भी कुछ आर्य समाजी हैं, कुछ सनातन धर्मी हैं, कुछ सत्संगी हैं तो कुछ ब्रह्म समाजी हैं। बालक देखता है कि उसके चारों और धार्मिक विरोध का वातावरण है। ऐसे समय में उपर्युक्त निर्देशन की नितान्त आवश्यकता है।

3.1 भारतीय बालकों के लिए निर्देशन की आवश्यकता (Need of Guidance for Indian Students)

छात्र असन्तोष की समस्या के समाधान की आवश्यकता (To solve the Problem of Students Unrest)—वर्तमान समय में विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में छात्र असन्तोष की समस्या एक गम्भीर समस्या के रूप

नोट

में उभर कर सामने आ रही है। छात्रों की आवश्यकता एवं अपेक्षाओं की पूर्ति न हो पाना इसका प्रमुख कारण है। वैयक्तिक एवं सामाजिक दृष्टि से यदि छात्रों का विकास वांछित दिशा में होता है तो इस प्रकार की समस्या के उत्पन्न होने का प्रश्न नहीं होता है। यह दोष वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का है कि इसके द्वारा छात्रों को यह अवसर प्राप्त नहीं हो पाता कि वे अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का यथेष्ट विकास कर सकें, अपनी चिन्तन शक्ति को प्रखर बनाकर विवेक युक्त निर्णय ले सकें तथा अपनी समस्याओं का यथासमय समाधान करके आगे बढ़ सकें। इस स्थिति में छात्र-असन्तोष का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इस समस्या को न्यूनतम करने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में निर्देशन सेवाओं को सक्रिय बनाया जाये। शिक्षा एवं निर्देशन के समन्वित योगदान से ही इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

(3) अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या के समाधान की आवश्यकता (To solve the Problem of Wastage and Stagnation)—भारतीय विद्यालयों में अपव्यय एवं अवरोध की समस्या निरन्तर गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। इस समस्या के समाधान हेतु भारत सरकार द्वारा गठित आयोगों के द्वारा अनेक महत्वपूर्ण सुझाव भी समय-समय पर दिए गए हैं। परन्तु फिर भी इस दिशा में विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है। शिक्षण के क्षेत्र में इस समस्या का आशय वांछित शैक्षिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने से पूर्व ही विद्यालय छोड़ देना या भविष्य में शिक्षा प्राप्ति के अवसरों से वंचित हो जाना है। जब कोई छात्र वांछित स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने से पूर्व ही शिक्षालय को छोड़ देता है तो इसे शिक्षा में अपव्यय की समस्या के शब्दों से तथा जब एक ही कक्षा में कई वर्ष तक अनुत्तीर्ण होता रहता है तो अवरोधन की समस्या के नाम से जाना जाता है। शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर इस समस्या का रूप अधिक गम्भीर है। विद्यालयों की असन्तोषप्रद व्यवस्था, अप्रशिक्षित, अयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति, छात्रों की संख्या में वृद्धि शिक्षा शुल्क का अधिक होना, वैयक्तिक विभिन्नता की उपेक्षा करना आदि कारण इस समस्या को गम्भीर बनाने में सहायक होते हैं। अनेक विद्यालय ऐसे भी है जो छात्रों को ट्यूशन पढ़ने के लिए विवश करते हैं और जो छात्र इस आदेश अथवा सुझाव का उल्लंघन करते हैं, उन्हें परीक्षा में अनुत्तीर्ण कर दिया जाता है। पाठ्यक्रम की अनुपयुक्तता, अव्यावहारिकता एवं अधिकता भी इस समस्या को खड़ी करती है। निर्देशन के माध्यम से इस प्रकार की समस्या के उत्तरदायी कारणों को कम करने तथा छात्रों को वांछित दिशा में महत्वपूर्ण सुझाव प्रदान करने हेतु सहायता प्राप्त की जा सकती है।

(4) सार्थक पाठ्यक्रम का चयन (Choice of Relevant Curriculum)—ज्ञान के असीमित प्रसार के कारण अनेक नवीन विषयों एवं उप-विषयों का अविर्भाव वर्तमान युग में हुआ है। परिणामत: शिक्षालयों के पाठ्यक्रम में भी अनेक नवीन विषयों का समावेश किया गया है। इन समस्त विषयों के अध्ययन के लिए पृथक्-पृथक् प्रकार की रुचि, अभिरुचि एवं योग्यता वाले क्षेत्रों की आवश्यकता होती है। यह आवश्यक नहीं है जो छात्र गणित में सर्वोत्तम अंक प्राप्त करे, वह संस्कृत अथवा इतिहास में भी सर्वोत्तम श्रेणी के अंक प्राप्त करने में सफल हो जाये अथवा जो छात्र इतिहास में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त करे वह भौतिकशास्त्र में भी इसी श्रेणी के अंक प्राप्त करने में सफल हो जाये।

इस दिशा में निर्देशन सेवाओं के द्वारा महत्वपूर्ण योगदान सम्भव है। इन सेवाओं के आधार पर विभिन्न प्रमापीकृत परीक्षणों के माध्यम से छात्रों की रूचि, बुद्धि, अभियोग्यता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है एवं छात्रों के पाठ्यक्रम का चयन करके यह निर्धारित किया जा सकता है कि किस छात्र को किस प्रकार के पाठ्यक्रम का चयन करना चाहिए। पाठ्यक्रम के चयन का शिक्षार्थी के भावी जीवन से विशेष सम्बन्ध होता है। अत: यह आवश्यक है कि विशेषकर हाई-स्कूल स्तर पर, इन सेवाओं का उपयोग अनिवार्य रूप से किया जाए।

(5) शैक्षिक उपलब्धि का वांछित स्तर बनाए रखने की आवश्यकता (To Maintain Appropriate Level of the Achievement)—शिक्षालयों में अध्ययन करने वाले छात्र, अपने उपलब्धि स्तर को बनाए रखने अथवा उस स्तर में वृद्धि करने की दृष्टि से भी, निर्देशन का लाभ उठा सकते हैं। वांछित शैक्षिक स्तर को तभी बनाए रखा जा सकता है जब छात्र सहज एवं स्वाभाविक रूप में अधिगम कर सकें। निर्देशन प्रक्रिया के द्वारा छात्रों के उपलब्धि

नोट

स्तर के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है तथा उन्हें यह बताया जा सकता है कि वे किन कारणों से सन्तोषजनक उपलब्धि करने में सफल नहीं हो पा रहे हैं अथवा अधिगम से सम्बन्धित अपनी किन विशेषताओं को उन्हें यथावत् बनाए रखना चाहिए। निर्देशन के माध्यम से अधिगम की सहज प्रक्रिया अथवा सीखने की सहज एवं स्वाभाविक युक्तियों से छात्रों को परिचित कराया जा सकता है। इसके साथ ही छात्रों की रूचि एवं ध्यान को विकसित करके अधिगम प्रक्रिया को सहज बना पाना भी निर्देशन के द्वारा सम्भव है।

नोट्स वर्तमान शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत, छात्रों के समक्ष केवल पाठ्यवस्तु का सम्प्रेषण किया जाता है। उनके विकास हेतु किसी भी प्रकार के नियोजित प्रयास का आज भी पर्याप्त अभाव है।

निर्देशन की आवश्यकता का अनुभव अतीत काल से ही होता आया है, किन्तु वर्तमान युग में निर्देशन की माँग बढ़ गई है। वर्तमान युग में हो रहे सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन निर्देशन को अत्यावश्यक बना दिया है। नीचे निर्देशन की आवश्यकता की पृष्ठभूमि पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

आजकल घर की परिस्थितियों में बड़ा परिवर्तन हो रहा है। भारत अपने संयुक्त परिवार प्रणाली के लिये प्रसिद्ध रहा है, किन्तु अब संयुक्त परिवार कलह के घर होते जा रहे है। जिन परिवारों में संयुक्त परिवार की प्रथा नहीं है उनमें भी कभी-कभी यह देखा जाता है कि पिता नौकरी की परिस्थितियों के कारण बाहर रहता है और बालकों को पितृ-प्रेम से वंचित रह जाना पड़ता है। भारतीय परिवार में बालक परिवार का एक महत्वपूर्ण अंग होकर पारिवारगत पेशे को आसानी से सीख जाता है। लोहार के बालक को लोहार का काम तथा बढ़ई के पुत्र को बढ़ईगीरी बिना किसी विशेष परीक्षण के ही हृदयंगम हो जाती है, किन्तु अब परिवार अपना महत्व खोते जा रहे हैं, अतः संदर्शन का उत्तरदायित्व विद्यालय अथवा तत्सम्बन्धी अन्य संस्था पर आ पड़ा है।

देश के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान पर व्यक्तियों का आना-जाना लगा ही रहता है। ऐसे समय में व्यक्ति अपने मित्रों एवं भाई-बन्धुओं से अलग हो जाता है। शरणार्थियों की समस्या इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। इन व्यक्तियों में एक सामान्य बेचैनी का अनुभव होता है तथा उन्हें अपना भविष्य अन्धकारमय दिखाई पड़ने लगता है। निर्देशन की इन व्यक्तियों को नितान्त आवश्यकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' अथवा 'असत्य' लिखिए।** (State whether the following statements are 'True' or 'False')—
   1. छात्रों की आवश्यकता एवं अपेक्षाओं की पूर्ति न हो पाने के कारण छात्र असन्तोष की समस्या ने एक गम्भीर समस्या का रूप धारण कर लिया है।
   2. निर्देशन प्रक्रिया के द्वारा छात्रों के उपलब्धि स्तर में कोई सुधार नहीं लाया जा सकता है।
   3. निर्देशन के माध्यम से अधिगम की सहज प्रक्रिया एवं स्वाभाविक युक्तियों से छात्रों को परिचित कराया जा सकता है।

3.2 निर्देशन का उत्तरदायित्व (Responsibility of Guidance)

हमारे देश में बेकारी की समस्या अत्यन्त जटिल है। अर्थशास्त्री इस समस्या का समाधान ढूँढने में अत्यधिक व्यस्त हैं। दिन-प्रतिदिन यह समस्या बढ़ती ही जा रही है। ग्रामोद्योग एवं लघु उद्योग इस समस्या का पर्याप्त समाधान कर सकते हैं। अभी तक तो अधिकांश शिक्षित व्यक्ति नौकरी की ही खोज करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में उचित

व्यावसायिक संदर्शन अत्यन्त लाभप्रद है। देश की परिस्थिति के अनुसार तथा यथासम्भव बालक की रुचि के अनुसार व्यावसायिक निर्देशन आज की एक प्रमुख माँग है। निर्देशन एक प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक होनी चाहिये। ज्योतिषी अथवा हस्त-रेखा-विशारद के परामर्श को हम संदर्शन नहीं कह सकते हैं। संदर्शन की सुनियोजित प्रक्रिया का उत्तरदायित्व मुख्यत: गृह, विद्यालय एवं राज्य पर है।

गृह से यहाँ पर हमारा तात्पर्य कुटुम्ब से है। बालक कुटुम्ब में रहकर अनेक बातें सीखता है। कुटुम्ब के अभाव में हम बालक की कल्पना भी नहीं कर पाते हैं। बालक के शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास में कुटुम्ब का बहुत बड़ा हाथ रहता है। बालक के माता-पिता बालक के विकास की ओर ध्यान देते रहते हैं। वे समय-समय पर बालक का संदर्शन भी करते रहते हैं, किन्तु माता-पिता अथवा घर के अन्य बड़े सदस्य निर्देशन की वैज्ञानिक प्रक्रिया से प्राय: अपरिचित रहते हैं। अत: वे बालक की रुचियों एवं भावनाओं के अनुकूल संदर्शन करने में कभी-कभी असफल हो जाते हैं।

गृह के अतिरिक्त राज्य भी निर्देशन का कार्यभार सँभाल सकता है। राज्य की ओर से निर्देशन केन्द्र खोले जा सकते हैं। राज्य की ओर से निर्देशन का कार्य किये जाने में एक कठिनाई यह आती है कि बालक के तात्कालिक व्यक्तित्व का ही अध्ययन किया जा सकता है और उसी के सहारे उसका मार्ग-दर्शन किया जा सकता है, किन्तु बालक के पिछले इतिहास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। यही नहीं, राज्य की ओर से संदर्शन करने में संदर्शक एवं संदर्शनार्थी के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का प्राय: अभाव ही रहता है।

गृह एवं राज्य के अतिरिक्त विद्यालय भी निर्देशन का काम सँभाल सकते हैं। बालक का सम्बन्ध विद्यालय से अधिक होता है। यद्यपि बालक पर घर का ही सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है, किन्तु प्रशिक्षित निर्देशन के अभाव में घर इस कार्य को उचित रूप से नहीं निभा सकते हैं। विद्यालय इस स्थिति में हो सकते हैं कि वे निर्देशक का उत्तरदायित्व स्वयं सँभाले। सुयोग्य संदर्शक का प्रबन्ध भी विद्यालय कर सकते हैं। प्रशिक्षित निर्देशक के अभाव में संदर्शन का कार्य अध्यापकगण स्वयं कर सकते हैं। विद्यालय शिक्षा की एक विशेष संस्था है। अत: निर्देशन का कार्य वहाँ पर ठीक से हो सकता है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि निर्देशन का उत्तरदायित्व घर, विद्यालय एवं राज्य तीनों पर हैं, किन्तु विद्यालय इस स्थिति में हैं कि वे निर्देशन का कार्य अच्छी तरह से कर सकते हैं। अभी तक हमारे देश में विद्यालय इस ओर कम ध्यान दिए हुए हैं, किन्तु आशा की जाती है कि अधिकाधिक विद्यालयों में शीघ्र ही निर्देशन विभाग की स्थापना पर विचार किया जायेगा।

क्या आप जानते हैं अभिरुचि, क्षमता, बुद्धि आदि की दृष्टि से उत्पन्न वैयक्तिक विभिन्नता इसका प्रमुख कारण है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही यह बल दिया जाता है कि पाठ्यक्रम का चयन विद्यार्थी की वैयक्तिक भिन्नता के अनुरूप ही होना चाहिए।

3.3 निर्देशार्थी को समझना (Understanding the Guidance Seeker)

निर्देशन एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसका संचालन करने वाला व्यक्ति निर्देशक कहा जा सकता है। किसी भी संस्था में निर्देशन सेवा की स्थापना करते समय निर्देशक की नियुक्ति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। निर्देशक यदि सुयोग्य नहीं हुआ तो निर्देशन असफल हो जायेगा। संदर्शक में कुछ गुणों का होना अनिवार्य है। निर्देशक को बालकों से सहानुभूति रखनी चाहिये। मानव-स्वभाव को सूक्ष्म बुद्धि से समझने की उसमें क्षमता होनी चाहिये। सांख्यिकीय पद्धति का भी उसे कुछ ज्ञान होना चाहिये। विद्यालय के शिक्षकों से उचित सम्बन्ध रखकर उनसे संदर्शन में सहायता लेने

नोट

की उसमें योग्यता होना चाहिये।

इसके पश्चात् निर्देशक का कर्त्तव्य है कि सबसे पहले बालकों को समझने का प्रयत्न करे। निर्देशनार्थी की आवश्यकताओं, प्रेरणाओं, रुचियों एवं इच्छाओं का अध्ययन करना निर्देशक की पहली एवं आधारभूत आवश्यकता है। बिना निर्देशनार्थी को ठीक से समझे हुए निर्देशन किया ही नहीं जा सकता है। निर्देशनार्थी को समझने के लिये जिन विधियों का सहारा लिया जाता है, इसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है—

(1) **विद्वानों के अनुसन्धान**—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आजकल अनेक अनुसन्धान हो रहे हैं। मनोविज्ञान में शैशव, बाल्यकाल, किशोर एवं प्रौढ़ावस्था पर अनेकों अनुसन्धानों से हम निर्देशनार्थी को समझने का प्रयास कर सकते हैं।

(2) **निर्देशनार्थी के कुटुम्ब का अध्ययन**—बालक पर वंशपरम्परा एवं वातावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है। कुटुम्ब की मान्यताओं एवं जीवनादर्शों के अनुकूल ही बालक के आदर्शों का प्रायः निर्माण होता है। घर की आर्थिक परिस्थिति का भी बालक पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। निर्देशक को इन सब बातों की जानकारी होनी चाहिये।

(3) **विद्यालय की विवरण पत्रिका**—बालक के विषय में विद्यालय के रिकॉर्ड से बहुत कुछ जाना जा सकता है। विद्यालय में बालक के विषय में निम्नलिखित सूचनाएँ सदैव उपलब्ध हो सकती हैं—

(क) बालक की आयु (ख) जन्मस्थान (ग) यौन (घ) पिता का नाम (ङ) पिता जीवित है या मृत (च) पिता का पेशा (छ) भाई-बहिन की संख्या (छ) धर्म (ज) जाति (झ) परीक्षाफल (ञ) पूर्व विद्यालय जिसमें शिक्षा प्राप्त किया (ट) चरित्र (ठ) विद्यालय छोड़ने का कारण।

कुछ विद्यालयों में विद्यार्थी के कार्यों का अभिसंचित लेख रखा जाता है। इन सब लेखों से विद्यार्थी के विषय में पर्याप्त सूचना मिल जाती है। यह बात अवश्य है कि इन सूचनाओं में बहुत सी सूचनाएँ सही नहीं निकलतीं। बहुत से बालक अथवा इनके अभिभावक उपेक्षावश गलत सूचना दे देते हैं। इतना होने पर भी संदर्शक को इन सूचनाओं से बड़ी मदद मिल सकती हैं। वह प्रत्येक बालक के विषय में किसी भी समय इन लेखों से पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकता है। यदि उसे किसी सूचना पर सन्देह हो तो वह इसकी विश्वसनीयता की जाँच कर सकता है।

(4) **निर्देशनार्थी के पाठ्यक्रमेतर कार्यों का अध्ययन**—बालक किन पाठ्यक्रमेतर कार्यों में अधिक भाग लेता है तथा किन में वह कम भाग लेता है और किन कार्यों में वह बिल्कुल ही नहीं भाग लेता—इसका भी अध्ययन आवश्यक है। निर्देशक स्वयं निरीक्षण करके तथा सम्बन्धित शिक्षकों से पूछताछ करके इन सूचनाओं को प्राप्त कर सकता है।

(5) **बुद्धि परीक्षण**—इस पुस्तक के द्वितीय अध्याय में बुद्धि-परीक्षण पर पर्याप्त विचार किया जा चुका है। बुद्धि-परीक्षण से हम निर्देशनार्थी की बुद्धि की माप करते हैं। निर्देशनार्थी की बुद्धि की जानकारी आवश्यक है। आजकल बुद्धि की माप करने के लिये विभिन्न परीक्षण बन चुके हैं।

(6) **विशेष योग्यता परीक्षण**—बालक का उचित निर्देशन करने के लिये उसके ज्ञान के साथ-साथ उसकी विशिष्ट प्रवृत्ति का भी ज्ञान आवश्यक है। इस विशिष्ट योग्यता के आधार पर ही बालक का शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन किया जा सकता है। विशेष योग्यता की जाँच करने के लिये उनके प्रमाणीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षण है।

(7) **रुचि एवं व्यक्तित्व परीक्षण**—संदर्शनार्थी की प्रज्ञा एवं विशेष योग्यता को जान लेना ही पर्याप्त नहीं हैं। उसकी रुचि, अभिवृत्ति, समंजनयोग्यता आदि का भी ज्ञान आवश्यक है अन्यथा संदर्शन कार्य सफल नहीं हो सकेगा। व्यक्ति की रुचि, अभिवृत्ति आदि स्वभावगत शीलगुणों का वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से पता लगाना बड़ा कठिन कार्य है, किन्तु इस क्षेत्र में भी मनोवैज्ञानिक ने कुछ परीक्षणों का निर्माण किया है।

उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त अन्य विधियाँ भी हैं जिनके सहारे हम बालक को समझने का प्रयास करते हैं।

नोट

निर्देशनार्थी की आवश्यकताओं, रुचियों, अभिवृत्तियों, स्वाभावगत शीलगुणों, प्रज्ञा, विशेष योग्यता आदि की जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् संदर्शनार्थी को सहायता देने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। संदर्शन की इस प्रक्रिया की अनेक विधियाँ हैं। विद्यालय आवश्यकतानुसार कोई भी विधि अपना सकते हैं। सुविधा की दृष्टि से हम सामान्य विधियों पर कुछ विचार कर सकते हैं। ये सामान्य विधियाँ तीन प्रकार की हो सकती हैं–(1) परामर्श, (2) सामूहिक निर्देशन तथा (3) चिकित्सात्मक पद्धति।

टास्क विशेष योग्यता परीक्षण क्या है?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. ········· एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका संचालन करने वाला व्यक्ति निर्देशक कहलाता है।
2. ········· की मान्यताओं एवं जीवनादर्शों के अनुकूल ही बालक के आदर्शों का प्राय: निर्माण होता है।
3. ········· से विद्यार्थी के विषय में पर्याप्त सूचना मिल जाती है।
4. बालक का उचित निर्देशन करने के लिए ········· के साथ-साथ उसकी ········· का भी ज्ञान आवश्यक है।
5. निर्देशनार्थी की आवश्यकताओं, रुचियों, अभिवृत्तियों आदि की जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् ·········, को सहायता देने की प्रक्रिया आरंभ होती है।

3.4 सारांश (Summary)

- वर्तमान समय में विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में छात्र असन्तोष की समस्या एक गम्भीर समस्या के रूप में उभर कर सामने आ रही है। छात्रों की आवश्यकता एवं अपेक्षाओं की पूर्ति न हो पाना इसका प्रमुख कारण है। वैयक्तिक एवं सामाजिक दृष्टि से यदि छात्रों का विकास वांछित दिशा में होता है तो इस प्रकार की समस्या के उत्पन्न होने का प्रश्न नहीं होता है।
- भारतीय विद्यालयों में अपव्यय एवं अवरोध की समस्या निरन्तर गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। इस समस्या के समाधान हेतु भारत सरकार द्वारा गठित आयोगों के द्वारा अनेक महत्वपूर्ण सुझाव भी समय-समय पर दिए गए हैं। परन्तु फिर भी इस दिशा में विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है। शिक्षण के क्षेत्र में इस समस्या का आशय वांछित शैक्षिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने से पूर्व ही विद्यालय छोड़ देना या भविष्य में शिक्षा प्राप्ति के अवसरों से वंचित हो जाना है।
- ज्ञान के असीमित प्रसार के कारण अनेक नवीन विषयों एवं उप-विषयों का अविर्भाव वर्तमान युग में हुआ है। परिणामत: शिक्षालयों के पाठ्यक्रम में भी अनेक नवीन विषयों का समावेश किया गया है। इन समस्त विषयों के अध्ययन के लिए पृथक्-पृथक् प्रकार की रुचि, अभिरुचि एवं योग्यता वाले क्षेत्रों की आवश्यकता होती है।
- शिक्षालयों में अध्ययन करने वाले छात्र, अपने उपलब्धि स्तर को बनाए रखने अथवा उस स्तर में वृद्धि करने की दृष्टि से भी, निर्देशन का लाभ उठा सकते हैं। वांछित शैक्षिक स्तर को तभी बनाए रखा जा सकता है जब छात्र सहज एवं स्वाभाविक रूप में अधिगम कर सकें। निर्देशन प्रक्रिया के द्वारा छात्रों के उपलब्धि स्तर के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है तथा उन्हें यह बताया जा सकता है कि वे किन कारणों से सन्तोषजनक उपलब्धि करने में सफल नहीं हो पा रहे हैं अथवा अधिगम से सम्बन्धित अपनी किन विशेषताओं को उन्हें यथावत् बनाए रखना चाहिए।
- निर्देशन एक प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक होनी चाहिये। ज्योतिषी अथवा हस्तरेखा-विशारद

नोट

के परामर्श को हम संदर्शन नहीं कह सकते हैं। संदर्शन की सुनियोजित प्रक्रिया का उत्तरदायित्व मुख्यत: गृह, विद्यालय एवं राज्य पर है।

- गृह से यहाँ पर हमारा तात्पर्य कुटुम्ब से है। बालक कुटुम्ब में रहकर अनेक बातें सीखता है। कुटुम्ब के अभाव में हम बालक की कल्पना भी नहीं कर पाते हैं। बालक के शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास में कुटुम्ब का बहुत बड़ा हाथ रहता है। बालक के माता-पिता बालक के विकास की ओर ध्यान देते रहते हैं। वे समय-समय पर बालक का संदर्शन भी करते रहते हैं।
- गृह के अतिरिक्त राज्य भी निर्देशन का कार्यभार सँभाल सकता है। राज्य की ओर से निर्देशन केन्द्र खोले जा सकते हैं। राज्य की ओर से निर्देशन का कार्य किये जाने में एक कठिनाई यह आती है कि बालक के तात्कालिक व्यक्तित्व का ही अध्ययन किया जा सकता है।
- गृह एवं राज्य के अतिरिक्त विद्यालय भी निर्देशन का काम सँभाल सकते हैं। बालक का सम्बन्ध विद्यालय से अधिक होता है। यद्यपि बालक पर घर का ही सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है, किन्तु प्रशिक्षित निर्देशन के अभाव में घर इस कार्य को उचित रूप से नहीं निभा सकते हैं।
- निर्देशन एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका संचालन करने वाला व्यक्ति निर्देशक कहा जा सकता है। किसी भी संस्था में निर्देशन सेवा की स्थापना करते समय निर्देशक की नियुक्ति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। निर्देशक यदि सुयोग्य नहीं हुआ तो निर्देशन असफल हो जायेगा। संदर्शक में कुछ गुणों का होना अनिवार्य है। निर्देशक को बालकों से सहानुभूति रखनी चाहिये। मानव-स्वभाव को सूक्ष्म बुद्धि से समझने की उसमें क्षमता होनी चाहिये।
- बिना निर्देशनार्थी को ठीक से समझे हुए निर्देशन किया ही नहीं जा सकता है। निर्देशनार्थी को समझने के लिये जिन विधियों का सहारा लिया जाता है, इसका वर्णन नीचे किया जा रहा है–

(1) **विद्वानों के अनुसन्धान**–जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आजकल अनेक अनुसन्धान हो रहे हैं। मनोविज्ञान में शैशव, बाल्यकाल, किशोर एवं प्रौढ़ावस्था पर अनेक अनुसन्धानों से हम निर्देशनार्थी को समझने का प्रयास कर सकते हैं।

(2) **निर्देशनार्थी के कुटुम्ब का अध्ययन**–बालक पर वंशपरम्परा एवं वातावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है। कुटुम्ब की मान्यताओं एवं जीवनदर्शों के अनुकूल ही बालक के आदर्शों का प्राय: निर्माण होता है। घर की आर्थिक परिस्थिति का भी बालक पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। निर्देशक को इन सब बातों की जानकारी होनी चाहिये।

(3) **विद्यालय की विवरण पत्रिका**–बालक के विषय में विद्यालय के रिकॉर्ड से बहुत कुछ जाना जा सकता है।

3.5 शब्दकोश (Keywords)

- **कुटुम्ब**– परिवार, रिश्तेदार।
- **संदर्शन**– परीक्षण।

3.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारत में विभिन्न क्षेत्रों में निर्देशन की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए।
2. विद्यालयों में निर्देशन किस प्रकार किया जा सकता है?
3. निर्देशनार्थी को समझने के लिए किन बातों का ज्ञान आवश्यक है?
4. बुद्धि परीक्षण तथा रूचि एवं व्यक्ति परीक्षण से आप क्या समझते हैं?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य
2.	1. निर्देशन	2. कुटुम्ब	3. अभिसंचित लेख
	4. प्रज्ञा, विशिष्ट प्रवृत्ति	5. संदर्शनार्थी।	

3.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)* – डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

इकाई—4: निर्देशन सेवाएँ (Guidance Services)

नोट

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

4.1 निर्देशन सेवाएँ : अवधारणा और महत्व (Guidance Services : Concept and Importance)

4.2 सारांश (Summary)

4.3 शब्दकोश (Keywords)

4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- निर्देशन सेवाओं को समझने एवं उनकी अवधारणाओं और महत्व की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सहायता हेतु अलग-अलग निर्देशन सेवाएँ प्रचलित हैं, ये सभी निर्देशन सेवाएँ अलग-अलग उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं। इस अध्याय में हम निर्देशक सेवाओं की अवधारणा, महत्त्व आदि के विषय में अध्ययन करेंगे।

4.1 निर्देशन सेवाएँ : अवधारणा और महत्व (Guidance Services : Concept and Importance)

निर्देशन सेवाओं के अन्तर्गत विशिष्ट क्रियाओं को नियोजित, व्यवस्थित एवं क्रियान्वित किया जाता है। प्रत्येक प्रकार की निर्देशन सेवा का सम्बन्ध कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं से होता है तथा इन क्रियाओं के माध्यम से विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।

इस सन्दर्भ में जिन आठ प्रकार की निर्देशन सेवाओं को विकसित किया गया है, वह सेवाएं निम्नलिखित हैं—

(1) सूचना सेवा (Information Service)

(2) परामर्श सेवा (Counseling Service)

(3) आत्म अनुसूची सेवा (Self Inventory Service)

(4) व्यक्तिगत प्रदत्त संकलन सेवा (Individual data-collection Service)

(5) पूर्व सेवा (Preparatory Service)

(6) स्थानापन्न सेवा (Placement Service)

(7) अनुगामी सेवा (Follow-up Service)

(8) शोध सेवा (Research Service)

नोट

इन समस्त सेवाओं का उद्देश्य यद्यपि पृथक्-पृथक् हैं। परन्तु फिर भी निर्देशन प्रदान करने की दृष्टि से इनका समन्वित महत्व है। विशेषकर भारतीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में इन सेवाओं के समन्वय की अधिक आवश्यकता है। इसके साथ ही इनके समुचित बोध, विकास एवं उपयोग की भी समान रूप से आवश्यकता है।

1. सूचना सेवा (Information Services)

'सूचनाओं' का समस्त प्रकार के निर्देशनों में विशिष्ट महत्व होता है। सूचनाओं की जानकारी छात्र एवं निर्देशन प्रदाताओं दोनों के लिए आवश्यक है। वैयक्तिक निर्देशन के लिए व्यक्ति की पारिवारिक तथा सामाजिक परिस्थितियों तथा उसकी विशेषताओं से सम्बन्धित सूचनाएँ आवश्यक होती हैं। शैक्षिक निर्देशन हेतु पाठ्यक्रमों, शैक्षिक अवसरों, औपचारिक तथा अनौपचारिक अधिगम व्यवस्थाओं, पद्धतियों के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त करनी आवश्यक होती हैं। व्यावसायिक निर्देशन के लिए विभिन्न व्यावसायों हेतु आवश्यक योग्यताएँ एवं संस्थानों में रिक्त स्थानों के बारे में सूचनाएँ आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होती हैं। इन विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त सूचनाओं का स्वरूप सदैव परिवर्तित होता रहता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक मानवीय स्थिति अपने स्वभाव के अनुसार अत्यन्त परिवर्तनशील, विकासशील एवं गतिशील सन्दर्भों से संयुक्त होती है।

सूचना सेवा का महत्व (Importance of Information): निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत, सूचनाओं का निर्देशन प्रदाता एवं छात्र के लिए अत्यन्त महत्व होता है। व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सूचनाओं की आवश्यकता होती है, लेकिन वैयक्तिक, शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में सूचनाओं का महत्व निम्नलिखित दृष्टिकोण से देखा जा सकता है–

1. 'सूचना-सेवा' व्यक्ति को विश्वसनीय तरीके से सूचनाएँ प्रदान करती हैं।
2. इन सेवाओं के माध्यम से आवश्यक, उपयोग तथा संगत एवं समुचित जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है।
3. इनके आधार पर व्यक्ति के सम्बन्ध में उपयुक्त तथा उचित निर्णय लेने में सहायता प्राप्त होती है।
4. सूचना-सम्प्रेषण की प्रक्रिया मितव्ययी बनायी जा सकती है।
5. सूचनाओं के द्वारा व्यक्ति में वांछनीय स्तर की संवेदनशीलता का विकास किया जा सकता है, जिससे व्यक्ति स्वयं के अवसरों को जाने, समझे तथा उनकी व्याख्या करने एवं उनकी सम्भावनाओं की जानकारी के लिए आवश्यक कदम उठा सकते हैं।

सूचनाओं के प्रकार (Types of Information)

निर्देशन के स्वरूप पर ही, सूचनाओं के प्रकार निर्भर करते हैं तथा शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में विशिष्ट प्रकार की सूचनाएँ उपर्युक्त होती हैं, जबकि वैयक्तिक व व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ आवश्यक होती हैं। शैक्षिक निर्देशन में आवश्यक सूचनाएँ निम्नलिखित हैं–

1. शिक्षण-अवधि से सम्बन्धित सूचनाएँ।
2. भिन्न-भिन्न शिक्षण संस्थाओं से सम्बद्ध सूचनाएँ।
3. विभिन्न शिक्षण-संस्थाओं में उपलब्ध विभिन्न पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में सूचनाएँ।
4. विभिन्न पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु निर्धारित शैक्षिक-पद्धतियों, नियुक्त अध्यापकों तथा विभिन्न पाठ्यक्रमों में सफलता सूचक विभिन्न प्राप्त अंकों के स्तरों के बारे में सूचनाएँ।

उपरोक्त समस्त सूचनाएँ, शिक्षण संस्थाओं द्वारा निकाले गए विज्ञापन में, प्रवेश सम्बन्धी नियमों एवं परिचय-पत्रों द्वारा प्राप्त हो जाती है।

जार्ज ई. मायर्स ने व्यावसायिक निर्देशन हेतु आवश्यक सूचनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया है–

1. **व्यवसाय का महत्व**–इसके अन्तर्गत, विभिन्न व्यवसायों का सामाजिक महत्व बताते हुए उनमें कार्यरत

नोट

कर्मचारियों की संख्या और उसमें न्यूनता अथवा बढ़ोत्तरी के बारे में सूचनाएँ प्रदान की जाती हैं। इसके अतिरिक्त व्यवसाय के स्थानीय अथवा राष्ट्रीय क्षेत्रों में उसके प्रमुख केन्द्रों के बारे में भी उल्लेख किया जाता है।

2. **कार्य की प्रकृति**–कर्मिकों द्वारा किये जाने वाले कार्यों एवं उसकी विविधता इत्यादि का उल्लेख प्राप्त होता है।
3. **कार्य की दशाएं**–हमें स्वच्छता से सम्बन्धित परिस्थितियों, कार्य हेतु अपेक्षित बाह्य एवं आन्तरिक स्थितियों में सम्मिलित होने, कार्य का समय, साथ ही कार्य करने वाले व्यक्तियों का स्तर तथा उनके संगठन इत्यादि के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।
4. **आवश्यक शारीरिक योग्यता**–इसमें, व्यवसाय हेतु आवश्यक शारीरिक योग्यताएँ महत्वपूर्ण हैं तथा–संवेगात्मक स्थिरता, मानसिक स्थिरता, व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण इत्यादि।
5. **आवश्यक तैयारी**–व्यवसाय हेतु आवश्यक सामान्य शैक्षिक योग्यता, प्रवेश सम्बन्धी जानकारी प्रदान की जाती है।
6. **पदोन्नति के अवसर**–इसमें व्यवसाय में उपलब्ध प्रशासनिक तथा पर्यवेक्षण सम्बन्धी उत्तरदायित्वों, उससे सम्बद्ध अन्य व्यवसायों एवं अवसरों के सम्बन्ध में उल्लेख किया जाता है।
7. **क्षति पूर्ति (कम्पेन्सेशन)**–इसमें औसत वार्षिक आय, भुगतान पद्धतियाँ, बोनस, विशिष्ट लाभ इत्यादि का वर्णन होता है।
8. **लाभ तथा हानि**–इसके अन्तर्गत व्यवसाय के विभिन्न आकर्षक पहलुओं, उसके संकटों व नुकसानों की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में सही, समुचित एवं स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है।

जार्ज ई. मायर्स के अनुसार विभिन्न उद्यमों एवं व्यवसायों हेतु उपरोक्त आठ शीर्षकों के अन्तर्गत सूचनाएँ संकलित करना नितान्त आवश्यक है। इन विभिन्न सूचनाओं का संकलन अनुभवी एवं विशेषज्ञों द्वारा ही किया जाना चाहिए, जिससे सूचनाओं की विश्वसनीयता, शुद्धता एवं शुद्धता के सम्बन्ध में कोई संदेह न किया जा सके। उपरोक्त शीर्षकों को ध्यान में रखकर तैयार की गई रूपरेखा, व्यावसायिक निर्देशन के कार्य को सहज एवं प्रभावशाली बनाती है। इसको किसी विशिष्ट व्यवसाय अथवा उद्यम की तैयारी करने वाले व्यक्ति के अलावा सामान्य वर्ग के छात्रों हेतु भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

हमारे देश में, निर्देशन प्रदाता विभिन्न स्त्रोतों के माध्यम से, विभिन्न व्यवसायों से सम्बद्ध सूचनाएं प्राप्त कर सकता है यथा–

1. विभिन्न राज्यों का निर्देशन केन्द्र एवं रोजगार कार्यालय व श्रम कल्याण कार्यालय।
2. निदेशालय जनरल ऑफ एम्पलायमेण्ट एण्ड ट्रेनिंग, 18, गुरुद्वारा रोड, नई दिल्ली।
3. कैरियर्स इन्स्टीट्यूट, 94 बेर्च रोड, नई दिल्ली।
4. विभिन्न वैयक्तिक फर्म तथा प्रशासनिक अधिकारियों से।
5. मिनिस्ट्री ऑफ एजूकेशन, 31 कम्यूनिकेशन बिल्डिंग, नई दिल्ली।
6. विश्वविद्यालय रोजगार कार्यालयों से।
7. मिनिस्ट्री ऑफ एजूकेशन, इनफारमेशन सेक्शन, नई दिल्ली।
8. आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, मकेन्टाइल बिल्डिंग, कोलकत्ता।
9. दी गवर्नमैण्ट बुक डिपार्टमेण्ट, मेयो रोड, फोर्ट, मुम्बई।
10. केन्द्रीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक ब्यूरो, 33 छात्र मार्ग, दिल्ली–61 इत्यादि।

वैयक्तक निर्देशन के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकार की सूचनाओं का विवरण प्राप्त करना आवश्यक है।

1. व्यक्ति के मित्रों के सम्बन्ध में सूचनाएँ।

नोट

2. उसकी रुचियों, हॉबी इत्यादि के बारे में सूचनाएँ।
3. व्यक्ति के पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित सूचनाएँ।
4. व्यक्ति के निजी जीवन, सामान्य शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक सन्तुलन सम्बन्धी विशिष्टताओं को अभिव्यक्त करने वाली घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी।
5. सेवार्थी के परिचित व्यक्तियों, सगे-सम्बन्धियों अथवा रिश्तेदारों इत्यादि द्वारा प्राप्त सूचनाएँ।
6. परिवार में होने वाले उत्सवों, सांस्कृतिक व परम्परागत रीति रिवाजों तथा समारोहों के द्वारा अर्जित सूचनाएँ।
7. व्यक्ति के परिवार के, अध्यापक, अनुदेशन, नौकरों इत्यादि से प्राप्त सूचनाएँ।

इन स्रोतों के अतिरिक्त, अन्य स्रोत ऐसे भी हो सकते हैं जिनसे व्यक्ति के सम्बन्ध में उपयुक्त एवं उपयोगी जानकारी प्राप्त हो सकती है। यह सेवार्थी के सांस्कृतिक स्तर, उसकी आयु एवं परिपक्वता इत्यादि पर निर्भर करती है। वैयक्तिक सूचनाओं का कोई विज्ञापित स्वरूप नहीं होता वरन् इन्हीं अवलोकन, साक्षात्कार तथा वार्तालाप के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। सूचना सेवाओं के उद्देश्यों-सूचना-सेवाओं के निर्देशन का आधारभूत अंग माना जाता है। सूचना-सेवाओं के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. इस सेवा का मुख्य उद्देश्य निर्देशन की प्रक्रिया को वस्तुनिष्ठ तथा वैज्ञानिक बनाने में सहायता प्रदान करना है।
2. सूचना के विभिन्न स्रोतों का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करने में छात्रों की सहायता करना।
3. निर्देशन प्रदाता तथा छात्रों को एक ही स्थान, समय एवं धन का दुरूपयोग किये बिना सूचनाएं उपलब्ध कराना, सूचना-सेवाओं का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।
4. व्यक्ति शैक्षिक, व्यावसायिक तथा अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों के सम्बन्ध में अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का संकलन करता रहता है। इन सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं वैधता ज्ञात करने हेतु सूचना-सेवाओं में कार्यरत विशेषज्ञों तथा सलाहकारों की सहायता से सही मूल्यांकन करना, इन सेवाओं की व्यवस्थाओं का महत्वपूर्ण अभीष्ट होता है।
5. तत्कालीन, विश्वसनीय, एवं शुद्ध सूचनाओं का विवरण रखना जिससे छात्र उनका प्रयोग समुचित रूप से कर सकें, इन सेवाओं का एक अन्य अभीष्ट है।
6. निर्देशन कार्यकर्त्ताओं एवं छात्रों को स्वयं के प्रयत्नों के माध्यम से विशुद्ध एवं विश्वसनीय सूचनाएं एकत्रित करने, उन्हें भली-भाँति समझने तथा उनके निहितार्थों को मूल्यांकित हेतु उचित प्रकार के प्रशिक्षण तथा अभिविन्यास कार्यक्रमों को आयोजित करना भी इन सेवाओं का अभीष्ट होता है।
7. विद्यालयों में तथा विद्यालयों के बाहर संगठित सूचना-सेवाओं का एक उद्देश्य यह भी होता है कि वह सूचनाओं का संकलन समुचित रूप से करें तथा उन्हें उनकी प्रकृति के अनुसार वर्गीकृत करने में सहायता करें।

नोट्स वैयक्तिक निर्देशन हेतु आवश्यक सूचनाओं का स्रोत असीमित होता है। इसमें अनेक साधनों द्वारा सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती है। सबसे पहले उनकी एक सूची तैयार की जाती है तथा उनके सम्बन्ध में व्यापक वर्णन भी रखना पड़ता है, जिससे सूचनाओं की शुद्धता, वस्तुनिष्ठता तथा विश्वसनीयता के स्तर को ज्ञात किया जा सकता है।

सूचना-सेवा कार्य विधि एवं प्रणाली

'सूचना-सेवा' की कार्यविधि अत्यन्त वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ होती है। इस सेवा का मुख्य कार्य, नवीनतम सूचनाओं को शुद्ध एवं विश्वसनीय ढंग से एकत्रीकरण एवं उनका वर्गीकरण करना। वर्गीकरण के उपरान्त सूचनाओं का विवेचन व प्रस्तुतिकरण करना है। सूचना-सेवा के सन्दर्भ में इसे तीन सोपानों में विभक्त किया जा सकता है–

नोट

(1) **सूचना का संकलन** (Collection of Information)—इसके अन्तर्गत, शैक्षिक तथा व्यावसायिक संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित कर, छात्र के सम्बन्ध में यथार्थ सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं। तदोपरान्त प्राप्त सूचनाओं को विभिन्न दृष्टियों से वर्गीकृत किया जाता है।

(2) **सूचना-प्रदर्शन** (Display of Information)—द्वितीय सोपान में वर्गीकृत सूचनाओं को कम्प्यूटरों, वीडियो आदि प्रकाशित अथवा टंकित सामग्रियों के रूप में प्रदर्शित करने के लिए रखा जाता है। सूचनाओं को विभिन्न माध्यमों से प्रदर्शित किया जाता है—वाचनालय, पुस्तकालय इत्यादि।

(3) **सूचना, संक्रमण एवं मूल्यांकन** (Transmission and Evaluation of Information)—इसके अन्तर्गत आधुनिक सम्प्रेषण टेक्नालॉजी के प्रयोग द्वारा सूचनाओं को छात्रों तथा निर्देशन प्रदाताओं तक पहुँचाने की व्यवस्था की जाती है और सूचनाओं की मूल्यांकन करने की क्षमता का विकास करने के लिए समुचित प्रशिक्षण, कार्यशालाओं, एवं गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है। तृतीय सोपान का मुख्य अभीष्ट, छात्र को निष्पक्ष भाव से सूचनाओं के निहितार्थों को समझने में सहायता प्रदान करना है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि 'सूचना-सेवाओं' का वास्तविक स्वरूप, परिस्थितियों में हुए परिवर्तनों, नवीन नीतियों के परिणामस्वरूप शैक्षिक तथा व्यावसायिक अक्षरों में परिवर्तन एक छात्रों के सांस्कृतिक व सामाजिक स्तरों से प्रभावित होते हैं।

सूचना-सेवाओं के परिणामों का आकलन (Assessment of Results)—विद्यालयी पाठ्यक्रम में पढ़ाए जाने वाले विषयों के रूप में सूचना-सेवाओं को उपलब्ध कराने हेतु प्रावधान किया गया है। इन सेवाओं के द्वारा, सामाजिक अध्ययन सामान्य विज्ञान तथा भाषा के पाठों में सूचना पर आधारित सामग्री प्रस्तुत की जा सकती है। इस व्यवस्था को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा तैयार की गई, पाठ्य पुस्तकों में देखा जा सकता है।

छात्र ने सूचनाओं का समुचित एवं सही रूप में उपयोग किया है या नहीं? यह ज्ञात करने हेतु छात्र की व्यावसायिक क्षेत्रों के सम्बन्ध में जानकारी तथा कुशल चयन को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। विभिन्न सूचनाओं को प्रदर्शित करने हेतु प्रयुक्त विधियों, जैसे—पत्रिकायें, कम्प्यूटर, समाचार-पत्र इत्यादि का मूल्यांकन करना भी आवश्यक होता है। मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि छात्र ने कितनी सूझ-बूझ, रूचि एवं तत्परता से सूचनाओं को ग्रहण किया है तथा क्या उन्हीं सूचनाओं के आधार पर निर्णय लिए हैं? इस प्रकार का मूल्यांकन करने के लिए साक्षात्कार, अवलोकन तथा सामान्य जानकारी सम्बन्धी परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं।

'सूचना-सेवाओं' की प्रभावशाली व्यवस्था के अभाव में निर्देशन कार्य अरुचिकर प्रतीत होता है।

2. परामर्श सेवा (Counseling Services)

परामर्श का आशय (Meaning of Counseling): परामर्श के अन्तर्गत, पारस्परिक सम्बन्ध को विशेष महत्त्व दिया जाता है। *विली एण्ड एण्ड्रू* के अनुसार—"परामर्श, पारस्परिक रूप से अधिगम की प्रक्रिया है।" इस प्रक्रिया में एक सहायता प्राप्त करने वाला सेवार्थी होता है तथा दूसरा सहायता प्रदान करने वाला प्रशिक्षित व्यक्ति। *गिबर्ड* के मतानुसार—"परामर्श सबसे पहले एक व्यक्तिगत सन्दर्भ का सूचक है। इसे सामूहिक रूप में नहीं सम्पादित किया जा सकता। उनके अनुसार सामूहिक परामर्श जैसा पद अनुचित लगता है। इसी प्रकार वैयक्तिक परामर्श जैसा पद पुनरुक्ति दोष से वंचित नहीं है।"

First of all counselling is personal. It can not be performed with a group. Group Counseling" is an abnormaly— the two terms are not in harmony. Personal Counseling is a tautology, counselling is always personal."

—*Gilbert*

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि परामर्श का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की वैयक्तिक रूप में सहायता करना है। परामर्श के अन्तर्गत परामर्शदाता की दी गयी सलाह अथवा सुझाव को दूसरे व्यक्ति अर्थात्, सेवार्थी पर थोपा नहीं जाता,

नोट

वरन् यह प्रयास किया जाता है कि छात्र ही अपने व्यावसायिक एवं शैक्षिक अवसरों के सम्बन्ध में विचारणीय एवं महत्वपूर्ण तथ्यों को संकलित एवं व्यवस्थित करे तथा स्वयं की योजनाओं के सन्दर्भ में उनका मूल्यांकन कर, सही निर्णय ले। विचारणीय तथ्य दो प्रकार के होते हैं–(1) वे तथ्य जो व्यक्ति की सीमाओं एवं क्षमताओं के परिचायक हैं। इन तथ्यों को सामान्यत: निर्देशन की सेवाओं, जैसे वैयक्तिक सामग्री सेवा, आत्म अनुसूची सेवा, सूचना सेवा इत्यादि के द्वारा संकलित किया जाता है। (2) वे तथ्य तो व्यावसायिक जगत एवं शैक्षिक अवसरों से सम्बन्धित होते हैं। इन तथ्यों को पूर्णरूप से ज्ञात करना आवश्यक होता है। किशोर अवस्था में सामान्यत: यह अपेक्षित होता है कि परामर्शदाता छात्र को केवल तथ्यों के मूल्यांकन में ही सहायता प्रदान न करें वरन् उनको तथ्यों के आधार पर वास्तविक निर्णय लेने की ओर उन्मुख करें।

जार्ज ई. मायर्स के अनुसार–"परामर्श का कर्त्तव्य तब पूर्ण होता है जबकि यह छात्र को अपने निर्णय स्वयं लेने में विवेकयुक्त विधियों का उपयोग करने में सहायक होता है न कि जब परामर्शदाता इसके लिए निर्णय स्वयं लेता है। वस्तुत: परामर्श की प्रक्रिया में छात्र हेतु निर्णय लेना उतना ही असंगत है जितना बीजगणित के शिक्षण में छात्र हेतु दी गई समस्या का निराकरण अध्यापक द्वारा स्वयं दिया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. .... के अंतर्गत विशिष्ट क्रियाओं को नियोजित व्यवस्थित एवं क्रियान्वित किया जाता है।
2. .... हेतु पाठ्यक्रमों, शैक्षिक अवसरों, औपचारिक तथा अनौपचारिक अधिगम व्यवस्थाओं से संबंधित सूचनाएँ प्राप्त करनी आवश्यक होती हैं।
3. .... के अंतर्गत, शैक्षिक तथा व्यावसायिक संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित कर, छात्र के संबंध में यथार्थ सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं।
4. परामर्श का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की .... में सहायता करना है।

परामर्श सेवाओं का महत्व (Importance of Counseling Services)

परामर्श सेवा का महत्व अनेक दृष्टि से है, जिनका उल्लेख निम्नलिखित है–

(1) परामर्श सेवार्थी अथवा व्यक्ति को स्वयं की संभावनाओं पर विचार करने और उसे आत्म मूल्यांकन की ओर प्रवृत्त करने में सहायक होता है। परामर्श सेवा के अन्तर्गत सेवार्थी में इस आदत का विकास किया जाता है कि वह स्वयं को समझें।

(2) छात्र को सही निर्णय लेने हेतु, परामर्श द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। सही निर्णय न ले पाने के कारण सेवार्थी अथवा छात्र इधर-उधर भटक कर अर्थात् पथभ्रष्ट होकर, ऐसे व्यक्तियों की संगत में जा सकता है जो उसे सही निर्णय देने के बजाय स्वयं स्वार्थ की पूर्ति में भ्रम में डाल देते हैं।

(3) व्यावसायिक तथा शैक्षिक परिस्थितियों को अधिक उद्देश्ययुक्त एवं समंजनशील बनाने की दृष्टि से भी परामर्श सेवा का महत्व कम नहीं है। शैक्षिक संस्थाओं में विभिन्न पाठ्यक्रमों तथा अनेक अभीष्टों को समुचित रूप से समझने में छात्रों को सहायता देने हेतु परामर्श सेवा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है परिणामस्वरूप छात्र अपना समय व्यर्थ में ही नष्ट नहीं कर पाते। शैक्षिक संस्थाओं के समान ही व्यावसायिक संस्थाओं में भी समायोजन की प्रक्रिया को सहज बनाने के लिये परामर्श की आवश्यकता होती है।

(4) परामर्श सेवा की व्यवस्था के निरन्तर अथवा मध्य में पारस्परिक सम्बन्धों में तनाव की स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। मानवीय परिस्थितियों पर पारस्परिक सम्बन्धों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अत: एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की भूमिका का विकास करने में भी परामर्श सेवा का अत्यन्त महत्व होता है।

नोट

(5) निर्देशन कार्यकर्ताओं, अध्यापकों एवं अन्य अधिकारियों को निर्देशन सम्बन्धी उत्तरदायित्वों के प्रति संवेदनशील बनाने हेतु भी परामर्श सेवा सहायक हो सकती है।

परामर्श की प्रक्रिया (Process of Counseling)

निर्देशन कार्यक्रमों में विभिन्न सूचनाएँ, आत्म अनुसूची एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों के सम्बन्ध में आधार सामग्रियाँ उपलब्ध हो जाने पर, परामर्श की आवश्यकता होती है। इसके परिणामस्वरूप ही अपेक्षित तैयारी, नियुक्ति तथा अनुवर्ती अध्ययन के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। इस प्रकार परामर्श को एक केन्द्रवर्ती सेवा माना जा सकता है जो उपरोक्त तीनों सेवाओं पर निर्भर करती है, तदोपरान्त तीनों सेवाओं हेतु आधार प्रस्तुत करती है।

परामर्श के अन्तर्गत व्यक्ति को स्वयं के परिवेश से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाओं, वैयक्तिक आधार सामग्री तथा आत्म-अनुसूची पर विचार विमर्श करने हेतु अवसर प्रदान किया जाता है। परामर्श की प्रक्रिया एवं कार्य पद्धति को निम्नलिखित सोपानों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) परामर्श से पूर्व (Before Counseling)

(2) परामर्श के समय (During Counseling) तथा

(3) परामर्श के उपरान्त (After Counseling)।

(1) परामर्श से पूर्व—परामर्श से पूर्व छात्र के सम्बन्ध में सभी महत्वपूर्ण एवं आवश्यक सूचनाओं तथा तथ्यों को एक स्थान पर प्राप्त करने की दृष्टि से एक फाइल का निर्माण किया जाता है। इस फाइल में, छात्र अथवा सेवार्थी के सम्बद्ध अभिलेख व्यवस्थित रूप में रखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त छात्र से लेने वाले साक्षात्कार में प्रयुक्त पद्धति, समय तथा स्थान इत्यादि का उल्लेख भी इस फाइल में किया जाता है।

(2) परामर्श के समय—परामर्श के समय छात्र का वैयक्तिक साक्षात्कार किया जाता है। साक्षात्कार अत्यन्त अनौपचारिक तरीके से पूर्ण होता है। साक्षात्कार में परामर्शदाता तथा उसके अन्य सहकर्मी, बातचीत के माध्यम से छात्र की फाइल में वर्णित तथ्यों का सत्यापन प्रत्यक्ष रूप में कर लेते हैं। इसके पश्चात् वे छात्र की प्रस्तावित योजनाओं, समस्याओं एवं परिस्थितियों के सम्बन्ध में जानकारी कर विचार-विमर्श करते हैं। इस समय परामर्शदाता को कुछ बातों पर ध्यान देना चाहिए। यथा—छात्र खुलकर अथवा निर्भीक होकर स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी बात कह रहा है अथवा नहीं? सेवार्थी में आत्मविश्वास की भावना प्रदर्शित हो रही है या नहीं? परामर्श प्रक्रिया में सेवार्थी किसी प्रकार के पक्षपात एवं पूर्वाग्रह से ग्रस्त तो नहीं है? परामर्श का वास्तविक स्वरूप, साक्षात्कार की इसी प्रक्रिया को माना जाता है, क्योंकि इसमें छात्र को सुझाव देने की अपेक्षा उसमें स्वयं निर्णय लेने की परिस्थिति उत्पन्न करने में सहायता प्रदान की जाती है। परामर्श की इस प्रक्रिया के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. साक्षात्कार में, प्रश्नों को अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक तथा आत्मीयता के साथ पूछना चाहिए, जिससे छात्र किसी भी प्रकार से भयभीत या सशंकित न हों।
2. वार्तालाप के समय, अपनी बात को आरोपित करने की प्रवृत्ति पर नियन्त्रण रखना चाहिए।
3. छात्र अथवा सेवार्थी को व्यक्ति के रूप में यह अनुभव करना चाहिए कि वह स्वयं में महत्वपूर्ण है और न ही उसे किसी भी प्रकार से छोटा व्यक्ति समझा जा रहा है।
4. साक्षात्कार के समय तथ्यों के अभिलेख को अत्यन्त सावधानी एवं कुशलतापूर्वक रखना चाहिए, जिससे छात्र यह न अनुभव करे कि उसकी बातों को लिखा जा रहा है।
5. साक्षात्कार की सम्पूर्ण परिस्थिति का गठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि जिससे छात्र को यह अनुभव हो कि यह सब उसके हित को ध्यान में रखकर ही किया जा रहा है।
6. साक्षात्कार की समाप्ति पर, परामर्शदाता को, वस्तु स्थिति को सार रूप में स्पष्ट कर देना चाहिए, जिससे छात्र स्वयं की परिस्थितियों के अनुकूल समुचित निर्णय लेने में सक्षम हो सके।

(3) साक्षात्कार के उपरान्त (After Counseling)—परामर्श के उपरान्त छात्र में अपेक्षित आत्म-विश्वास परिलक्षित

नोट

होना चाहिए। सेवार्थी को यह अनुभव होना चाहिए कि उसे स्वयं की समस्याओं एवं योजनाओं के सही मूल्यांकन करने हेतु वांछनीय सहायता प्राप्त हो गयी है। परामर्श को तभी सफल माना जा सकता है, जबकि छात्र में आत्म-संतोष तथा आत्म-विश्वास की भावना का विकास हो जाये।

परामर्शदाता के गुण (Qualities of a Counselor)

कुशल एवं प्रभावशाली परामर्श के लिए, परामर्शदाता में कतिपय विशिष्ट गुणों का होना आवश्यक है। निर्देशन सेवाओं के सन्दर्भ में परामर्शदाता एक विशेषज्ञ के समान होता है। अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए, परामर्शदाता के समक्ष अनेक ऐसे व्यक्ति आते हैं, जिनकी मनोवृत्ति को जानना एवं समझना उनसे मधुर सम्बन्ध स्थापित करना तथा उन्हें समुचित परामर्श प्रदान करना, परामर्शदाता का कर्तव्य माना जाता है। इस सन्दर्भ में, परामर्शदाता के अनुभव, व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। *जोन्स* महोदय ने अपने एक सर्वेक्षण के आधार पर, कुशल एवं योग्य परामर्शदाताओं को, निम्नलिखित गुणों से युक्त होना आवश्यक माना है–

(1) **रुचियों की व्यापकता–**रुचियों की व्यापकता से आशय यह है कि परामर्शदाता में विभिन्न प्रकार की रुचियाँ होनी आवश्यक हैं। यथा–दूसरे व्यक्तियों की भावनाओं को समझने में रुचि, विद्यार्थियों के घर पर विद्यालयी जीवन से सम्बद्ध एवं सूचनात्मक साहित्य में रुचि, विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में रुचि, अनेक प्रकार के जनसमूहों में रुचि, सम्मेलनों एवं गोष्ठियों में सक्रिय रूप से भाग लेने में रुचि इत्यादि।

(2) **सहयोग ले सकने की क्षमता–**प्रशिक्षण के समय से ही परामर्शदाता को इस सम्बन्ध में ज्ञान कराया जाता है कि वह विभिन्न स्तरों तथा वर्गों के व्यक्तियों से अपना काम किस प्रकार करा सकता है तथा अन्य व्यक्तियों से किस प्रकार सहयोग प्राप्त कर सकता है।

(3) **शिष्टाचार–**शिष्टाचार के अन्तर्गत विभिन्न गुण सम्मिलित हैं जैसे–स्वाभाविकता, स्नेह, आदरभाव, शालीनता इत्यादि।

(4) **आकर्षक व्यक्तित्व–**परामर्शदाता का व्यक्तित्व आकर्षक होना चाहिए। आकर्षत व्यक्ति के अन्तर्गत विभिन्न गुणों को सम्मिलित किया जाता है यथा–आत्म-विश्वास, सामाजिकता, संवेदनशीलता, चारित्रिक विशेषताएँ आदि।

(5) **सौहार्द्र–**सौहार्द्र से आशय उन गुणों से है, जिनमें पारस्परिक विश्वास, सरलता, वैयक्तिक सम्बन्धों पर आधारित रुचि, दूसरे व्यक्तियों के हित के सम्बन्ध में सोचने की प्रवृत्ति इत्यादि।

प्रशिक्षण के समय, इनमें से अधिकांश गुणों का विकास किया जा सकता है। इस हेतु यह आवश्यक है कि परामर्शदाताओं की चयन विधि में सुधार किये जायें। निर्देशन सेवा के कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाने के लिए विशिष्ट एवं कुशलता प्राप्त व्यक्तियों को ही इसमें स्थान दिया जाए या चयन किया जाए। परामर्शदाताओं के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों जैसे– अध्यापकों, औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त अनुभवी व्यक्तियों एवं समाज सेवा करने वाले व्यक्तियों को भी परामर्श सेवा का महत्वपूर्ण अंग माना जाए।

(3) आत्म अनुसूची सेवा (Self Inventory Service)

व्यक्ति में आत्मबोध की क्षमता का विकास करने की दृष्टि में आत्म-अनुसूची सेवा का विशेष महत्व होता है। इस सेवा के आधार पर व्यक्ति को आन्तरिक विशेषताओं एवं बाह्य उपलब्धियों के सम्बन्ध में वस्तुनिष्ठ जानकारी प्रदान की जाती है। इस जानकारी को प्राप्त करके भावी योजनाओं का निर्माण करने, अनुकूल अवसरों की दिशा में प्रयास करने तथा अपनी आन्तरिक शक्तियों की दिशा में सम्बद्ध प्रयास करने हेतु महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त होती है। इस सेवा के आधार पर सेवार्थी को स्वयं में निहित योग्यताओं, क्षमताओं एवं भावी सम्भावनाओं की जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार की जानकारी प्रदान करने के लिए व्यक्ति की पूर्व उपलब्धियों, सम्बन्धित आलेखों एवं पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षिक परिवेश का प्रमुख महत्व होता है। इसके माध्यम से व्यक्ति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग भी, इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किया जाता है। इन समस्त माध्यमों से प्राप्त जानकारी

नोट

का व्यक्ति की शैक्षिक, पारिवारिक एवं व्यावसायिक प्रगति में विशिष्ट योगदान रहता है। इस जानकारी के अभाव में, सतत्, संगत एवं सम्भावित प्रगति सम्भव नहीं है। आत्म अनुसूची सेवा से प्राप्त परिणामों का व्यक्ति जीवन की किसी विशिष्ट परिस्थिति से ही सम्बन्ध नहीं है वरन् यह परिणाम सतत् रूप से जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के सन्दर्भ में निर्णय लेने हेतु सहायक सिद्ध होते हैं इस प्रकार आत्म-अनुसूची सेवा के उपरोक्त महत्व के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'आत्म अन्वेषण' 'स्वयं को पहचानने' अथवा 'आत्म-बोध' की दृष्टि से आत्म-अनुसूची सेवा एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन पर्यन्त निरंतर चलती रहती है।

आत्म-अनुसूची सेवा का महत्व (Importance of Self Inventory Service)

आत्म-अनुसूची सेवा, सेवार्थी के लिए अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण होती है। इस महत्व का उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में किया गया है–

(1) इस सेवा के माध्यम से सेवार्थी को उसकी योग्यताओं एवं क्षमताओं के सम्बन्ध में न केवल वांछित सूचनाएँ प्रदान की जाती हैं, अपितु उसमें स्व:चिन्तन की क्षमता का विकास करने तथा यथार्थ धरातल पर आधारित आत्म-प्रत्यय को विकसित करने हेतु सहायता प्रदान की जाती है। इस प्रकार व्यक्ति को आत्म संवेदनशीलता अथवा स्वयं के सन्दर्भ के सूक्ष्म ग्राह्यता की दृष्टि से इस सेवा का महत्वपूर्ण उपयोग किया जा सकता है।

(2) इस सेवा के द्वारा व्यक्ति को अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं का मूल्यांकन करने का अवसर प्राप्त होता है। अपने व्यक्तित्व से सम्बन्धित विभिन्न विशेषताओं, योग्यताओं एवं सीमाओं का ज्ञान प्राप्त करके सेवार्थी अपनी भावी व्यावसायिक योजनाओं, शैक्षिक आकांक्षाओं एवं पारिवारिक, सामाजिक कार्यक्रमों के सम्बन्ध में समुचित निर्णय ले सकता है। किस प्रकार का व्यवसाय, किस प्रकार का शैक्षिक पाठ्यक्रम अथवा किस प्रकार का बाह्य वातावरण उसके विकास में सहायक हो सकता है? इस सम्बन्ध में निर्णय लेने हेतु आत्म-अनुसूची सेवा व्यक्ति को अपनी सहायता प्रदान करती है।

(3) किसी भी क्षेत्र में निरन्तर विकास एवं प्रगति करने के लिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि व्यक्ति को अपनी योग्यताओं, एवं बाह्य अवसरों की वस्तुनिष्ठ जानकारी प्राप्त हो। इस दिशा में किसी भी प्रकार की भ्रान्ति अविवेकपूर्ण निर्णय व्यक्तिनिष्ठ मूल्यांकन, अति उच्च महत्वाकांक्षा, आदि व्यक्ति के प्रगति-पथ पर निरर्थक अवरोध के रूप में ही उत्पन्न हुआ करती है। इस प्रकार की अनेक परिस्थितियों का अनुभव हम अपने अथवा दूसरों के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में कर सकते हैं अत: सफलता की दृष्टि से यह आवश्यक होता है कि अपने लक्ष्यों से सम्बन्धित योजनाओं का निर्माण जीवन की यथार्थ परिस्थितियों के आधार पर ही किया जाए। इस दिशा में व्यक्ति को सचेत करने में तथा उसे अपने अनुमानों की त्रुटियों का आभास कराने की दृष्टि से आत्म-अनुसूची सेवा अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है। इस सेवा का लाभ उठाकर भावी दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों, परिणामों अथवा प्रतिकूल प्रभावों को कम किया बताया जा सकता है।

आत्म-अनुसूची सेवा के उद्देश्य (Objectives of Self-Inventory Service)

यद्यपि आत्म-अनुसूची सेवा का विशिष्ट उपयोग व्यावसायिक निर्देशन से सम्बन्धित कार्यक्रमों के अन्तर्गत ही किया जाता है, तथापि शैक्षिक एवं पारिवारिक निर्देशन के क्षेत्र में भी यह समान रूप से उपयोगी सिद्ध होती है। इस सेवा का प्रमुख लक्ष्य व्यक्ति में आत्म-बोध अथवा आत्म-अन्वेषण की प्रवृत्ति का विकास करना है। स्वयं को पहचानने हेतु वांछित एवं वस्तुनिष्ठ सहायता प्रदान करना ही इस सेवा का प्रमुख उद्देश्य है। आत्म अनुसूची सेवा के कुछ अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. सेवार्थी में स्वयं के सम्बन्ध में सूक्ष्म ग्राह्यता की क्षमता का विकास (To Develop the Sensitivity about him/her)—आत्म-अनुसूची सेवा का यह एक प्रमुख उद्देश्य होता है कि इस सेवा के आधार पर व्यक्ति को अपनी शक्तियों एवं सीमाओं के प्रति संवेदनशील बनाया जाए। वस्तुत: यह एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है, क्योंकि किसी व्यक्ति के सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का सम्प्रेषण तो अपेक्षाकृत सरलतापूर्वक किया जा सकता है,

नोट

परन्तु यथार्थ के आधार पर आत्म-प्रत्यय का विकास करने हेतु व्यक्ति को सहायता प्रदान करना, अत्यन्त कठिन है। आत्म-अनुसूची सेवा के द्वारा आत्म-प्रत्यय का निर्माण करने हेतु आवश्यक सूझ एवं निर्णय क्षमता का विकास करने में सेवार्थी को उल्लेखनीय सहायता उपलब्ध करायी जाती है।

2. वस्तुनिष्ठ आधार उपलब्ध कराना (To Avail on Objective Basis)—इस सेवा का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्ति को अपने सम्बन्ध में लिए जाने वाले गलत निर्णयों से बचाकर उसे व्यावहारिक योजनाओं की दिशा में अग्रसरित करना है। इसके द्वारा व्यक्ति को अपनी त्रुटियों के सन्दर्भ में पूर्व अनुमान लगा सकता है तथा उसे यथा समय सजग एवं सचेत करके प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रभाव से बचा जा सकता है। यथार्थ धरातल पर आधारित जानकारी को प्रदान करने तथा अपने सम्बन्ध में सेवार्थी को विवेकपूर्ण एवं वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने में सहायता प्रदान करके इस अभीष्ट की प्राप्ति की जाती है।

3. आत्म-अन्वेषण की दिशा में अग्रसरित होने की दृष्टि से (To Develop the Efficiency of Self Analysis)—विविध प्रकार के अन्वेषणात्मक अनुभवों को आत्म प्रत्यय द्वारा विकसित करने की दृष्टि से अत्यधिक महत्व होता है। इस प्रकार के अनुभवों की व्यवस्था करके व्यक्ति को स्वयं की पहचान कराने में आत्म-अनुसूची सेवा के द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। अध्ययन से सम्बन्धित विषयों, पाठ्य-सहभागी क्रियाओं एवं विद्यालय से बाहर के वातावरण में अल्पकालिक सेवाओं के माध्यम से इस प्रकार के अनुभवों की व्यवस्था की जा सकती है।

4. स्व-मूल्यांकन हेतु सहायता प्रदान करना (To Develop the Self Efficiency of Self-Evaluation)—किसी भी व्यवसाय, विषय अथवा बाह्य परिस्थिति से सम्बन्धित विकल्प का चयन केवल उसी दिशा में उपयुक्त सिद्ध हो सकता है जब उस व्यवसाय में कार्य करने, उस विषय का अध्ययन करने अथवा सम्बन्धित विकल्प की क्रियान्वित करने से सम्बन्धित व्यावहारिक क्षमता व्यक्ति में विद्यमान हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि इस क्षमता एवं योग्यता से वस्तुनिष्ठ रूप में परिचित होने के लिए आत्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति का विकास किया जाए। आत्म अनुसूची सेवा के माध्यम से इस प्रवृत्ति का विकास करके, सेवार्थी को अपनी योग्यताओं एवं बाह्य अवसरों का मूल्यांकन करने हेतु सहायता प्रदान की जाती है।

(4) व्यक्तिगत प्रदत्त संकलन सेवा (Individual Data Collection Service)

शैक्षिक, व्यावसायिक, अथवा व्यक्तिगत निर्देशन हेतु विभिन्न प्रकार की आधार सामग्री को प्रयुक्त किया जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण, मूल्यांकन की आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ, इस आधार-सामग्री को उपलब्ध कराने में सर्वाधिक सहायक होती हैं। इस आधार सामग्री का संकलन अथवा उसे व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना उल्लेखनीय महत्व रखती है, क्योंकि इस समाग्री के वस्तुनिष्ठ एवं समुचित प्रयोग पर ही किसी भी प्रकार के निर्देशन की वस्तुनिष्ठता अथवा प्रभावशीलता आधारित होती है। सेवार्थी के सम्बन्ध में जितने भी आवश्यक तथ्य एवं सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं उन सभी के व्यवस्थित एवं समन्वित रूप को आधार सामग्री के रूप में सम्बोधित किया जाता है। *मायर्स* के अनुसार विभिन्न प्रकारों की सेवाओं यथा-स्थानन, उपबोधन, अनुगामी सेवाओं इत्यादि में छः प्रकार की व्यक्तिगत सामग्रियों का संकलन किया जाता है। इन उधार सामग्रियों के संकलन की प्रक्रिया को ही व्यक्तिगत सामग्री संकलन सेवा के नाम से जाना जाता है।

1. सामान्य आंकड़े (General data)
2. शारीरिक आंकड़े (Physical data)
3. सामाजिक पर्यावरण आंकड़े (Social Environment data)
4. निष्पत्ति से सम्बन्धित आंकड़े (Achivement data)
5. शैक्षिक एवं व्यावसायिक योजनाओं से सम्बन्धित आंकड़े (Data, Concerning the Educational and Vocational Plans)
6. मनोवैज्ञानिक आंकड़े (Psychological data)।

नोट

1. सामान्य आँकड़े (General data)—सेवार्थी से सम्पर्क करने में तथा सेवार्थी से सम्बन्धित विशिष्ट व्यक्तियों से सेवार्थी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने हेतु सामान्य आधार सामग्री के संकलन की आवश्यकता होती है इस आधार सामग्री के अन्तर्गत सेवार्थी का नाम, पता, पिता का नाम, दूरभाष संख्या, विद्यालय का नाम, कक्षा-अध्यापक का नाम, विषय-अध्यापक का नाम, कक्षा, वर्ग, विषय आदि से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जाती है।

2. शारीरिक आँकड़े (Physical data)—इस प्रकार की सामग्री के अन्तर्गत सेवार्थी की आयु, प्रजाति, लिंग, कद, वजन आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है। विभिन्न प्रकार के जैविक तथ्यों जैसे—शारीरिक बनावट, स्वास्थ्य, स्नायुमण्डल एवं शरीर की अन्य प्रणालियों के सम्बन्ध में सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करना, इस प्रकार की सामग्री को संचित करने का उद्देश्य होता है। इसके अतिरिक्त सेवार्थी से सम्बन्धित शारीरिक विकारों, शारीरिक विकलांगताओं एवं रोगों के सम्बन्ध में भी सूचनाएं एकत्रित की जाती हैं।

3. सामाजिक पर्यावरण आँकड़े (Social Environment data)—व्यक्ति से सम्बन्धित समस्त प्रकार की आधार सामग्रियों का वस्तुनिष्ठ रूप से मूल्यांकन करने हेतु सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना नितान्त आवश्यक होता है सामाजिक वातावरण से व्यक्ति के समायोजन की सीमा के सन्दर्भ में प्रकाश डालने हेतु भी इस प्रकार की जानकारी अपेक्षित होती है। व्यक्ति के सामाजिक स्तर, सामाजिक व्यवहार, अथवा जीवन-शैली का परिचय प्राप्त करके व्यक्ति की शैक्षिक आकांक्षाओं, व्यावसायिक योजनाओं, व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित आदर्शों तथा किसी विशिष्ट परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार एवं उपलब्धियों की सम्भावनाओं के सन्दर्भ में अन्तदृष्टि का विकास करने की दृष्टि से सहायता प्राप्त होती है। सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति के परिवार, एवं बाह्य सम्पर्कों को प्रमुख स्रोत के रूप में स्वीकार किया जाता है। बाह्य सम्पर्कों के अन्तर्गत, व्यक्ति के मित्र, पड़ौसी, सहकर्मी एवं अन्य सहयोगियों से जानकारी प्राप्त की जाती है।

4. निष्पत्ति से सम्बन्धित आँकड़े (Data Related to the Achievement)—शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर, शिक्षार्थी से सम्बन्धित निष्पत्ति का आलेख, प्रमाण-पत्रों, परीक्षा-कार्डो, संचयी अभिलेखों आदि के माध्यम से सुरक्षित रखा जाता है। शैक्षिक निष्पत्ति से सम्बन्धित ये आलेख ही प्रमुख रूप से निष्पत्ति सम्बन्धी आधार सामग्री के रूप में उपयोगी होते हैं। इन आलेखों के माध्यम से यह जानकारी प्राप्त हो जाती है कि विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर सेवार्थी का उपलब्धि स्तर किस प्रकार का रहा है? पाठ्यक्रम का चयन करने अथवा व्यवसाय का चयन करने की दृष्टि से, इस प्रकार की आधार सामग्री का विशिष्ट महत्व होता है। अत: यह प्रयास किया जाना चाहिए कि इस प्रकार की सूचनाओं को संचित एवं व्यवस्थित करते समय वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता का अनिवार्य रूप से ध्यान रखा जाए।

5. शैक्षिक एवं व्यावसायिक योजनाओं से सम्बन्धित आँकड़े (Data Related to Educational and Vocational Plans)—उपरोक्त समस्त प्रकार की आधार सामग्री का संकलन करने के अतिरिक्त व्यक्ति की शैक्षिक एवं व्यावसायिक योजनाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना भी आवश्यक होता है। सेवार्थी से, उसके अभिभावकों, मित्रों अथवा शिक्षकों से इस सम्बन्ध में आधार सामग्री प्राप्त की जा सकती है। यह सामग्री व्यक्तिनिष्ठ प्रविधियों के आधार पर ही संकलित की जाती है। इस सन्दर्भ में यह ज्ञात किया जा सकता है कि सेवार्थी अपनी शैक्षिक उपलब्धियों, शैक्षिक प्रगति अथवा व्यावसायिक योजना के सन्दर्भ में किस प्रकार का दृष्टिकोण रखता है अथवा इन दिशाओं में उसने कौन-कौन से निर्णय लिए हैं? शैक्षिक एवं व्यावसायिक योजनाओं से सम्बन्धित आधार सामग्री का संकलन करने की प्रक्रिया के अन्तर्गत यह ध्यान रखना चाहिए कि इन योजनाओं पर आधारित सूचनाओं का संचय अधिक प्रामाणिक साक्ष्यों के आधार पर ही किया जाए।

6. मनोवैज्ञानिक आँकड़े (Psychological data)—व्यक्ति से सम्बन्धित विभिन्न मानसिक विशेषताओं यथा-बुद्धि का स्तर, विशिष्ट बौद्धिक क्षमता अभिरूचि एवं व्यक्तित्व से सम्बन्धित विभिन्न गुणों की जानकारी प्राप्त करना मनोवैज्ञानिक आधार प्रदत्त के संकलन का उद्देश्य होता है शैक्षिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत निर्देशन हेतु इस प्रकार की आधार प्रदत्त का प्रयोग समान रूप से महत्वपूर्ण होता है। बुद्धि से सम्बन्धित विशिष्ट तथ्यों की जानकारी के लिए बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। *अल्फ्रेड बिने, साइमन, टरमन, राइस, कामथ, एम. जलोटा* आदि के द्वारा इस प्रकार से अनेक

नोट

बुद्धि परीक्षण विकसित किए गए हैं। इन समस्त परीक्षणों के माध्यम से प्राप्त जानकारी के आधार पर ही व्यक्ति को यह निर्देशन प्रदान किया जा सकता है कि उसकी बौद्धिक योग्यता का स्तर क्या है? तथा उसे किस प्रकार के व्यवसाय अथवा विषयों का चयन करना चाहिए।

बुद्धि के अतिरिक्त सेवार्थी की अभिरूचि एवं रूचि के सम्बन्ध में प्राप्त जानकारी भी विशेषकर शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। इसी प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व से सम्बन्धित विभिन्न विशेषताएँ भी उसके व्यावसायिक जीवन, शैक्षिक उपलब्धियों, सामाजिक समायोजन आदि को प्रभावित करती है। व्यक्तित्व से सम्बन्धित इन विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का विकास किया गया है, साथ ही विभिन्न प्रकार की अनुसूचियों एव निर्धारण मापनियाँ भी सेवार्थी की व्यक्तित्व से सम्बन्धित विभिन्न गुणों की जानकारी प्राप्त करने में सहायक होती है।

(5) पूर्व सेवाएँ (Preparatory Services)

व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत, इस सेवा का विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। पूर्व सेवा विद्यालय अथवा शैक्षिक संस्था के कार्य जगत में जाने की तैयारी से सम्बद्ध है। इस सेवा को मूल रूप में स्थानान्तरण की समस्या का एक महत्वपूर्ण अंग माना जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा को विशिष्ट रूप से, अमेरिका के माध्यमिक विद्यालयों में प्रयुक्त किया गया है। हमारे देश के सन्दर्भ में सन् 1976 ई. से सन् 1988 ई. तक लगभग दस राज्यों एवं पाँच केन्द्रीय शासित प्रदेशों में शिक्षा में व्यावसायीकरण के कार्यक्रम को लागू किया जा चुका है और अनुमानतः इस वर्ष के अन्त तक अन्य अनेक राज्य भी इस कार्यक्रम को लागू कर लेंगे। एन. सी. ई. आर. टी. एवं मानवीय संसाधन विकास मन्त्रालय द्वारा अनेक योजनाओं को इस सन्दर्भ में प्रस्तावित किया जा चुका है। लेकिन नवीन शिक्षा नीति (1986) ई. को क्रियान्वित करने के सम्बन्ध में लागू "प्रोग्राम ऑफ एक्शन" (Programme of Action: National Policy of Education (1986) में यह उल्लेख किया गया है कि इस दिशा में आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है या अपेक्षित प्रगति नहीं हो सकती है। इसके अनेक कारकों को वर्णन करते हुए उपरोक्त दस्तावेज में इस स्थिति के लिए उत्तरदायी तत्व बताए गए हैं–

"ठीक प्रकार की समन्वित प्रबन्ध व्यवस्था का अभाव, व्यावसायिक पाठ्यक्रमों से उत्तीर्ण छात्रों द्वारा रोजगार न प्राप्त कर सकना, माँग तथा पूर्ति में असन्तुलन समाज द्वारा व्यवसायीकरण की धारणा को स्वीकार करने में उदासीनता, व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को पूरा करने वाले छात्रों के लिए व्यावसायिक विकास तथा वृत्तिक अवसरों का प्रावधान न होना आदि।"

पूर्व सेवा का स्वरूप (Nature of Preparatory Service)

शिक्षण संस्थाओं में व्यावसायिक जगत के प्रवेश करते समय अपेक्षित तीन प्रकार की तैयारियों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध इस सेवा से होता है।

(1) शैक्षिक पाठ्यक्रम ऐसे होते हैं, जिसमें प्रवेश लेने हेतु पूर्व तैयारी करनी आवश्यक होती है। अतः उपक्रम सेवा के अन्तर्गत विद्यार्थियों को आवश्यक जानकारी, कौशल तथा अभिविन्यास (ओरिएन्टेशन) की व्यवस्था की जाती है।

(2) व्यावसायिक निर्देशन की दृष्टि से कुछ रोजगार ऐसे होते हैं, जिनके लिए, विद्यालय अथवा महाविद्यालय स्तर की शिक्षा के साथ-साथ प्रशिक्षण कार्य भी चलता है। शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र के अन्तर्गत, विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी हेतु पृथक रूप से कक्षाएँ चलायी जाती हैं।

(3) शैक्षिक पाठ्यक्रम एवं व्यवसाय ऐसे भी हैं जिनमें प्रवेश हो जाने के उपरान्त ही, तैयारी की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

उपक्रम सेवा की मुख्य आवश्यकता होती है–

1. छात्रों को उपयुक्त अपेक्षित तैयारी हेतु परामर्श प्रदान करना।
2. इस प्रकार के प्रशिक्षण हेतु उपलब्ध सुविधाओं के सम्बन्ध में जानकारी देना,
3. छात्रों को इस दिशा में प्रोत्साहित करना।

इस सन्दर्भ में उपक्रम सेवा का मुख्य उद्देश्य, ऐसे कार्यों के प्रशिक्षण हेतु चलाये जा रहे केन्द्रों के सम्बन्ध में छात्रों को जानकारी प्रदान करना तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने में छात्रों की सहायता करना होता है। इस सेवा का सम्पादन पत्राचार विधि द्वारा भी किया जा सकता है तथा कालान्तर में पत्राचार विधि अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है।

दूसरे प्रकार के व्यवसायों एवं पाठ्यक्रमों के लिए तीन प्रकार से उपक्रम की व्यवस्था की जाती है।

(अ) प्रथम अवस्था में छात्र विद्यालय की देखरेख में रहता है तथा उसे एप्रेन्टिस के रूप में सेवा में लगाया जाता है। एप्रेन्टिस के बारे में कार्य करते समय छात्र को अपना आधा समय विद्यालय एवं आधा समय कार्य में लगाना होता है।

(ब) द्वितीय प्रकार की व्यवस्था में, विद्यार्थी मूल रूप में एक व्यवसाय में कार्य करता है तथा उसे विद्यालय में प्रवेश, अधिक योग्य एवं कुशल बनने हेतु दिया जाता है। द्वितीय व्यवस्था के अन्तर्गत विद्यार्थी, विद्यालय से सप्ताह के मात्र कुछ घन्टे ही बिताता है।

(स) तृतीय व्यवस्था में विद्यार्थी विद्यालय नहीं जाता वरन् अपने रोजगार अथवा व्यवसाय में वांछनीय कुशलता एवं योग्यता प्राप्त कर लेता है। जैसे–वह अपना काम करते समय अपने सहकर्मियों या अन्य कार्यकर्त्ताओं द्वारा प्रदान की गई अनौपचारिक शिक्षा।

तृतीय प्रकार के व्यवसायों एवं पाठ्यक्रमों के लिए विद्यालयों का कोई महत्व नहीं होता, क्योंकि छात्र कार्य करते समय अपने सहकर्मी से ही अनेक बातों का ज्ञान प्राप्त कर, उन्हें सीख लेता है। इसके अन्तर्गत अनुभवी कार्यकर्त्ता प्रदर्शन के माध्यम से, एप्रेन्टिस (छात्र) को कौशल प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।

व्यवसाय-परिवर्तन हेतु तैयारी (Preparation for Vocational Change)–आज व्यक्ति अपने व्यवसाय अथवा उद्योगों में परिवर्तन करने के प्रति अत्यन्त सचेत हो गए हैं। उन व्यवसायों को, जिनमें अधिक धनार्जन एवं अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने का अवसर है, उन्हीं व्यवसायों को अपनाने का प्रयास अधिकांश व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। यदा-कदा एक व्यवसाय अथवा रोजगार से दूसरे रोजगार या व्यवसाय तथा व्यवसाय परिवर्तन का पूर्वाभास हो जाता है तथा कभी-कभी ऐसे परिवर्तन अचानक ही आते हैं। ऐसी स्थिति में छात्र को पूरक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त अन्य ऐसी अनेक परिस्थितियाँ भी होती हैं जिनमें रोजगार की परीक्षा लम्बे अथवा अधिक समय तक करनी पड़ती है। इस प्रतीक्षा की अवधि में ही छात्र को वांछनीय तैयारी में सहायता की आवश्यकता अनुभूत होती है।

निष्कर्ष रूप में, यह कहा जा सकता है कि इस सेवा का मुख्य उद्देश्य छात्र को एक प्रकार की व्यावसायिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराना है, जिसको प्राप्त करके वह अपने कार्यजगत में अपेक्षित कौशल तथा मानसिक तैयारी के साथ प्रविष्ट हो सके। व्यक्ति को पूर्व सेवा व्यवसाय में जाने से पूर्व एवं व्यवसाय में प्रविष्ट हो जाने के उपरान्त उपलब्ध करायी जाती हैं।

क्या आप जानते हैं प्रथम प्रकार के शैक्षिक पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत उन पाठ्यक्रमों एवं व्यवसायों को सम्मिलित किया जाता है, जिनमें पूर्व-प्रशिक्षण के अभाव में कार्य करना, असम्भव है जैसे–टाइप करना, सिलाई करना, कम्प्यूटर पर कार्य करना इत्यादि।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. **निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' अथवा 'असत्य' लिखिए।** (State whether the following statements are 'True' or 'False')–
   1. भारत में निर्देशन आन्दोलन चलाने का श्रेय दिल्ली विश्वविद्यालय को जाता है।
   2. माध्यमिक शिक्षा का सफलतापूर्वक आयोजन शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन के सुव्यवस्थित कार्यक्रमों पर आधारित है।
   3. राज्य स्तर पर निर्देशन सेवाओं का संचालन राज्य स्तर की संस्थाओं द्वारा किया जाता है।

राज्य और केन्द्रीय स्तर पर निर्देशन सेवाएँ (Guidance Services at the State and Central Level)

अधिकतर देशों में निर्देशन आन्दोलन अभी हुआ है। भारत में तो निर्देशन आन्दोलन अपनी शैशवावस्था (Infancy) में चल ही रहा है। भारत में निर्देशन आन्दोलन चलाने का श्रेय कोलकत्ता विश्वविद्यालय को जाता है।

माध्यमिक विद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या से निर्देशन सेवाओं को मान्यता मिलने लगी है ताकि विद्यार्थियों को उनके पाठ्यक्रमों तथा भविष्य के कार्यक्रमों तथा व्यवसाय के चयन में उनकी सहायता की जा सके।

हमारे देश के शिक्षा नियोजकों ने भी निर्देशन सेवाओं के महत्व को पहचानना आरम्भ कर दिया है। माध्यमिक शिक्षा का सफलतापूर्ण आयोजन शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन के सुव्यवस्थित कार्यक्रमों पर आधारित है। यह सुव्यवस्थित कार्यक्रम विद्यार्थियों और उनके माता-पिता की अनुकूल पाठ्यक्रमों के चयन में सहायता करते हैं। बहु-उद्देशीय विद्यालयों की असफलता इस प्रकार के सुव्यवस्थित कार्यक्रमों के अभाव के कारण हुई।

केन्द्रीय योजना (Central Planning)

सभी राज्यों में निर्देशन आन्दोलन के विकास के लिए केन्द्र द्वारा आयोजित क्रमबद्ध निर्देशन-योजना को भारत-सरकार ने शिक्षा की तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंग के रूप में तैयार किया। मौलिक रूप से इस योजना का निर्माण केन्द्रीय ब्यूरो (Central Bureau) ने किया था। इस योजना पर अगस्त 1960 में राजकीय निर्देशन ब्यूरो के प्रधानों (Heads of Govt. Bureaus of Guidance) की प्रथम सम्मेलन में दिल्ली में विचार विमर्श हुआ था। इसमें यह तय किया गया कि इसे केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना बनाया जाए। इस योजना के अन्तर्गत शत-प्रतिशत आर्थिक सहायता राज्यों को दी जाए।

देश में राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन सेवाओं का संचालन विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से किया जा रहा है। राज्यों में अर्थात् राज्य स्तर पर निर्देशन-सेवाओं का संचालन राज्य स्तर की संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है।

राष्ट्रीय या केन्द्रीय स्तर पर निर्देशन सेवाएँ (Guidance Services at National or Central Level)

(1) केन्द्रीय शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो,

(2) पुनर्वासन एवं नियोजन निदेशालय, तथा

(3) अखिल भारतीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संघ।

(1) केन्द्रीय शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो (Central Education and Vocational Guidance Bureau)–सन् 1953 में माध्यमिक शिक्षा आयोग अर्थात् मुदालियर आयोग (Mudaliar Commission 1952) ने देश में निर्देशन कार्यक्रम पर बल दिया। इस आयोग ने राष्ट्र में शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन के विस्तार पर बल दिया तथा इस सम्बन्ध में कुछ संस्तुतियाँ सरकार से की। यह सिफारिशें निम्नलिखित हैं–

(1) शैक्षिक अधिकारियों को शैक्षिक निर्देशन पर अधिक बल देना चाहिए।

नोट

(2) विद्यार्थियों को विभिन्न उद्योगों के कार्य-क्षेत्रों तथा महत्व आदि का ज्ञान कराने के लिए उद्योगों पर बनी लघु फिल्में दिखा कर उन्हें वास्तविक स्थितियों से अवगत कराया जाए।

(3) सभी शिक्षा-संस्थाओं के कैरियर मास्टरों (Career Masters) तथा अन्य निर्देशन अधिकारियों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(4) सभी राज्यों में निर्देशन सम्बन्धी प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोलने का उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार वहन करे।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission) की उपरोक्त संस्तुतियों के आधार पर केन्द्रीय मंत्रालय ने (1954) में केन्द्रीय शिक्षा तथा व्यावसायिक ब्यूरो (Central Education and Vocational Guidance Bureau) की स्थापना की। इस ब्यूरो ने निम्नलिखित कार्य किए—

(अ) शिक्षा-संस्थाओं को निर्देशन सम्बन्धी सामग्री प्रदान की।

(ब) निर्देशन प्रदान करने की प्रक्रिया मनोविज्ञान पर आधारित होने लगी।

(स) निर्देशन सम्बन्ध नियमावली तैयार की गई।

(द) व्यावसायिक निर्देशन तथा रोजगार केन्द्रों में घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया गया।

केन्द्रीय ब्यूरो के उद्देश्य (Objectives of Central Bureau)—केन्द्रीय ब्यूरो के उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(1) विद्यार्थियों में निर्देशन की प्रकृति और इसके दर्शन के बारे में पर्याप्त जागृति उत्पन्न करके निर्देशन का विकास करना।

(2) भारत में निर्देशन-आन्दोलन के विकास को प्रोत्साहन देना।

(3) निर्देशन आन्दोलन को सुदृढ़ करना।

(4) भारत में निर्देशन कार्यक्रम को नेतृत्व प्रदान करना।

केन्द्रीय शैक्षिक व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो आरम्भ में तो केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (Central Institute of Education) से जुड़ा रहा लेकिन बाद में इसे राष्ट्रीय शोध एवं प्रशिक्षण परिषद में मिला दिया गया। इस संस्थान में यह एक स्वतन्त्र विभाग है। लेकिन कुछ समय के पश्चात् एन.सी.ई.आर.टी. के विभिन्न विभागों का पुनर्गठन किया गया तो इसके निर्देशन-विभाग को मनोविज्ञान विभाग में मिला दिया। अब यह विभाग शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के लिए व्यक्तियों को प्रशिक्षित करता है। यहाँ पर निर्देशन में शोध कार्य भी किया जा रहा है।

(2) पुनर्वासन एवं नियोजन निदेशालय (Directorate General of Rehabilitation and Employment)—पुनर्वासन एवं नियोजन निदेशालय भारत विभाग बनने के पश्चात् पूर्वी एवं पश्चिमी पाकिस्तान से आये शरणार्थियों को बसाने का कार्य किया गया था। यह निदेशालय केन्द्रीय श्रम, पुनर्वास एवं नियोजन मंत्रालय के अधीन है। आजकल इस निदेशालय के अधीन देश के सभी रोजगार कार्यालय (Employment Exchanges) संलग्न है। इसके कार्यालय से निर्देशन के बारे में विभिन्न प्रकार का साहित्य प्रकाशित होता है। इस विभाग ने लगभग 85 रोजगार परिचय पुस्तकों (Pamphlets) का प्रकाशन किया है। इसी निदेशालय ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान युवा, रोजगार सेवा (Youth Employment Service) भी आरम्भ की, यह विभाग निर्देशन से सम्बन्धित अनुसन्धान कार्य का संचालन भी करता है। इस विभाग के अतिरिक्त केन्द्र सरकार का प्रकाशन विभाग तथा अन्य मन्त्रालय भी निर्देशन के क्षेत्र में कार्य करते हैं।

(3) अखिल भारतीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संघ (All India Education and Vocational Guidance Association)—यह संघ राष्ट्रीय स्तर का संघ है। इस संघ का मुख्य कार्य है—राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन कार्यक्रमों तथा विचारधाराओं का प्रसार करना तथा विभिन्न निर्देशन कार्यक्रमों को समन्वित करना। यह संघ निर्देशन साहित्य का प्रकाशन तथा वितरण भी करता है। यह संघ निर्देशन सम्बन्धी एक पत्रिका (Journal of Vocational and Educational Guidance) का प्रकाशन भी करता है।

नोट

राज्य स्तर पर निर्देशन सेवाएँ (Guidance Services at State Level)

तृतीय पंचवर्षीय योजना में निर्देशन का केन्द्र द्वारा आयोजित योजना के रूप में स्वीकार किया गया और राज्य में निर्देशन सेवाओं का विकास के लिए 13 ब्यूरो स्थापित किए गए। इनके प्रयासों से परामर्शदाता तथा कैरियर मास्टरों द्वारा विद्यालयों में विद्यार्थियों को निर्देशन सहायता प्रदान की जाने लगी। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तिम चरण तक सारे भारत में लगभग 3000 माध्यमिक विद्यालयों में निर्देशन सेवा उपलब्ध कराई जाने लगी। इन विद्यालयों में कैरियर मास्टर ही सूचनाएँ प्रदान करते थे।

केन्द्रीय शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो का उद्देश्य राज्यों के शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो से भिन्न होते हैं क्योंकि केन्द्रीय शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो एक केन्द्रीय संस्थान है। केन्द्रीय ब्यूरो विद्यार्थियों में निर्देशन की प्रकृति और दर्शन के बारे में पर्याप्त जानकारी देता है। केन्द्रीय ब्यूरो का अन्य उद्देश्य भारत में निर्देशन आन्दोलन के विकास को प्रोत्साहन देना और उसे सुदृढ़ बनाना है। केन्द्रीय ब्यूरो देश में निर्देशन कार्यक्रम को नेतृत्व प्रदान करना है। केन्द्रीय ब्यूरो के उद्देश्यों के बाद राज्य के शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो के उद्देश्यों पर ध्यान देना भी आवश्यक है। इन उद्देश्यों का वर्णन निम्नलिखित है–

टास्क भारत में निर्देशन आंदोलन चलाने का श्रेय किसे दिया जाता है?

राज्यों में शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो के उद्देश्य (Objectives of State Level Education and Vocational Bureaus)

(1) राज्य स्तर के शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो का मुख्य उद्देश्य है– विद्यार्थियों को उनके अनुकूल अध्ययन के पाठ्यक्रम और कैरियर के चयन में सहायता प्रदान करना। इस प्रकार की सहायता प्रदान करना अति आवश्यक है।

(2) विद्यार्थियों की योग्यताओं, रूचियों, व्यक्तित्व में अधिकतम विकास और जीवन के सभी क्षेत्रों में समायोजन में सहायता करना।

(3) विद्यालयों में विद्यालय–कर्मचारियों में निर्देशन–मानसिकता (Guidance Mindedness) उत्पन्न करना या निर्देशन की उन्नति करना।

(4) निर्देशन को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाना तथा प्राचार्यों, शिक्षकों और माता-पिता को समझना, उसकी रूचियों को जानना तथा उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त करना।

(5) शिक्षा-अधिकारियों और आम जनता को निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता के बारे में जागृत करना।

(6) निर्देशन ब्यूरो द्वारा निर्देशन का आधारभूत दर्शन, प्रत्यय और सिद्धान्त के बारे में सही समझ पैदा करना। वर्तमान काल में निर्देशन सेवाओं की लोकप्रियता में अभाव का मुख्य कारण है–निर्देशन की प्रकृति और उद्देश्य के बारे में भ्रम।

सन् 1981 तक देश के 19 राज्यों और केन्द्र-शासित प्रदेशों में राज्य के शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो हैं या फिर ऐसी राज्य-स्तर की कुछ ऐजेंसियाँ है जो निर्देशन सेवाओं के लिए उत्तरदायी है। दस राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेश पर कोई राज्य स्तर की निर्देशन ऐजेन्सी नहीं थी। 19 में से 3 राज्य स्तरीय निर्देशन ऐजेन्सियों का स्वतन्त्र अस्तित्व था। इनके प्रधान निर्देशकों या शैक्षिक निर्देशालय (Directorate of Education) के किसी वरिष्ठ अधिकारी के अधीन हैं। ये तीन ब्यूरो हैं–

(1) मनोविज्ञान का ब्यूरो, इलाहाबाद (Bureau of Psychology, Allahabad, U.P.)]

नोट

(2) व्यावसायिक निर्देशन और चयन संस्थान, महाराष्ट्र सरकार, मुम्बई (Institute of Vocational Guidance and Selection, Government of Maharashtra, Mumbai),

(3) व्यावसायिक निर्देशन का संस्थान, गुजरात सरकार, अहमदाबाद (Institute of Vocational Guidance, Governmet of Gujrat, Ahmedabad)।

इनमें से इलाहाबाद के मनोविज्ञान ब्यूरो के 9 क्षेत्रीय केन्द्र हैं तथा शेष दोनों में से प्रत्येक के उप-ब्यूरो स्थापित किए गए।

पाँच राज्य-स्तरीय ऐजेन्सियाँ शिक्षा-निर्देशक के कार्यालय का अंग थी वे बहुत ही लघु इकाईयाँ थी। यह राज्यों और केन्द्र-शासित प्रदेशों में अब राज्य-स्तरीय निर्देशन ऐजेन्सियाँ एस. सी. ई. आर. टी. का अंग है। मध्य-प्रदेश में शैक्षिक मनोविज्ञान और निर्देशन महाविद्यालय, जबलपुर, (College of Education Psychology and Guidance, Jabalpur) द्वारा ही राज्य स्तरीय निर्देशन ऐजेन्सी का कार्य किया जाता है।

इस प्रकार विदित होता है कि प्रत्येक राज्य में एक राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक ब्यूरो की स्थापना हुई। मुदालियर आयोग ने इनकी स्थापना के लिए सरकार से सिफारिश की। प्रत्येक राज्य-स्तरीय ब्यूरो निर्देशन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करता है, कार्यकर्ताओं के परीक्षण तथा स्कूलों में निर्देशन सेवाओं की व्यवस्था करता है। निर्देशन के क्षेत्र में अनुसंधान कार्यो को प्रोत्साहन भी राज्य-स्तरीय ब्यूरो ही देता है।

अन्य राज्य स्तरीय संस्थाएँ (Other State Level Agencies)

राज्य में राज्य-स्तरीय निर्देशन ब्यूरो के अतिरिक्त कई और संस्थाएं हैं जो निर्देशन कार्य का संचालन करती हैं। ये सस्थाएं हैं–

(1) विश्वविद्यालय का निर्देशन ब्यूरो।

(2) नियोजन कार्यालय।

(3) अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय।

(4) राज्यों के मनोविज्ञान ब्यूरो।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct Option)–

1. निर्देशन सेवाओं का मुख्य प्रकार है–
   (*a*) आत्म अनुसूची सेवा (*b*) अनुगामी सेवा
   (*c*) परामर्श सेवा (*d*) उपरोक्त सभी
2. अनुगामी सेवा का उपयोग करते हैं–
   (*a*) सूचनाओं का संकलन (*b*) आत्म, विश्लेषण
   (*c*) विश्वसनीय प्रदत्तों हेतु (*d*) आकलन हेतु
3. स्थापन सेवाओं का उपयोग किया जाता है–
   (*a*) शैक्षिक निर्देशन (*b*) व्यावसायिक निर्देशन में
   (*c*) परामर्श सेवा में (*d*) सूचना सेवा में
4. व्यक्ति की आन्तरिक सूचनाओं हेतु प्रयुक्त करते हैं–
   (*a*) पूर्व सेवा (*b*) शोध सेवा
   (*c*) आत्म अनुसूची सेवा (*d*) अनुगामी सेवा

नोट

4.2 सारांश (Summary)

- विशेषकर भारतीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में इन सेवाओं के समन्वय की अधिक आवश्यकता है। इसके साथ ही इनके समुचित बोध, विकास एवं उपयोग की भी समान रूप से आवश्यकता है।
- 'सूचनाओं' का समस्त प्रकार के निर्देशनों में विशिष्ट महत्व होता है। सूचनाओं की जानकारी छात्र एवं निर्देशन प्रदाताओं दोनों के लिए आवश्यक है। वैयक्तिक निर्देशन के लिए व्यक्ति की पारिवारिक तथा सामाजिक परिस्थितियों तथा उसकी विशेषताओं से सम्बन्धित सूचनाएँ आवश्यक होती हैं। शैक्षिक निर्देशन हेतु पाठ्यक्रमों, शैक्षिक अवसरों, औपचारिक तथा अनौपचारिक अधिगम व्यवस्थाओं, पद्धतियों के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त करना आवश्यक होता है। व्यावसायिक निर्देशन के लिए विभिन्न व्यवसायों हेतु आवश्यक योग्यताएँ एवं संस्थानों में रिक्त स्थानों के बारे में सूचनाएँ आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होती हैं।
- निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत, सूचनाओं का निर्देशन प्रदाता एवं छात्र के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सूचनाओं की आवश्यकता होती है, लेकिन वैयक्तिक, शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में सूचनाओं का महत्व निम्नलिखित दृष्टिकोण से देखा जा सकता है–
    1. 'सूचना-सेवा' व्यक्ति को विश्वसनीय तरीके से सूचनाएँ प्रदान करती है।
    2. इन सेवाओं के माध्यम से आवश्यक, उपयोग तथा संगत एवं समुचित जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है।
    3. सूचना-सम्प्रेषण की प्रक्रिया मितव्ययी बनायी जा सकती है।
    4. सूचनाओं के द्वारा व्यक्ति में वांछनीय स्तर की संवेदनशीलता का विकास किया जा सकता है।
- 'सूचना-सेवा' की कार्यविधि अत्यन्त वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ होती है। इस सेवा का मुख्य कार्य, नवीनतम सूचनाओं का शुद्ध एवं विश्वसनीय ढंग से एकत्रीकरण एवं उनका वर्गीकरण करना। वर्गीकरण के उपरान्त सूचनाओं का विवेचन व प्रस्तुतिकरण करना है।
- 'सूचना-सेवाओं' की प्रभावशाली व्यवस्था के अभाव में निर्देशन कार्य अरुचिकर प्रतीत होता है।
- परामर्श के अन्तर्गत, पारस्परिक सम्बन्ध को विशेष महत्व दिया जाता है। *विली एण्ड एण्ड्रू* के अनुसार–"परामर्श, पारस्परिक रूप से अधिगम की प्रक्रिया है।" इस प्रक्रिया में एक सहायता प्राप्त करने वाला सेवार्थी होता है तथा दूसरा सहायता प्रदान करने वाला प्रशिक्षित व्यक्ति।
- परामर्श के अन्तर्गत परामर्शदाता की दी गयी सलाह अथवा सुझाव को दूसरे व्यक्ति अर्थात, सेवार्थी पर थोपा नहीं जाता, वरन् यह प्रयास किया जाता है कि छात्र ही अपने व्यावसायिक एवं शैक्षिक अवसरों के सम्बन्ध में विचारणीय एवं महत्वपूर्ण तथ्यों को संकलित एवं व्यवस्थित करे तथा स्वयं की योजनाओं के सन्दर्भ में उनका मूल्यांकन कर, सही निर्णय ले।
- परामर्श सेवार्थी अथवा व्यक्ति को स्वयं की संभावनाओं पर विचार करने और उसे आत्म मूल्यांकन की ओर प्रवृत्त करने में सहायक होता है। परामर्श सेवा के अन्तर्गत सेवार्थी में इस आदत का विकास किया जाता है कि वह स्वयं को समझे।
- छात्र को सही निर्णय लेने हेतु, परामर्श द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। सही निर्णय न ले पाने के कारण सेवार्थी अथवा छात्र इधर-उधर भटक कर अर्थात् पथभ्रष्ट होकर, ऐसे व्यक्तियों की संगत में जा सकता है जो उसे सही निर्णय देने के बजाय स्वयं स्वार्थ की पूर्ति के भ्रम में डाल देते हैं।
- व्यावसायिक तथा शैक्षिक परिस्थितियों को अधिक उद्देश्ययुक्त एवं समंजनशील बनाने की दृष्टि से भी परामर्श सेवा का महत्व कम नहीं है। शैक्षिक संस्थाओं में विभिन्न पाठ्यक्रमों तथा अनेक अभीष्टों को समुचित रूप से समझने में छात्रों को सहायता देने हेतु परामर्श सेवा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

नोट

- कुशल एवं प्रभावशाली परामर्श के लिए, परामर्शदाता में कतिपय विशिष्ट गुणों का होना आवश्यक है। निर्देशन सेवाओं के सन्दर्भ में परामर्शदाता एक विशेषज्ञ के समान होता है। अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए, परामर्शदाता के समक्ष अनेक ऐसे व्यक्ति आते हैं, जिनकी मनोवृत्ति को जानना एवं समझना उनसे मधुर सम्बन्ध स्थापित करना तथा उन्हें समुचित परामर्श प्रदान करना, परामर्शदाता का कर्तव्य माना जाता है। इस सन्दर्भ में, परामर्शदाता के अनुभव, व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं।
- व्यक्ति में आत्मबोध की क्षमता का विकास करने की दृष्टि से आत्म-अनुसूची सेवा का विशेष महत्व होता है। इस सेवा के आधार पर व्यक्ति को आन्तरिक विशेषताओं एवं बाह्य उपलब्धियों के सम्बन्ध में वस्तुनिष्ठ जानकारी प्रदान की जाती है। इस जानकारी को प्राप्त करके भावी योजनाओं का निर्माण करने, अनुकूल अवसरों की दिशा में प्रयास करने तथा अपनी आन्तरिक शक्तियों की दिशा में सम्बद्ध प्रयास करने हेतु महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त होती है।
- इस सेवा के माध्यम से सेवार्थी को उसकी योग्यताओं एवं क्षमताओं के सम्बन्ध में न केवल वांछित सूचनाएँ प्रदान की जाती हैं, अपितु उसमें स्व:चिन्तन की क्षमता का विकास करने तथा यथार्थ धरातल पर आधारित आत्म-प्रत्यय को विकसित करने हेतु सहायता प्रदान की जाती है। इस प्रकार व्यक्ति को आत्म संवेदनशीलता अथवा स्वयं के सन्दर्भ के सूक्ष्म ग्राह्यता की दृष्टि से इस सेवा का महत्वपूर्ण उपयोग किया जा सकता है।
- किसी भी क्षेत्र में निरन्तर विकास एवं प्रगति करने के लिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि व्यक्ति को अपनी योग्यताओं, एवं बाह्य अवसरों की वस्तुनिष्ठ जानकारी प्राप्त हो। इस दिशा में किसी भी प्रकार की भ्रान्ति अविवेकपूर्ण निर्णय व्यक्तिनिष्ठ मूल्यांकन, अति उच्च महत्वाकांक्षा, आदि व्यक्ति के प्रगति-पथ पर निरर्थक अवरोध के रूप में ही उत्पन्न हुआ करती है।
- शैक्षिक, व्यावसायिक अथवा व्यक्तिगत निर्देशन हेतु विभिन्न प्रकार की आधार सामग्री को प्रयुक्त किया जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण, मूल्यांकन की आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ, इस आधार-सामग्री को उपलब्ध कराने में सर्वाधिक सहायक होती हैं। इस आधार सामग्री का संकलन अथवा उसे व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना उल्लेखनीय महत्व रखती है, क्योंकि इस सामग्री के वस्तुनिष्ठ एवं समुचित प्रयोग पर ही किसी भी प्रकार के निर्देशन की वस्तुनिष्ठता अथवा प्रभावशीलता आधारित होती है।
- व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत, इस सेवा का विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। पूर्व सेवा विद्यालय अथवा शैक्षिक संस्था के कार्य जगत में जाने की तैयारी से सम्बद्ध है। इस सेवा को मूल रूप से स्थानान्तरण की समस्या का एक महत्वपूर्ण अंग माना जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा को विशिष्ट रूप से, अमेरिका के माध्यमिक विद्यालयों में प्रयुक्त किया गया है।
- अधिकतर देशों में निर्देशन आन्दोलन अभी हुआ है। भारत में तो निर्देशन आन्दोलन अपनी शैशवावस्था (Infancy) में चल ही रहा है। भारत में निर्देशन आन्दोलन चलाने का श्रेय कोलकत्ता विश्वविद्यालय को जाता है।
- हमारे देश के शिक्षा नियोजकों ने भी निर्देशन सेवाओं के महत्व को पहचानना आरम्भ कर दिया है। माध्यमिक शिक्षा का सफलतापूर्ण आयोजन शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन के सुव्यवस्थित कार्यक्रमों पर आधारित है। यह सुव्यवस्थित कार्यक्रम विद्यार्थियों और उनके माता-पिता की अनुकूल पाठ्यक्रमों के चयन में सहायता करते हैं।
- तृतीय पंचवर्षीय योजना में निर्देशन का केन्द्र द्वारा आयोजित योजना के रूप में स्वीकार किया गया और राज्य में निर्देशन सेवाओं का विकास के लिए 13 ब्यूरो स्थापित किए गए। इनके प्रयासों से परामर्शदाता तथा कैरियर मास्टरों द्वारा विद्यालयों में विद्यार्थियों को निर्देशन सहायता प्रदान की जाने लगी। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तिम चरण तक सारे भारत में लगभग 3000 माध्यमिक विद्यालयों में निर्देशन सेवा उपलब्ध कराई जाने लगी। इन विद्यालयों में कैरियर मास्टर ही सूचनाएँ प्रदान करते थे।

नोट

- पाँच राज्य-स्तरीय ऐजेन्सियाँ शिक्षा-निर्देशक के कार्यालय का अंग थी वे बहुत ही लघु इकाईयाँ थी। इन राज्यों और केन्द्र-शासित प्रदेशों में अब राज्य-स्तरीय निर्देशन ऐजेन्सियाँ एस. सी. ई. आर. टी. का अंग है। मध्य-प्रदेश में शैक्षिक मनोविज्ञान और निर्देशन महाविद्यालय, जबलपुर, (College of Education Psychology and Guidance, Jabalpur) द्वारा ही राज्य स्तरीय निर्देशन ऐजेन्सी का कार्य किया जाता है।

4.3 शब्दकोश (Keywords)

- **संचित**—जमा करना।
- **आशातीत**—आशा के अनुरूप।

4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सूचनाओं के प्रकार एवं महत्व का उल्लेख करते हुए व्यावसायिक सूचनाएं प्राप्त करने से सम्बन्ध स्रोतों का विवरण दीजिए।
2. परामर्श सेवा का आशय स्पष्ट करते हुए, परामर्श की प्रक्रिया एवं परामर्श के महत्व का वर्णन कीजिए।
3. आत्म अनुसूची सेवा का आशय स्पष्ट करते हुए इसके महत्व का उल्लेख विस्तार पूर्वक कीजिए।
4. सूचना सेवा के प्रमुख उद्देश्यों एवं इसके कार्यप्रणाली का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
5. वैयक्तिक निर्देशन के अन्तर्गत किस प्रकार की सूचनाओं का विवरण प्राप्त करना आवश्यक है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. निर्देशन सेवाओं	2. शैक्षिक निर्देशन	3. सूचना के संकलन	4. वैयक्तिक रूप
2.	1. असत्य	2. सत्य	3. सत्य	
3.	1. (*d*)	2. (*d*)	3. (*b*)	4. (*c*)

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*— डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)* — डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*— डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

इकाई–5: सेवाएँ: स्थापन सेवा, अनुगामी सेवा (Services: placement service, follow-up service)

नोट

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
5.1 स्थापन सेवा (Placement Service)
5.2 अनुगामी सेवा (Follow-up Service)
5.3 सारांश (Summary)
5.4 शब्दकोश (Keywords)
5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- व्यावसायिक निर्देशन सेवाओं (स्थापना और अनुगामी सेवा) को समझने एवं व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा को एक उत्तम विनियोग मानते हैं। आज के युग में प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों को उत्तम तथा उच्च शिक्षा देना चाहता है और शिक्षा पर कुछ भी व्यय करने के लिए तत्पर रहता है, इस दिशा में प्रयास भी करता है। शिक्षा प्रक्रिया द्वारा भावी जीवन की तैयारी होती है। अर्थात् शिक्षा का अर्थ सेवा प्राप्त करना है।

5.1 स्थापन सेवा (Placement Service)

व्यवसायिक पाठ्यक्रमों के उपरान्त व्यवसाय ढूंढना नहीं पड़ता अपितु उसका स्थापन पाठ्यक्रम से सुनिश्चित हो जाता है इसलिए आज व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु भारी भीड़ है। इसके लिए निम्नांकित सेवाओं का विशेष महत्व है–

1. स्थापन सेवा (Placement Service)
2. अनुगामी सेवा (Follow-up Service), तथा
3. शोध सेवा (Research Service)।

व्यावसायिक निर्देशन से छात्रों की योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुरूप ही स्थापन के लिए सुझाव तथा निर्देशन दिया जाता है। परन्तु शिक्षा संस्थाओं का यह उत्तरदायित्व नहीं होता है कि शिक्षाप्राप्त छात्र को कहाँ और किस व्यवसाय में स्थान दिया जाये। छात्र स्वयं स्थापन के लिए प्रयास करता है।

स्थापन सेवा का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Placement Service)

स्थापन सेवा का अर्थ होता है कि छात्र की योग्यताओं, क्षमताओं तथा गुणों के अनुसार उपयुक्त स्थान दिलाया जाये

नोट

जिससे वह सुगमता से समायोजन करके उसमें सफल हो सके। अनेक विद्वानों द्वारा स्थापन सेवा की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ यहाँ दी गई हैं–

किलफोर्ड पी. फ्री. क्लिके अनुसार–"स्थापन सेवा का सम्बन्ध छात्र को अगले कार्य या पद के लिए सहायता देना, चाहे वह किसी व्यवसाय, स्थान या पद ले सके या शिक्षा संस्था में उपयुक्त पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में स्थान पा सकें।"

"Placement is concerned with helping pupils take the next step, whatever it may be, such a placement service assists pupils in finding jobs, it also helps them to find their place in appropriate extra-curricular activities."

–Clifford, P. Forchlich

एण्ड्र तथा विले के अनुसार–"स्थापन सेवा उन सभी क्रियाओं की ओर अग्रसरित करती है, जो छात्र को उसकी जीविका हेतु व्यवसाय या रोजगार अथवा शैक्षिक क्रियाओं या शैक्षिक में प्रवेश के लिए सहायता की जाती है या निर्देशन दिया जाता है जिससे वह उसमें पर्याप्त समायोजन करके सफल हो सके।"

"Placement refers to all of the activities performed in assisting the student to make an adequate adjustment to the next step in his training whether that he is taking a full or part time job or making a choice of additional educational training."

–Andrew and Willyey

स्थापन सेवा का सम्बन्ध व्यवसायिक निर्देशन से अधिक है, परन्तु इससे भिन्न है। छात्र की भावी योजनाओं तथा कार्यक्रमों में सहायता दी जाती है। इन परिभाषाओं में 'स्थापन सेवा' की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया गया है–

(1) स्थापन सेवा छात्र की भावी योजना अथवा कार्यक्रम में सहायता देना है। यह भावी योजना प्रमुख रूप से तीन प्रकार की है–
   (अ) किसी व्यवसाय या रोजगार में स्थान ग्रहण करने में।
   (ब) विद्यालय में पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में स्थान लेने में, तथा
   (स) किसी शैक्षिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण में प्रवेश लेने में।

(2) स्थापन सेवा से स्थान ग्रहण कर लेने या प्रशिक्षण में प्रवेश लेने के उपरान्त उसमें पर्याप्त समायोजन करें।

(3) स्थापन सेवा से उस व्यवसाय या प्रशिक्षण में सफल हों।

(4) स्थापन सेवा से छात्र को उस व्यवसाय अथवा प्रशिक्षण से सन्तुष्टि भी हो सके।

स्थापन सेवा की परिभाषा तथा विशेषताओं से प्रगट होता है कि शैक्षिक निर्देशन तथा व्यावसायिक निर्देशन सेवाओं और स्थापन सेवा के विशेषणों तथा कार्यकर्ताओं में सहयोग तथा समन्वय होना आवश्यक है क्योंकि यह सेवाएँ एक दूसरे की पूरक है। अनुगामी सेवा से इनकी प्रभावशीलता तथा सार्थकता का आकलन किया जाता है।

क्या आप जानते हैं किसी व्यवसाय के प्रशिक्षण कार्यक्रम में उपयुक्त स्थान दिलाने की प्रक्रिया को स्थापन सेवा कहा जाता है।

स्थापन सेवा की आवश्यकता एवं महत्त्व (Needs and Importance of Placement Services)

उपरोक्त परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि स्थापन सेवा की आवश्यकता शैक्षिक तथा व्यावसायिक दोनों प्रकार के निर्देशन में है। यहाँ स्थापन सेवा की आवश्यकता एवं महत्त्व को बताया गया है–

(1) स्थापन सेवा से छात्र को यह बोध हो जाता है कि उसकी योग्यताएँ एवं क्षमताएँ किस कार्य के लिए उपयुक्त है जिनमें वह अधिक सफल हो सकेगा और पर्याप्त समायोजन भी कर सकेगा।

नोट

(2) छात्र को विद्यालय में उन्हीं विषयों का अध्ययन करना चाहिए तथा तैयारी करनी चाहिए जो उसके भावी कार्यक्रम में सहायक हों।

(3) स्थापन सेवा से व्यावसायिक तथा शैक्षिक कार्यप्रणाली सम्बन्धी समायोजन की समस्याओं को कम किया जा सकता है।

(4) स्थापन सेवा समाज को भी प्रभावित करती है। जब छात्रों की नियुक्ति सन्तोषप्रद होती है तो उनका समाज के आर्थिक पक्ष पर सीधा प्रभाव पड़ता है उचित जीविका में प्रवेश करने पर समाज की आय में वृद्धि होती है। अपनी रुचि एवं योग्यतानुसार जीविका प्राप्त होने पर उनका समायोजन सन्तोषजनक होता है। ऐसे व्यक्ति अपने कार्य में अधिक प्रवीण भी होते हैं जिनका उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है।

(5) स्थापन सेवाएँ विद्यालय का सम्मान समाज में बढ़ाती हैं। प्राय: यह देखा जाता है कि विद्यालय छोड़ने के बाद उसके छात्र क्या करते हैं, किस प्रकार की जीविकाओं में नियुक्ति पाते हैं जो छात्र निर्देशन के समय निश्चित की गई योजना के अनुसार कार्य करने में प्रवेश पाते हैं तो उनकी प्रगति भी शीघ्रता से होती है। तीव्र प्रगति करने वाले छात्र विद्यालय की प्रतिष्ठा को बढ़ाते हैं।

(6) विद्यालयों की स्थापन सेवाओं से नियुक्तिकर्ता को भी लाभ रहता है। विभिन्न जीविकाओं में स्थान रिक्त होने पर नियुक्तिकर्ता भी योग्य अभ्यर्थी को इन सेवाओं के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए सेवा अधिकारी तथा नियुक्तिकर्ता का परस्पर सहयोग आवश्यक है।

(7) स्थापन सेवा द्वारा प्रबन्धन व्यवस्था को प्रभावशाली बनाया जाता है ऐसे छात्रों एवं व्यक्तियों की नियुक्तियाँ की जाती है जो वास्तव में उस स्थान के लिए अधिक उपयुक्त है। जब व्यक्ति को रोजगार से सन्तुष्टि नहीं होती हैं तब वह संस्था में समस्याएँ उत्पन्न करता है।

(8) भिन्न-भिन्न संस्थाओं में कार्यकर्ताओं की माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन रखने के दृष्टि से स्थापन सेवा का विशेष महत्व है।

(9) महत्वपूर्ण अध्ययनों तथा शोध कार्यो को बढ़ावा देने की दृष्टि से स्थापन सेवाओं का अधिक महत्व है। क्योंकि स्थापन सेवाओं की प्रभावशीलता का आकलन अनुगामी कार्यक्रमों से करना आवश्यक होता है।

(10) नवयुवक छात्र रोजगार के ढूँढ़ने से अधिक कठिनाई का अनुभव करते हैं। भारत में आजकल ऐसी ही परिस्थितियाँ हैं। यहाँ के छात्र अध्ययन समाप्ति पर उचित जीविका में प्रवेश प्राप्त नहीं कर पाते हैं। स्थापन सेवा उन जीविकाओं के बारे में बताती हैं जिनमें रिक्त स्थान होते हैं।

स्थापन सेवा के प्रकार (Types of Placement Service)

साधारणत: स्थापन सेवाएँ तीन प्रकार की होती हैं–

(1) शैक्षिक स्थापन (Education Placement),

(2) व्यावसायिक स्थापन (Vocational Placement) तथा

(3) प्रशिक्षण स्थापन (Training Placement)

जार्ज ई. मायर्स का विचार है कि छात्र को किसी व्यवसाय में स्थान दिलाने के उत्तरदायित्व विद्यालय का ही है। जैसा उनका कथन है–

"एक नवयुवक को विद्यालय से व्यावसयिक क्रियाओं में भेजना शैक्षिक सेवा है, अत: समाज द्वारा चुनी हुई शैक्षिक संस्था-विद्यालय का ही यह एक मुख्य कार्य है।"

"The transfer of youth from school to occupational activities is an educational service and thus is a proper function of society's chosen educational agency, the school system."

–George, E. Myers

नोट

जॉन डीवी ने शिक्षा का यही उद्देश्य बताया कि छात्र में सामाजिक तथा व्यावसायिक क्षमताओं का विकास करना जिससे वह समाज में अपना स्थान बना सके इसे उन्होंने सामाजिक प्रभावशीलता का विकास माना है।

(1) शैक्षिक स्थापन (Educational Placement)

डाक्टर बनने के लिए इण्टर में भौतिक, रसायन, जीव विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान जैसे विषयों का अध्ययन आवश्यक होता है। शिक्षक बनने के लिए अध्यापक प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक होता है।

(अ) अध्ययन हेतु पाठ्यक्रमों में स्थापन,

(ब) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में स्थापन तथा

(स) भावी शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम में स्थापन।

(अ) अध्ययन हेतु पाठ्यक्रमों में स्थापन–'मुदालियर आयोग' (1953) के सुझाव के परिणामस्वरूप माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विविध पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए गए हैं। अत: आठवीं कक्षा उत्तीर्ण कर लेने के बाद प्रत्येक बालक या बालकों का एक-सा ही प्रश्न होता हैं, "मैं कौन-से विषयों का अध्ययन करूँ?" ऐसे छात्रों को अध्यापक या परामर्शदाता की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। इनमें कोई भी सहायता कर सकता है, परन्तु सहायता करने वाले को निम्नलिखित तथ्यों से परिचित होना पड़ सकता है।

(1) विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले पाठ्य विषयों की सूची तथा आवश्यकताएँ।

(2) छात्रों द्वारा विचार किए गए कार्य क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण।

(3) उच्च अध्ययन के लिए छात्र को प्रवेश की किन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी?

छात्र को किसी पाठ्यक्रम में प्रवेश देते समय निम्नांकित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

(1) प्रवेश प्रक्रिया सरल तथा वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए।

(2) छात्र प्रवेश के लिए सक्षम तथा तैयार होना चाहिए।

(3) अध्यापक को किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व परामर्शदाता की भी सहायता लेनी चाहिए।

(4) एक योग्य अध्यापक द्वारा प्रत्येक छात्र के चयन की परख की जानी चाहिए-छात्रों द्वारा विद्यालय के नियमों को गलत समझना तथा गलत चयन के दुष्परिणामों से उनको अवगत करना ही जाँच का उद्देश्य है। इस कार्य के लिए अध्यापक को छात्र सम्बन्धी सूचनाओं का ज्ञान होना चाहिए।

छात्र सम्बन्धी सूचनाओं का स्रोत विश्वसनीय हो तथा सूचनाएँ वैध होनी चाहिए।

(ब) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में स्थापन–नियमित पाठ्यक्रमों से छात्रों का मानसिक विकास होता है जबकि शिक्षा द्वारा सर्वांगीण विकास की अपेक्षा की जाती है। इसलिए सामाजिक तथा शारीरिक विकास के लिए पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में भी स्थापन करना आवश्यक होता है। विद्यालय में खेल-कूद तथा क्रियाओं की भी व्यवस्था की जाती है।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की परिस्थिति नियमित कक्षागत क्रियाओं से भिन्न होती है। इन परिस्थितियों में छात्र अधिक सीखता है। इन क्रियाओं के चयन हेतु भी छात्रों को निर्देशन की आवश्यकता होती है। छात्र को उसकी रूचियों तथा क्षमताओं के अनुरूप ही इनका चयन करना उपयुक्त होता है। जैसे कुछ छात्रों को सामाजिक कार्यों में अधिक रूचि होती है तथा नेतृत्व के गुण होते हैं तथा अन्य क्षेत्रों में खेलकूद में अधिक रूचि होती है। दक्षता के लिए निर्देशन आवश्यक होता है।

(स) भावी शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम में स्थापन–आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद विषयों के चयन के लिए निर्देशन की आवश्यता होती है और इण्टर परीक्षा पास करने के बाद अनेक प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रवेश के अवसर होते हैं। परन्तु छात्रों को इनका ज्ञान नहीं होता है तथा जानकारी होने पर निश्चित नहीं कर पाते कि किस प्रशिक्षण में प्रवेश लिया जाए जिसमें जीवन में स्थान पाकर सफल हो सकें। यह उत्तरदायित्व भी स्थापन सेवा का है। उनकी

अभिरूचि, इच्छाओं तथा क्षमताओं के अनुरूप प्रशिक्षण संस्थाएँ कहाँ स्थित हैं तथा उनमें प्रवेश की प्रक्रिया क्या है? इनके लिए जो निर्देशन दिया जाता है वह स्थापन सेवा के अन्तर्गत ही आते हैं।

> नोट्स स्थापन सेवा का अर्थ रोजगार दिलाने तक ही सीमित नहीं है, अपितु छात्रों को विभिन्न विषयों का चयन करने में सहायता देना है जिससे वह भावी जीवन की तैयारी कर सके।

(2) व्यावसायिक स्थापन सेवा (Vocational Placement Service)

छात्र को उसकी योग्यताओं, अभिरुचियों तथा क्षमताओं के अनुरूप उपयुक्त व्यवसाय या रोजगार में उचित स्थान दिलाने में सहायता देने की क्रियाओं को व्यवसायिक स्थापन सेवा कहते हैं।

मायर्स ने अपनी पुस्तक में यह उत्तरदायित्व विद्यालय का ही बतलाया है कि छात्र को शिक्षा देने के उपरान्त उसे उपयुक्त रोजगार में स्थान दिलाने का कार्य विद्यालय को ही करना चाहिए। इसके प्रमुख रूप अधोलिखित हैं—

(अ) स्थापन सेवा सभी के सहयोग से की जानी चाहिए, जिसमें अध्यापक, निर्देशक, परामर्शदाता, प्राचार्य तथा अन्य संस्थाएँ। इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यवसायों के कर्मचारी भी सहयोग कर सके हैं। रोजगार में स्थापन के निम्नांकित स्वरूप होते हैं।

(1) व्यावसायिक कार्यों का अभिविन्यास, प्रशिक्षण तथा कार्यशाला का आयोजन करना,

(2) विभिन्न व्यवसायों तथा अवसरों से छात्र को जानकारी देना,

(3) छात्रों की योग्यताओं एवं क्षमताओं से रोजगार के लिए आवश्यक क्रियाओं तथा कौशलों से मिलान करना।

(4) छात्र को पूर्ण जानकारी देने के बाद, व्यवसाय का चुनाव वह स्वयं करना चाहिए।

(5) स्थापन के पश्चात् आकलन के लिए अनुगामी क्रियाओं का उपयोग करना चाहिए। रोजगार से सन्तुष्टि का भी पता लगाना चाहिए।

(ब) समाज की माँग एवं पूर्ति से स्थापन करना। स्थानीय समाज की आवश्यकता के अनुसार विद्यालय द्वारा स्थापन सेवाओं का नियोजन करना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी इस तथ्य को महत्व दिया गया है कि व्यावसायिक शिक्षा में स्थानीय आवश्यकतानुसार ही विद्यालयों द्वारा व्यवस्था करनी चाहिए इस सम्बन्ध में सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है तथा स्थानीय माँग को भी ध्यान में रखते हैं। प्रशिक्षण में इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है।

(स) स्थापन सेवाओं को बढ़ावा देने के लिए छात्रों, अध्यापकों, प्रबन्धकों प्राचार्यो को भागीदारी बनाना चाहिए जिससे इसकी उपयोगिता एवं प्रक्रिया को समझ सके। इसके अतिरिक्त संस्थाओं, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, अभिभावकों तथा परामर्श सेवा का भी उपयोग करना चाहिए। रोजगार सम्बन्धी सूचनाएँ विश्वसनीय होनी चाहिए। योग्य अध्यापकों द्वारा ही स्थापन सेवा का कार्य कराया जाए।

स्थापन सेवाओं की व्यवस्था (Organization of Placement Service)

निर्देशन तथा परामर्श सेवाओं का संगठन भारत में दो स्तरों पर किया जाता है—केन्द्रीय/राष्ट्रीय स्तर पर तथा प्रदेश स्तर। स्थानापन सेवाएँ भी निर्देशन तथा परामर्श कार्यक्रमों का ही एक अंग है इसकी व्यवस्था तीन प्रकार से की जाती है—

(1) केन्द्रीय स्तर (2) विकेन्द्रीयकरण तथा (3) मिश्रित स्तर।

भारत में रोजगार तथा व्यवसाय का नियोजन तथा नियन्त्रण दो स्तरों पर किया जाता है। कुछ संस्थाएँ तथा रोजगार का संचालन केन्द्र द्वारा किया जाता है। अधिकांश रोजगार तथा संस्थाओं का संचालन राज्य द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ रोजगार निजी स्तर पर संचालित किए जाते हैं।

नोट

(1) **केन्द्रीय स्तर** (Centralized Stage)—स्थापन सेवा संगठन को एक पृथक विभाग प्रत्येक विद्यालय में होता है। इसके मुख्य छात्रों के लिए विभिन्न संस्थाओं के रिक्त स्थानों की जानकारी रखना, छात्रों की योग्यताओं एवं क्षमताओं की सूचना रखना इसके लिए संचयी आलेख का भी उपयोग करते हैं। स्थापन सेवा के लिए परामर्शदाता की भी सहायता ली जाती है। इनके आधार पर छात्रों को उपयुक्त स्थल दिलाया जाता है। स्थापन सेवाओं का छात्रों की जानकारी के लिए प्रचार करना होता है। इसके लिए प्रशिक्षित प्रमुख रखा जाता है, वह अपना समय इसी में लगाता है।

(2) **विकेन्द्रीय स्तर** (Decentralized Stage)—स्थापन सेवा उत्तरदायित्व केवल व्यक्ति का नहीं होता जैसा केन्द्रीय स्तर का उल्लेख किया है। छात्र को स्थान दिलाने में विद्यालय, निर्देशन, परामर्शदाता, स्थापन सेवा, प्रशिक्षण विभाग, औद्योगिक शिक्षा विभाग अपने छात्रों को रोजगार दिलाने में सहायता करते हैं। विभागाध्यक्ष छात्रों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी रखते हैं। इसलिए अपने छात्रों को उपयुक्त रोजगार में स्थान दिलाते हैं।

(3) **मिश्रित स्तर** (Mixed Stage)—कुछ संस्थाओं में दोनों प्रकार की स्थापन सेवाओं का उपयोग किया जाता है स्थापन सेवा का प्रमुख भी होता है तथा विभागाध्यक्ष भी अपने छात्रों को उपयुक्त रोजगार में स्थान दिलाने में सहायता करते हैं।

स्थापन सेवा की सुविधाएँ एवं प्रक्रिया (Facilities and Procedure of Placement Service)

भारत सरकार के स्थापन के लिए केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर रोजगार कार्यालय खोले हैं जिनका कार्य छात्रों का पंजीकरण करना जिसमें उनकी शैक्षिक तथा तकनीकी योग्यता का विवरण तथा प्रमाण पत्रों की प्रतिलिपियों को लिया जाता है। छात्र की विशिष्ट योग्यताओं का विवरण भी रखा जाता है। विभिन्न संस्थाएँ तथा कार्यालय अपनी आवश्यकता हेतु कर्मचारियों की मांग इन रोजगार कार्यालय को भेजते हैं। उनकी माँग के अनुसार पंजीकृत छात्रों में से उपयुक्त अभ्यार्थियों को विवरण भेजते हैं। उन्हें साक्षात्कार हेतु बुलाकर चयन किया जाता है। प्रदेश में जिला स्तर पर कार्यालय होता है जिसका कार्य रोजगार दिलाना होता है।

स्नातक तथा परास्नातक छात्रों के लिए विश्वविद्यालय के साथ इस प्रकार का रोजगार कार्यालय होता है यहाँ भी स्नातक तथा परास्नातक छात्रों का पंजीकरण किया जाता है। पंजीकरण के साथ छात्र सम्बन्ध, शैक्षिक, तकनीकी तथा विशिष्टीकरण योग्यताओं के प्रमाण पत्रों की प्रतिलिपियाँ भी रखी जाती है। इसके अतिरिक्त रोजगार समाचार पत्र जिनमें रिक्त स्थानों का विज्ञापन दिया जाता है, छात्रों के लिए उपलब्ध कराया जाता है। रोजगार कार्यालय में रिक्त स्थानों का विवरण रखा जाता है। छात्र सीधे आवेदन करते हैं संस्थाओं की माँग के अनुसार अभ्यर्थियों की सूची उनके सम्पूर्ण विवरण के साथ भेजते हैं। संस्थाएँ अपनी आवश्यकतानुसार साक्षात्कार के लिए बुलाते हैं। योग्य तथा उपयुक्त अभ्यर्थियों का चयन कर लेते हैं।

रोजगार कार्यालय की विशेषताएँ—इन रोजगार कार्यालयों का मुख्य उद्देश्य स्थापन सेवा करना है और संस्थाओं को उनकी आवश्यकतानुसार उपयुक्त अभ्यर्थियों को देना है। इस प्रकार इस कार्य की माँग की पूर्ति करना है। इन कार्यालयों के माध्यम से रोजगार मिलता है तथा यह रोजगार के लिए छात्रों का उत्तम साधन है परन्तु इन कार्यालयों में दोष आ गये हैं।

अनौपचारिक रोजगार की प्रक्रिया (Informal Procedure)—उत्तम प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाओं तथा औद्योगिक संस्थाओं के अध्यक्षों से सीधा सम्पर्क भी संस्थायें अपने माँग के अनुसार करती हैं योग्य छात्रों को चुनना पड़ता है किस संस्था में रोजगार के लिए नियुक्त ली जाए। निजी संस्थायें योग्य व्यक्तियों को अच्छे वेतनमान तथा सुविधाएँ देकर आर्कषित करते है। इसलिए निजी क्षेत्र में विकास तथा उत्पादन बढ़ रहा है और राजकीय क्षेत्र की प्रक्रिया लम्बी हैं तथा पहुँच वाले व्यक्तियों का चयन हो पाता है अभिभावक तथा माता-पिता जिन रोजगार में लगे हैं अपने बच्चों को स्थान दिलाने में सफल हो पाते हैं।

नोट

स्थापन सेवा की औपचारिक प्रक्रिया (Formal Procedure)—स्थापन सेवा के लिए कुछ प्रपत्र तैयार किए जाते हैं। रोजगार कार्यालयों में इसी प्रकार के प्रपत्र अभ्यर्थियों से भराये जाते हैं।

संचयी आलेख (Cumulative Records)—का भी उपयोग किया जाता है रोजगार दिलाने, स्थानीयता जिस पर पत्र व्यवहार किया जाये रोजगार सम्बन्धी प्रश्न भी होते हैं।

प्रथम खण्ड—अभ्यर्थी का नाम, विद्यालय का नाम, कक्षा जो पास की या शैक्षिक योग्यतायें, स्थानीयता जिस पर पत्र व्यवहार किया जाए रोजगार सम्बन्धी प्रश्न भी होते हैं।

द्वितीय खण्ड—संचयी आलेख के रूप में सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं। किन-किन विद्यालयों में किन-किन कक्षाओं में पढ़ा तथा क्यों संस्थायें बदली इसका कारण भी देना होता है। इसी प्रकार उच्च शिक्षा में महाविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने का विवरण प्रमाण पत्रों की प्रतिलिपियों के साथ लिया जाता है। तकनीकी प्रशिक्षण में तकनीकी महाविद्यालयों का भी विवरण यदि हो तो लिया जाता है।

तृतीय खण्ड—छात्र से रोजगार सम्बन्धी सूचनाओं के लिए वरीयता भी ली जाती है। विभिन्न रोजगारों की सूची दी जाती हैं उनमें प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय वरीयता कराई जाती है इनके अतिरिक्त भी वरीयता दे सकता है—औद्योगिक, तकनीकी, लिपिक, शिक्षण तथा अन्य व्यवसाय आदि के साथ विशिष्ट पदों के लिए छात्र से विशिष्टकीय भी भरवाया जाता है। जैसे लिपिक, टाइपिस्ट, स्टेनोग्राफर को भी भरवाया जाता है।

छात्र सम्बन्धी योग्यताओं एवं क्षमताओं सम्बन्धी सूचनाओं का संग्रह किया जाता है। इसे गोपनीय रखा जाता है नियुक्तिकर्त्ता को गोपनीय रूप में दिखलाया जाता है।

चतुर्थ खण्ड—संस्थाओं की माँग के अनुसार नियुक्तिकर्त्ता को एक प्रपत्र पर अभ्यर्थी सम्बन्धी गोपनीय ढंग से सूचना भेजी जाती है अभ्यर्थी का नाम, पिता/पति का नाम, स्थायी पता, जन्मतिथि, शैक्षिक योग्यता, जाति, धर्म, विशेष योग्यता तथा प्रशिक्षण आदि के साथ व्यक्तिगत गुण, चरित्र, परिश्रम, आज्ञाकारिता, ईमानदारी सहयोग की भावना छात्र की रूचियों, विद्यालय के कार्यक्रमों में भागीदारी स्वास्थ्य तथा परामर्शदाता व शिक्षकों की आख्यायें आदि भेजता है।

पंचम खण्ड—जब संस्था में अभ्यर्थियों को चयन के लिए बुलावा भेजते हैं तब नियुक्तिकर्त्ता रोजगार व व्यवसाय के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए निम्नांकित सूचनायें सम्पर्क प्रपत्र पर पूरा करके भेजता है। संस्था तथा नियुक्ति कर्त्ता का नाम तथा पता, स्थायी या अस्थायी पद रिक्त, कार्यकाल की अवधि, प्रारम्भिक वेतनमान तथा अन्य सुविधाएँ निवास व वाहन आदि, शैक्षिक योग्यता, प्रशिक्षण, भविष्य में प्रगति के अवसर, रोजगार की प्रकृति, व्यवसाय में स्थापन की प्रक्रिया तथा अन्य विवरण व सुविधाएँ आदि।

स्थापन सेवा को प्रभावशाली बनाने हेतु सुझाव (Suggestions for Effective of Placement Service)

स्थापन सेवाओं को प्रभावशाली बनाने के लिए अधोलिखित सुझाव का अनुसरण करना चाहिए।

(1) विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के विभागों को अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले छात्रों की सूची उनके पतों के साथ रखना चाहिए।

(2) संचयी आलेख पत्र पूर्ण होना चाहिए तथा उसे वस्तुनिष्ठ रूप से तैयार किया जाये।

(3) रोजगार कार्यालयों में छात्रों के सम्बन्ध में पूर्ण आलेख श्रेणी वार रखना चाहिए।

(4) रोजगार कार्यालयों में रिक्त पदों के सभी विवरण विभिन्न स्रोतों तथा माध्यमों में रखना चाहिए।

(5) प्रत्येक संस्था को अपने रिक्त स्थान तथा पदों को विवरण रखना चाहिए। आवश्यक सूचनायें उपलब्ध रहनी चाहिए।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. व्यावसायिक निर्देशन सेवाएँ .... अधिक होती है।
2. व्यावसायिक सेवा का उद्देश्य .... दिलाना है।
3. अनुगामी सेवाओं की प्रक्रिया को निर्देशन की प्रभावशीलता का .... किया जाता है।
4. अनुगामी सेवा का सम्बन्ध व्यक्ति के .... से होता है।
5. व्यावसायिक निर्देशन की मुख्य .... सेवाएँ हैं।

5.2 अनुगामी सेवा (Follow-up Service)

निर्देशन तथा परामर्श निरन्तर चलने वाली सेवाएँ तथा प्रक्रियाएँ हैं। छात्र को रोजगार दिलाना, अध्ययन के लिए विषयों का चुनाव कराने, किसी प्रशिक्षण में प्रवेश दिलाने तक ही सीमित नहीं है, अपितु छात्र को रोजगार से कितनी सन्तुष्टि, मिल रही है, अथवा समायोजन हो पा रहा है तथा कार्य कुशलता कितनी है इन बातों का भी पता लगाना अनुगामी सेवा का कार्य होता है। स्थापन सेवाओं की प्रभावशीलता का आकलन अनुगामी सेवाओं द्वारा किया जाता है। निर्देशन कार्यक्रम का अन्तिम तथा महत्वपूर्ण सोपान अनुगामी है।

अनुगामी सेवा का अर्थ (Meaning of follow-up Service)

निर्देशन तथा शिक्षण का सन्दर्भ बिन्दु भावी योग्यताओं एवं कार्य कुशलता का विकास करना है। छात्र किन विषयों का अध्ययन करे जिससे भविष्य में उनमें दक्षता प्राप्त कर सकेगा। छात्र किस रोजगार में पाये जिससे उसका समायोजन, सन्तुष्टि तथा कार्य कुशलता से कर सकेगा। इस प्रकार अनुगामी सेवा द्वारा निर्देशन कार्यक्रम की सार्थकता तथा वैधता ज्ञात की जाती है।

जिस प्रकार एक डाक्टर एक रोगी का निदान करके, जो औषधि देता है दो या तीन दिन बाद उस दवाई को रोगी पर प्रभाव के विषय में पूछाता है। डाक्टर का कार्य रोगी का निदान करना तथा औषधि देने तक ही सीमित नहीं होता है, अपितु उसकी दवा से रोगी पर क्या प्रभाव हुआ? इस प्रकार्य को अनुभवी सेवा कहते हैं।

अनुगामी सेवा की परिभाषा (Definition of Follow-up Service)

अनुगामी सेवाओं की व्यापक परिभाषा निम्नांकित है–

"The follow up service is the evaluative and remedial step to observe the work ability of the guidance and counseling provide to an individual, on the placement in the job or an academic task, in terms of his satisfaction and performance in the job."

"अनुगामी सेवा, निर्देशन तथा परामर्श का मूल्यांकन तथा सुधारात्मक सोपान है जिसमें स्थापन की अवस्था में छात्र की कार्यकुशलता देखी जाती है कि वह रोजगार से सन्तुष्ट तथा प्रभावशाली ढंग से कार्य कर रहा है।"

प्रथम अवस्था	द्वितीय अवस्था	तृतीय अवस्था
निर्देशन तथा → परामर्श सेवाएँ	स्थापन सेवा →	अनुगामी सेवा
↓		↓
(1) अध्ययन विषयों का चयन	(1) विषयों का अध्ययन करना	(1) अध्ययन विषयों या रोजगार से सन्तुष्टि
→	→	

नोट

(2) रोजगार का चयन	(2) रोजगार में नियुक्ति होना।	(2) अध्ययन विषयों में दक्षता तथा कार्य कुशलता
↑		↑
सुधार के लिए दशा मिलती है।	पृष्ठ पोषण दिया जाता है	निदान भी होता है।

उपरोक्त परिभाषा में निर्देशन तथा परामर्श सेवाओं की तीन आवश्यकताओं के सम्बन्ध का उल्लेख किया है जिससे उनके पारस्परिक सम्बन्ध का बोध होता है तथा इनकी सतत् प्रक्रिया का भी स्पष्टीकरण हो जाता है।

उपरोक्त चार्ट से अनुगामी सेवा की विशेषताओं का बोध होता है–

(1) निर्देशन तथा परामर्श सेवाओं का मूल्यांकन किया जाता है।

(2) स्थापन से कार्यकुशलता का निरीक्षण होता है।

(3) रोजगार से सन्तुष्टि का पता लगाया जाता है।

क्या आप जानते हैं इस प्रकार *ई. के. स्टँग* ने अभिरूचि अनुसूची का निर्माण किया था। उसकी कई छात्रों को दिया गया, उन सभी के पते तथा विवरण रखे गये। *स्ट्राँग* ने 16 वर्ष बाद उन छात्रों के सम्बन्ध में जानकारी की वे किस व्यवसाय में कार्यरत है उसने पाया कि अधिकांश उसकी अनुसूची के मापन से जिन अभिरुचियों को ज्ञात किया था वे उन्हीं व्यवसाय में कार्यकर रहे थे। इस प्रकार *स्ट्राँग* ने अपनी अभिरूचि अनुसूची की अनुगामी सेवा द्वारा वैधता ज्ञात की थी। अनुगामी सेवा द्वारा शैक्षिक निर्देशन, व्यावसायिक निर्देशन, परामर्श प्रवणता तथा अभिरुचि अनुसूची, शोध निष्कर्षो की सार्थकता तथा वैधता ज्ञात की जाती है।

अनुगामी सेवा के उद्देश्य (Objectives of the Follow-up Service)

निर्देशन तथा परामर्श के अनुकूल व्यक्ति का स्थापन होने के उपरान्त वह अपने को कहाँ तक समायोजित करता है इसी दृष्टि से अनुगामी सेवा के मुख्य उद्देश्य अधोलिखित हैं–

(1) अनुगामी सेवा से निर्देशन तथा परामर्श सेवाओं की प्रभावशीलता का आकलन, स्थापन की अवस्था में करना।

(2) व्यक्ति अपने रोजगार या शैक्षिक कार्यो में कहाँ तक समायोजन कर सका है, इसका निरीक्षण करना।

(3) वह अपने रोजगार अथवा शैक्षिक कार्यो से कितना सन्तुष्ट है, इसका मूल्यांकन करना।

(4) व्यक्ति अपने रोजगार या शैक्षिक कार्यो में कितनी कुशलता तथा दक्षता से कार्य कर रहा है इसका पता लगाना।

(5) जिन छात्रों ने अपने शैक्षिक कार्यो को छोड़ा है या रोजगार को स्थापन के बाद छोड़ा है इसके कारणों को ज्ञात करना।

(6) कारणों के आधार पर निर्देशन, तथा परामर्श की प्रक्रिया तथा स्थापन की सेवाओं में सुधार तथा परिवर्तन करना।

(7) रोजगार तथा व्यवसाय में लागत तथा उत्पादकता की दृष्टि से कार्य कुशलता का आकलन करना।

(8) प्रशिक्षण संस्थाओं को स्थापन की अवस्था से आवश्यक कौशलों का ज्ञान होता है जिससे सुधार हेतु दिशा मिलती है।

नोट

(9) अनुगामी सेवा द्वारा शिक्षा संस्थाओं तथा प्रशिक्षण संस्थाओं को अपने पूर्व छात्रों से सम्पर्क का अवसर मिलता है वे अपने अनुभवों के आधार पर रचनात्मक सुझाव दे सकते हैं।

(10) अनुगामी सेवा द्वारा स्थापन करने वाली संस्थाओं की भी अपनी व्यवस्था, कार्य प्रणाली तथा कर्मचारियों की कठिनाइयों तथा समस्याओं में सुधार को दिशा मिलती है।

(11) निर्देशन व परामर्श सेवाओं तथा स्थापन सेवाओं को सुधार हेतु पृष्ठपोषण मिलता है।

अनुगामी सेवा के प्रकार (Types of Follow-up Service)

उद्देश्य तथा अनुगामी सेवा के अर्थो से ही इसके प्रकार का बोध होता है। अनुगामी सेवा प्रमुख रूप से तीन प्रकार की है–

(1) शैक्षिक निर्देशन के अनुसार विद्यालयों में विशिष्ट विषयों का अध्ययन करने वाले छात्रों का अध्ययन करना।

(2) व्यावसायिक निर्देशन के अनुरूप रोजगार में स्थापन होने वाले व्यक्तियों का अध्ययन करना।

(3) परामर्श के अनुरूप कार्यरत व्यक्ति के समायोजन का अध्ययन करना।

इसके अतिरिक्त अनुगामी सेवा के अन्तर्गत प्रशिक्षण संस्थाओं में अध्ययन करने वाले छात्रों का अनुगामी अध्ययन किया है। इन अध्ययनों से छात्रों तथा व्यक्तियों की कार्य कुशलता, समायोजन तथा सन्तुष्टि का पता लगाया जाता है। यदि अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं है तब कारण जानने के लिए स्थापन की परिस्थिति की उपयुक्तता का अध्ययन करते हैं। छात्रों की क्षमताओं तथा योग्यताओं का मेल मिलाना कार्यकुशलता तथा समायोजन से क्यों नहीं हो पा रहा है इसका कारण ज्ञात करके निर्देशन तथा परामर्श की प्रक्रिया में सुधार एवं परिवर्तन किया जाता है।

अनुगामी अध्ययनों की भी व्यवस्था की जाती है जैसे–

(1) विद्यालय तथा महाविद्यालय की शिक्षा–पूर्ण करने वाले छात्रों का अनुगामी अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययनों के अन्तर्गत कई व्यक्ति सामूहिक रूप में कार्य करते हैं एक व्यक्ति द्वारा सम्भव नहीं होता है। अनुगामी अध्ययन के लिए नियोजन करना होता है जिसमें नेतृत्व, तत्परता तथा प्रक्रिया व प्रविधियों को सुनिश्चित किया जाता है। एकल अध्ययन तथा अनुगामी अध्ययन में कुछ समानता प्रतीत होती है परन्तु मुख्य अन्तर उद्देश्य का है। एकल अध्ययन से निदान किया जाता है। जबकि अनुगामी अध्ययन में कार्यकुशलता तथा समायोजन का मूल्यांकन किया जाता है। अनुगामी अध्ययन से प्राप्त सूचनाओं का आलेख तैयार किया जाता है इसमें निरन्तरता होनी आवश्यक है जिससे विकास की प्रवृत्ति का बोध होता है।

(2) विद्यालय तथा महविद्यालयों में अध्ययन कर रहे छात्रों के लिए अनुगामी अध्ययन–एक कक्षा से दूसरी कक्षा में या एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय में जाने वाले छात्रों का निरन्तर अनुगामी अध्ययन करने पर विशेष बल देना चाहिए क्योंकि छात्रों को जो शैक्षिक, वैयक्तिक या व्यावसायिक निर्देशन दिया जाता है उसके बारे में यह पता लगाना आवश्यक है कि वह छात्रों को उपयोगी सिद्ध हुआ या नहीं अनुगामी सेवा प्रदान करते समय परामर्शदाता को निम्नलिखित पर अपनी दृष्टि रखनी चाहिए।

(1) आज विद्यालय में नवीनीकरण की क्रियायें नवीन विद्यालय में अधिक से अधिक समायोजित होने में कहाँ तक छात्रों को तैयार करती है?

(2) छात्र अपनी योग्यता स्तर के अनुसार किस सीमा तक वाचन करते हैं?

(3) अपनी वर्तमान परिस्थिति में छात्र अपने समायोजन में किस सीमा तक सफल हो सका?

(4) छात्र किस सीमा तक परामर्श सेवा का उपयोग करते हैं?

(5) छात्र के विद्यालय छोड़ने से सम्बन्धित क्या कारण हैं?

(6) सामूहिक विधियाँ किस सीमा तक अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल हो रही हैं।

(7) परामर्शदाता द्वारा दिए गए सुझावों पर कहाँ तक क्रियान्वयन किया है?

नोट

इन छात्रों के अनुगामी अध्ययन के लिए भी वही विधि उपयोग में लानी चाहिए जिसका वर्णन पूर्व छात्रों की अनुगामी सेवा में किया गया है। यह आवश्यक है कि समिति के समान सदस्यों में उत्साह हो और वह सहयोग की भावना से ओत-प्रोत हों।

(3) प्रशिक्षण और परामर्श सेवाओं का अनुगामी अध्ययन–सामान्य स्थापन के बाद अनुगामी सेवा की आवश्यकता होती है। इसका स्वरूप मूल्यांकन, आकलन एवं निदानात्मक होता है। मुख्य उद्देश्य व्यवसाय में समायोजन, कार्य कुशलता एवं सन्तुष्टि का आकलन करना होता है। जिससे प्रशिक्षण और परामर्श सेवाओं की प्रभावशीलता का बोध होता है। अनुगामी अध्ययन निम्नलिखित कई प्रकार से की जा सकती है।

(1) नवनियुक्त व्यक्ति तथा उसके शैक्षिक अथवा व्यवसायिक संस्थान के अधिकारियों से साक्षात्कार के माध्यम से समायोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में व्यापक जानकारी प्राप्त की जाती है। उसके अतिरिक्त दूरभाषा के माध्यम से भी बारे में कतिपय सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं।

(2) प्रतिक्रिया तथा अनुमति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने हेतु मतावली व प्रश्नावली का प्रयोग किया जाता है, जिससे नियोक्ता की नव-नियुक्त व्यक्ति के बारे में अनुमति का गहन एवं ठोस रूप में मूल्यांकन किया जा सके।

(3) व्यक्ति की नियुक्ति जिस संस्था में की गई है, उस संस्था में जाकर एक समूह अथवा विशिष्ट व्यक्ति के द्वारा किए गये अवलोकन के आधार पर नव नियुक्त व्यक्ति के बारे में वांछनीय आधार सामग्री का संकलन किया जाता है, जिससे उस व्यक्ति के समायोजन, योगदान तथा लगन इत्यादि के सम्बन्ध में विश्वसनीय रूप से कुछ कहा जा सके।

(4) अभिवृत्ति मापनी के द्वारा नवनियुक्त कर्मचारी की अपने व्यवसाय तथा प्रशिक्षण के सम्बन्ध में विकसित अभिवृत्ति को ज्ञात किया जाता है।

(5) अनुगामी सेवा को समुचित रूप से संगठित करने हेतु यह आवश्यक है कि नियोक्ताओं एवं व्यक्ति से प्राप्त सूचनाओं, आधार-सामग्रियों एवं अन्य तथ्यों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन एक विशेष योजना के अनुसार किया जाये। इस प्रक्रिया को ठोस रूप प्रदान करने के लिए एक 'अनुगामी सेवा केन्द्र' की स्थापना करनी पड़ती है। इस केन्द्र का यह भी उत्तरदायित्व होता है कि व्यक्ति की समायोजन की क्षमताएँ में वृद्धि करने के लिए उपयुक्त प्रकार के शोधों का पूर्ण करें।

> *टास्क* स्थापन सेवाओं का मापन किस सेवा द्वारा किया जाता है?

अनुगामी अध्ययन हेतु प्रविधियाँ (Techniques of Follow-up Studies)

अनुगामी अध्ययन हेतु प्रविधियों का उल्लेख करना सम्भव नहीं क्योंकि प्रविधियाँ अध्ययन की प्रकृति पर निर्भर करतीहै तथा अध्ययन के उद्देश्यों द्वारा ही निर्धारण किया जा सकता है। प्रविधियों का उल्लेख अध्ययन के अनुसार किया गया है–

(1) शैक्षिक निर्देशन के उपरान्त अध्ययन कार्यो के लिए आवश्यक प्रविधियाँ है–शैक्षिक परिलब्धि परीक्षण, निरीक्षण, साक्षात्कार शिक्षक की रेटिंग तथा परीक्षा परिणाम, छात्र की विद्यालय के शैक्षिक कार्यो में भागीदारी तथा साक्षात्कार आदि,

(2) व्यवसायिक निर्देशन अथवा स्थापन की परिस्थिति के अध्ययन हेतु आवश्यक प्रविधियों–कार्य कुशलता के रेटिंग, उत्पादकता का मानदण्ड, समायोजन अनुसूची, रोजगार सन्तुष्टि अनुसूची, साक्षात्कार, अभिवृत्ति अनुसूची, निरीक्षण, प्रश्नावली आदि,

नोट

(3) प्रशिक्षण में तथा उसके उपरान्त अध्ययन हेतु प्रविधियों-कार्य कुशलता हेतु रेटिंग, समायोजन अनुसूची, सन्तुष्टि अनुसूची, साक्षात्कार, प्रश्नावली तथा चैकलिस्ट, निरीक्षण तथा सफलता,

(4) अपेक्षित परिणाम प्राप्त न होने पर निदानात्मक परीक्षण भी दिए जाते हैं जिसमें बुद्धि परीक्षण, प्रवणता परीक्षण तथा शैक्षिक परीक्षणों का पुन: प्रयोग किया जाता है।

विद्यालयों में अनुगामी अध्ययन हेतु प्रक्रिया (Procedures of Follow-up Studies in Schools)

डावनिंग ने विद्यालयों में अनुगामी अध्ययन के कुछ कार्यक्रमों के लिए सुझाव दिए है उनमें से प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार है–

(1) पूर्व छात्रों का सर्वेक्षण इसके लिए पूर्व छात्रों की सभा का आयोजन किया जाए और सामूहिक सम्मेलन की व्यवस्था करके अधिकांश रचनाएँ प्राप्त हो सकती है।

(2) अध्ययनरत छात्रों का सर्वोक्षण एवं साक्षात्कार इसके अतिरिक्त संचयी आलेख के अवलोकन से भी छात्रों की सफलता का बोध होता है। निदानात्मक कार्यक्रम भी व्यवस्था की जा सकती है।

(3) अध्यापकों की सभा की व्यवस्था द्वारा कार्य प्रणाली तथा छात्रों की सफलताओं तथा कठिनाइयों के सम्बन्ध में सूचनाएँ एकत्रित की जा सकी है। कार्य-प्रणाली में सुधार किया जा सकता है। छात्र के लिए अध्ययन का वातावरण अनुकूल होना आवश्यक होता है। विद्यालय की भी समस्याओं को भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

(4) अभिभावकों की सभा की व्यवस्था द्वारा छात्रों में अध्ययन में रुचि तथा अध्ययन प्रवृत्ति की भी जानकारी प्राप्त की जाती है। छात्र के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी अभिभावकों से प्राप्त होती है। उनके अध्ययन सम्बन्धी कठिनाई का भी ज्ञान होता है। जिससे व्यवस्था एवं कार्य प्रणाली में सुधार किया जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विशेष रूप से मूल्यांकन तथा पृष्ठ पोषण या पुनर्बलन करने हेतु अनुगामी सेवा का उपयोग किया जाता है। अनुगामी सेवा, समायोजन के प्रति संवेदना एवं समीक्षा की आवश्यकता के बारे में जागरूकता उत्पन्न करती है, परिणामस्वरूप शैक्षिक, व्यवसायिक एवं वैयक्तिक निर्देशनों के कार्यक्रमों के उद्देश्यों की प्रभावशीलता के बारे में समय पर जानकारी प्राप्त की जाती है।

अनुगामी सेवा की विशेषताएँ तथा सीमाएँ (Advantages and Limitations of Follow-up Service)

स्थापन सेवा के मूल्यांकन में अनुगामी सेवा महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। शैक्षिक, व्यावसायिक या स्थापन में छात्रों को सहायता प्रदान करना विद्यालय का ही उत्तरदायित्व है। छात्र अपने अनुभवों के आधार पर अवसरों का जो बुद्धिमत्तापूर्ण चयन करते हैं वह कहाँ तक प्रभावशाली है इसका पता लगाना भी आवश्यक होता है। यदि छात्र ने अपने निर्णय में त्रुटि की है तो शीघ्र ही उस त्रुटि का पता लगाने तथा शुद्ध करने के लिए शीघ्र कदम उठाना परामर्शदाता का उत्तरदायित्व है। अनुगामी सेवा चुनाव की सार्थकता पता लगाने में सहायक होती है और इस प्रकार छात्रों के द्वारा किए गये गलत चुनाव को सुधारने के प्रयास किए जा सकते हैं और इस सेवा के द्वारा अर्जित अनुभव एवं सूझ के आधार पर परामर्शदाता ऐसी त्रुटियाँ न करने में छात्रों की सहायता कर सकता है।

अनुगामी सेवा को निर्देशन कार्यक्रम में जो महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए वह नहीं मिल पा रहा है। यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमरीका में भी अनुगामी सेवा का गठन बहुत कम विद्यालय में किया गया है जो कि निर्देशन कार्यक्रम का जन्म-स्थान माना जाता है और यहाँ निर्देशन कार्य बड़े व्यापक स्तर पर चलता है। *जार्ज ई. मायर्स* ने भी अपने एक लेख में अनुगामी क्रिया को निर्देशित परिवार का सौतेला बेटा कहा है। (Follow-up is the step child of the guidance family)। भारत में तो शायद ही किसी विद्यालय में इस क्रिया को प्रारम्भ करने के प्रयत्न किए गए हों। जबकि भारत जैसे देश के लिए इस सेवा का अधिक महत्व है क्योंकि यहाँ शिक्षा के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रयोग चल रहे हैं। कभी शिक्षा संगठन के रूप में परिवर्तन होता है तो कभी पाठ्यक्रम का रूप बदल जाता है। अनेक नवीन पाठ्य-विषय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जा रहे हैं। दूसरी ओर व्यवसायों के प्रकार एवं रूपों में औद्योगिक एवं आर्थिक

नोट

विकास के परिणामस्वरूप विविधता आती जा रही है। हमारे देश में इस बात की ओर तो ध्यान नहीं देता है कि विद्यालय से शिक्षा पूर्ण करने के बाद छात्र कहाँ जाता है, किस व्यवसाय में कार्य करता है, नवीन विद्यालय या व्यवसाय में उसका समायोजन कैसा है? यदि अनुगामी अध्ययन सेवा को यहाँ प्रारम्भ किया जाए तो यह तो पता चले कि शिक्षा में नवीन प्रयोग कहाँ तक सफल रहे और उनमें कहाँ परिवर्तन की आवश्यकता है।

उपरोक्त विवेचन से विदित होता है अनुगामी सेवा निर्देशित तथा परामर्श का महत्वपूर्ण पक्ष है इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. निर्देशन तथा परामर्श प्रक्रिया का अन्तिम सोपान है जिससे इनकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है।
2. स्थापन सेवा की व्यवस्था, कार्य-प्रणाली तथा उत्पादकता का आकलन किया जाता है।
3. व्यावसायिक निर्देशन के आकलन हेतु स्थानापन्न व्यक्तियों की कार्य कुशलता, सफलता, समायोजन तथा रोजगार से सन्तुष्टि का मूल्यांकन किया जाता है।
4. अनुगामी क्रियाओं द्वारा निदान किया जाता है जिसके आधार पर निर्देशन, परामर्श तथा स्थापन की कार्य-प्रणाली में सुधार किया जाता है।
5. अनुगामी सेवाओं का ईकाई-अध्ययन में भी विशेष महत्व है। इकाई अध्ययन में अतीत के विवरण के आधार पर सुधार हेतु सुझाव दिए जाते हैं जिनकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने हेतु अनुगामी क्रिया का अनुसरण किया जाता है।
6. प्रवणता परीक्षणों की वैधता तथा पूर्वानुमानित वैधता के लिए अनुगामी प्रक्रिया ही प्रयुक्त की जाती है। अभिरुचि अनुसूचियों की वैधता भी इसी से ज्ञात की जाती है।
7. प्रयोगात्मक शोध निष्कर्षों की सार्थकता एवं उपादेयता का आकलन अनुगामी प्रक्रिया द्वारा ही किया जाता है।
8. अनुगामी सेवा तथा प्रक्रिया द्वारा निर्देशन, परामर्श, मापन तथा शोध कार्यों के नियोजन में पृष्ठपोषण मिलता है।

5.3 सारांश (Summary)

- व्यावसायिक निर्देशन से छात्रों की योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुरूप ही स्थापन के लिए सुझाव तथा निर्देशन दिया जाता है। परन्तु शिक्षा संस्थाओं का यह उत्तरदायित्व नहीं होता है कि शिक्षा के छात्र को कहां और किस व्यवसाय में स्थान दिया जाये। छात्र स्वयं स्थापन के लिए प्रयास करता है। परन्तु शैक्षिक तथा व्यवसाय में स्थान दिलाया जाये।
- स्थापन सेवा का अर्थ होता है कि छात्र उसकी योग्यताओं, क्षमताओं तथा गुणों के अनुसार उपयुक्त स्थान दिलाया जाये जिससे वह सुगमता से समायोजन करके उसमें सफल हो सके।
- स्थापन सेवा की परिभाषा तथा विशेषताओं से प्रगट होता है कि शैक्षिक निर्देशन तथा व्यावसायिक निर्देशन सेवाओं और स्थापन सेवा के विशेषणों तथा कार्यकर्ताओं में सहयोग तथा समन्वय होना आवश्यक है क्योंकि यह सेवाएँ एक दूसरे की पूरक है। अनुगामी सेवा से इनकी प्रभावशीलता तथा सार्थकता का आकलन किया जाता है।
- स्थापन सेवा से छात्र को यह बोध हो जाता है कि उसकी योग्यताएँ एवं क्षमताएँ किस कार्य के लिए उपयुक्त हैं जिनमें वह अधिक सफल हो सकेगा और पर्याप्त समायोजन भी कर सकेगा।
- छात्र को विद्यालय में उन्हीं विषयों का अध्ययन करना चाहिए तथा तैयारी करनी चाहिए जो उसके भावी कार्यक्रम में सहायक हों।
- स्थापन सेवा से व्यावसायिक तथा शैक्षिक कार्यप्रणाली सम्बन्धी समायोजन की समस्याओं को कम किया जा सकता है।

नोट

- भिन्न-भिन्न संस्थाओं में कार्यकर्ताओं की माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन रखने के दृष्टि से स्थापन सेवा का विशेष महत्त्व है।
- छात्र को उसी योग्यताओं, अभिरुचियों तथा क्षमताओं के अनुरूप उपयुक्त व्यवसाय या रोजगार में उचित स्थान दिलाने में सहायता देने की क्रियाओं को व्यावसायिक स्थापन सेवा कहते हैं।
- निर्देशन तथा परामर्श सेवाओं का संगठन भारत में दो स्तरों पर किया जाता है—केन्द्रीय/राष्ट्रीय स्तर पर तथा प्रदेश स्तर।
- भारत में रोजगार तथा व्यवसाय का नियोजन तथा नियन्त्रण दो स्तरों पर किया जाता है। कुछ संस्थाएँ तथा रोजगार का संचालन केन्द्र द्वारा किया जाता है।
- स्थापन सेवा संगठन को एक पृथक विभाग प्रत्येक विद्यालय में होता है। इसके मुख्य छात्रों के लिए विभिन्न संस्थाओं के रिक्त स्थानों की जानकारी रखना, छात्रों की योग्यताओं एवं क्षमताओं की सूचना रखना इसके लिए संचयी आलेख का भी उपयोग करते हैं। स्थापन सेवा के लिए परामर्शदाता की भी सहायता ली जाती है। इनके आधार पर छात्रों को उपयुक्त स्थाल दिलाया जाता है।
- स्थापन सेवा उत्तरदायित्व केवल व्यक्ति का नहीं होता जैसा केन्द्रीय स्तर का उल्लेख किया है। छात्र को स्थान दिलाने में विद्यालय, निर्देशन, परामर्शदाता, स्थापन सेवा, प्रशिक्षण विभाग, औद्योगिक शिक्षा विभाग अपने छात्रों को रोजगार दिलाने में सहायता करते हैं
- कुछ संस्थाओं में दोनों प्रकार की स्थापन सेवाओं का उपयोग किया जाता है
- निर्देशन तथा परामर्श निरन्तर चलने वाली सेवाएँ तथा प्रक्रियाएँ हैं। छात्र को रोजगार दिलाना, अध्ययन के लिए विषयों का चुनाव कराने, किसी प्रशिक्षण में प्रवेश दिलाने तक ही सीमित नहीं है अपितु छात्र को रोजगार से कितनी सन्तुष्टि मिल रही है, या समायोजन हो पा रहा है तथा कार्य कुशलता कितनी है इन बातों का भी पता लगाना अनुगामी सेवा का कार्य होता है।
- निर्देशन तथा शिक्षण का सन्दर्भ बिन्दू भावी योग्यताओं एवं कार्य कुशलता का विकास करना है। छात्र किन विषयों का अध्ययन करे जिससे भविष्य में उनमें दक्षता प्राप्त कर सकेगा। छात्र किस रोजगार में पाये जिससे उसका समायोजन, सन्तुष्टि तथा कार्य कुशलता से कर सकेगा। इस प्रकार अनुगामी सेवा द्वारा निर्देशन कार्यक्रम की सार्थकता तथा वैधता ज्ञात की जाती है।
- स्थापन सेवा के मूल्यांकन में अनुगामी सेवा महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। शैक्षिक, व्यावसायिक या स्थापन में छात्रों को सहायता प्रदान करना विद्यालय का ही उत्तरदायित्व है। छात्र अपने अनुभवों के आधार पर अवसरों का जो बुद्धिमत्तापूर्ण चयन करते हैं वह कहाँ तक प्रभावशाली है इसका पता लगाना भी आवश्यक होता है। यदि छात्र ने अपने निर्णय में त्रुटि की है तो शीघ्र ही उस त्रुटि का पता लगाने तथा शुद्ध करने के लिए शीघ्र कदम उठाना परामर्शदाता का उत्तरदायित्व है।

5.4 शब्दकोश (Keywords)

- **सहगामी**—साथ चलने वाला।
- **विकेन्द्रीय**—अलग-अलग स्तर पर विभाजन।

5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. स्थापन सेवा की परिभाषा दीजिए तथा इसकी आवश्यकता एवं महत्व का विवेचन कीजिए।
2. स्थापन सेवा के प्रकार तथा संगठन के प्रारूप का वर्णन कीजिए।

नोट

3. अनुगामी सेवा का अर्थ एवं आवश्यकता बताइये। इसके मुख्य उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
4. अनुगामी सेवा की आवश्यकता एवं प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self-Assessment)

1. व्यावहारिक 2. रोजगार 3. आकलन 4. भविष्य
5. तीन।

5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।
3. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–6: शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन (Educational and Vocational Guidance)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
6.1 शिक्षा निर्देशन का अर्थ, विशेषताएँ, उद्देश्य एवं कार्य (Meaning, Characteristics, Aims and Functions of Educational Guidance)
6.2 व्यावसायिक निर्देशन की अवधारणा, उद्देश्य, सिद्धांत एवं प्रक्रिया (Concept, Aims, Principles and Process of Vocational Guidance)
6.3 सारांश (Summary)
6.4 शब्दकोश (Keywords)
6.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
6.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शिक्षा एवं व्यावसायिक निर्देशन के अर्थ, अवधारणा, उद्देश्य एवं विशेषताओं का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा की इस महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया में छात्रों को लाभान्वित कराने की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि शैक्षिक परिस्थितियों से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान हेतु विद्यार्थियों को सक्षम बनाया जाए। शैक्षिक परिस्थितियों के समंजन की योग्यता के अभाव में, शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति कर पाना कठिन है। समंजन की यह योग्यता केवल उसी दशा में उत्पन्न हो सकती है, जब विद्यार्थियों को अपने स्तर के अनुरूप आगे बढ़ने का अवसर निरन्तर प्राप्त होता रहे। पाठ्यक्रम के उपयुक्त चयन, उपयुक्त अधिगम विधियों के चयन, विद्यालयी पर्यावरण से समायोजन, नवीन शिक्षण तकनीकी के ज्ञान, आत्म, अनुदेशन की प्रवृत्ति के विकास आदि के क्षेत्र में वांछित एवं समयानुसार सहायता प्रदान करके शैक्षिक उपलब्धि की दिशा में निरन्तर अग्रसरण कराया जा सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन का उपयोग अत्यन्त सहायक है।

6.1 शिक्षा निर्देशन का अर्थ (Meaning of Educational Guidance)

विद्यार्थियों के स्वाभाविक एवं समुचित विकास हेतु शिक्षा का विशेष महत्व है, परन्तु शिक्षा के द्वारा वांछित विकास की दिशा में अग्रसरण केवल तभी संभव है जब प्रत्येक बालक को अपनी वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनुरूप विकास का अवसर प्राप्त हो। साथ ही विकास की प्रक्रिया, सतत् रूप से संचालित होती रहे, इसके लिए विभिन्न प्रकार की शैक्षिक समस्याओं का समाधान भी आवश्यक है। निर्देशन का यही कार्य है। शिक्षा के सहगामी अंश के रूप में विद्यार्थी के समक्ष उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान हेतु उसे सक्षम बनाने तथा उसकी रूचि स्तर योग्यता आदि के अनुरूप शिक्षण-अधिगम की परिस्थितियों का चयन करने में निर्देशन सहायक है।

नोट

शिक्षा की समस्त प्रक्रिया में अधिगम ही वह आधार होता है जिसकी दिशा में समस्त प्रयास किए जाते हैं तथा जिसके द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि किए गए प्रयास किस सीमा तक सफल रहे हैं। अधिगम के वर्गीकृत उद्देश्यों के आधार पर अधिगम से सम्बन्धित यह जानकारी प्राप्त की जाती है यही कारण है कि अधिगम से सम्बन्धित समस्याओं को, शैक्षिक निर्देशन के अन्तर्गत यथेष्ट महत्व प्रदान किया जाता है। *ब्रेवर* के अनुसार "शिक्षा निर्देशन चेतना अनुभूति प्रयत्न है, जिसके द्वारा व्यक्ति के बौद्धिक विकास में सहायता प्रदान की जाती है.......कोई भी चीज जो शिक्षण या सीखने के साथ की जाती है, शैक्षिक निर्देशन के अन्तर्गत आती है।"

''Educational Guidance may be defined as a conscious efforts to assist in the intelectual growth of an individual.........Anything that has to do with instruction or with learning may come under the term Education Guidance.''

–Brewer

जौन्स ने शिक्षा निर्देशन को चयन एवं समायोजन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्वीकार करते हुए लिखा है कि–

"शिक्षा निर्देशन वह व्यक्तिगत सहायता है जो छात्रों को इसलिए प्रदान की जाती है कि वे अपने लिए उपयुक्त विद्यालय पाठ्यक्रम, पाठ्य-विषय तथा पाठ्यातिरिक्त क्रियाओं का चयन कर सके तथा उनमें समायोजित कर सकें।

''Educational Guidance is concerned with assistance given to pupils in their choices and adjustments with relation to schools, curriculums, courses and school life.''

आर्थर जे. जोन्स के समरूप ही होपिकन्स ने भी, अधिगम की परिस्थितियों को सफल बनाने हेतु निर्देशन को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार-"सैद्धान्तिक रूप से, निर्देशन प्रभावशाली ढंग से सीखने का एक अंग है: अत: सीखने की परिस्थितियों के बुद्धिमत्तापूर्ण प्रबन्धन में निर्देशन करना चाहिए।"

''Guidance enables each individual to understand his abilities as a desirable citizen of a democratic social, The curriculum, the methods of instruction.........and home and community relations.''

–Arthur E. Traxlcr

स्ट्रेंग ने शिक्षा निर्देशन से सम्बन्धित कई मूल विशेषताओं जैसे-छात्रों की योग्यताओं एवं रुचियों का ज्ञान, शैक्षिक अवसरों के विस्तृत क्षेत्र का ज्ञान, कार्यक्रम के चयन व उसके लिए परामर्श आदि पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि–

''Educational Guidance is intended to aid the individual in choosing an appropriate programme and in making progress in it.''

–Ruth Strang

जी. ई. मायर्स के अनुसार-"शैक्षिक निर्देशन एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक ओर व्यक्ति तथा उसके विशिष्ट गुण तथा दूसरी ओर अवसरों के विभिन्न समूह व माँगों के मध्य व्यक्ति के विकास या शिक्षा के लिए अनुकूल परिस्थिति में तैयार किया जाता है।"

''Educational Guidance is a process concerned with bringing about between an individual pupil with his distinctive characteristics on the one hand, and differing groups of opportunities and requirements on the other, a favourable setting for the individual development or education.''

– G.E. Myers

शिक्षा निर्देशन को एक विधि के रूप में स्वीकार करते हुए हैमरिन तथा इरिक्सन ने शैक्षिक निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा है–

"निर्देशन व्यक्तिगत छात्रों की योग्यताओं, रूचियों, पृष्ठभूमि तथा आवश्यकताओं का पता लगाने की विधि प्रदान करता है।"

''It offers methods diagnosing the abilities, background and needs of individual students.''

– Hamrin and Erickson

नोट

नोट्स "निर्देशन प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की योग्यताएँ, रूचियाँ और व्यक्ति सम्बन्धी गुणों को समझने, उनका सम्भावित विकास करने उनको जीवन के उद्देश्यों से सम्बन्धित करने तथा अन्त में प्रजातान्त्रिक सामाजिक व्यवस्था के योग्य नागरिक की भाँति पूर्ण तथा परिपक्व स्वःनिर्देशन की स्थिति तक पहुँचने के योग्य बनाता है। अतः निर्देशन विद्यालय के प्रत्येक अंग यथा पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, निरीक्षण, अनुशासन, उपस्थिति की समस्याएँ, पाठ्यक्रम के अतिरिक्त क्रियाएँ, स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम, गृह तथा समाज के सम्बन्धों से सम्बन्धित हैं।"

शिक्षा निर्देशन की विशेषताएँ (Characteristics of Educational Guidance)

शिक्षा निर्देशन की इन परिभाषाओं में इसकी विशेषताओं, कार्यो एवं उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है। शिक्षा निर्देशन की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

(1) शिक्षा निर्देशन विवेकपूर्ण प्रयास है जिससे छात्रों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायता की जाती है।

(2) वह सभी अनुदेशन, शिक्षण तथा अधिगम की क्रियायें जो छात्र के विकास में सहायक होती है शिक्षा निर्देशन का अंग होती है।

(3) शिक्षा निर्देशन का सम्बन्ध छात्रों के विद्यालय में समायोजन, अध्ययन विषयों के चयन करने तथा विद्यालय जीवन के कार्यक्रमों में सहायक होता है।

(4) शिक्षा निर्देशन के अन्तर्गत छात्रों की योग्यताओं एवं शक्तियों के अनुरूप अधिगम परिस्थितियों की व्यवस्था की जाती है।

(5) शिक्षा निर्देशन का सम्बन्ध विद्यालय की समस्त क्रियाओं पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों, अनुदेशन सामग्री, परीक्षा प्रणाली, विद्यालयों का वातावरण आदि सभी, कार्यक्रमों की समस्याओं से होता है।

(6) शिक्षा निर्देशन में छात्रों की योग्यताओं, क्षमताओं तथा रूचियों के अनुरूप शिक्षण अधिगम परिस्थितियों की व्यवस्था करना तथा सम्बन्धित समस्याओं का समाधान देना है।

(7) शिक्षा निर्देशन में छात्रों को उनकी योग्यताओं की जानकारी दी जाती है। उनकी कठिनाइयों तथा समस्याओं का निदान करके उनके अनुरूप सुधारात्मक अनुदेशन की व्यवस्था की जाती है।

(8) शिक्षा निर्देशन का उद्देश्य छात्र को शैक्षिक कार्यक्रम के चयन में सहायता प्रदान करना जिससे छात्र भावी जीवन में विकास कर सके।

इन परिभाषाओं के विश्लेशण से स्पष्ट होता है कि शिक्षा निर्देशन भी छात्र के विकास में सहायक होती है तथा शिक्षा प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। शिक्षा सम्बन्धी सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान में सहायक होती है।

ब्रूअर के अनुसार–शिक्षा निर्देशन का क्षेत्र तथा क्रियाएँ इस प्रकार हैं:–

1. अध्ययन किस प्रकार किया जाय?
2. अधिगम सम्बन्धी सामान्य उपकरणों का प्रयोग कैसे करें?
3. विद्यालय में नियमित रूप से उपस्थित रहना।
4. दिए गए गृह कार्यो तथा अन्य कार्यो को पूरा करना।
5. परीक्षा में सम्मिलित होना।
6. पुस्तकालय, वाचनालय, प्रयोगशाला का समुचित उपयोग करना।
7. साक्षात्कार, बोलना, वाद विवाद प्रतियोगिता में भाग लेना।

8. छात्रों की कठिनाइयों का निदान करके, सुधारात्मक शिक्षण तथा अनुदेशन की व्यवस्था करना।
9. छात्रों को विषयों के चयन में सहायता प्रदान करना।

शिक्षा निर्देशन की आवश्यकता (Need of Educational Guidance)

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति तथा मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के फलस्वरुप, शैक्षिक जगत में अनेक नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षण अधिगम की व्यवस्था तथा अनुदेशन की प्रक्रिया में इन परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं है कि वर्तमान विद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के समक्ष आज अपेक्षाकृत अधिक समस्याएँ उपस्थित होती हैं। इन समयाओं के समाधान के लिए शैक्षिक निर्देशन का उपयोग आवश्यक है संक्षेप में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता अग्रलिखित दृष्टियों से है—

(1) पाठ्यक्रम से सम्बन्धित विषयों का चयन,
(2) अग्रिम शिक्षा के सम्बन्ध में जानकारी,
(3) नवीन विद्यालयों में समायोजन की दृष्टि से,
(4) विभिन्न अवसरों की जानकारी प्रदान करना,
(5) अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या का समाधान, तथा
(6) अधिगम की दिशा में तल्लीन बनाए रखने हेतु।

(1) पाठ्यक्रम से सम्बन्धित विषयों का चयन (Appropriate Selection of the Subjects)—प्राय: यह देखने में आता है कि कुछ विद्यार्थी विज्ञान वर्ग के विषय लेकर अनुत्तीर्ण हो जाते हैं परन्तु कला-वर्ग के विषय लेकर उच्च कोटि के अंक प्राप्त कर लेते हैं। उच्च महत्वाकांक्षा व कर्म बुद्धि लब्धि का होना इस प्रकार के असंगत निर्णयों का एक प्रमुख कारण होता है। इसी प्रकार, महत्वाकांक्षा का निम्न स्तरीय होना तथा बुद्धि लब्धि का अधिक होना भी, शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करता है। अधिकांश विद्यार्थियों को यह ज्ञात नहीं होता है कि किस व्यवसाय में जाने के लिए किन विषयों का चयन किया जाना चाहिए। ऐसे असंख्य उदाहरण सामने आ सकते हैं जिनमें एक विद्यार्थी की अभिरूचि पायलट बनने में प्रदर्शित होती है परन्तु वह अध्ययन जीव विज्ञान वर्ग के विषयों का कर रहा होता है। इस प्रकार की परिस्थितयों में निर्देशन का विशेष महत्व होता है। प्रारम्भ में ही असंगत विषयों का चयन, विद्यार्थी के समस्त भविष्य को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करता है।

(2) अग्रिम शिक्षा के सम्बन्ध में जानकारी (To Know about the Further Education)—अग्रिम शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता होती है। हाई स्कूल स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त प्रत्येक अभिभावक एवं विद्यार्थी के समक्ष यह समस्या उत्पन्न होती है कि वह भावी शिक्षा के सम्बन्ध में किन आधारों पर निर्णय लें। उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वे अपनी शैक्षिक उपलब्धि को ही आगे बढ़ाएँ, किसी व्यवसाय के लिए, प्रतियोगितात्मक परीक्षा की तैयारी करें अथवा किसी औद्योगिक संस्थान में प्रशिक्षण प्राप्त करें। इस सन्दर्भ में यथोचित निर्णय के अभाव में उनकी मानसिक स्थिति असन्तुलित रहती है। उनमें से कुछ इण्टर अथवा उच्च माध्यमिक शिक्षा प्रारम्भ कर देते हैं, कुछ विद्यार्थी अनिश्चय की स्थिति में आगे की परीक्षाएँ भी देते रहते हैं तथा प्रतियोगिता परीक्षाओं की अपूर्ण तैयारी भी करते रहते हैं कुछ यूँ ही अपना समय व्यर्थ करते हैं। उपयुक्त समय पर पर्याप्त निर्देशन प्राप्त न हो पाने के कारण ही ऐसा होता है। अत: यह आवश्यक है कि हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त भी प्रत्येक विद्यार्थी को समुचित निर्देशन उपलब्ध कराया जाए।

(3) नवीन विद्यालयों में समायोजन की दृष्टि से (From the Standpoint of Adjustment in the New Schools)—नवीन विद्यालयों में प्रवेश करने के उपरान्त, विद्यार्थियों के समक्ष अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। विशेषकर पब्लिक स्कूलों अथवा अंग्रेजी माध्यम के उच्च स्तरीय विद्यालयों से हिन्दी माध्यम के विद्यालय में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के समक्ष यह समस्या उत्पन्न होती है। ग्रामीण क्षेत्र से नगरों में स्थापित विद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के समक्ष भी इस प्रकार की अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। एक शैक्षिक वातावरण से दूसरे शैक्षिक

नोट

वातावरण में प्रवेश लेने वाले छात्र-छात्राओं को नवीन शिक्षा से सम्बन्धित नियमों का ज्ञान नहीं होता है, वहाँ सहपाठियों का व्यवहार उनके लिए नया होता है तथा उन विद्यालयों, आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं से तत्काल समायोजन कर पाना भी उनके लिए कठिन होता है। इस प्रकार की स्थितियों से समायोजन करते हुए अपने उपलब्धि स्तर को निरन्तर बनाए रखने के लिए शैक्षिक निर्देशन की सहायता प्राप्त की जा सकती है।

(4) विभिन्न अवसरों की जानकारी प्रदान करना (To Give Knowledge about Opportunities)—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से भारत में विभिन्न प्रकार के व्यवसायों का विकास हुआ है। इन समस्त व्यवसायों का सम्बन्ध कुछ विशिष्ट प्रकार के पाठ्यक्रमों से होता है। इन व्यवसायों की समुचित जानकारी के अभाव में विद्यार्थियों को यह ज्ञात नहीं हो पाता है कि वे अपने अध्ययन काल में निरन्तर किन विषयों का चयन करें अथवा अनिवार्य शैक्षिक योग्यता प्राप्त करने के उपरान्त किन संस्थानों में जाकर प्रशिक्षण प्राप्त करें। शैक्षिक बेरोजगारी की वृद्धि करने में यह कारण प्रमुख रूप से उत्तरदायी होता है, निर्देशन सेवाओं के माध्यम से इस सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध कराई जा सकती है।

(5) अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या का समाधान (To Solve the Problem of Wastage and Stagantion)—हमारे देश में अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या एक गम्भीर रूप में विकसित हुई है। देश के अनेक बालक प्रतिवर्ष प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित होकर अपने घरों पर बैठ जाते हैं। और अशिक्षित होने के कारण उपेक्षित जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जाते हैं। यद्यपि भारतीय संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि 6 से 14 वर्ष के बालकों के लिए अनिवार्य रूप से शिक्षा की व्यवस्था की जाए, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है। अभिभावकों का संकुचित दृष्टिकोण, उनकी आर्थिक दशा, पर्याप्त विद्यालयों का अभाव, अनुकूल विद्यालयी वातावरण का अभाव आदि कारण इस समस्या के लिए उत्तरदायी हैं। इसी प्रकार एक ही परीक्षा में निरन्तर अनुत्तीर्ण होने के कारण भी, अनेक बालक अपनी शिक्षा प्राप्ति के क्रम में अवरोध अनुभव करने लगते हैं और सदैव के लिए अपना अध्ययन छोड़ देते हैं। इस समस्या के समाधान की दिशा में छात्रों, अभिभावकों और शिक्षकों को पर्याप्त निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

(6) अधिगम की दिशा में तल्लीन बनाए रखने हेतु (To Involve in the Process of Learning)—वांछित उपलब्धि स्तर के क्रम को सतत् रूप से बनाए रखने हेतु यह आवश्यक है कि प्राप्त ज्ञान का सहज अधिगम करने में विद्यार्थी को सफलता प्राप्त होती रहे। अनेक विद्यार्थी सीखने की समुचित विधियों के ज्ञान के अभाव के कारण ही अन्य छात्रों की अपेक्षा पीछे रह जाते हैं और सही मार्गदर्शन प्राप्त होते ही अन्य छात्रों की तुलना में अधिक उत्तम उपलब्धि कर लेते हैं। स्मृति अथवा बोध क्षमता का पर्याप्त विकास एवं इनको प्रभावित करने वाले कारकों की समुचित जानकारी के अभाव में ही ऐसा होता है। अत: यह आवश्यक है कि सूचनाओं के स्मरण करने, उनका बोध उत्पन्न करने तथा उन्हें प्रयुक्त करने के तरीकों का सही ज्ञान प्रत्येक विद्यार्थी को कराया जाए। निर्देशन के माध्यम से इस दिशा में पर्याप्त सहायता प्रदान करके छात्रों को सहज अधिगम की दिशा में प्रेरित किया जा सकता है।

विभिन्न स्तरों पर शिक्षा निर्देशन (Educational Guidance at Various Level)

शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी प्रकार की समस्याओं का विद्यार्थियों के समक्ष उपस्थित होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर निर्देशन का महत्व है। **जोन्स** के अनुसार—"निर्देशन सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम का अभिन्न अंग है। सुधारात्मक क्षमताओं की अपेक्षा यह सकारात्मक कार्य के रूप में सेवा करता है और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए बालक के विद्यालय से प्रथम सम्पर्क स्थापित होने से लेकर, जब तक कि वह किसी वृत्ति में नियुक्त नहीं हो जाता, निरन्तर एक प्रक्रिया स्तर पर निर्देशन के कार्यों का निर्धारण किया गया है।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन (Guidance at Primary School Level)

प्राथमिक स्तर के बालकों को अन्य स्तरों की अपेक्षा अधिक एवं सतत् निर्देशन की आवश्यकता होती है। परिवार के मुक्त वातावरण से पाठशाला का जीवन सर्वथा भिन्न होता है। इस स्तर पर आत्मानुशासन की प्रवृत्ति का विकास एवं

नोट

पर्याप्त बोध गम्यता विकास सहज में ही सम्भव नहीं होता है अत: पग-पग पर बालक के समक्ष आने वाली समस्याओं का समाधान तथा अधिगम की दिशा में उसकी रूचि को निरन्तर बनाए रखना आवश्यक होता है। यह एक ऐसा स्तर होता है जब बालक के प्रत्येक व्यवहार एवं प्रत्येक जिज्ञासा का ध्यान रखा जाना चाहिए। बालकों के प्रति अनपेक्षित कठोर व्यवहार उनमें स्थायी रूप से भय का संचार कर सकता है। उनके प्रति उपेक्षा का भाव उन्हें अनेक प्रकार के दुराभ्यासों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता हैं तथा वह कुसमायोजन की प्रवृत्ति हो सकती है।

छोटी आयु के बालकों को एक नियन्त्रित वातावरण में रखकर अधिगम कराना, उनमें उत्तम आदतों का विकास करना तथा उनके व्यवहार में अनेक प्रकार के वांछित परिवर्तन करना नि:सन्देह एक कठिन कार्य है, परन्तु यह भी सत्य है कि इस कठिन उत्तरदायित्व का प्रत्येक दशा में सतत् पर्यवेक्षण एवं निष्ठाभाव के साथ निर्वाह किया जाना चाहिए। प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की भूमिका, इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण होती है। इस स्तर पर निर्देशन प्रदान करने का कार्यभार भी अधिकांशत: शिक्षकों पर ही होता है। अध्यापन के साथ ही निर्देशन व परामर्श का कार्य भी, उसे संयुक्त रूप से करना होता है। इसके साथ ही निर्देशन प्रदान करने वाले निर्देशन कर्मियों तथा परामर्शदाता का सहयोग भी लिया जा सकता है।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य, बालकों के व्यक्तित्व का विकास करना, उनमें सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित कौशलों का विकास करना तथा अधिगम से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान में सहायता पहुँचाना होता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षक के द्वारा अनेक प्रकार की सहायता सुलभ कराई जाती है। उसे अपनी विद्यार्थियों के प्रति निरन्तर सचेत एवं सजग रहना पड़ता है। वह संकोची, भयभीत, प्रतिभाशाली एवं झगड़ालू प्रवृत्ति के बालकों का पता लगाता है तथा इन कमियों को दूर करने हेतु विभिन्न विधियों का उपयोग करता है। बालकों के अभिभावकों से भी इस दिशा में, अपेक्षित सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

इस स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के कार्य निम्नलिखित हैं—

(1) निर्देशन कार्यक्रमों के माध्यम से बालकों में शिक्षा के प्रति रूचि जागृत करना, जिससे वे अपने अध्ययन क्रम को निरन्तर आगे बढ़ा सकें।

(2) बालकों को अपने भविष्य से सम्बन्धित शैक्षिक योजना का निर्माण करने में सहायता प्रदान करना।

(3) प्राथमिक स्तर के बालकों में इस अभिवृत्ति का विकास करना कि शिक्षा का उनके जीवन में सर्वाधिक महत्व है।

(4) उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को तैयार करने हेतु सहायता प्रदान करना।

क्या आप जानते हैं प्रत्येक विद्यार्थी का बौद्धिक स्तर, रूचि, अभिरुचि एक दूसरे से भिन्न होती हैं। वांछित अधिगम की दिशा में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होता है कि प्रत्येक विद्यार्थी को उसके अनुरूप विषयों के अध्ययन का अवसर प्राप्त हो।

माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance at Secondary and Higher Seconday Levels)

इस स्तर पर अपेक्षाकृत अधिक योग्यता वाले निर्देशन प्रदाताओं की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह है कि इन स्तरों का पाठ्यक्रम बहुविधि एवं अधिक विस्तृत होता है। साथ ही नवीं कक्षा में पहुँचने से पूर्व विषयों के चयन की समस्या भी छात्रों के समक्ष उपस्थित होती है। भावी प्रगति के सन्दर्भ में इस समस्या के समाधान का अपना विशिष्ट महत्त्व होता है और इस दिशा में निर्देशन ही अधिक उपयोगी होता है क्योंकि प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली के विपरीत, इस स्तर पर एक साथ कई शिक्षकों को छात्रों की प्रगति से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना होता है। इसके अतिरिक्त निर्देशन के व्यावसायिक पक्ष पर भी इस स्तर पर बल दिया जाता है, क्योंकि अब

नोट

छात्रों में भावी व्यवसाय के सन्दर्भ में भी विचार प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस स्तर पर निर्देशन कार्यो से सम्बन्धित प्रमुख क्रियाएँ निम्नलिखित हैं–

1. विद्यालयी आवश्यकताओं की जानकारी प्रदान करना।
2. विद्यार्थियों से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्र करना।
3. छात्रों हेतु, शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाओं को एकत्र करना। सामूहिक क्रियाओं का संगठन करना।
4. विद्यार्थियों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को बनाएँ रखने में सहायता देना।
5. छात्रों को परामर्श देना।

माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त शिक्षा निर्देशन (Educational Guidance after Secondary Education)

शिक्षा निर्देशन का महत्व प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर ही अधिक होता हैं। इसके उपरान्त अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों की संख्या एवं शैक्षिक समस्याएँ अपेक्षाकृत कम होती है। अधिगम एवं शैक्षिक उपलब्धि से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान में छात्र स्वयं सक्षम हो चुके होते हैं। उनकी समस्याएँ वैयक्तिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक पक्ष से अधिक सम्बन्धित होती है, फिर भी भावी अध्ययन के अवसरों अध्ययन केन्द्रों, वांछित पुस्तकों की उपलब्धि आदि के सन्दर्भ में निर्देशन प्रदान किया जा सकता है। इस स्तर से सम्बन्धित, अनेक समस्याएँ इस प्रकार की होती हैं। जिनको व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में रखा जा सकता है और व्यावसायिक निर्देशन सेवाओं के आधार पर ही इन समस्याओं के समाधान के लिए सहायता प्रदान की जा सकती है।

शिक्षा निर्देशन के उद्देश्य (Objectives of Educational Guidance)

व्यक्ति के शैक्षिक परिवेश एवं उसमें प्राप्त सम्भावनाओं, अपेक्षाओं एवं विशेषताओं से, शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध होता है। आज हमारे देश के विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पाठ्यचर्याओं, पाठ्यक्रमों एवं अधिगम के साधनों का प्रावधान किया है, वह अपनी विभिन्नता की दृष्टि से विशेषता रखती हैं। इसके साथ ही, उनसे लाभ प्राप्त कर सकने वाले विद्यार्थियों की, क्षमताओं, योग्यताओं, प्रवणताओं एवं अभिवृत्तियों इत्यादि की उपेक्षा को ध्यान में रखकर भी उनमें भिन्नता दिखलाई देती है।

शिक्षा एक व्यापक प्रक्रिया है। इसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है। बालक के व्यवहार में परिवर्तन करने हेतु विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि सभी बालक, सभी दृष्टिकोण से समान नहीं होते, उनमें विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। इसी कारण आज शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता को अधिक अनुभव किया जा रहा है। शैक्षिक निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य प्रतिपादित किए गए हैं–

1. विद्यार्थियों को अपनी योग्यता, प्रवणता एवं रूचि के अनुसार पाठ्यक्रमों के चयन में तथा उनके लिए अपेक्षित तैयारी में सहायता करना।
2. छात्रों को, राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरों पर आयोजित, विभिन्न प्रकार की प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु अपेक्षित तत्परता व तैयारी के सम्बन्ध में, आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करना।
3. छात्रों को आत्म अनुदेशन की ओर अग्रसरित होने में सहायता देना।
4. स्व:अध्ययन की विधियों को प्रयुक्त करने में छात्रों की सहायता करना।
5. विद्यार्थियों को अधिकाधिक आत्म-बोध कराना, ताकि वह अपनी क्षमताओं, योग्यताओं, रूचियों तथा न्यूनताओं को जानकर तथा समझकर अपनी आकांक्षाओं के स्तर को यथार्थता के आधार पर निर्धारित कर सकें।
6. विद्यार्थियों को विद्यालयों के अन्दर तथा बाहर प्राप्त अधिगम साधनों तथा सम्प्रेषण के माध्यमों के बारे में बोध गम्यता का विकास करना।

नोट

7. छात्रों के विभिन्न स्तरों पर पाई जाने वाली शिक्षा व्यवस्थाओं, पाठ्यक्रमों एवं विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में जानकारी देना।
8. अनेक प्रकार की शिक्षा व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में छात्रों को जानकारी प्रदान करना तथा उनमें उपलब्ध विभिन्न विषयों तथा—वाणिज्य, विज्ञान इत्यादि हेतु आवश्यक राज्य से सम्बन्धित नियमों, सूचनाओं तथा क्षमताओं के सम्बन्ध में छात्रों को जानकारी देना।
9. विद्यालय वातावरण से सम्बद्ध कार्यक्षेत्र की यथार्थता एवं विद्यालय के बाहर सामाजिक वातावरण की यथार्थता से सम्बद्ध अपेक्षाओं के मध्य समायोजन स्थापित करने में विद्यार्थियों की सहायता करना, जिससे विद्यार्थी के वैयक्तिक जीवन में कम से कम तनाव पैदा हो।
10. विद्यालय के नवीन परिवेश से सामंजस्य स्थापित करने, विषयों, पाठ्येत्तर क्रियाओं, उपयोगी पुस्तकों, हॉबी के चयन करने, अध्ययन की उत्तम आदतों का निर्माण करने भिन्न-भिन्न विषयों में सन्तोषप्रद उन्नति करने, छात्र वृतियों के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करने एवं विद्यार्थियों से परस्पर मधुर सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता करना।
11. विद्यार्थियों को, नवीन शिक्षा तकनीकी से अधिकाधिक लाभ उठाने हेतु प्रोत्साहन करना तथा इससे सम्बन्धित परामर्श प्रदान करना।
12. छात्रों को, नवीन पाठ्यक्रमों, नवीन शिक्षण-पद्धतियों, नवीन शिक्षा नीतियों एवं अधिगम साधनों के बारे में पर्याप्त एवं आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करना।
13. शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने हेतु "छात्र-नियन्त्रित अनुदेशन" की प्रणाली को अधिकाधिक प्रयोग करने में, सहायक एवं संवेदनशील बनाना।

शिक्षा निर्देशन के उपरोक्त उद्देश्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा निर्देशन का मुख्य उद्देश्य, विद्यार्थियों में अपेक्षित संवेदनशीलता एवं जागरूकता उत्पन्न करना है, जिससे वे उपयुक्त एवं उचित प्रकार के अभिकरणों, संसाधनों एवं अधिगम-लक्ष्यों का चयन स्वयं ही कर सकें।

शिक्षा निर्देशन के विशिष्ट कार्य (Specific Functions of Educational Guidance)

शिक्षा निर्देशन के मुख्य रूप से चार कार्य हैं, जो परस्पर सम्बन्धित होते हैं—

(1) विद्यार्थियों की रूचि, क्षमता एवं साधनों के अनुरूप शिक्षा की योजना बनाना और समुचित पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रमों का चयन करने में विद्यार्थियों को सहायता प्रदान करना।

(2) वर्तमान विद्यालय स्तर से ऊपर तथा पृथक छात्रों की शैक्षिक सम्भावनाओं का ज्ञान करने में विद्यार्थियों की सहायता करना।

(3) छात्र को शैक्षिक कार्यक्रम में समुचित प्रगति करने में सहायता प्रदान करना।

(4) शिक्षण-संस्थाओं के कर्मचारियों, प्रशासनिक प्रबन्ध तथा आवश्यक पाठ्यचर्या सम्बन्ध परिवर्तनों हेतु सुझाव देना जिससे विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को उत्तम प्रकार से पूर्ण किया जा सके तथा प्रगति समुचित रूप से हो सके।

शिक्षा निर्देशन के सिद्धान्त (Principles of Educational Guidance)

शिक्षा निर्देशन के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(1) निर्देशन समस्त छात्रों को उपलब्ध होना चाहिए।

(2) समस्या का समाधान, प्रारम्भ में ही होना चाहिए।

(3) प्रमापीकृत परीक्षाओं को प्रयुक्त किया जाए।

नोट

(4) समुचित एवं सम्बन्धित सूचनाओं का संकलन किया जाए।

(5) छात्र का निरन्तर अध्ययन किया जाए।

(6) विद्यालय एवं अभिभावकों के मध्य गहन सम्बन्ध स्थापित करना।

(1) निर्देशन समस्त छात्रों को उपलब्ध होना चाहिए—निर्देशन सेवाएँ केवल चयनित विद्यार्थियों को ही प्रदान नहीं करना चाहिए, वरन् ये सेवाएँ समस्त छात्रों को उपलब्ध होनी चाहिए, तभी निर्देशन प्रदाता अपने उद्देश्यों में सफल हो सकता है। जिन विद्यालयों में निर्देशन कार्य चल रहा हो, उन विद्यालयों में, निर्देशन सेवाओं को इस प्रकार संगठित किया जाना चाहिए, जिससे कोई भी छात्र वंचित न रह जाए।

(2) समस्या का समाधान, प्रारम्भ में ही होना चाहिए—यदि किसी विद्यार्थी की, निर्देशन से सम्बद्ध कोई समस्या उत्पन्न होती है, तो उसकी समस्या का समाधान तत्काल ही कर देना चाहिए, जिससे समस्या का रूप गम्भीर न हो सके।

(3) प्रमापीकृत परीक्षाओं को प्रयुक्त किया जाए—विद्यार्थियों द्वारा, विद्यालय में प्रवेश लेने पर, उन पर प्रमापीकृत परीक्षाओं का प्रशासन किया जाए। इन प्रमापीकृत परीक्षाओं से प्राप्त परिणामों के आधार पर, विद्यार्थी की किस पाठ्यक्रम में सफलता के बारे में भविष्यवाणी की जा सकेगी। इसके अतिरिक्त आने वाले समयों पर भी यदि इन परीक्षाओं का प्रयोग किया जाए तो उत्तम होगा।

(4) समुचित एवं सम्बन्धित सूचनाओं का संकलन किया जाए—पर्याप्त मात्रा में समुचित एवं सम्बन्धित सूचनाओं के संकलन के अभाव में, शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करना असंभव है। सफल निर्देशन प्रदान करने के लिए पर्याप्त सूचनाओं को संकलित करना आवश्यक है।

(5) छात्र का निरन्तर अध्ययन किया जाए—निर्देशन कहाँ तक सफल हुआ है? यह ज्ञात करने के लिए, विद्यार्थी का व्यवसाय में लग जाने के उपरान्त भी उसका सतत् अध्ययन करना अधिक आवश्यक है। अपने व्यवसाय में विद्यार्थी ने सफलता प्राप्त की है अथवा नहीं? इन्हीं बातों से निर्देशन की सफलता अथवा असफलता का ज्ञान हो जाता है। अत: व्यवसाय में लगे हुए छात्रों की सफलता तथा असफलता का अध्ययन करना भी अत्यन्त आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है।

(6) विद्यालय एवं अभिभावकों के मध्य गहन सम्बन्ध स्थापित करना—शैक्षिक निर्देशन का एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि विद्यार्थी के विद्यालय एवं अभिभावकों के मध्य गहन सम्बन्ध स्थापित किया जाए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **निम्नलिखित वाक्यों में सत्य तथा असत्य लिखिए** (State whether the following statements are 'True' or 'False')—
   1. निर्देशन शैक्षिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग है।
   2. शिक्षा निर्देशन के सिद्धान्त व्यावहारिक होते हैं।
   3. प्रमापीकृत परीक्षाओं का मानक नहीं होता है।
   4. प्रश्नावली का उपयोग सूचनाओं के लिए होता है।
   5. शिक्षा निर्देशन का मुख्य उद्देश्य शिक्षा में गुणवत्ता लाना है।
   6. शिक्षा निर्देशन में शैक्षिक परीक्षण तथा निदानात्मक परीक्षणों का विशेष महत्व है।

6.2 व्यावसायिक निर्देशन की अवधारणा (Concept of Vocational Guidance)

व्यावसायिक निर्देशन के आशय पर (1924) में **'नेशनल वोकेशनल गाइडेंस एसोसिएशन'** के द्वारा उल्लेख किया गया है। इस ऐसोसिएशन ने अपनी रिपोर्ट में व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा कि "व्यवसाय निर्देशन

व्यवसाय को चुनने, उसके लिए तैयार करने, उसमें प्रवेश करने तथा उसमें विकास करने हेतु सूचना देने, अनुभव देने तथा सुझाव देने की प्रक्रिया है।"

Vocational Guidance is the giving of information experience and advice in regard of choosing an occupation, preparing for it, entering it and progressing in it.

इन परिभाषा से पूर्व (1908) ई. में फ्रेंक पारसन्स के द्वारा अपनी एक रिपोर्ट में, निर्देशन शब्द का प्रयोग किया जा चुका था, परन्तु निर्देशन के व्यावसायिक पक्ष को, उनके द्वारा परिभाषित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित करने के उपरोक्त प्रयास को ही सर्वप्रथम प्रयास के रूप में स्वीकार किया जाता है, फिर भी अनेक प्रकार से उपरोक्त परिभाषा को त्रुटिपूर्ण बतलाया गया। इस त्रुटि का प्रमुख कारण यह था कि यह परिभाषा किसी एक व्यक्ति के द्वारा परिभाषित नहीं की गई, वरन् कई विद्वानों के समन्वित प्रयास को इस परिभाषा के माध्यम से अभिव्यक्त कर दिया गया। यही कारण है कि (1937) ई. में इस *एसोसिएशन के द्वारा दूसरी परिभाषा* प्रस्तुत की गई। इस में प्रस्तुत परिभाषा–

"व्यवसाय निर्देशन एक प्रक्रिया है जो व्यवसाय चयन, इसके हेतु तैयार होने में, इसमें प्रवेश करने में तथा उसमें दक्षता प्राप्त करने में सहायता देती है। इसका मुख्य उद्देश्य जीविका-निर्माण तथा निर्णय लेने में सहायता करने से है। यह निर्णय तथा इच्छाएँ व्यावसायिक समायोजन का उद्देश्य संतोषजनक रूप से पूरा करती है।"

"Vocational Guidance is the process of assisting the individual to choose an occupation, prepare for it, enter upon and progress in it. It is concerned primarily with helping individuals make decisions and choices involved in planning a future and building a career decisions and choices necessary in effecting satisafactory vocational adjustment."

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (1949) (I. L. O.) के द्वारा भी, व्यावसायिक निर्देशन का आशय स्पष्ट किया गया। इस संगठन के अनुसार–"व्यावसायिक निर्देशन, व्यक्तियों के गुणों एवं व्यवसाय के साथ उनके सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए, व्यक्ति को व्यवसाय के चयन एवं उसकी प्रगति में आने वाली समस्याओं के सुलझाने में प्रदान की जाने वाली सहायता को कहते हैं।

"Vocational Guidance is the assitance given to individual in solving problems related to occupatioal choice and progress with due regard for the individual characteristics and their relation to occupational opportunity."

–I. L. O.

डोनाल्ड सुपर (Donald Super) के शब्दों में–"किसी व्यक्ति को अपना एवं व्यवसाय क्षेत्र के बीच अपनी भूमिका का समग्र एवं पर्याप्त चित्र बनाने, उसे स्वीकार करने, वास्तविक स्थिति के मध्य, इस अवधारणा की जाँच करने एवं उसे स्वयं के सन्तोष तथा समाज के लाभ हेतु, वास्तविकता में बदलने की सहायता प्रदान करने के उपक्रम को व्यावसायिक निर्देशन कहते हैं।"

"Vocational Guidance is the process of helping a person to develop and accept on integrated picture of him self and of his role in the world of work, to set this concept against reality with satisfaction to himself and benefit to society."

–Donald Super

सुपर द्वारा दी गई उपरोक्त परिभाषा को यदि विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उपरोक्त परिभाषा में व्यावसायिक निर्देशन के सभी पक्षों को ध्यान में न रखकर इसके कार्यो पर ही अधिक बल दिया है। **सुपर** ने स्वयं भी इस परिभाषा को दोषपूर्ण स्वीकार करते हुए इसका आलोचनात्मक विश्लेषण किया है।

मायर्स (डलमते) के अनुसार– उनके ही शब्दों में–"व्यवसाय निर्देशन, मुख्य रूप से वह प्रक्रिया है युवावस्था की प्रकृति क्षमताओं तथा विद्यालयों में प्रदत्त प्रशिक्षण को संकलित करती है। यह इन सबसे अधिक मूल्यवान मानवीय साधनों का संकलन, उसका उस स्थान पर उपयोग करने में सहायता करती है जहाँ पर वह अधिकतम कल्याण कर सकें।"

"Vocational Guidance is fundamentally an effort to conserve the priceless native capacities of

नोट

youth and the costly training provided for youth in the schools. It seeks to conserve these richest of all human resources by aiding the individual to invest and use them where they will bring greatest satisfaction and success to himself and greatest benefit to society."

> नोट्स व्यावसायिक निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से मानव में निहित शक्तियों को संचित एवं सुरक्षित रखा जा सकता है।

व्यावसायिक निर्देशन की विशेषताएँ (Characteristics of Vocational Guidance)

निर्देशन की उपरोक्त सभी परिभाषाओं का अध्ययन करने के उपरान्त इसकी कुछ विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. व्यावसायिक निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति में सम्बन्ध से स्पष्ट बोध विकसित किया जा सकता है। इसके आधार पर व्यक्ति को यह ज्ञात हो जाता है कि उसका वास्तविक स्वरूप क्या है?
2. व्यावसायिक निर्देशन के आधार पर कार्य के स्वरूप एवं कार्य से सम्बन्धित व्यक्तियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है।
3. व्यावसायिक निर्देशन एक प्रक्रिया है। विभिन्न उद्देश्यों, साधनों, प्रविधियों आदि को समन्वित रूप से ध्यान में रखकर इस प्रक्रिया को सम्पन्न किया जाता है।
4. व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया के आधार पर, व्यक्ति की योग्यताओं सफलताओं, रूचियों, प्रेरणाओं आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
5. व्यावसायिक निर्देशन के लिए आवश्यक जानकारी, दक्षता, योग्यता आदि के सम्बन्ध में सूचनाएँ एकत्र की जाती है।

इस प्रकार संक्षेप में, व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत व्यक्ति एवं व्यवसाय दोनों का ही समान रूप से अध्ययन एवं मूल्यांकन किया जाता है। व्यावसायिक समस्याओं के समाधान हेतु प्रदान की जाने वाली यह एक ऐसी सहायता है जो व्यावसायिक अवसरों के लिए, वांछित योग्यताओं को ध्यान में रखकर प्रदान की जाती है। इसका प्रमुख उद्देश्य, व्यावसायिक समायोजन की योग्यता का विकास करना तथा मानव की शक्ति के यथेष्ट उपयोग द्वारा समाज की अर्थव्यवस्था के संचालन में सहायता प्रदान करना है।

व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता (Need of Vocational Guidance)

वैयक्तिक भिन्नताओं एवं व्यवसायों को विविधता के कारण व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया का उपयोग करना अत्यन्त आवश्यक होता है। माननीय व्यक्तित्व की जटिलता तथा व्यावसायिक कार्यक्षेत्रों में होने वाले तीव्रगामी परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता और भी अधिक अनुभूति की जाने लगी है। इस प्रक्रिया की महत्ता, केवल किसी व्यवसाय में प्रवेश करने की दृष्टि से नहीं, वरन् व्यवसाय में प्रविष्ट होकर वृत्तिक सन्तोष की दृष्टि से भी यह सहायक है संक्षेप में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) वैयक्तिक भिन्नताओं की दृष्टि से,

(2) व्यावसायिक भिन्नता की दृष्टि से,

(3) समाज की परिवर्तित दशाएँ

(4) मानवीय क्षमताओं का वांछित उपयोग करने हेतु,

(5) व्यावसायिक प्रगति हेतु,

(6) स्वास्थ्य को बनाए रखने की दृष्टि से तथा

(7) पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने की दृष्टि से।

उपरोक्त आवश्यकताओं का वर्णन इस प्रकार है—

(1) वैयक्तिक भिन्नताओं की दृष्टि से (From the Standpoint of Individual Differences)—वैयक्तिक भिन्नता के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में निहित योग्यताएँ, क्षमताएँ, रूचि, अभिरूचि आदि भिन्न-भिन्न होती है। किसी न किसी रूप में, प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता ही है। इस विभिन्नता की समुचित जानकारी प्राप्त किए बिना यह सम्भव नहीं है कि व्यक्ति की अभिरूचि, भावी प्रगति अथवा व्यवसाय के लिए अनुकूल व्यक्तियों का चयन करने से पूर्व वैयक्तिक विभिन्नताओं के स्तर एवं स्वरूप की जानकारी आवश्यक होती है, क्योंकि प्रत्येक व्यवसाय के लिए कुछ विशेष योग्यताओं वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती है। निर्देशन के द्वारा इस सन्दर्भ में विभिन्न माध्यमों से पर्याप्त सूचनाएँ एकत्र की जा सकती है।

(2) व्यावसयिक भिन्नता की दृष्टि से (From the Standpoint of Vocational Difference)—प्राचीन समय में देश की अधिकांश जनता कृषि व्यवसाय के माध्यम से ही अपनी जीविकोपार्जन की समस्या का समाधान कर लेती थी। समाज की आवश्यकताएँ भी उस समय सीमित थी तथा जनसंख्या का घनत्व अपेक्षाकृत कम था। संयुक्त परिवार प्रथा के कारण एक परिवार के सदस्यों को एक ही स्थान पर रहकर अधिकाधिक अर्थोपार्जन का अवसर सुलभ रहता था। परन्तु जनसंख्या की तीव्रगति से होती हुई वृद्धि, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण आदि के फलस्वरूप अनेक नवीन प्रकार के उद्योगों, व्यवसायों की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। शीघ्र ही विभिन्न प्रकार की प्रकृति वाले व्यवसायों का उदय होना प्रारम्भ हो गया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त अल्पकाल में ही अनेक व्यवसाय संचालित किए जाने लगे। इन सभी व्यवसायों में अपेक्षित उत्पादन एवं कार्य कौशल की दृष्टि से अनुकूल व्यक्तियों के चयन की समस्या का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। अत: विद्यालयी स्तर पर ही यह आवश्यक समझा गया कि शिक्षार्थियों को उनकी अभिरूचि के अनुसार विषयों के चयन में सहायता प्रदान की जाए जिससे शिक्षा और व्यवसाय अथवा शैक्षिक उपलब्धि एवं जीविकोपार्जन से सम्बन्धित अपेक्षाओं में समन्वय स्थापित किया जा सके। व्यावसायिक निर्देशन, द्वारा विद्यार्थियों को उनकी रूचियों, कौशलों, योग्यताओं, अभिरूचियों आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की जा सकती है। इस जानकारी के आधार पर ही यह अपनी योग्यता के अनुरूप विषयों का चयन करने, भावी व्यवसाय के लिए आवश्यक योग्यताओं, क्षमताओं एवं कौशलों का विकास करने तथा उस व्यवसाय में प्रविष्ट होकर वृत्तिक सन्तोष की दिशा में अग्रसरित होने का अवसर प्राप्त कर सकते हैं।

(3) समाज की परिवर्तित दशाएँ (Changing Conditions of Society)—समाज की पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक आदि विभिन्न दशाओं में आज पर्याप्त अन्तर हो चुका है। एक समय था जब व्यक्ति की योग्यताओं, व्यक्ति के अस्तित्व एवं परोपकार की दृष्टि से किए जाने वाले कार्यों को महत्त्व दिया जाता था वर्तमान समाज की स्थितियाँ सर्वथा भिन्न हैं। आज व्यक्ति के स्तर, धन, भौतिक साधनों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। अपने पड़ोस, सम्बन्धियों एवं परिचितगणों से सम्मान प्राप्त करने के लिए आज यह आवश्यक है कि व्यक्ति का रहन-सहन का स्तर सन्तोषजनक हो। व्यक्ति के सम्मान एवं सामाजिक मान्यता प्राप्त करने का आज यही आधार है। साथ ही जनसंख्या वृद्धि एवं सीमित अवसरों की उपलब्धता के कारण सर्वत्र एक प्रतिस्पर्धा का वातावरण भी उत्पन्न हो गया है। इस वातावरण में भी उन्हीं व्यक्तियों को आज सफल माना जाता है जो भौतिक दृष्टि से अपेक्षाकृत आगे हैं। इस प्रकार के वातावरण में व्यक्ति का मानसिक एवं भौतिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे उपयुक्त व्यवसाय का चयन करके उसमें प्रगति का अवसर प्रदान किया जाए। इस दिशा में व्यावसायिक निर्देशन विशेष रूप में सहायक सिद्ध हो सकता है।

(4) मानवीय क्षमताओं का वांछित उपयोग करने हेतु (To Utilise the Efficiency of Human being Adequately)—समाज अथवा राष्ट्र को प्रगति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि मानवीय क्षमताओं का समुचित प्रयोग किया जाए। प्रगति की दौड़ में आज जितने भी राष्ट्र अग्रणीय है, उनकी सफलता का एक प्रमुख रहस्य यह भी है कि उन देशों में व्यक्ति की क्षमताओं का समुचित उपयोग किया जाता है। हमारे यहाँ व्यक्ति की योग्यता का सही

नोट

मूल्यांकन प्राय: नहीं हो पाता है। योग्यता एवं व्यावसायिक अवसर में अन्तर इस सीमा तक है कि जिन व्यक्तियों को मात्र एक लिपिक के रूप में कार्य करना चाहिए था वह अफसर बना दिए गए हैं और जो अधिकारी होने चाहिए थे वह मात्र लिपिक के रूप में ही जीविकोपार्जन कर रहे हैं। रिश्वत, सिफारिश, जातिवाद, वर्गवाद, मूल्यांकन की अनुचित कसौटियाँ आदि अनेक कारक इस प्रकार की दुरावस्था के लिए उत्तरदायी है। भ्रष्टाचार, ऊपर-नीचे व्याप्त है। सभी इस व्यवस्था के लिए समान रूप से दोषी है। यह भी दु:खद है कि युवकों को अपने अध्ययन-काल के उपरान्त तक भी यह ज्ञात नहीं हो पाता है कि उनकी अभिरूचि किस व्यवसाय के अनुकूल है और उस व्यवसाय में प्रविष्ट होकर, किस प्रकार प्रगति की जा सकती है। इस दृष्टि से विद्यार्थियों एवं शिक्षा प्राप्त कर चुके युवकों के लिए, व्यावसायिक निर्देशन, विशेष रूप से सहायक हो सकता है।

(5) व्यावसायिक प्रगति हेतु आवश्यक (Essential for Vocational Progress)—व्यावसायिक निर्देशन का महत्व केवल किसी व्यवसाय में प्रविष्टि होने की दृष्टि से ही नहीं है, वरन् व्यवसाय में निरन्तर प्रगति करने की दृष्टि से भी है। व्यावसायिक प्रगति के आधार पर उपलब्ध वृत्तिक सन्तोष क्षमताओं एवं कौशलों का निरन्तर विकास किया जाता रहे। व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा यह जानकारी प्रदान की जा सकती है कि अपनी कार्य क्षमता का विस्तार किस प्रकार किया जाए? किसी व्यवसाय में सफल होने के लिए किस प्रकार किया जा सकता है। इसी प्रकार, किसी व्यवसाय में सम्बन्धित जानकारी एवं कौशलों के विकास में सहायक व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों आदि से सम्बन्धित सूचनाएँ प्रदान की जा सकती हैं।

(6) स्वास्थ्य को बनाए रखने की दृष्टि से (To maintain the Physical Health)—स्वास्थ्य का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से महत्व होता है। किसी व्यवसाय में निरन्तर निपुणता अथवा वांछित कार्यक्षमता के साथ कार्य करना भी, केवल उसी परिस्थिति में सम्भव हो सकता है जब व्यवसाय में लगे कर्मिकों का स्वास्थ्य सन्तोषजनक हो। स्वास्थ्य को बनाए रखने से वृत्तिक सन्तोष का विशेष महत्व होता है तथा यह तभी सम्भव है प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुकूल व्यवसाय का अवसर प्राप्त हो। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि अनेक व्यवसायों में किस विशिष्ट कार्य के संचालन की विशेष क्षमताओं की आवश्यकता होती है। उदारहण के लिए घड़ी साजी, कम्पोजिंग, प्रूफ रीडिंग जैसे कार्यो में नेत्र संचालन एवं नेत्रों की गतिविधि के नियन्त्रण का अधिक महत्व होता हैं। अत: यह आवश्यक है कि इन कार्यो को करने वाले व्यक्तियों की नेत्र शक्ति सामान्य हो। निर्देशन के द्वारा, व्यक्ति की शारीरिक प्रणाली के अध्ययन के आधार पर यह सुझाव दिए जा सकते हैं कि किस व्यक्ति को किस व्यवसाय में जाना चाहिए।

(7) पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने की दृष्टि से (To establish co-ordination between the family and vocational life)—व्यक्ति के व्यावसायिक एवं पारिवारिक जीवन का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध होता है। परिवार में घटित होने वाली घटनाएँ एवं समस्याएँ जिस प्रकार व्यावसायिक जीवन को प्रभावित करती है, उसी व्यवसायिक क्षेत्र से सम्बन्धित सफलताएँ एवं असफलताएँ पारिवारिक जीवन पर प्रभाव डालती हैं। प्राय: यह देखने में आता है कि जो व्यक्ति अपने पारिवारिक जीवन में सुख एवं सन्तोष की अनुभूति कर रहे हैं, वह व्यावसायिक जीवन को भी शान्त, सौम्य एवं सन्तुलित ढंग से व्यतीत करते हैं, इसी प्रकार व्यावसायिक जीवन में, सतत् रूप से प्रगति करने वाले व्यक्ति अपनी पारिवारिक समस्याओं का समाधान भी सहज रूप से ही कर लेते हैं। निर्देशन के माध्यम से इन समस्याओं का समन्वित रूप से समाधान करने में व्यक्ति को सहायता प्रदान की जा सकती है।

इस प्रकार, शैक्षिक निर्देशन के उपरान्त व्यावसायिक निर्देशन का व्यक्ति के जीवन में विशेष महत्व होता है। वस्तुत: व्यावसायिक निर्देशन के अभाव में न तो व्यक्ति के जीवन में समुचित सामंजस्य स्थापित किया जा सकता और न ही शैक्षिक उपलब्धियों का वांछित उपयोग ही सम्भव हो सकता है।

व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य (Objectives of Vocational Guidance)

व्यवसाय-निर्देशन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(1) विद्यालयों में व्यवसाय से सम्बन्धित सूचनाओं का विश्लेषण करने की योग्यता एवं क्षमता विकसित करना।

नोट

(2) सत्यनिष्ठता से किया गया कार्य सदैव सर्वोत्तम होता है, इस भावना का छात्रों में विकास करना।
(3) व्यक्ति के व्यवसाय चयन के पश्चात उसकी अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करना।
(4) छात्रों को विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों से अवगत कराना।
(5) गरीब विद्यार्थियों को अर्थ के अतिरिक्त अन्य प्रकार की सहायता प्रदान कर, उनकी व्यवसाय से सम्बन्धित योजना को सफल बनाना।
(6) छात्रों को भिन्न-भिन्न व्यवसायों का निरीक्षण करने हेतु सुविधाएँ उपलब्ध कराना।
(7) किसी व्यवसाय हेतु कौन-कौन से गुण, योग्यता एवं कुशलता अपेक्षित है, कि जानकारी विद्यार्थियों को प्रदान करना।
(8) छात्रों को विभिन्न व्यवसायों के सम्बन्ध में ऐसी सूचनाओं को एकत्रित करने में सहायता करना जिनका वह चयन कर सकें।
(9) छात्रों को विभिन्न व्यवसायों में अवगत कराकर, उन व्यवसायों के सामाजिक एवं वैयक्तिक महत्व के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।
(10) छात्रों में कार्य के प्रति एक आदर्श भावना का विकास करना।
(11) कार्य की परिस्थितियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने हेतु विद्यालयों के अन्दर एवं बाहर, अवसरों का सृजन करना।
(12) विद्यार्थियों की रूचियों को व्यापक बनाने हेतु उन्हें विभिन्न अवसर प्रदान करना।

व्यावसायिक निर्देशन के सिद्धान्त (Principles of Vocational Guidance)

व्यवसाय निर्देशन के भी कुछ सिद्धान्त होते हैं। इन सिद्धान्तों का अनुसरण करके ही व्यवसायों का चयन करना चाहिए। व्यवसाय चयन के सिद्धान्त के पीछे यह तथ्य रहा है कि व्यावसायिक विकास एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है। सन् 1951 में **एली जिन्जबर्ग** (Eli Ginzberg) ने व्यावसायिकता के सिद्धान्तों के बारे में जो अध्ययन किया उसके अनुसार उसने यह निष्कर्ष निकाला कि 'व्यवसाय चयन एक प्रक्रिया होती है।'

(1) हालैंड का व्यावसायिक चयन का सिद्धान्त,
(2) हालैंड की व्यावसायिक चयन के लिए प्रक्रिया,
(3) जिन्जर्बग का सिद्धान्त,
(4) जिन्जबर्ग के व्यवसाय चयन के सिद्धान्त की आलोचना,
(5) सुपर का व्यावसायिक चयन का सिद्धान्त,
(6) व्यावसायिक चयन का हैर्बाघर्स्ट का सिद्धान्त, तथा
(7) संरचनात्मक सिद्धान्त।

(1) हालैंड का व्यावसायिक चयन का सिद्धान्त (Holland's Theory of Vocational Choice)—**जॉन हालैंड** ने **सुपर** और **जिन्जबर्ग** के व्यावसायिक चयन के सिद्धान्त की भी कड़ी आलोचना करते हुए कहा है कि सुपर और जिन्जबर्ग के चयन सिद्धान्त के आधार पर व्यवसाय के बारे में कोई निर्णय लेना बहुत कठिन है। इस आलोचना के आधार पर हालैंड ने सन् 1949 में अपना व्यावसायिक चयन का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

इस सिद्धान्त के अनुसार, व्यावसायिक चयन निम्नलिखित कारकों का परिणाम होता है–

(1) वंशानुक्रम (Heredity),
(2) संस्कृति व सभ्यता (Culture and Civilization),
(3) संगी-साथी अर्थात् मित्र मंडली,
(4) अभिभावक (माता-पिता) (Parents),

नोट

(5) प्रौढ़ व्यक्ति (Matured Person)।

(6) सामाजिक स्तर (Social Status),

(7) भौतिक वातावरण की पारस्परिक क्रिया (Interaction of Physical Environment)।

कोई भी व्यक्ति विभिन्न अनुभवों के आधार पर अपने वातावरण के साथ एक विशेष प्रकार का व्यवहार करना सीख लेता है। फिर इन्हीं व्यवहारों के परिणामस्वरूप वह व्यक्ति अपने संतोष के लिए कोई व्यवसाय ढूँढता है। व्यक्ति विभिन्न व्यवसायों को कुछ समूह में बाँट लेते हैं। **हालैंड** ने इन व्यवसायों के समूहों को व्यावसायिक-वातावरण के नाम से पुकारा है। **हालैंड** ने इस प्रकार के व्यावसायिक-वातावरणों अर्थात् व्यावसायिक समूहों की चर्चा की है। हालैंड के अनुसार व्यावसायिक वातावरण या समूह निम्नलिखित है।

(अ) **बौद्धिक वातावरण** (Intellectual Environment)—**हालैंड** ने बौद्धिक वातावरण में चिकित्सा, रसायनशास्त्र, गणित, शरीर शास्त्र आदि विषयों को शामिल किया है।

(ब) **सौन्दर्यात्मक वातावरण** (Aesthetic Environment)—सौन्दर्यात्मक वातावरण में कलाकार, कवि, लेखक, मूर्तिकार आदि को शामिल किया गया है।

1. वास्तविक (Realistic),
2. सामाजिक वातावरण (Social Environment)
3. परम्परागत वातावरण (Conventional Environment),
4. उद्यमशील (Enterprising)।

हालैंड के अनुसार प्रत्येक प्रकार के व्यावसायिक वातावरण के लिए एक निश्चित जीवन-शैली (Life Style) की आवश्यकता होती है। व्यवसाय के लिए आवश्यक गुणों के अनुसार यदि जीवन शैली होगी तो व्यक्ति को कार्य संतोष (Job Satisfaction) अवश्य मिलेगा। इससे व्यक्ति का व्यक्तित्व भी सन्तुलित रहेगा।

(2) हालैंड की व्यावसायिक चयन के लिए प्रक्रिया (Process of Vacational Choice by Holland)—**हालैंड** ने व्यावसायिक चयन के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया बताई है—

(1) मुख्य व्यावसायिक वातावरण का चयन अपनी जीवन शैली के अनुसार करना।

(2) मुख्य व्यावसायिक वातावरण या व्यावसायिक समूह में से किसी एक व्यवसाय का चयन अपनी योग्यताओं के अनुसार करना।

(3) उपरोक्त दोनों प्रक्रियाओं पर व्यक्ति के ज्ञान, व्यावसायिक सूचनाओं, मित्रों तथा अन्य परिवारजनों के परामर्श तथा सामाजिक आर्थिक स्थिति आदि का प्रभाव पड़ना तथा उसी ओर ध्यान देना।

(4) व्यक्ति की जीवन शैली के विकास की एक ही दिशा में होने पर व्यवसाय चयन शीघ्र होता है। अत: जीवन शैली की एक ही दिशा है। जीवन शैली अनिश्चित हो जाने पर व्यवसाय का चयन भी कठिन होगा।

(5) सुगम व्यवसाय चयन के लिए व्यवसाय वातावरण या व्यवसाय समूह का ज्ञान सही हो।

(6) व्यवसाय-चयन के लिए आयु को अनदेखा नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यवसाय चयन पर आयु पर प्रभाव भी पड़ता है।

(7) व्यवसाय चयन के लिए बाह्य तत्वों पर और भी ध्यान देना आवश्यक है, यह बाहरी तत्व हैं—बेरोजगारी, उपलब्ध व्यवसाय, व्यवसायों के सामाजिक मूल्य तथा मान्यताएँ आदि।

इस प्रकार व्यावसायिक चयन के सिद्धान्त के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी व्यवसाय को पसन्द करना या पसन्द न करना किसी एक बात पर नहीं बल्कि अनेक तत्वों पर निर्भर करता है। व्यावसायिक चयन के सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की स्थिति में ही लागू होते हैं। बेरोजगारी की स्थिति में व्यक्ति को अपनी पसन्द एवं रूचि के व्यवसाय को ही स्वीकार करना पड़ता है चाहे वह व्यवसाय व्यक्ति की पसन्द या रूचि का है या नहीं।

नोट

(3) जिन्जर्बग का सिद्धान्त (Ginzbergs Theory)—**जिन्जबर्ग** ने व्यवसाय चयन प्रक्रिया को तीन स्तरों में बाँटा है। यह स्तर निम्नलिखित हैं—

(अ) **कल्पनाएँ** (Fantasy)—**जिन्जबर्ग** ने कहा है कि व्यावसायिक विकास प्रक्रिया बालक के जन्म से ही आरम्भ हो जाती है। और यह जीवन भर चलती हैं। व्यावसायिक विकास का अध्ययन बालकों की सात वर्ष की आयु से ही सम्भव हो सकता है। कल्पनाओं (Fantasies) का काल बच्चे की 11 वर्ष की आयु तक के काल को कहा जाता है।

(ब) **सम्भावित चयन** (Tentative Choices)—सम्भावित चयन की आयु 11 से 17 वर्ष की होती है। **जिन्जबर्ग** के अनुसार सम्भावित चयन सतर को भी तीन उप-स्तरों में बाँटा जा सकता है। यह स्तर इस प्रकार हैं—

1. **रूचि स्तर** (Interests Stage)—इस स्तर पर बालक अपनी रूचियों का विकास करता है, इसलिए इसे रूचि स्तर कहा जाता है।
2. **क्षमता स्तर** (Capacity Stage)—रूचि स्तर के विकास के पश्चात् बालक अपनी क्षमताओं की ओर ध्यान देना शुरू करता है।
3. **मूल्य स्तर** (Value Stage)—क्षमता स्तर के पश्चात् बालक अपने मूल्यों का अध्ययन करता है एवं विश्लेषण करता है, अत: इसे मूल्य स्तर कहा जाता है।

(स) **वास्तविक चयन** (Realistic Choice)—17 वर्ष से ऊपर की आयु वास्तविक चयन की आयु कहलाती है। *जिनजबर्ग* ने सम्भावित चयन की तरह ही वास्तविक चयन स्तर को भी तीन उप-स्तरों में बाँटा है। यह उप-स्तर इस प्रकार हैं—

1. **खोज स्तर** (Exploration Stage)—इस स्तर के अन्तर्गत बालक सबसे पहले विभिन्न व्यवसायों की खोज करता है। इसलिए इसे खोज स्तर कहा गया है।
2. **निश्चयीकरण स्तर** (Crystallization Stage)—इस द्वितीय स्तर पर बालक अपनी पसन्द का निश्चयीकरण करता है। अर्थात् इस स्तर पर बालक विभिन्न व्यवसायों की खोज करके यह निश्चित करता है कि उसको किस दिशा की ओर आगे बढ़ना है।
3. **विशिष्टीकरण स्तर** (Specification Stage)—अन्त के इस स्तर में बालक व्यवसायों के विशिष्ट समूह को ग्रहण करता है। इसीलिए इस आयु को विशिष्टीकरण स्तर कहा जाता है।

(4) जिन्जबर्ग के व्यावसाय चयन के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of ginzberg's Theory of Vocational Choices)—*जिन्जबर्ग* के चयन का सिद्धान्त सुपर की आलोचना से प्रभावित हुआ है। *सुपर* ने व्यवसाय चयन और व्यावसायिक विकास के लिए अधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण बालकों की चर्चा की है। यह महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं—

(1) *सुपर* के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में योग्यता, रूचि तथा व्यक्तित्व की दृष्टि से विभिन्नताएँ आवश्यक रूप से होती हैं।

(2) इन विभिन्नताओं के परिणामस्वरूप ही विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न व्यवसायों के प्रति रूचियों का विकास होता है।

(3) *सुपर* के अनुसार, समय तथा अनुभवों के साथ-साथ हमारी रूचियों तथा व्यावसायिक साधनों में परिवर्तन आते रहते हैं।

(4) प्रत्येक व्यवसाय के लिए भिन्न-भिन्न योग्यताओं, व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं तथा कुशलताओं की आवश्यकता पड़ती है।

(5) *सुपर* ने व्यावसायिक चयन की प्रक्रिया को इस क्रम में अभिव्यक्त किया है—

(*i*) कल्पनाएँ, सम्भव्य पसन्द तथा व्यवसायों की वास्तविक खोज,

नोट

(*ii*) विभिन्न प्रयास तथा व्यावसायिक चयन का स्थाई स्तर।

(6) व्यावसायिक दिशा निर्धारित करने के लिए विभिन्न कारक उत्तरदायी होते हैं। जैसे–परिवार की सामाजिक–आर्थिक स्थिति, व्यक्ति की मानसिक योग्यताएँ, व्यक्तित्व की विशेषताएँ, अन्य परिवार जनों के व्यवसाय आदि।

(7) व्यावसायिक विकास का सामूहिक निर्देशन सम्भव है। व्यावसायिक विकास की प्रक्रिया में व्यक्ति की योग्यताओं, रूचियों तथा कुशलताओं की परिपक्वता (Maturity) तथा आत्मानुभूति (Self-realization) को बोध करा देना बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं।

(8) कार्य में सन्तोष प्राप्त करना तथा अपने जीवन से संतुष्ट होना इस बात पर निर्भर करते हैं कि व्यक्ति अपने व्यवसाय में अपनी योग्यताओं, रूचियों, व्यक्तित्व के गुण (Personality Traits), मूल्यों तथा मान्यताओं का सही उपयोग कर पाता है या नहीं।

(5) सुपर का व्यावसायिक चयन का सिद्धान्त (Vocational Choice Theory by Super)–डोनाल्ड ई. सुपर (Donald E. Super) ने अपनी पुस्तक 'व्यवसायों का मनोविज्ञान' (The Psychology of Careers) नामक पुस्तक में व्यावसायिक चयन के सिद्धान्त का वर्णन किया है। *सुपर* ने अपने इस सिद्धान्त को निम्नलिखित आयु–वर्गों में बाँटा हैं–

(अ) **वृद्धि** (Growth)–यह वर्ग 15 वर्ष की आयु तक का है। इस वर्ग में निम्नलिखित अवथाएँ शामिल हैं–

(1) कल्पनात्मक अवस्था (Fantasy Stage)–4 से 10 वर्ष तक।

(2) रूचि अवस्था (Interest Stage)–13 से 14 वर्ष के मध्य।

(ब) **अन्वेषण** (Exploration)–अन्वेषण की अवस्था 15 से 24 वर्ष के मध्य की होती है इसकी भी निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ होती हैं–

(1) सम्भाव्य अवस्था (Tentative Stage)–15 से 17 वर्ष के बीच।

(2) संक्रमण अवस्था (Transition Stage)–18 से 21 वर्ष के बीच।

(3) प्रयास अवस्था (Trial Stage)–22 से 24 वर्ष के बीच।

(स) **स्थापन** (Estabilishment)–यह अवस्था 25 से 40 वर्ष के मध्य की अवस्था होती है। इसमें निम्नलिखित चरण आते हैं–

(1) प्रयास अवस्था (Trial Stage)–25 से 30 वर्ष के बीच।

(2) स्थायीकरण अवस्था (Stabilization Stage)–30 से 40 वर्ष के बीच।

(द) **व्यवस्थापन** (Maintenance)–यह अवस्था 45 से 64 वर्ष के बीच की अवस्था बताई गई है।

(य) **पतन** (Decline)–यह अवस्था 65 वर्ष के उपरान्त की अवस्था है।

(6) व्यावसायिक चयन का हैविंघर्स्ट का सिद्धान्त (Theory of Vocational Choice by robert havighurst)–रॉबर्ट हैविंघर्स्ट ने भी विभिन्न आयु स्तरों के आधार पर व्यावसायिक चयन के सिद्धान्त का वर्णन किया है। हैवीघर्स्ट द्वारा बताए गए सिद्धान्त के अनुसार व्यावसायिक विकास की अवस्थाएँ निम्न प्रकार से हैं–

(अ) **पहिचान की अवस्था** (Identification Stage)–इस अवस्था की आयु अवधि 5 से 10 वर्ष के बीच की है। इस अवस्था में बालक अपने परिवार के किसी सदस्य से सम्पर्क स्थापित कर लेता है। सामान्यत: वह सदस्य पिता ही होता है। बालक परिवार में पिता की भूमिका को देखता है तथा उसका अनुसरण करने लगता है।

(ब) **अर्जित करने की अवस्था** (Acquisition Stage)–यह अवस्था 10 से 15 वर्ष के मध्य ही होती है। इस अवस्था में बालक उन सभी गुणों तथा योग्यताओं को अर्जित करने में व्यस्त रहता है। जिसके आधार पर वह सफल होने का स्वप्न देखता है। यह वही अवस्था होती है जब बालक अपना दायित्व समझने लगता है। कार्यों के प्रति बालक की स्वयं की धारणा विकसित हो जाती है। यहाँ पर कार्यों से अभिप्राय घर तथा विद्यालय के कार्यों से है।

(स) **व्यावसायिक अवस्था** (Vocational Stage)–यह अवस्था 15 से 25 वर्ष तक की गई है। इस अवस्था में बालक अपने व्यवसाय के बारे में पूर्ण तथा स्पष्ट निर्णय लेता है और उसे प्राप्त करने की तैयारी में लग जाता है।

(द) **उत्पादक अवस्था** (Productive Stage)—उत्पादक अवस्था की अवधि 25 से 40 वर्ष है। इस अवस्था में व्यक्ति अपनी कार्यकुशलता (Efficiency) के शिखर पर पहुँचता है। व्यक्ति अपनी उत्पादकता को 40 से 70 वर्ष की आयु तक बनाए रखने का प्रयत्न करता है। इसी अवधि में व्यक्ति अपने व्यवसाय में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के प्रयास में रहता है।

(7) संरचनात्मक सिद्धान्त (Structural Theory)—इस सिद्धान्त का आधार यह विचार है कि कोई भी व्यक्ति किसी विशिष्ट व्यवसाय में क्यों लग जाता है। अर्थात व्यावसायिक चयन के पीछे ऐसे कौन से व्यक्तिगत गुण या विशेषताएँ होती हैं जो किसी व्यक्ति को एक विशेष व्यवसाय के चयन के लिए प्रेरित करती हैं। *ऐनी रो* (Anne Roe) के मतानुसार, बाल्यावस्था के अनुभवों का सम्बन्ध इच्छाओं एवं आवश्यकताओं से जुड़े होते हैं। इन आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति बाल्यावस्था में ही होने से व्यक्ति को व्यवसाय-चयन के लिए अभिप्रेरणा (Motivation) मिलती है। *रो* के अनुसार ही व्यक्ति की योग्यता और कार्यकुशलता के निर्धारण में उसके बाल्यकाल (Childhood) की बौद्धिक योग्यता (Intellectual Ability) तथा परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती है। संक्षेप में यह कह सकते हैं। व्यवसायिक चयनों में व्यक्ति की बाल्यावस्था से जुड़े संरचनात्मक कारणों (Structural Causes) की भूमिका होती है।

व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया (Process of Vocational Guidance)

निर्देशन प्रदाता को, व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करते समय दो बातों पर ध्यान रखना होता है–

(1) व्यवसाय हेतु वांछनीय योग्यताओं की सूची– किसी व्यवसाय हेतु किस स्तर का स्वास्थ्य होना आवश्यक है? कितनी एवं किस स्तर की बुद्धि लब्धि होनी चाहिए? व्यक्ति में किस प्रकार की क्षमताएँ, रूचियाँ एवं अभिरूचियाँ होनी चाहिए? किस स्तर की शिक्षा होनी चाहिए? कितने समय का अनुभव आवश्यक है? इत्यादि।

(2) व्यक्ति व्यवसाय हेतु कितना उपयुक्त एवं अनुकूल है?– व्यवसाय का अध्ययन करने हेतु पूर्व में ही एक सूची तैयार कर ली जाती है कि उस व्यवसाय हेतु किस स्तर की बुद्धि, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अनुभव की आवश्यकता है? प्रत्येक निर्देशन प्रदाता को, सभी व्यवसायों से सम्बन्धित इस प्रकार की सूचनाओं को तैयार करके अपने पास रखना चाहिए।

लेकिन व्यक्ति का अध्ययन किस प्रकार किया जाए? यह एक अत्यन्त कठिन प्रश्न है। व्यक्ति का अध्ययन करने हेतु निम्नलिखित पद्धतियों अथवा विधियों को प्रयुक्त किया जा सकता है–

(1) प्राथमिक साक्षात्कार,

(2) बौद्धिक स्तर का मापन,

(3) रूचि का मापन,

(4) व्यक्तित्व मापन, तथा

(5) अन्तिम साक्षात्कार।

(1) प्राथमिक साक्षात्कार—सबसे पहले निर्देशन प्रदाता को छात्र का प्राथमिक साक्षात्कार लेना चाहिए। प्राथमिक साक्षात्कार के माध्यम से छात्र के आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त, निर्देशन प्रदाता, छात्र के स्वास्थ्य, स्वर, सुनने की शक्ति नेत्रज्योति, छात्र के बाह्य सम्बन्धों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यह विवरण निम्न प्रकार है:–

1. छात्र का नाम,
2. छात्र की जन्मतिथि एवं आयु,
3. माता तथा पिता का नाम, धर्म, जाति तथा व्यवसाय,
4. अन्य भाई-बहिनों की संख्या तथा उस बालक का भाई-बहिनों में कौन-सा स्थान है?
5. परिवार के सदस्यों की शिक्षा,

नोट

6. परिवार की कुल आय एवं आय के स्रोत,
7. वंशानुक्रम रोग तथा शारीरिक अस्वस्थता,
8. विद्यालय, जिसमें शिक्षा प्राप्त की,
9. मित्र, तथा साथी, सहयोगी
10. रूचिकर खेल एवं हॉबीज तथा अन्य तथ्य।

(2) **बौद्धिक स्तर का मापन**—छात्र के सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त कर लेने के उपरान्त, निर्देशन प्रदाता को छात्र के बौद्धिक स्तर का मापन करना चाहिए। बौद्धिक स्तर का, निर्देशन में अत्यधिक महत्व है। यदा-कदा बौद्धिक स्तर के आधार पर ही व्यक्तियों का श्रेणी विभाजन कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ *सिरिल बर्ट* द्वारा किया गया श्रेणी विभाजन। उनके अनुसार 150 बुद्धि लब्धि उत्तम प्रशासक (130-150) बुद्धि लब्धि उत्तम टेक्नीशियन तथा निम्न श्रेणी के उत्तम प्रशासक तथा (115-130) बुद्धि लब्धि वाले व्यक्ति उत्तम निपुण श्रमिक होते हैं।

निर्देशन को बुद्धि का मापन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बुद्धि के मुख्यत: दो तत्व होते हैं—सामान्य बुद्धि तत्व, (2) विशिष्ट बुद्धि तत्व। अत: बुद्धि के सामान्य तत्वों को मापन अनेक बुद्धि परीक्षणों के माध्यम से किया जा सकता है यथा मौखिक बुद्धि परीक्षण, शक्ति एवं गति परीक्षण, सामूहिक बुद्धि परीक्षण इत्यादि। शाब्दिक बुद्धि परीक्षण, भाटिया बैटरी परीक्षण तथा *सोहन लाल* का सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग, निर्देशन प्रदाता द्वारा किया जा सकता है।

निर्देशन को, विशिष्ट बुद्धि तत्वों का मापन करने हेतु, अलग-अलग परीक्षणों का प्रयोग करना चाहिए यथा—

1. **कला योग्यता**—'मैक डौरी कला परीक्षण' "The McAdory Art Test"
2. **संगीत योग्यता**—'सीशेर संगीत परीक्षण' "Seashore Musical Test"
3. **लिपिक योग्यता**—
   (*i*) 'मिनीसोटा व्यावसायिक लिपिक परीक्षण Minnesota Vocational Test for Clerical Works
   (*ii*) 'डैटराइट लिपिक प्रवणता परीक्षण' Detroit Clerical Aptitude Examination.
   (*iii*) 'थर्स्टन लिपिक कार्य परीक्षण' "Thurston Examination in Clerical Work."
4. **यांत्रिक योग्यता**—
   (*i*) 'मिनीसोटा मिकैनीकल परीक्षण' Minnesota Mechanical Assembly Test.
   (*ii*) स्टर्नक्वास्ट मिकैनीकल प्रवणता परीक्षण (Stenquist Test for Mechanical Atitude)
   (*iii*) ओ राउर मिकैनीकल प्रवणता परीक्षण (O' Rourke Mechanical Aptitude Tests)
   (*iv*) डैटराइट मिकैनीकल प्रवणता परीक्षण (Detriot Mechanical Aptitude Test)

(3) **रूचि का मानक**—बालक को निर्देशन प्रदान करने के लिए, निर्देशन प्रदाता को, उस बालक की रूचियों के सम्बन्ध में भी ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। रूचि के मापन के माध्यम से यह पता लगाया जाता है कि किसी व्यक्ति में कोई कार्य को करने की रूचि है अथवा नहीं। इसके लिए निर्देशन विभिन्न रूचि, अनुसूचियों का प्रयोग कर सकता है यथा—

1. स्ट्रोग की व्यावसायिक रूचि अनुसूची
2. हेपनर की व्यावसायिक रूचि अनुसूची
3. क्लीटन की व्यावसायिक रूचि अनुसूची
4. कूटर का अधिमान आलेख
5. स्टीवार्ड एवं ब्रेनार्ड की विशिष्ट रूचि अनुसूची

नोट

6. थर्सटन अभिरूचि अनुसूची (Thurston Interest Schedule)
7. ली-थ्रैप अनुसूची (Lee-Thorpe Inventory)
8. मैनसन व्यावसायिक अभिरूचि अनुसूची (Manson's Occupational Interest Blank)
9. ओबरटन व्यावसायिक अभिरूचि अनुसूची
10. गोरस्टान सिमौण्ड अभिरूचि प्रश्नावली (Gorreston and Symond's Interests Questionnaire)
11. गिलफोर्ड-जिमरमैन अभिरूचि सर्वेक्षण (Guilfford and Zimmerman Interest Survey)

(4) **व्यक्तिगत मापन**—बुद्धि के दोनों तत्वों, रूचियों का मापन मान करने के उपरान्त, निर्देशन प्रदाता को बालक के व्यक्तित्व का मापन भी करना चाहिए। व्यक्तित्व का मापन करने के लिए निर्देशक निम्नलिखित विधियों का प्रयोग कर सकता है—

(अ) व्यक्तित्व अनुसूचियाँ (Personality Inventory)

1. रूचि मापन अनुसूचि (Interest Inventory)
2. अभिवृत्ति मापन अनुसूची (Attitude Inventory)
3. व्यक्तिगत वर्गीकरण अनुसूची (Personality Inventory)
4. समायोजन मूल्यांकन अनुसूची (Adjustment Inventory)
5. शीलगुण मापन अनुसूची (Amicable Inventory)
6. मूल्य मापन अनुसूची (Value Inventory)

(ब) प्रक्षेपण विधियाँ (Projective Technique)

1. रोशा का स्याही के धब्बों का परीक्षण
2. सी. ए. टी. (Children Apperception Test = CAT)
3. टी. ए. टी. (Thematic Apperception Test = TAT)
4. मनोनाटक प्रविधि (Psychodrama Technique)
5. मनोविश्लेषण प्रविधि (Psychoanalysis Technique)
6. वाक्य पूर्ति प्रविधि (Sentence Completion Test)
7. पी. एफ. स्टडी (P. F. Study)
8. परिस्थिति परीक्षण (Situation Test)
9. शब्द साहचर्य परीक्षण (Words Association) तथा
10. ट्रेवर, जान्सटन प्रक्षेपण परीक्षण (Travere Projective Test)

(स) अन्य विधियाँ (Other Techniques)

1. एकल इतिहास प्रविधि (Case History Technique)
2. निर्णय मापदण्ड प्रविधि (Judgement Technique)
3. अनुसूची (Inventory)
4. वाक्य पूर्ति प्रविधि (Sentence Completion Test)
5. प्रश्नावली प्रविधि (Questionnaire Technique)
6. आत्मकथा प्रविधि (Auto criticism Technique)
7. समाजमिति प्रविधि (Sociometry)
8. हस्तलेखन परीक्षण (Hand Writing Test)

नोट

इस प्रकार के छात्र के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के उपरान्त, निर्देशक को निष्कर्ष निकालना चाहिए।

(5) **अन्तिम साक्षात्कार**—बालक का समस्त प्रकार से मापन करने के उपरान्त अन्त में निर्देशक को वापिस एक साक्षात्कार छात्र से करना चाहिए। यदि निर्देशन में कोई शंका रह गई हो तो उस संदेह का समाधान अन्तिम साक्षात्कार में कर लिया जाता है। अन्त में, निर्देशन प्रदाता को उस छात्र के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट लिखकर प्रस्तुत करनी चाहिए।

विद्यालय का उत्तरदायित्व (Responsibility of the School)

विद्यालय का, निर्देशन के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है विद्यालय के उत्तम प्रशासन के लिए, प्रधानाचार्य, दायित्वपूर्ण प्रशासक होना चाहिए, जिससे विद्यालय के समस्त कार्य सुचारुपूर्वक चल सकें। प्रधानाचार्य के योग्य एवं उत्तम प्रशासक होने पर ही, निर्देशन सम्बन्धी समस्त कार्य, सफलता के साथ किए जा सकते हैं क्योंकि समस्त संस्थाएँ प्रधानाचार्य के माध्यम से ही कार्य करती है। इस प्रकार निर्देशन कार्यक्रम का मुख्य व्यक्ति प्रधानाचार्य ही होता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रधानाचार्य का निर्देशन में विश्वास हो तथा मन से निर्देशन कार्यक्रम को प्रोत्साहन देता हो। प्रधानाध्यापक विद्यालय में समुचित वातावरण बना सकता है, परामर्श के माध्यम से वह समस्त शिक्षकों में कार्य का विभाजन कर सकता है, कार्यक्रम की सफलता के बारे में, उपबोधक की सहायता से जानकारी प्राप्त कर सकता है तथा कार्यक्रम की कठिनाइयों को दूर कर सकता है।

लेकिन यह मान लेना कि अकेला प्रधानाचार्य ही समस्त कार्यो को कर सकता है, बहुत बड़ी भूल होगी, क्योंकि किसी भी प्रकार का कार्य अथवा कोई भी कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि समस्तकार्यकर्ता अपना सहयोग प्रदान न करें। प्रधानाचार्य निर्देशन योजना को लागू कर सकता है, निर्देशन योजना को प्रकाशित कर सकता है, लेकिन यथार्थ रूप में उस योजना की क्रियान्विति शिक्षक वर्ग ही करता है। अतः यह कहना सत्य है कि निर्देशन कार्यक्रम में विद्यालय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

विद्यालय में विद्यार्थियों की व्यक्तिगत समस्याओं का निराकरण सहजता से हो सकता है। विद्यालय के अतिरिक्त अन्य कोई भी संस्था, विद्यार्थी की व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान नहीं कर सकती है।

विद्यालय ही एकमात्र ऐसी संस्था है, जिसमें विद्यार्थी से संबंधित सूचनाओं को संकलित कर सकता है तथा सूचनाओं के आधार पर विद्यार्थी के बारे में निष्पक्ष सुझाव प्रदान कर सकता है।

इस वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विद्यालय व्यावसायिक निर्देशन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकते हैं।

मेयर्स द्वारा विद्यालय में एक सफल व्यवसाय निर्देशन सेवा योजना के लिए आठ प्रकार की सेवाओं का उल्लेख किया गया है। यह आठ सेवाएँ निम्नलिखित हैं–

1. आत्म-विश्लेषण सेवा,
2. अनुसन्धान सेवा,
3. समायोजन सेवा तथा अनुगामी सेवा,
4. स्थापन सेवा,
5. परामर्श सेवा,
6. व्यवसाय क्षेत्र सूचना सेवा,
7. व्यक्तिगत आंकड़े संकलन सेवा, तथा
8. व्यवसाय तैयारी सेवा।

1. आत्म विश्लेषण सेवा—विद्यार्थियों की योग्यताओं के अनुकूल सूचनाओं को इस सेवा द्वारा संकलित किया जाता है। विद्यार्थियों की योग्यता, रूचि, अभिरुचि, सीमा, व्यक्तिगत उत्तरदायित्व, क्षमता तथा व्यक्तित्व के अनुरूप सूचनाओं को ही उन सूचनाओं में सम्मिलित किया जाता है। आत्म विश्लेषण सेवा के द्वारा व्यक्ति को स्वयं के

बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है। सुकरात के अनुसार 'स्वयं को देखो' एक कहावत है तथा आत्मविश्लेषण स्वयं के सम्बन्ध में जानकारी करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अत: जीवन में सफलता अर्जित करने के लिए इन सेवाओं का अत्यन्त महत्व है।

2. अनुसन्धान सेवा—विद्यालय में, व्यवसाय निर्देशन योजना में सुधार करना तथा निर्देशन की नवीन विधियों की खोज करना, अनुसन्धान सेवा का मुख्य कार्य अनुसन्धान सेवा नवीन प्रयोग कर, नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती है। तथा प्रचलित विधियों की कमियों को दूर करती है।

3. समायोजन सेवा—विद्यार्थी को, व्यवसाय में प्रविष्टि कराने के उपरान्त, उस विद्यार्थी से उसके व्यावसायिक-जीवन में सम्पर्क रखकर, अपनी सफलताओं एवं असफलताओं के सम्बन्ध में जानकारी करना, विद्यालय का कार्य हो जाता है। इस कार्य के द्वारा विद्यालय अपनी सेवाओं का मूल्यांकन सहजता से कर सकता है।

4. स्थापन सेवा—व्यवसाय चयन एवं प्रशिक्षण के पश्चात छात्र को उपयुक्त व्यवसाय में प्रविष्ट कराने का कार्य, स्थानापन सेवा का हो जाता है। समुचित स्थान की प्राप्ति में सहायता की आवश्यकता छात्र को अनुभव होती है। सम्पूर्ण निर्देशन योजना, स्थापन सेवा के अभाव में असफल हो सकती है।

5. परामर्श सेवा—उपबोधक सेवा के द्वारा विद्यार्थी अपनी क्षमताओं एवं योग्यताओं का मूल्यांकन व्यवसाय के अवसर तथा वांछनीय योग्यताओं के आधार पर कर सकने में सफल हो सकता है। इस सेवा में उपबोधक को सेवार्थी की क्षमताओं, योग्यताओं तथा उसके लिए प्रस्तुत अवसरों एवं सुविधाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है।

6. व्यवसाय के अनुरूप सूचना सेवा—व्यवसाय से सम्बद्ध विभिन्न सूचनाओं, व्यवसाय के अनुसार सूचना सेवा के माध्यम से संकलित की जाती है। अत: विद्यालय का यह एक महत्वपूर्ण कार्य हो जाता है कि वह विभिन्न व्यवसायों से सम्बद्ध सूचनाओं का संकलन कर, विद्यार्थियों को उनसे परिचित कराए। व्यवसाय का महत्व, कार्य के लिए योग्यता, कार्य के लिए प्रशिक्षण एवं अनुभव, कार्य की दशाएँ, कार्य की अवधि, कार्य के लिए वैयक्तिक क्षमताओं की आवश्यकता इत्यादि अनेक प्रकार की सूचनाओं को व्यवसायानुसार सूचना सेवा द्वारा एकत्रित किया जाता है। व्यवसाय के अनुरूप सूचनाएँ छात्रों को विभिन्न प्रकार से प्रदान की जा सकती हैं।

1. पाठ्य विषय के द्वारा
2. चित्र के द्वारा
3. रेडियो एवं दूरदर्शन के द्वारा
4. पुस्तकों के द्वारा
5. देशाटन उद्योगों का भ्रमण
6. फिल्म, स्लाइड्स के द्वारा
7. वाद-विवाद के द्वारा, तथा
8. भाषण के माध्यम से।

7. व्यक्तिगत आँकड़ों संकलन सेवा—उपबोधन सेवा को सहायता प्रदान करना, इस सेवा का मुख्य कार्य है। उपबोधक को चाहिए कि वह जिस किसी भी छात्र अथवा सेवार्थी को परामर्श प्रदान करे, उसके बारे में समस्त सम्बन्धित आँकड़ों का संकलन करें।

8. व्यवसाय तैयारी सेवा—व्यवसाय तैयारी सेवा के द्वारा छात्र को व्यवसाय में प्रविष्ट होने से पूर्व वांछनीय प्रशिक्षण एवं सुविधाओं से परिचित कराया जाता है। पर्याप्त मात्रा में प्रशिक्षण पर ही किसी भी व्यवसाय की सफलता निर्भर करती है। प्रशिक्षण प्राप्त करने, में विद्यार्थियों को सहायता की आवश्यकता होती है कि यह प्रशिक्षण कैसे, कब, क्यों एवं कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में छात्रों को सूचना प्रदान करना, परामर्श सेवा का कार्य है।

टास्क व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता क्यों है?

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Option)–

1. व्यावसायिक निर्देशन का मुख्य उद्देश्य है–
   (क) व्यवसाय का चयन (ख) व्यवसाय में निरन्तर प्रगति
   (ग) विषयों का चयन (घ) उपरोक्त सभी
2. व्यावसायिक निर्देशन का विशेष सम्बन्ध होता है–
   (क) वर्तमान से (ख) भविष्य से
   (ग) अतीत से (घ) किसी से नहीं
3. व्यावसायिक निर्देशन में विशेष महत्व होता है–
   (क) बुद्धि परीक्षण (ख) प्रवणता परीक्षण
   (ग) शैक्षिक परीक्षण (घ) व्यक्तित्व परीक्षण
4. व्यावसायिक निर्देशन में मुख्य सेवा है–
   (क) स्थापन सेवा (ख) अनुगामी सेवा
   (ग) दोनों को ही (घ) किसी को नहीं
5. व्यावसायिक निर्देशन में विशेष योगदान रहा है–
   (क) डोनाल्ड सुपर का (ख) जी. ई. मेयर्स का
   (ग) फ्रेंक पारसन का (घ) उपरोक्त सभी का
6. व्यावसायिक निर्देशन के उपकरण है–
   (क) सामान्य प्रवणता परीक्षण (ख) विशिष्ट प्रवणता परीक्षण
   (ग) विभेदीकरण प्रवणता परीक्षण (घ) उपरोक्त सभी।

6.3 सारांश (Summary)

- विद्यार्थियों के स्वभाविक एवं समुचित विकास हेतु शिक्षा का विशेष महत्व है, परन्तु शिक्षा के द्वारा वांछित विकास की दिशा में अग्रसरण केवल तभी संभव है जब प्रत्येक बालक को अपनी वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनुरूप विकास का अवसर प्राप्त हो।
- शिक्षा के सहगामी अंश के रूप में विद्यार्थी के समक्ष उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान हेतु उसे सक्षम बनाने तथा उसकी रूचि स्तर योग्यता आदि के अनुरूप शिक्षण-अधिगम की परिस्थितियों का चयन करने में निर्देशन सहायक है।
- शिक्षा की समस्त प्रक्रिया में अधिगम ही वह आधार होता है जिसकी दिशा में समस्त प्रयास किए जाते हैं तथा जिसके द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि किए गए प्रयास किस सीमा तक सफल रहे हैं।
- **शिक्षा निर्देशन की विशेषताएँ:** शिक्षा निर्देशन की इन परिभाषाओं में इसकी विशेषताओं, कार्यो एवं उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है। शिक्षा निर्देशन की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–
  (1) शिक्षा निर्देशन विवेकपूर्ण प्रयास है जिससे छात्रों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायता की जाती है।
  (2) वह सभी अनुदेशन, शिक्षण तथा अधिगम की क्रियायें जो छात्र के विकास में सहायक होती है शिक्षा निर्देशन का अंग होती हैं।
  (3) शिक्षा निर्देशन के अन्तर्गत छात्रों की योग्यताओं एवं शक्तियों के अनुरूप अधिगम परिस्थितियों की व्यवस्था की जाती है।

नोट

(4) शिक्षा निर्देशन का सम्बन्ध विद्यालय की समस्त क्रियाओं पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों, अनुदेशन सामग्री, परीक्षा प्रणाली, विद्यालय का वातावरण आदि सभी, कार्यक्रमों की समस्याओं से होता है।

- **शिक्षा निर्देशन की आवश्यकता:** वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति तथा मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के फलस्वरुप, शैक्षिक जगत में अनेक नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं।
- इन समस्याओं के समाधान के लिए शैक्षिक निर्देशन का उपयोग आवश्यक है संक्षेप में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता अग्रलिखित दृष्टियों से है–

(1) पाठ्यक्रम से सम्बन्धित विषयों का चयन,

(2) अग्रिम शिक्षा के सम्बन्ध में जानकारी।

- **प्राथमिक स्तर पर निर्देशन:** प्राथमिक स्तर के बालकों को अन्य स्तरों की अपेक्षा अधिक एवं सतत् निर्देशन की आवश्यकता होती है। परिवार के मुक्त वातावरण से पाठशाला का जीवन सर्वथा भिन्न होता है। इस स्तर पर आत्मानुशासन की प्रवृत्ति का विकास एवं पर्याप्त बोध गम्यता विकास सहज में ही सम्भव नहीं होता है अत: पग-पग पर बालक के समक्ष आने वाली समस्याओं का समाधान तथा अधिगम की दिशा में उसकी रूचि को निरन्तर बनाए रखना आवश्यक होता है। यह एक ऐसा स्तर होता है जब बालक के प्रत्येक व्यवहार एवं प्रत्येक जिज्ञासा का ध्यान रखा जाना चाहिए। बालकों के प्रति अनपेक्षित कठोर व्यवहार उनमें स्थायी रूप से भय का संचार कर सकता है। उनके प्रति उपेक्षा का भाव उन्हें अनेक प्रकार के दुराभ्यासों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है तथा वह कुसमायोजन की प्रवृत्ति हो सकती है।
- इस स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) निर्देशन कार्यक्रमों के माध्यम से बालकों में शिक्षा के प्रति रूचि जागृत करना, जिससे वे अपने अध्ययन क्रम को निरन्तर आगे बढ़ा सकें।

(2) बालकों को अपने भविष्य से सम्बन्धित शैक्षिक योजना का निर्माण करने में सहायता प्रदान करना।

- इस स्तर पर निर्देशन कार्यों से सम्बन्धित प्रमुख क्रियाएँ निम्नलिखित हैं–

1. विद्यालयी आवश्यकताओं की जानकारी प्रदान करना।
2. विद्यार्थियों से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्र करना।

- **शिक्षा निर्देशन के उद्देश्य:** व्यक्ति के शैक्षिक परिवेश एवं उसमें प्राप्त सम्भावनाओं, अपेक्षाओं एवं विशेषताओं से, शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध होता है। आज हमारे देश के विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पाठ्यचर्याओं, पाठ्यक्रमों एवं अधिगम के साधनों का प्रावधान किया है, वह अपनी विभिन्नता की दृष्टि से विशेषता रखती है।
- शैक्षिक निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य प्रतिपादित किए गए हैं–

1. विद्यार्थियों को अपनी योग्यता, प्रवणता एवं रूचि के अनुसार पाठ्यक्रमों के चयन में तथा उनके लिए अपेक्षित तैयारी में सहायता करना।
2. छात्रों को, राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरों पर आयोजित, विभिन्न प्रकार की प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु अपेक्षित तत्परता व तैयारी के सम्बन्ध में, आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करना।

- **शिक्षा निर्देशन के विशिष्ट कार्य (Specific Functions of Educational Guidance):** शिक्षा निर्देशन के मुख्य रूप से चार कार्य हैं, जो परस्पर सम्बन्धित होते हैं–

(1) विद्यार्थियों की रूचि, क्षमता एवं साधनों के अनुरूप शिक्षा की योजना बनाना और समुचित पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रमों का चयन करने में विद्यार्थियों को सहायता प्रदान करना।

(2) वर्तमान विद्यालय स्तर से ऊपर तथा पृथक छात्रों की शैक्षिक सम्भावनाओं को ज्ञान करने में विद्यार्थियों की सहायता करना।

नोट

- **शिक्षा निर्देशन के सिद्धान्त (Principles of Educational Guidance):** शिक्षा निर्देशन के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

  (1) निर्देशन समस्त छात्रों को उपलब्ध होना चाहिए।

  (2) समस्या का समाधान, प्रारम्भ में ही होना चाहिए।

- व्यावसायिक निर्देशन के आशय पर (1924) में **'नेशनल वोकेशनल गाइडेंस एसोसिएशन'** के द्वारा उल्लेख किया गया। इस ऐसोसिएशन ने अपनी रिपोर्ट में व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित करते हुए लिखा कि "व्यवसाय निर्देशन के व्यवसाय को चुनने, उसके लिए तैयार करने, उसमें प्रवेश करने तथा उसमें विकास करने हेतु सूचना देने, अनुभव देने तथा सुझाव देने की प्रक्रिया है।"

- **व्यावसायिक निर्देशन की विशेषताएँ (Characteristics of Vocational Guidance):** निर्देशन की उपरोक्त सभी परिभाषाओं का अध्ययन करने के उपरान्त इसकी कुछ विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं जो निम्नलिखित हैं–

  1. व्यावसायिक निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति में सम्बन्ध से स्पष्ट बोध विकसित किया जा सकता है। इसके आधार पर व्यक्ति को यह ज्ञात हो जाता है कि उसका वास्तविक स्वरूप क्या है?
  2. व्यावसायिक निर्देशन के आधार पर कार्य के स्वरूप एवं कार्य से सम्बन्धित व्यक्तियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है।

- **व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता (Needs for Vocational Guidance):** वैयक्तिक भिन्नताओं एवं व्यवसायों को विविधता के कारण व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया का उपयोग करना अत्यन्त आवश्यक होता है। संक्षेप में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है। (1)वैयक्तिक भिन्नताओं की दृष्टि से, (2) व्यावसायिक भिन्नता की दृष्टि से, (3) समाज की परिवर्तित दशाएँ।

- **व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य:** व्यावसायिक-निर्देशन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

  (1) विद्यालयों में व्यवसाय से सम्बन्धित सूचनाओं को विश्लेषण करने की योग्यता एवं क्षमता विकसित करना।

  (2) सत्यनिष्ठता से किया गया कार्य सदैव सर्वोत्तम होता है कि भावना का छात्रों में विकास करना।

  (3) व्यक्ति के व्यवसाय चयन के पश्चात उसकी अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करना।

- इस आलोचना के आधार पर हालैंड ने सन् 1949 में अपना व्यावसायिक चयन का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के अनुसार, व्यावसायिक चयन निम्नलिखित कारकों का परिणाम होता है–

  (1) वंशानुक्रम (Heredity),

  (2) संस्कृति व सभ्यता (Culture and Civilization),

- **जिन्जबर्ग का सिद्धान्त** (Ginzbergs Theory)–**जिन्जबर्ग** ने व्यवसाय चयन प्रक्रिया को तीन स्तरों में बाँटा है। यह स्तर निम्नलिखित हैं–

  (अ) **कल्पनाएँ** (Fantasy); (ब) **सम्भावित चयन** (Tentative Choices)।

- *सुपर* ने व्यवसाय चयन और व्यावसायिक विकास के लिए अधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण बालकों की चर्चा की है। यह महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं–

  (1) *सुपर* के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में योग्यता, रूचि तथा व्यक्तित्व की दृष्टि से विभिन्नताएँ आवश्यक रूप से होती हैं।

  (2) इन विभिन्नताओं के परिणामस्वरूप ही विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न व्यवसायों के प्रति रूचियों का विकास होता है।

- निर्देशन प्रदाता को, व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करते समय दो बातों पर ध्यान रखना होता है–

नोट

(1) व्यवसाय हेतु वांछनीय योग्यताओं की सूची; (2) व्यक्ति व्यवसाय हेतु कितना उपयुक्त एवं अनुकूल है?

- विद्यालय का, निर्देशन के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है विद्यालय के उत्तम प्रशासन के लिए, प्रधानाचार्य, दायित्वपूर्ण प्रशासक होना चाहिए, जिससे विद्यालय के समस्त कार्य सुचारुपूर्वक चल सकें। प्रधानाचार्य के योग्य एवं उत्तम प्रशासक होने पर ही, निर्देशन सम्बन्धी समस्त कार्य, सफलता के साथ किए जा सकते हैं।
- **मेयर्स** द्वारा विद्यालय में एक सफल व्यवसाय निर्देशन सेवा योजना के लिए आठ प्रकार की सेवाओं का उल्लेख किया गया है। ये आठ सेवाएँ निम्नलिखित हैं— 1. आत्म-विश्लेषण सेवा, 2. अनुसन्धान सेवा, 3. समायोजन सेवा तथा अनुगामी सेवा, 4. स्थापन सेवा, 5. परामर्श सेवा, 6. व्यवसाय क्षेत्र सूचना सेवा, 7. व्यक्तिगत आंकड़े संकलन सेवा, तथा 8. व्यवसाय तैयारी सेवा।

6.4 शब्दकोश (Keywords)

- **अनुदेशन**—निर्देशन।
- **अवरोध**—रुकावट।

6.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. शैक्षिक निर्देशन का क्या अर्थ है? इसके प्रमुख कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. शैक्षिक निर्देशन के प्रमुख सिद्धांतों का विवेचन कीजिए।
3. व्यावसायिक निर्देशन की अवधारणा एवं विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
4. व्यावसायिक निर्देशन की भारतीय परिप्रेक्ष्य में उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख सिद्धांतों का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. सत्य	2. सत्य	3. असत्य	4. सत्य
	5. सत्य	6. सत्य।		
2.	1. (घ)	2. (ख)	3. (ख)	4. (ग)
	5. (ग)	6. (घ)।		

6.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*— डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)* – डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*— डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–7: विद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर पर निर्देशन सेवाएँ संगठित करना (Organizing Guidance Services at School and College level)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 निर्देशन कार्यक्रम का संगठन (Organization of the Guidance Programme)

7.2 विद्यालय में निर्देशन व्यवस्था (Organization of the Guidance in the School)

7.3 निर्देशन कर्मचारियों का उत्तरदायित्व (Responsibilities of Guidance Perssonnel)

7.4 विद्यालय निर्देशक सेवा द्वारा किये जाने वाले मुख्य कार्य (Main Functions of School Guidance Services)

7.5 महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर निर्देशन संगठन (Organization of Guidance at College and University Level)

7.6 महाविद्यालय स्तर पर निर्देशन सेवा संगठन की प्रारंभिक आवश्यकताएँ (Primary Needs of Guidance Organization Services)

7.7 सारांश (Summary)

7.8 शब्दकोश (Keywords)

7.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

7.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर निर्देशन सेवाओं के सांगठनिक स्वरूप एवं कार्यों का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। इस प्रक्रिया में निरन्तर शिक्षक की भूमिका का विशेष महत्व होता है। शिक्षक का प्रमुख कार्य शिक्षण करना है परन्तु मात्र शिक्षण कार्य में ही संलग्न रहकर वांछित विकास की प्रक्रिया को सम्पन्न कर पाना कठिन है। जब तक एक शिक्षक को यह ज्ञात नहीं होगा कि अधिगम व समायोजन से सम्बन्धित समस्यायें कौन सी हैं? कौन सा छात्र इन समस्याओं के समाधान के अभाव में पीछे रह गया है तथा इस प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु किस प्रकार सहायता प्रदान की जा सकती है? यह अपने निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता है। यदि शिक्षण एवं अधिगम की प्रक्रिया का वस्तुनिष्ठ रूप में विश्लेषण किया जाए तो हम

नोट

सहजता से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि शिक्षण से भी अधिक महत्वपूर्ण निर्देशन की प्रक्रिया है। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं को ध्यान में रखते हुए, प्रमुख स्थान दिया जाये। इसके लिये विद्यालयी छात्रों की समस्यओं के सन्दर्भ में उचित सहायता का प्रावधान एवं उसकी व्यावहारिक क्रियान्विति सम्भव है।

7.1 निर्देशन कार्यक्रम का संगठन (Organization of the Guidance Programe)

परामर्श देश में, विद्यालयी स्तर पर, निर्देशन कार्यक्रम संगठन जिस गति से हो रहा है वह सन्तोषजनक नहीं है। किसी भी विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम को संगठित करने से पहले निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है–

1. अभिभावकों एवं अन्य संस्थाओं की निर्देशन कार्यक्रम में रूचि है अथवा नहीं।
2. निर्देशन कार्यक्रम का गठन करने हेतु विद्यालय में समुचित स्थान की व्यवस्था हो सकेगी अथवा नहीं?
3. क्या विद्यालय के बजट में से, उपयोग में लाये जाने वाले विभिन्न परीक्षणों एवं सामग्री को खरीदा जा सकता है?
4. विद्यालय में कौन–कौन से शिक्षक, विभिन्न सेवाओं को आरम्भ करने हेतु योग्य हैं?
5. निर्देशन कार्यक्रम में कार्यक्षेत्रों तथा कार्य भार के आधार पर, कितने कर्मचारियों अथवा कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होगी।
6. क्या विद्यालयों के शिक्षकों के पास, शिक्षण–कार्य के अतिरिक्त समय, निर्देशन कार्य को करने हेतु रहता है?
7. विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थी की कौन–कौन सी तथा किस प्रकार की आवश्यकताएँ हैं? जिसकी पूर्ति हेतु उसी प्रकार से, कार्यक्रम के रूप को संगठित किया जा सके।

7.2 विद्यालय में निर्देशन व्यवस्था (Organization of the Guidance in the School)

विद्यालय में निर्देशन व्यवस्था के अन्तर्गत, शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर निर्देशन व्यवस्था का क्या अथवा कैसा रूप हो? इसके संबंध में प्रकाश डाला जायेगा। क्योंकि एक प्रकार की निर्देशन व्यवस्था समस्त विद्यालय में उपयोगी हो, यह आवश्यक नहीं है? अत: निर्देशन व्यवस्था में लचीलापन होना नितान्त आवश्यक है, जिससे विद्यालय के आर्थिक साधनों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप इसमें परिवर्तन किया जा सके।

1. प्रारम्भिक विद्यालयों की निर्देशन व्यवस्था,
2. माध्यमिक विद्यालयों की निर्देशन व्यवस्था, तथा
3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की निर्देशन व्यवस्था।

1. प्रारम्भिक विद्यालयों की निर्देशन व्यवस्था (Organization fo Guidance in Primary Level Schools)–प्राथमिक विद्यालयों अथवा प्राइमरी स्तर पर बालकों की समस्याएँ कम एवं अधिक गम्भीर नहीं होती हैं। अत: प्राथमिक स्तर पर शिक्षा द्वारा ही निर्देशन का कार्य किया जाता है। इस स्तर पर किसी प्रशिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता नहीं होती है। प्राइमरी स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम का कार्यभार प्रधानाध्यापक तथा अन्य शिक्षकों पर होता है। कक्षा–अध्यापक विद्यार्थियों के निकट रहता है, अत: वह बालकों की समस्याओं को भी समुचित प्रकार से समझता है। प्रधानाध्यापक तथा निर्देशन कार्य को पूरा करने हेतु, विद्यालय के बाहर की संस्थाओं तथा संस्थाओं से भी सहयोग प्राप्त करते हैं यथा–चिकित्सक, अभिभावक इत्यादि।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य– इस स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं–

नोट

1. **अवलोकन करना**-विद्यार्थियों की वैयक्तिक समस्याओं, आवश्यकताओं तथा गुणों का अवलोकन करना।
2. अवलोकन किये गये तथ्यों को **संचयी आलेख** पत्र में लिखना
3. उपस्थिति अधिकारियों के साथ **सहयोग** के साथ कार्य करना।
4. अभिभावकों एवं विद्यालयों के मध्य **मधुर सम्बन्ध** बनाना।
5. समस्त शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करना।
6. विद्यार्थियों की प्रगति का सतत् रूप में **मूल्यांकन** करना
7. विद्यालय की, तथा शिक्षा से बाहर की समस्याओं से ग्रस्त होने वाले विद्यार्थियों की पहचान करना यथा-ऐसे बालक जो सामाजिक अथवा सांवेगिक समायोजन करने में असफल रहते हैं। समस्यात्मक बालकों की पहचान करना।

2. माध्यमिक विद्यालयों की निर्देशन व्यवस्था (Organization of Guidance in High School)-इस स्तर पर निर्देशन व्यवस्था का रूप, व्यवस्थित एवं संगठित होता है। इन विद्यार्थियों में, निर्देशन कार्य में, निर्देशन समिति एवं निर्देशन प्रदात्ता, प्रधानाचार्य की सहायता करते हैं। बालकों के अभिभावकों एवं निर्देशन समिति से, शिक्षकों को सम्पर्क बनाना होता है। निर्देशन कार्य में मुख्य स्थान, निर्देशन प्रदात्ता का होता है।

3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की निर्देशन व्यवस्था (Organisation of Guidance in Higher Secondary Schools)-मुदालियर आयोग की संस्तुति के आधार पर देश के कुछ विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों को प्रमुखतः निर्देशन सहायता की आवश्यकता होती है। इसी स्तर पर विद्यार्थी विभिन्न व्यवसायों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। अतः उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में, निर्देशन क्रियाओं तथा निर्देशन कार्यकत्ताओं को अधिक आवश्यकता होती है। इन विद्यालयों में, प्रधानाचार्यों पर अत्यधिक कार्यभार होने के कारण, वे निर्देशन कार्यों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दे पाते हैं। अतः प्रधानाचार्य द्वारा निर्देशन कार्य के संगठन के कार्यों को निर्देशन-संचालक अथवा निर्देशन प्रदाता को सौंप दिया जाता है। इस कार्य हेतु निर्देशन संचालक को कक्षा-अध्यापक, कक्षा परामर्शदाता, प्रधानाचार्य इत्यादि सभी अपना सहयोग प्रदान करते हैं। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर, विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति की आवश्यकता होती है।

7.3 निर्देशन कर्मचारियों का उत्तरदायित्व (Responsibilities of Guidance Personnel)

निर्देशन कार्यकर्त्ताओं पर ही, निर्देशन कार्य की सफलता निर्भर करती है। अतः यह आवश्यक है निर्देशन कार्यकर्त्ता, परस्पर सहयोग के सिद्धान्त का पालन करें। निर्देशन सेवाओं के संगठन की योजना के आधार पर ही, निर्देशन कार्यकर्त्ताओं की संख्या निर्धारित की जाती है। इसमें दो प्रकार के कार्यकर्त्ता होते हैं-

1. सामान्य कार्यकर्त्ता अथवा कर्मचारी

विद्यालय की निर्देशन सेवा का निरीक्षण करने वाले कर्मचारी, सामान्य कर्मचारियों की श्रेणी के अन्तर्गत होता है। विद्यालय में निरीक्षण करने वाले व्यक्ति निम्नलिखित होते हैं-

(अ) अधीक्षक,
(ब) सहायक अधीक्षक तथा
(स) प्रधानाचार्य।

सामान्य कार्यकर्त्ता अनुभवी एवं योग्य होना नितान्त आवश्यक है। सामान्य कर्मचारी को कार्य करते समय निम्नलिखित अधिनियमों का अनुसरण करना चाहिये-

उसको निर्देशन सेवाओं से सम्बन्धित अधिनियमों में जानकारी होनी चाहिये। क्योंकि निर्देशन सेवाओं के अधिनियम की जानकारी के आधार पर ही, उससे निर्देशन कार्यक्रम में अधिक सहयोग देने की आशा की जा सकती है।

2. निर्देशन में विशेषज्ञ (Specialist in Guidance)

निर्देशन कार्य में विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति विशेषज्ञ कहलाते हैं। परामर्शदाता, विद्यालय मनोवैज्ञानिक, निर्देशक-संचालक आदि। इन समस्त विशेषज्ञों को अपने क्षेत्र से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिये-

निर्देशन-व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नलिखित कर्मचारी कार्य करते हैं-

(क) प्रधानाचार्य (Principal), की भूमिका
(ख) निदेशक (Director), का कार्य
(ग) परामर्शदाता (Counselor), का कार्य
(घ) शिक्षक (Teacher), तथा विषयाध्यापक (Subject teacher)
(ड़) कक्षा अध्यापक (Classroom Teacher) की भूमिका
(च) स्वास्थ्य-विशेषज्ञ (Medical Officer), तथा
(छ) मनोवैज्ञानिक (Psychologist)।

(क) प्रधानाचार्य की भूमिका (Role of Principal in Guidance Services)

विद्यालय में प्रधानाचार्य का मुख्य स्थान होता है। विद्यालय में प्रधानाचार्य के स्थान के बारे में-

''घड़ी में प्रधान कमानी, मशीन में प्रचक्र अथवा जलयान में यान्त्रीकरण का जो स्थान है, वही स्थान किसी भी विद्यालय में प्रधानाचार्य का है।''

"What the main spring is to the watch, the fly wheel to the machine or the engine is to the steam ship, the headmaster in the school"

- P.C. Wen

किसी भी विद्यालय की प्रगति, उस विद्यालय के प्रधानाचार्य की सूझ, प्रशासकीय क्षमता एवं योग्यता पर निर्भर करती है। निर्देशन प्रक्रिया को, शिक्षा का एक अभिन्न अंग माना गया है। अत: निर्देशन के क्षेत्र में, प्रधानाचार्य का नेतृत्व प्राप्त होना आवश्यक है। प्रधानाचार्य, विद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम का प्रशासकीय प्रधान होता है। अत्यधिक कार्यभार किसी भी योग्य शिक्षक को सौंप सकता है, लेकिन अपने समर्थन तथा नेतृत्व को किसी अन्य व्यक्ति को नहीं सौंप सकता। अत: प्रधानाचार्य के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने समस्त सहयोगी शिक्षकों को निर्देशन कार्य हेतु प्रोत्साहित कर उन्हें समस्त प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध कराये।

प्रधानाचार्य के निर्देशन कार्यक्रम व सम्बद्ध उत्तरदायित्व-विद्यालय का मुख्य अधिकारी प्रधानाचार्य होता है, अत: वहीं विद्यालय की समस्त क्रियाओं को सफलता के साथ करने के लिए उत्तरदायी होता है। निर्देशन कार्यक्रम, विद्यालय के कार्यक्रम का ही अंग होता है। अत: प्रधानाचार्य के निर्देशन कार्यक्रम निर्वाह में प्रमुख उत्तरदायित्व अग्रलिखित हैं-

1. परामर्श सेवा हेतु उत्तम भवन को व्यवस्था करना।
2. निर्देशन कार्यक्रम के लिये धन की व्यवस्था करना।
3. छात्रों के अभिभावकों को निर्देशन सेवाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।
4. निर्देशन कार्यक्रम प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने हेतु शिक्षकों को सहयोग प्राप्त करना।
5. निर्देशन समिति का गठन करना।
6. विद्यालय में निर्देशन सम्बन्धी क्रियाओं का निरीक्षण करना।
7. निर्देशन कार्य हेतु समुचित समय देना।
8. निर्देशन सेवाओं के गठन में अपना नेतृत्व प्रदान करना।

नोट

9. विद्यालय के शिक्षकों को, निर्देशन का महत्व, समस्याएँ तथा उद्देश्य को समझने में सहयोग प्रदान करना।
10. विद्यालय में योग्य एवं कुशल निर्देशन कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति करना।
11. नियुक्ति निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के मध्य कार्य का विवरण करना।
12. निर्देशन कार्यकर्त्ताओं तथा शिक्षकों को नौकरी के मध्य प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराना।

''शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन पत्रिका'' में प्रधानाचार्य के महत्व के सम्बन्ध में लिखा गया है–

''प्रधानाचार्य अथवा मुख्याध्यापक अपने विद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम का प्रधान व्यक्ति होता है। उसको उनके उद्देश्यों के साथ सहानुभूति रखनी चाहिए और अपनी हार्दिक सहायता प्रदान करनी चाहिए।''

आज की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार, प्रत्येक विद्यालय में, प्रधानाचार्य को, निर्देशन की आवश्यकता की अनुभूति करना चाहिए। निर्देशन हेतु उपलब्ध सामग्री एवं साधनों के आधार पर ही, प्रधानाचार्य को, निर्देशन कार्यक्रम की योजना का निर्माण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे विद्यालय में एक निर्देशन कमेटी का भी गठन करना चाहिए। इसका प्रमुख अधिकारी वह स्वयं ही होगा। निर्देशन कमेटी, यथा-समय, निर्देशन में योग्य क्रिया की उपयुक्तता का निर्धारण, मूल्यांकन के माध्यम से करेगी। निर्देशन में योग्य एवं रूचि रखने वाले शिक्षकों को ही निर्देशन समिति का सदस्य बनाना चाहिए।

सेवारत् शिक्षकों को, निर्देशन कार्य का प्रशिक्षण देने हेतु, ''नौकरी वालों की शिक्षा'' का आयोजन भी प्रधानाचार्य द्वारा किया जाना चाहिए। इस कार्य हेतु प्रधानाचार्य को विभागीय बैठक आयोजित करनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, प्रधानाचार्य का यह भी दायित्व है कि वह निर्देशन कार्यक्रम हेतु समस्त सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास करें, निर्देशन हेतु, विद्यालय में, निर्देशन कार्यालय की व्यवस्था कर, उसमें पर्याप्त फर्नीचर भी रखे तथा निर्देशन हेतु समस्त प्रकार की सामग्री खरीदने के लिए पर्याप्त धनराशि की भी व्यवस्था करे। हमारे देश में धन के अभाव के कारण, विद्यालयों में समस्त प्रकार की भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पाती हैं।

विद्यालय कार्य के समान ही, प्रधानाचार्य को निर्देशन क्रियाओं का भी अवलोकन करना चाहिए तथा परामर्शदाता द्वारा दिये गये सुझावों के अनुसार पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधियों इत्यादि में परिवर्तन करने के लिये उसे तैयार रहना चाहिए।

> *नोट्स* ''प्रधानाचार्य अथवा मुख्याध्यापक अपने विद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम का प्रधान व्यक्ति होता है। उसको उनके उद्देश्यों के साथ सहानुभूति रखनी चाहिए और अपनी हार्दिक सहायता प्रदान करनी चाहिए।''

(ख) निदेशक के उत्तरदायित्व (Responsibilities of a Director)

विद्यालय में विभिन्न प्रकार की निर्देशन सेवाएँ कार्य करती हैं। निर्देशन कार्यक्रम की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि निर्देशन सेवाओं को निर्देशन के हाथों में सौंप दिया जाये। निर्देशक के मुख्य उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं–

1. निर्देशन क्रियाओं का निरीक्षण करना।
2. शिक्षकों को, निर्देशन कार्यक्रम से सम्बद्ध विभिन्न क्रियाओं से अवगत कराना।
3. समायोजन से सम्बन्धित जटिल समस्याओं के निराकरण में निर्देशक शिक्षकों की सहायता करना है।
4. निर्देशक, निर्देशन नीतियों का निर्धारण, प्रधानाचार्य की स्वीकृति एवं शिक्षकों के सहयोग से करता है।
5. निर्देशन कार्यक्रम की प्रगति में अपना नेतृत्व प्रदान करना।
6. विद्यालय तथा सामाजिक संस्थाओं के बीच में वह एक मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है, तथा।

नोट

7. निर्देशक बालकों के अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित कर, उनसे बालकों की रूचियों तथा समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करता है।

(ग) परामर्शदाता का कार्य (Functions of the Counselor)

प्रत्येक विद्यालय में परामर्शदाता होता है। बालकों को परामर्श प्रदान करने हेतु या तो शिक्षक को ही प्रशिक्षित कर दिया जाता है अथवा परामर्श विशेषज्ञ को नियुक्त किया जाता है। परामर्श के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

1. विद्यालय से गहन सम्बन्ध बनाये रखना।
2. यथा समय अभिभावकों की बैठक कर, उनसे सम्पर्क बनाये रखने का प्रयास करना।
3. विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक परीक्षण करना।
4. छात्रों को विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित सूचनाएँ प्रदान करना।
5. विद्यालय के उन आलेखों की व्याख्या करना, जिनसे छात्र अनभिज्ञ होते हैं।
6. ऐसे शिक्षकों की सहायता करना, जिसकी कक्षा में समस्यात्मक बालक होते हैं।
7. परिवार, समाज एवं विद्यालय के मध्य सम्बन्धों को विकसित करने में सहायता प्रदान करना।
8. विद्यार्थियों को स्वयं को समझने में सहायता प्रदान करना।
9. भविष्य हेतु योजनाओं के निर्माण में बालकों की सहायता करना।
10. विद्यालय में भिन्न-भिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में सूचनाएँ संकलित करना।
11. पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में एकत्रित सूचनाओं को विद्यार्थियों को प्रदान करना।
12. नये कक्षा-अध्यापक तथा अन्य विद्यालय कर्मचारियों को निर्देशन सेवाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।
13. सामाजिक समायोजन को प्रोत्साहित करने हेतु सामूहिक निर्देशन की व्यवस्था करना।
14. निर्देशित सेवार्थी का उत्तरोत्तर अध्ययन करना, जिससे निर्देशन सेवाओं के परिणामों का मूल्यांकन किया जा सके।
15. विद्यार्थियों को वास्तविक स्थिति का अध्ययन कराने हेतु भ्रमण तथा देशाटन की योजना बनाना। शैक्षिक यात्राओं का आयोजन करना।
16. युवाओं की जीविकाओं में स्थापित करने में युवक-नियोक्ता सेवाओं की सहायता करना।
17. विद्यालय की विभिन्न समितियों में रूचि प्रदर्शित करना।
18. विद्यार्थियों को परीक्षाओं से अवगत कराना।
19. विद्यार्थियों की रूचियों, अभिरूचियों, योग्यताओं तथा शारीरिक गुणों का वस्तुनिष्ठ मापन करना।
20. सांवेगिक कठिनाइयों को अनुभव करने वाले विद्यार्थियों को विशेषज्ञों के पास भेजना।
21. विद्यार्थियों में स्वतः प्रेरणा एवं स्वतंत्रता का विकास करना।
22. आत्म-निर्देशन में प्रगति करने हेतु, विद्यार्थियों की सहायता करना।
23. विद्यार्थी के पारिवारिक वातावरण, आर्थिक स्तर तथा व्यक्ति से सम्बद्ध विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना।

परामर्शदाता के आवश्यक गुण-परामर्श के कार्यों को अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि, परामर्शदाता ही निर्देशन कार्यक्रम का मुख्य व्यक्ति होता है। रूथस्ट्रेंग ने परामर्शदाता के महत्व के बारे में लिखा है-

"परामर्शदाता एक माली के समान है, जो मिट्टी तैयार करता है और प्रत्येक पौधे को स्वयं उगने में सहायता करने हेतु, प्रत्येक कार्य करने को उत्साहित रहता है।"

नोट

परामर्शदाता में योग्य एवं दक्ष व्यक्ति बनने हेतु अधोलिखित गुण होने चाहिए-

1. व्यक्तियों का वैयक्तिक तथा सहानुभूति युक्त ज्ञान।
2. अत्यधिक बौद्धिक योग्यता एवं क्षमता
3. व्यवसाय का कार्य करने से सम्बन्धित शर्तों की जानकारी।
4. कक्षा की परिस्थितियों के सम्बन्ध में जानकारी
5. अध्ययन के उत्तरदायित्वों का ज्ञान।
6. वैयक्तिक एवं सामाजिक सम्बन्ध बनाने की योग्यता।
7. स्थिर तथा समायोजित व्यक्ति।
8. सामाजिक दशाओं की तथा उसके प्रभाव की जानकारी।
9. आर्थिक दशाओं की तथा उसके प्रभाव का ज्ञान।
10. अन्य कर्मचारियों के साथ सहयोग एवं सहाकरिता के आधार पर कार्य करने की योग्यता।
11. व्यापक सामान्य ज्ञान का होना।
12. व्यापक रूचियों का होना।
13. छात्रों को प्रेरणा प्रदान करने की योग्यता।
14. अन्य कार्यकत्ताओं को प्रेरणा देने की योग्यता।

एक उत्तम उपबोधक में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है।

(1) छात्रों के साथ कार्य करने हेतु आवश्यक गुण

छात्रों के साथ कार्य करने हेतु परामर्शदाता में-

(*i*) छात्रों का साक्षात्कार लेने की योग्यता होनी चाहिए।
(*ii*) उनको परामर्श लेने की क्रिया का ज्ञान एवं कौशल होना चाहिए।
(*iii*) समाजमिति का निर्माण करने तथा उसकी अर्थापन करने की योग्यता परामर्शदाता में होनी चाहिए।
(*iv*) छात्रों के व्यक्तित्व को मूल्यांकन करने की योग्यता उपबोध में होनी चाहिए।
(*v*) सामूहिक परीक्षायें आयोजित करने एवं प्रशासन की योग्यता

(2) अभिभावकों के साथ कार्य करने हेतु आवश्यक गुण

(*i*) अभिभावक का विश्वास प्राप्त करने की योग्यता।
(*ii*) अभिभावक का सम्मेलन आयोजित करने की योग्यता।
(*iii*) विद्यार्थियों की समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं का निराकरण करने में अभिभावकों को सहयोग प्राप्त करने की योग्यता। तथा
(*iv*) अभिभावकों से सम्मान अर्जित करने की क्षमता एवं योग्यता।

(3) शिक्षकों के साथ कार्य करने हेतु आवश्यक गुण-

(*i*) विभिन्न सेवाकालीन कार्यक्रमों को संगठित करने की कुशलता।
(*ii*) प्रधानाचार्य तथा शिक्षकों का विश्वास प्राप्त करने की योग्यता।
(*iii*) विद्यालय के पुस्तकालय अध्यक्ष से सहयोग प्राप्त करने की योग्यता।
(*iv*) समिति का नेतृत्व करने की योग्यता।

(4) समाज के साथ कार्य करने हेतु आवश्यक गुण-

(*i*) विभिन्न सामाजिक सेवाओं से सहयोग प्राप्त करने की योग्यता।

(*ii*) नियोक्ताओं के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने की योग्यता।

(*iii*) विभिन्न सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने की योग्यता।

(*iv*) निर्देशन कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु, समाज का सहयोग प्राप्त करने की योग्यता।

(*v*) परामर्शदाता में कार्यक्रम का नेतृत्व करने हेतु भी अनेक गुण विद्यमान होने चाहिए।

(*a*) उपबोधक को बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए।

(*b*) उसे निर्देशन कार्यक्रम से सम्बन्धित क्रियाओं का ज्ञान होना चाहिए।

(*c*) निर्देशन कार्यक्रम को संगठित किस प्रकार किया जाय। इसकी जानकारी भी परामर्शदाता को होनी चाहिए।

(घ) शिक्षक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य तथा उत्तरदायित्व (The Guidance Functions of a Teacher)

शिक्षक अपने छात्रों को अध्ययन अनेक परिस्थितियों में करता है, क्योंकि वह उनके सर्वाधिक निकट सम्पर्क में रहता है, उसे छात्रों की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में जानकारी होती है तथा उनकी विभिन्न समस्याओं का भी उसे ज्ञान होता है। अत: शिक्षक, निर्देशन कार्यक्रम में अपना अधिकाधिक सहयोग प्रदान कर सकता है। शिक्षकों के निर्देशन सम्बन्धी कार्य एवं उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं।

1. छात्रों के साथ वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करना।
2. कुसमायोजित बालकों का पता लगाना।
3. अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करना।
4. विभिन्न सामाजिक संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करना।
5. छात्रों को पुस्तकालय का समुचित उपयोग करना सीखना।
6. विद्यार्थियों के अधिक विकास हेतु परिस्थितियों का निर्माण करना।
7. पाठ्योत्तर सहगामी क्रियाओं का आयोजन करना।
8. जिन छात्रों को साक्षात्कार लिया जा चुका है उनकी रिपोर्ट को निर्देशन छात्रों को प्रदान करना।
9. अपने विषय से संबंधित व्यवसायों तथा शैक्षिक अवसरों की सूचनायें छात्रों को प्रदान करना।
10. निर्देशन कार्यक्रम को अधिक सफल बनाने हेतु प्रधानाचार्य एवं उपबोध को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करना।
11. छात्रों की परीक्षायें लेने में सहायता करना।
12. ऐसे बालकों को जो अधिगम में कठिनाई अनुभव करते हों, उनको उपबोधक के पास भेजना।

(ङ) कक्षा अध्यापक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य (The Guidance Functions of a Classroom Teacher)

''जिस विद्यालय में कक्षा-अध्यापक निर्देशन सम्बन्धी उत्तरदायित्वों को स्वीकार करता है वहाँ उसे अध्यापन एवं निर्देशन सम्बन्धी उत्तरदायित्वों में विभाजन असम्भव है। शिक्षक छात्रों को स्वयं की योग्यताओं को समझने के कार्य का चयन करके, स्वयं की प्रगति का मूल्यांकन करने में सहायता करता है।''

कक्षा-अध्यापक तथा निर्देशन कार्यक्रम के मध्य गहन सम्बन्ध होना चाहिए शिक्षक, छात्रों का निरीक्षण भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में करता है। अत: कक्षा अध्यापक, शिक्षार्थियों से सम्बन्धित कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वाह करके वह निम्नलिखित तथ्यों के सम्बन्ध में निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को जानकारी प्रदान कर सकता है–

1. कक्षा में उत्तम वातावरण पैदा करना।
2. अन्य निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को अपना सहयोग प्रदान करना।

नोट

3. कुसमायोजित छात्रों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी होना।
4. परामर्श-प्रक्रिया का ज्ञान भी कक्षा-अध्यापक को होना चाहिए, जिससे वह छात्रों को वैयक्तिक परामर्श दे सके।

(च) स्वास्थ्य विशेषज्ञ के कार्य (Functions of a Doctor)

यथा समय विद्यालय के समस्त छात्रों की सामयिक जाँच चिकित्सक द्वारा होनी चाहिए तथा अधिकाधिक स्वास्थ्य सेवाओं की व्यवस्था विद्यालय में की जानी चाहिए। एक बड़े तथा समस्त दृष्टिकोणों से सम्पन्न विद्यालय में तो स्वास्थ्य विभाग अलग से भी हो सकता है।

विद्यालयों में, बालकों के दांतों की जाँच करने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इस के लिए किसी भी दन्त विशेषज्ञ को बुलाया जा सकता है तथा सलाह ली जा सकती है।

स्वास्थ्य सेवा कार्यकर्त्ताओं द्वारा, शारीरिक कमियों एवं दोषों का उत्तरोत्तर अध्ययन भी किया जाता है। इस उत्तरोत्तर अध्ययन के माध्यम से व्यक्ति के सुधार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है। इन स्वास्थ्य कर्मचारियों द्वारा ही छात्रों तथा उनके अभिभावकों को साक्षात्कार किया जाता है तथा उनको रोगों के सम्बन्ध में वे जानकारी प्रदान करते हैं।

(छ) मनोवैज्ञानिक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य (The Guidance Functions of a Phychologist)

विद्यालय में असामान्य बालकों की समस्याओं को जानने, उन्हें समझने तथा उन बालकों में सुधार करने हेतु मनोवैज्ञानिक की आवश्यकता होती है। बड़े एवं सम्पन्न विद्यालयों में मनोवैज्ञानिक की नियुक्ति पूरे वर्ष के लिये की जाती है।

मनोवैज्ञानिक के निर्देशन सम्बन्धी मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं-

1. वैयक्तिक एवं सामूहिक परीक्षाओं का प्रशासन करना।
2. परीक्षाओं से प्राप्त परिणामों की व्याख्या तथा अर्थापन करना।
3. अनुसन्धान हेतु बनी योजनाओं को क्रियान्वित करना।
4. उत्कृष्ट अथवा हीन बालकों का निदान एवं उपचार करना।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए- (Fill in the blanks)-

(*i*) विद्यालय निर्देशन सेवायें पाठ्यक्रम का मुख्य .... है।
(*ii*) विद्यालय निर्देशन सेवाओं का प्रशासन .... करता है।
(*iii*) विद्यालय निर्देशन सेवाओं की व्यवस्था .... करता है।
(*iv*) विद्यालय निर्देशन सेवाओं का अध्यक्ष .... होता है।
(*v*) विश्वविद्यालय निर्देशन सेवा समिति का अध्यक्ष .... होता है।

7.4 विद्यालय निर्देशक सेवा द्वारा किये जाने वाले मुख्य कार्य (Main Functions of School Guidance Services)

वैसे तो निर्देशन का क्षेत्र असीमित है; लेकिन विद्यालय जीवन से सम्बन्धित कतिपय ऐसे विशिष्ट कार्य होते हैं; जिन पर निर्देशन सेवायें ही ध्यान देती हैं तथा इन्हीं के द्वारा उन कार्यों को किया जा सकता है-

1. बालक को विद्यालय में प्रवेश पाने तथा विद्यालयी जीवन की ओर उन्मुख करना, निर्देशन सेवा का विशिष्ट कार्य है। विद्यालय में प्रवेश के नियम, समय, शुल्क तथा योग्यता से सम्बन्धित विभिन्न सूचनायें छात्रों को निर्देशन सेवा प्रदान करती हैं।

नोट

2. निर्देशन सेवा छात्रों से सम्बद्ध अभिलेख (Students Records), छात्रों की प्रगति तथा मूल्यांकन से सम्बन्धित सूचनायें एवं अन्य विवरण को समुचित एवं व्यवस्थित ढंग से रखती हैं।
3. निर्देशन सेवा, छात्रों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित कार्य भी करती है।
4. छात्रों के सामाजिक समायोजन, पारिवारिक समस्याओं तथा अवकाश सम्बन्धी निर्देशन प्रदान करना निर्देशन सेवा का विशिष्ट कार्य है।
5. निर्देशन सेवा का अन्य विशिष्ट कार्य है- प्रशासनिक कठिनाइयों, छात्रावास में भोजन इत्यादि की व्यवस्था करने में छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना।
6. छात्रों के शिक्षण में आने वाली कठिनाइयों, उनके कारणों को विश्लेषण करके, विद्यार्थियों को शैक्षिक निर्देशन प्राप्त करना, निर्देशन सेवा का एक अन्य विशिष्ट कार्य है।
7. छात्रों की आर्थिक कठिनाईयों को ध्यान में रखते हुए उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करने वाले स्रोतों की सूचना प्रदान करना तथा उन्हें अंशकालिक नियुक्ति प्राप्त कराना भी, विद्यालय-निर्देशन सेवा का कार्य है।
8. अध्ययन समाप्त कर लेने के उपरान्त नियुक्ति प्राप्त कर लेने के पश्चात् उनके निरन्तर जीवन की प्रगति तथा समस्याओं का अध्ययन करने का कार्य भी निर्देशन सेवा करती है।

क्या आप जानते हैं अनेक छात्र ऐसे होते हैं जो पढ़ते समय सही उच्चारण नहीं कर पाते हैं, उन छात्रों के निदानात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) की व्यवस्था करना, विद्यालयी निर्देशन सेवा का विशिष्ट कार्य है।

एक छोटे विद्यालय हेतु संगठन सिद्धान्त की दृष्टि से रेखीय संगठन को अच्छा समझा जाता है। सामान्यत: यह देखा जाता है कि छोटे विद्यालयों के पास साधनों का अभाव होता है। अत: इन विद्यालयों में निर्देशन कार्यकर्त्ताओं तथा विशेषज्ञों की व्यवस्था करना, कठिन होता है। छोटे विद्यालय कार्यकर्त्ताओं तथा विशेषज्ञों की व्यवस्था करना, कठिन होता है। छोटे विद्यालय में भी निर्देशन की व्यवस्था निम्नलिखित तीन परिस्थितियाँ पैदा हो जाने पर ही की जा सकती हैं-

1. निर्देशन के सम्बन्ध में विद्यालय के अधिकारियों कर्मचारी अधिकारियों तथा विद्यार्थियों की सक्रिय रूचि हो।
2. विद्यालय के मुख्य अध्यापक, निर्देशन सेवा को उचित नेतृत्व प्रदान करने हेतु तत्पर हों, इसके साथ ही कर्मचारीगण को निर्देशन योजना बनाने तथा उसमें भाग लेने हेतु प्रोत्साहित करने में सक्षम हों।
3. विद्यालय के कर्मचारी वर्ग, निर्देशन की क्रिया-कलापों में समन्वय करने की दृष्टि से तथा कार्यक्रम एवं अन्य व्यक्तियों को अभिप्रेरित करने हेतु एक समिति का गठन करे।

रेखीय संगठन का स्वरूप एक छोटे विद्यालय हेतु इस प्रकार हो सकता है-

संगठन में, अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों की दृष्टि से विद्यालयों को अधीक्षक सर्वोच्च होता है, अधीक्षक के बाद, प्रधानाध्यापक, फिर शिक्षकवर्ग तथा तदोपरान्त छात्रों को रखा जाता है। लेकिन विद्यालय की निर्देशन समिति तथा विद्यालय के शिक्षक परस्पर सहयोगी के रूप में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हैं। रेखीय संगठन में विद्यालय के समस्त अध्यापक निर्देशन सेवाएँ प्रदान करते हैं। शिक्षक इस कार्य को, शिक्षण के द्वारा या आंशिक निर्देशन सेवाएँ प्रदान करते हैं। जिन शिक्षकों के निर्देशन में प्रशिक्षण प्राप्त किया होता है अथवा जो निर्देशन में प्रशिक्षित होते हैं, वे इस कार्य में विशिष्ट रूचि लेते हैं अथवा उनकी इस कार्य में विशेष रूचि होती है अत: ऐसे शिक्षकों के शिक्षण कार्य को कम करके, उन्हें निर्देशन की विशिष्ट सेवाओं का उत्तरदायित्व दिया जाता है। ऐसे शिक्षक कालान्तर में निर्देशन के क्षेत्र में अध्ययन तथा अनुभव द्वारा विशिष्ट योग्यता अर्जित कर लेते हैं।

नोट

इनके अतिरिक्त, इन विद्यालयों में निर्देशन सेवाएँ प्रदान करने में, कक्षा अध्यापक द्वारा भी महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया जाता है, क्योंकि कक्षाध्यापक, विद्यार्थियों के निकट सम्पर्क में रहने के कारण वे उन्हें भली-भांति जानते हैं तथा बालकों की क्षमताओं, योग्यताओं, गुणों एवं वातावरण से अवगत होते हैं। लेकिन कभी ऐसी विशिष्ट समस्याएँ आने के कारण वे निर्देशन हेतु प्रशिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता का अनुभव कर सकते हैं। निर्देशन सेवा में विशिष्ट योग्यता अर्जित शिक्षक अथवा प्रधानाचार्य द्वारा ही यह कार्य किया जा सकता है। यदि किसी छात्र को विशिष्ट निर्देशन की आवश्यकता होती है तो उस छात्र के लिए प्रधानाध्यापक, किसी बाह्य विशेषज्ञ की सेवाएँ अर्जित करने की संस्तुति भी कर सकता है।

छोटे प्रकार के विद्यालयों में, निर्देशन सेवा संगठन में, निर्देशन समिति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस समिति का प्रमुख अधिकारी विद्यालय का प्रधानाध्यापक ही होता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं है क्योंकि निर्देशन सेवा में विशिष्ट रूचि प्रदर्शित करने वाले अथवा निर्देशन में विशेष योग्यता प्राप्त शिक्षक को भी इस योजना का प्रमुख बनाया जा सकता है। इस समिति के कार्य-विद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम की योजना तैयार करना, उसका गठन करना, महत्वपूर्ण निर्देशन सेवाओं की व्यवस्था करना, एवं कर्मचारियों के कार्यो को सौंपना इत्यादि है।

बड़े आकार के विद्यालयों को निर्देशन सेवा का योजना का स्वरूप (Outline of Guidance-Service Plan of a Large School)-बड़े आकार के विद्यालयों हेतु रेखीय कर्मचारी मिश्रित संगठन को उपयुक्त माना जाता है। इस प्रकार के विद्यालय में, निर्देशन योजना निम्न प्रकार से बनाई जा सकती है। सहायक अधीक्षक को, विद्यालय अधीक्षक को सलाह देने के उद्देश्य हेतु नियुक्त किया जाता है। इन अधीक्षकों की संख्या चार हो सकती है-

1. विशिष्ट या विशेष सेवाओं हेतु सहायक अधीक्षक
2. शिक्षण-सहायक अधीक्षक,
3. विद्यालय कर्मचारियों से सम्बद्ध सहायक अधीक्षक तथा
4. प्रशासकीय शोध कार्यो हेतु विद्यार्थियों को सेवाएँ प्रदान करने वाला सहायक अधीक्षक होता है।

इन चारों प्रकार के सहायक अधीक्षक एक दूसरे के कार्यो में अपना-अपना सहयोग प्रदान करते हैं और निर्देशन योजना सम्बन्धी संस्तुतियों को विद्यालय अधीक्षक के पास भेजते हैं। विद्यार्थियों की विशिष्ट तथा सामान्य सेवाओं के सहायक अधीक्षक के अधीनस्थ छात्रों के कर्मचारीगण की सेवाओं के निर्देशक तथा स्वास्थ्य निदेशक होते हैं, तथा प्रधानाध्यापक, शिक्षण-सहायक अधीक्षक के अधीन कार्य करते हैं। छात्रों के कर्मचारी-सेवा-निदेशक, स्वास्थ्य निदेशक तथा प्रधानाध्यापक में परस्पर सहयोगपूर्ण सम्बन्ध होते हैं तथा परस्पर मिल-जुल कर कार्य करते हैं। शिक्षकगण निर्देशन-विशेषज्ञ प्रधानाचार्य के अधीन कार्य करते हैं। समस्त कर्मचारी मिलकर कार्य करते हैं। कर्त्तव्य एवं अधिकार की दृष्टि से किसी का भी स्थान उच्च अथवा निम्न नहीं होता। सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि एक बड़े आकार के विद्यालय में, निर्देशन सेवा संगठन के अन्तर्गत, दो सहायक अधीक्षक, कर्मचारियों तथा छात्रों हेतु विशिष्ट तथा सामान्य सेवाएँ प्रदान करने हेतु सहायक अधीक्षक एवं शिक्षण-सहायक अधीक्षक, कर्मचारियों एवं रेखीय अधिकारी, दोनों की भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं।

7.5 महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर निर्देशन संगठन (Organization of Guidance Service at College and University Level)

इस स्तर पर, छात्रों की संख्या तथा आवश्यकताओं के अनुरूप अलग-अलग ढंग से, निर्देशन कार्य को संगठित किया जाता है। इस स्तर पर निर्देशन के सामान्य संगठन की रूपरेखा निम्नवत् हो सकती है-

रेखीय संगठन सिद्धान्त के आधार पर, महाविद्यालय में संगठन का प्रमुख ट्रस्ट ही बोर्ड का अध्यक्ष हो सकता है और विश्वविद्यालय में कुलपति को प्रमुख के रूप में माना जा सकता है। सामान्यत: अधीक्षक के अधीनस्थ कार्य करने

वाले तथा, निर्देशन कार्यक्रमों में कुलपति को परामर्श प्रदान करने हेतु पाँच निदेशक होते हैं जो कि कर्मचारी एवं रेखा अधिकारियों की भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। (*i*) विद्यार्थी सेवाओं के निदेशक (*ii*) स्वास्थ्य सेवाओं के निदेशक (*iii*) आर्थिक विषयों संबंधी निदेशक, (*iv*) शिक्षण-निदेशक तथा (*v*) पुस्तकालय-निदेशक।

ये पाँचों निदेशक परस्पर सहयोग से कार्य करते हैं। तथा निर्देशन के बारे में विशिष्ट सलाहकार अध्यक्ष को देते हैं। रेखीय क्रम के अनुसार शिक्षण-निदेशन के उपरान्त, अध्ययन विभागाध्यक्ष तथा शिक्षकगण आते हैं।

कुल सचिव प्रवेश अधिकारी, विशिष्ट परामर्श कार्यकर्त्ता, डीन, संकाय परामर्शदाता तथा विद्यार्थियों के क्रियाकलापों के संचालक, विद्यार्थियों की विभिन्न सेवाओं के निर्देशन के अधीन कार्य करते हैं। ये सभी परस्पर सहयोग तथा उत्तरदायित्व के साथ निर्देशन कार्य सम्पन्न करते हैं। नियोजन परामर्शदाता व व्यावहारिक-उपबोधक, पुस्तकालय-निदेशक के अधीन कार्य करते हैं और वित्तीय विषयों के निदेशक के अधीनस्थ विद्यार्थियों को आर्थिक समस्याओं में निर्देशन देने वाली सेवाएँ आती हैं।

इस स्तर पर निर्देशन सेवाओं का संगठन करते समय, कार्यो का वितरण करते समय यह प्रयास किया जाना चाहिए कि किसी भी कर्मचारी द्वारा कार्य की पुनर्रावृत्ति न हो जाये। संगठन को सफल बनाने के लिए समस्त व्यक्तियों में सहयोग की भावना तथा पारस्परिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने की कुशलता होनी आवश्यक है। अधिकार मात्र योजनाओं के निर्माण तक ही स्वयं को सीमित न माने वरन् निर्मित योजनाओं की क्रियान्विति में भी अपना सहयोग प्रदान करते रहें।

7.6 महाविद्यालय स्तर पर संगठन की प्रारम्भिक आवश्यकताएँ (Primary Needs of Guidance Organization Services)

शिक्षण संस्थाओं में, निर्देशन सेवा-संगठन हेतु, निर्देशन सेवा-समिति की मुख्य आधारभूत आवश्यकता है। इस निर्देशन सेवा समिति के प्रमुख रूप से तीन कार्य होते हैं-

1. विद्यालयों में उपलब्ध, निर्देशन सुविधाओं का सर्वेक्षण करना,
2. छात्रों की उन समस्याओं को संकलित करना, जिनके लिए निर्देशन की व्यवस्था करनी है, तथा
3. विद्यालय की कर्मचारी वर्ग एवं साधनों की, निर्देशन योग्यता तथा निर्देशन कार्यक्रम में भाग लेने की रूचि का पता लगाना।

निर्देशन सेवा समिति, व्यापक सर्वेक्षण के माध्यम से उपरोक्त तीनों कार्यों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त ही संगठन सिद्धान्तों के अनुसार विद्यालय की निर्देशन योजना के प्रारूप का निर्माण कर, कार्यक्रम के उद्देश्यों को निर्धारित करती है। समिति को कार्यक्रम के उद्देश्यों को निर्धारित करते समय, संस्था के उद्देश्यों को भी ध्यान में रखना चाहिए, तदोपरान्त, संगठन सिद्धान्तों के आधार पर कर्मचारी या रेखीय संगठन का प्रारूप बना लेने के बाद ही समिति अपनी संगठन योजना को विद्यालय के कर्मचारी वर्ग एवं अधिकारी वर्ग की सामान्य सभा में प्रस्तुत कर सकेगी। सामान्य सभा में सर्वसम्मति से कोई संशोधन करने की आवश्यकता हो तो उसे स्वीकार करके, समिति निर्देशन कार्यक्रम को अन्तिम रूप प्रदान करती है।

निर्देशन कार्यक्रम में भाग लेने वाले व्यक्तियों में सहयोग तथा पारस्परिक उत्तरदायित्व की भावना होनी आवश्यक है (Needs for co-operation and Feeling of Mutaul Responsibilities)-कोई भी निर्देशन-योजना तभी सफल हो सकती है, जब उसमें भाग लेने वाले व्यक्ति तथा विद्यार्थी परस्पर सहयोग एवं विश्वास की भावना से कार्य करें। निर्देशन समिति का गठन इस प्रकार किया जाय कि जिससे सभी कर्मचारियों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके और वे समिति के कार्यक्रम को स्वयं का कार्यक्रम मान सके।

नोट

अधिकारी तथा कर्मचारीवर्ग; सभी को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह समुचित रूप में करना चाहिए क्योंकि यदि एक कर्मचारी अपने कार्य की उपेक्षा करता है तो उससे समग्र कार्यक्रम प्रभावित होता है। यदा-कदा समस्त निर्देशन सेवा-संगठन से सम्बन्धित व्यक्तियों की बैठक होनी चाहिए जिससे निर्देशन कार्यक्रम में आने वाली कठिनाइयों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर; उसका समाधान सोचने हेतु प्रयास किया जा सके।

निर्देशन संगठन के अध्यक्ष की भूमिका (Role of the Chairman of Guidance Organization)

निर्देशन संगठन के प्रमुख अधिकारी का व्यक्तित्व तथा, उसकी कार्यक्षमताओं का प्रभाव; निर्देशन कार्यक्रमों की सफलता पर पड़ता है निर्देशन संगठन के प्रमुख अधिकारी की छवि, सम्पूर्ण निर्देशन योजना में होती है। वही अन्य कर्मचारियों की प्रेरणा का स्रोत होता है। अत: उसे निर्देशन सेवाओं की क्रियान्विति उत्साह एवं लगन के साथ करना चाहिए, उसे एक संरक्षक के रूप में अपने कार्यों को करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, प्रमुख अधिकारी को प्रशासकीय तथा निर्देशन उत्तरदायित्व को पूर्ण करते समय अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। निर्देशक का कार्य निर्देशन कर्मचारियों को निर्देशन प्रदान करने के साथ-साथ विद्यालय में उपलब्ध निर्देशन सेवाओं तथा निर्देशन कार्यक्रमों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना भी है।

छात्र-कर्मचारी कार्य (Pupil-Personnel Work): निर्देशन के साथ ही साथ विद्यालय या शिक्षा-संस्था में छात्रों की सहायता हेतु कुछ सहायक क्रियाओं का संचालन किया जाता है। विद्यालय में छात्रों की कठिनाईयों को दूर करने तथा उनको विद्यालय वातावरण के साथ समायोजन करने हेतु इसी प्रकार के कार्यों में विद्यार्थी-कर्मचारी कार्य' का नाम उल्लेखनीय है। विद्यार्थी कर्मचारी कार्य' का जन्म स्पष्ट रूप से कब हुआ, कहा नहीं जा सकता है। हाँ, इतना स्पष्ट है कि कर्मचारी कार्य' का उपयोग अनेक समय से व्यवसाय, वाणिज्य, उद्योग तथा सेवाओं (Services) में प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार के 'कार्य' का प्रमुख उद्देश्य व्यवसाय से सम्बन्धित कर्मचारियों से सम्बन्धित होता है। इसका वास्तविक उत्पादन से कोई भी सम्बन्ध नहीं होता है। उत्पादन-क्षेत्रों से 'कर्मचारी कार्य' नये बढ़कर शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया। शिक्षा-क्षेत्र में इसका कार्य जैसा कि ऊपर कहा गया है, छात्रों की सहायता करना होता है। किन्तु व्यवसाय के 'कर्मचारी कार्य' तथा शिक्षा के 'कर्मचारी कार्य' में अन्तर होता है। क्योंकि व्यवसायों में मुख्यतया कार्य-लोहा, रेशम आदि भौतिक वस्तुओं के साथ किया जाता है, जबकि शिक्षा क्षेत्र में जीवित व्यक्तियों का राज्य होता है। व्यवसाय का उद्देश्य सुन्दर मानव का उत्पादन करना होता है, जबकि शिक्षा के द्वारा संगठित व्यक्तित्व का विकास किया जाता है।

छात्र-कर्मचारी कार्य के उद्देश्य (Objectives of Pupil-Personnel Work): 'विद्यार्थी-कर्मचारी कार्य' के उद्देश्यों की विवेचना करते समय हम पाते हैं कि इसका एकमात्र उद्देश्य मोटे तौर से विद्यालय के वातावरण को विकास योग्य बनाना है। किन्तु एक निर्देशनकर्ता के नाते केवल इतना ही कह देने से कार्य पूरा नहीं होता है। हमें विस्तृत रूप से उद्देश्यों की विवेचना करनी चाहिए। 'अमेरिकन काउंसिल ऑफ एजूकेशन' के अध्यक्ष ई॰ जी॰ विलियमसन (E.G. Williamson) ने इस प्रकार के 'कार्य' के निम्नांकित 12 उद्देश्यों का उल्लेख किया है।

1. शिक्षा या कार्य के प्रति विद्यार्थी में स्वस्थ दृष्टिकोण उत्पन्न करना।
2. जीविकोपार्जन की सन्तोषजनक व्यवस्था करना।
3. अपने कार्य में सफलता प्राप्त करना।
4. समाज में भ्रातृत्व अथवा सबकी स्वीकृति प्राप्त करना।
5. स्वस्थ शारीरिक तथा मानसिक आदतें डालना।
6. जीवनप्रद शौक पैदा करना।
7. संवेगों को समाज द्वारा स्वीकृत रूप से अभिव्यक्त करना।
8. अपनी योग्यता के अनुकूल व्यावसायिक रूचि उत्पन्न करना।
9. सामाजिक उत्तरदायित्वों को अनुभव करना।

10. भिन्न-लिंगीय व्यक्तियों का समाज द्वारा स्वीकृति रीति से मिलना-जुलना।
11. जीवन के प्रति आदर्शों की स्थापना तथा उनका पालन करना।
12. अच्छे आचार-विचार तथा मूल्यों का पालन और आदर करना।

इस प्रकार हम देखते है कि 'कर्मचारी कार्य' छात्र के जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार करता है। एक तरह से देखा जाये तो इसका क्षेत्र निर्देशन से भी व्यापक हो जाता है।

छात्र-कर्मचारी कार्य के क्षेत्र (Scope of Pupil-Personnel Work): मायर्स ने 'विद्यार्थी-कर्मचारी कार्य' के क्षेत्र की व्यवस्था करते समय 'कार्य' के कलेवर को 9 बिन्दुओं से संचालित किया है। उन्होंने क्षेत्र की विवेचना निम्नांकित बिन्दुओं पर की है-

(1) उपस्थिति सेवाएँ-इस प्रकार की सेवाओं का उद्देश्य छात्रों की उपस्थिति बनाये रखना है। कर्मचारी कार्यकर्त्ताओं का यह काम है कि वह उपस्थिति का ध्यान रखें। यदि कोई छात्र दीर्घकाल तक अनुपस्थित रहता है तो उसके कारणों को ज्ञात करें तथा उनका निवारण करने में छात्र की सहायता करें।

(2) सूचना सेवाएँ-विद्यालय के छात्रों के नाम पते, व्यवसाय आदि से सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त करें। छात्रों के सामाजिक व आर्थिक वातावरण का अध्ययन करें। इसे गणना कार्यक्रम भी कह सकते हैं।

(3) शारीरिक स्वास्थ्य सेवाएँ-कर्मचारियों को यह देखना चाहिए कि वे समस्त छात्र जो विद्यालय में आते हैं सम्मिलित हैं। इस कार्य के अन्तर्गत 'कर्मचारी कार्यकर्त्ताओं' (Personnel Workers) को चाहिए कि वह प्रत्येक छात्र का मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक परीक्षण करें और परीक्षण के आधार पर छात्रों का श्रेणी विभाजन तथा वर्गीकरण करे।

(4) मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ-'कार्यकर्त्ताओं' को देखना चाहिए कि प्रत्येक छात्र संवेगात्मक रूप से सन्तुलित है या किसी का भावात्मक विकास असन्तुलित है। असन्तुलित विकास वाले छात्रों का पता लगाकर उनके संवेगों में आवश्यक सुधार की चेष्टा करनी चाहिए। इन कार्यकर्त्ताओं को छात्र के विद्यालय जीवन तथा विद्यालय से बाहर के जीवन के सम्बन्ध में भी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

(5) निर्देशन सेवाएँ-'छात्र-कर्मचारी' कार्य के कार्यकर्त्ताओं को निर्देशन से सम्बन्धित भी कुछ कार्य करना चाहिए। उन्हें छात्रों, उनकी क्षमताओं, रूचियों तथा निर्देशन के अलावा छात्र को व्यावसायिक निर्देशन भी प्रदान करते रहना इन कार्यकर्त्ताओं का काम है।

(6) अभिरूचि परीक्षण सेवाएँ-'विद्यार्थी-कर्मचारी कार्य' के कार्यकर्त्ताओं को छात्रों की विशिष्ट अभिरूचियों, रूचियों, योग्यता की सीमाओं का पता लगाकर उनकी व्यावसायिक, शैक्षिक तथा मनोरंजनात्मक कार्य-प्रणाली में सहायता देनी चाहिए।

(7) सहगामी सेवाएँ-कार्यकर्त्ताओं को देखना चाहिए कि छात्र अपनी रूचि तथा क्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं में भाग ले रहे हैं अथवा नहीं इनके लिए उपर्युक्त अवसर प्रदान करने चाहिए।

(8) अनुवर्ती सेवाएँ-किसी व्यवसाय में लगने के उपरान्त ही निर्देशन का कार्य तथा 'छात्र-कर्मचारियों कार्य' समाप्त नहीं हो जाता है। इसके बाद भी छात्र का अनुवर्तन करना चाहिए जिससे वह अपने व्यवसाय में, अपने रोजगार में तथा अपने पद के साथ उचित विधि से समायोजन कर पाया है या नहीं यह ज्ञात हो सके।

मैथ्यूसन (Mathewson) ने भी अपनी पुस्तक में निम्नलिखित सेवाओं के द्वारा 'कर्मचारी कार्य' के कलेवर को स्पष्ट किया है। उन्होंने इस 'कार्य' में निम्नांकित 8 सेवाओं का उल्लेख किया है-

1. निर्देशन सेवा
2. मनोपचार सेवा
3. सामाजिक कार्य सेवा
4. छात्र लेख व उपस्थित
5. विशिष्ट सेवाएं
6. परीक्षा व मूल्यांकन सेवाएं
7. निरीक्षण व सहकारी सेवाएं तथा
8. अनुसंधान सेवाएँ

नोट

इसी प्रकार एक अन्य लेखक ने भी 'विद्यार्थी-कर्मचारी कार्य' के क्षेत्र के अन्तर्गत 9 सेवाओं का उल्लेख किया है। इस में लेखक ने निम्नांकित 9 सेवाओं का उल्लेख किया है-

1. गणना सेवाएं
2. उपस्थिति सेवाएं
3. स्वास्थ्य निरीक्षण सेवाएं
4. अनुसंधान व परीक्षण सेवाएं
5. मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं
6. मनोवैज्ञानिक सेवाएं
7. अभिरूचि परीक्षण सेवाएं
8. सहगामी सेवाएं, तथा
9. अनुवर्ती सेवाएं

अगर इन तीनों ही लेखकों की विचारधाराओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करे तो पाते हैं कि वास्तव में इनके दृष्टिकोणों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, वह एक ही बात को थोड़े इधर-उधर कह लेते हैं। इस प्रकार इन तीन लेखकों की विचारधारा का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि 'छात्र-कर्मचारी कार्य' का क्षेत्र कितना व्यापक है।

निर्देशन और कर्मचारी कार्य में सम्बन्ध (Relation of Guidance with Personnel Work): 'विद्यार्थी-कर्मचारी कार्य' के अनेक उद्देश्य हैं- छात्रों की इस प्रकार सहायता करना जिससे वह शैक्षिक वातावरण से अधिक से अधिक लाभ उठा सकें। इस उद्देश्य के कारण कुछ लोग निर्देशन तथा 'छात्र-कर्मचारी कार्य' में कोई अन्तर नहीं समझते हैं। कुछ लोग निर्देशन के स्थान पर 'छात्र-कर्मचारी कार्य' का प्रयोग करते हैं। ऐसा वे क्यों करते हैं? इसके कई कारण है। इन कारणों में एक यह है कि निर्देशन की परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं। विभिन्न लोग निर्देशन को अलग-अलग परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं है। विभिन्न लोग निर्देशन को अलग-अलग अर्थ देते हैं। कुछ व्यावसायिक निर्देशन को संकुचित अर्थ देते हैं। उच्च शिक्षा-स्तर पर इन दोनों का अन्तर स्पष्ट नहीं हो पाता है। इन समस्त कारणों से विद्वान् 'कर्मचारी कार्य' को निर्देशन के स्थान पर प्रयोग करते हैं।

परन्तु वास्तव में इन दोनों में अन्तर है। अन्तर के लिए हमें सबसे पहले ध्यान रखना चाहिए कि कर्मचारी कार्य का क्षेत्र निर्देशन कार्य से अत्यन्त व्यापक है। दूसरे शब्दों में, कहना चाहिए कि निर्देशन तो कर्मचारी कार्य का एक अंग है और अंग को सम्पूर्ण रूप में प्रयुक्त करना या सम्पूर्ण को अंग के रूप में प्रयोग करना उपयुक्त नहीं है। दूसरा अंतर यह है कि निर्देशन कार्य हेतु अत्यंत दक्ष तथा विशेषज्ञ व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है, जबकि कर्मचारी कार्य को कोई भी अध्यापक सम्पन्न कर सकता है।

किन्तु इससे हमें यह तात्पर्य नहीं निकालना चाहिए कि निर्देशन तथा कर्मचारी कार्य में कोई सम्बन्ध नहीं हैं। वास्तव में इन दोनों में बड़ा गहरा संबंध है। दोनों ही विद्यालय-जीवन के दो अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। इस प्रकार इन दोनों में गहरा सम्बन्ध है।

'कर्मचारी कार्य' तथा निर्देशन में दूसरा सम्बन्ध यह है कि कर्मचारी कार्य में हम सभी प्रकार के निर्देशन-शैक्षिक, व्यावसायिक, वैयक्तिक तथा मनोरंजनात्मक को सम्मिलित करते हैं। इस प्रकार निर्देशन 'कर्मचारी कार्य' का ही एक अंग है।

उच्च कक्षाओं में छात्र-कर्मचारी कार्य (Pupil Personnel Work in Higher Classes): उच्च कक्षाओं में छात्र-कर्मचारी कार्य भी ठीक उसी प्रकार सम्पन्न किया जा सकता है जिस प्रकार माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में। परन्तु इन दोनों में कुछ अन्तर समझ लेना आवश्यक है। छोटी कक्षाओं में बालक विद्यार्थी होता है जबकि बड़ी कक्षाओं में आकर वह छात्र बन जाता है। शैक्षिक दृष्टिकोण से माना कि विद्यार्थी (Pupil) तथा छात्र (Students) में कोई अन्तर नहीं है किन्तु तब भी दोनों में कुछ अंतर है। उच्च कक्षाओं में बड़े-बड़े और अधिक आयु वाले छात्र पढ़ते हैं, उनमें से अधिकांश अपने घरों से दूर रहकर पढ़ने आते हैं, उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं, वे अपने दायित्वों को समझने लगते हैं। उनके जीवन की धारा का प्रवाह निश्चित हो जाता है क्योंकि वे व्यवसाय के सम्बन्ध में अपनी पसन्द पूर्व ही बना लेते हैं। वह सामान्यत: अधिक बुद्धिमान होते हैं। इन समस्त कारणों से इस

नोट

स्तर पर आकर 'छात्र-कर्मचारी कार्य' के लिए पूर्व लिखित 9 क्षेत्रों के स्थान पर अन्य क्षेत्रों को छात्र-कर्मचारी कार्य में सम्मिलित करना पड़ता है। मायर्स ने भी इस प्रकार की आवश्यकता अनुभव की है। तभी तो वह कॉलेज एवं विश्वविद्यालय स्तर पर छात्र कर्मचारी कार्य के क्षेत्र में अग्रांकित आठ बिन्दुओं का समावेश करते हैं-

(1) छात्रों के प्रवेश सम्बन्धी सेवाएं- यहाँ पर दूर-दूर से छात्र पढ़ने आते हैं इसलिए उन्हें प्रवेश सम्बन्धी कठिनाइयाँ हो सकती हैं। 'कर्मचारी कार्य' के अधिकारियों का यह काम है कि वे बाहर से आने वाले छात्रों की प्रवेश सम्बन्ध कठिनाइयों का निवारण करें। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए अधिकारियों को कई काम करने पड़ेंगे यथा' प्रवेश-पत्र दिलाना, उसे भरवाना, प्रवेश-पत्रों को जमा करना प्रवेश-पत्रों की जाँच व मूल्यांकन करना, प्रवेश के सम्बन्ध में निर्णय देना, प्रवेश हेतु परीक्षण लेना आदि।

(2) निवास-स्थान सम्बन्धी सेवाएं- कुछ ऐसे छात्रों को कॉलेज एवं विश्वविद्यालय में प्रवेश मिल जाता है जिनका कोई परिचित नहीं होता है। ऐसे छात्रों के सामने प्रवेश के उपरान्त निवास-स्थान की समस्या आती है। इस समस्या का सुलझाना छात्र-कर्मचारी कार्य का कर्त्तव्य है। 'कर्मचारी कार्य' के कार्यकर्त्ताओं को चाहिए कि वह प्रत्येक ऐसे छात्र के रहने की समुचित व्यवस्था करें। उन्हें उनके अनुसार ही कमरा दिलवाएं, खाने-पीने की व्यवस्था करें और आर्थिक रूप से आवश्यकता पड़े तो अंशकालीन सेवा (part-time service) की भी व्यवस्था कर दें।

(3) स्थापन सम्बन्धी सेवाएं- प्रवेश प्राप्त करने के बाद भी छात्र संस्था के सम्बन्ध में पूरी-पूरी जानकारी नहीं कर पाता है। इस अवस्था में उसे पुस्तकालय, उसके नियम-कानून, स्वास्थ्य सेवाओं, परामर्श सेवाओं, मनोरंजन सुविधाओं, सहगामी क्रियाओं तथा अन्य इसी प्रकार की सेवाओं से पूरी-पूरी तरह अवगत करा देना चाहिए।

(4) स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाएं- 'छात्र-कर्मचारी कार्य' का कर्तव्य है कि वह छात्र को शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक रूप से स्वस्थ रखे, इसके लिए सामयिक (Periodical) मेडिकल परीक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। मनोपचार तथा मनोवैज्ञानिक जाँच की भी व्यवस्था करनी आवश्यक हो जाती है।

(5) व्यक्तिगत आँकड़े प्रवेश सम्बन्धी सेवाएं-छात्रों से-चाहें वह नये हैं या पुराने सम्बन्धित आवश्यक आँकड़े एकत्रित करने की भी व्यवस्था 'कर्मचारी कार्य' को करनी चाहिए। इन व्यक्तिगत आँकड़ों से उस संस्थान से भी सूचना प्राप्त करनी चाहिए जिसमें पढ़कर छात्र आया है। इन आँकड़ों में बुद्धि, व्यक्तिगत, अभिरूचि, निष्पत्ति, स्वास्थ्य इत्यादि सम्बन्धी सम्पूर्ण आँकड़े सम्मिलित हैं।

(6) परामर्श सम्बन्धी सेवाएं-व्यक्तिगत सम्मेलन की व्यवस्था करके 'कर्मचारी कार्य' के द्वारा छात्रों को उचित परामर्श देना चाहिए। छात्रों से सम्बन्धित आँकड़ों का मूल्यांकन करके उनका महत्व ज्ञात करना चाहिए एवं साथ ही साथ उनकों शैक्षिक और व्यावसायिक योजनाओं की जाँच तथा उनमें आवश्यक परिवर्तन भी करना इसी विभाग का काम हो जाता है। दूसरे शब्दों में, उसे छात्रों का विकास करना चाहिए।

(7) स्थापन सम्बन्धी सेवाएँ-अध्ययन समाप्त कर लेने के उपरान्त छात्र को जीविका की आवश्यकता पड़ती है। इस संबंध में 'कर्मचारी कार्य' का छात्र की यथासम्भव सहायता करना उचित है। 'कार्य' को देखना चाहिए कि छात्र उपर्युक्त जीविका प्राप्त करने में कहाँ तक सफल होता है। वह स्वयं ही उपमुक्त जीविका खोज कर लेता है या उसे सहायता की आवश्यकता है। सहायता की आवश्यकता होने पर उसकी यथा सम्भव सहयोग तथा सहायता करनी चाहिए।

(8) अनुगामी सेवाएँ- छात्र को उपमुक्त जीविका की व्यवस्था करके ही कर्मचारी कार्य समाप्त नहीं हो जाता है, उसे यह भी देखना चाहिए कि छात्र ने जिस जीविका में प्रवेश किया है, उसमें वह कहाँ तक सफल तथा समायोजित होता है। आवश्यकता पड़ने पर उसकी जीविका में परिवर्तन भी करा देना उपमुक्त रहेगा जिससे छात्र जीविका के साथ अपने वातावरण के साथ एवं अपने स्वयं के साथ समायोजन कर सके।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कॉलेज व विश्वविद्यालय स्तर पर आकर 'छात्र-कर्मचारी कार्य का कलेवर कुछ परिवर्तित हो जाता है, फिर भी उद्देश्य तथा शिक्षा के साथ कार्य का सम्बन्ध ज्यों का त्यों बना रहता है।

नोट

टास्क अनुवर्ती सेवाओं से आप क्या समझते है?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. **निम्नलिखित कथनों में सही अथवा गलत का चिन्ह लगाओ–**

   (*i*) निर्देशन सेवा कार्यक्रम विद्यालय का मुख्य अंग है।

   (*ii*) विद्यालय निर्देशन सेवाओं का मिश्रित प्रारूप होता है।

   (*iii*) विद्यालय निर्देशन सेवाओं के संगठन में प्राचार्य की प्रमुख भूमिका होती है।

   (*iv*) अध्यापक की निर्देशन में कोई भूमिका नहीं होती है।

   (*v*) विद्यालय परामर्शदाता निर्देशन सेवाओं की व्यवस्था करता है।

7.7 सारांश (Summary)

- विद्यालय में निर्देशन व्यवस्था के अन्तर्गत, शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर निर्देशन व्यवस्था का क्या अथवा कैसा रूप हो? इसके संबंध में प्रकाश डाला जायेगा। क्योंकि एक प्रकार की निर्देशन व्यवस्था समस्त विद्यालय में उपयोगी हो, यह आवश्यक नहीं है? अतः निर्देशन व्यवस्था में लचीलापन होना नितान्त आवश्यक है। 1. प्रारम्भिक विद्यालयों की निर्देशन व्यवस्था, 2. माध्यमिक विद्यालयों की निर्देशन व्यवस्था, तथा 3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की निर्देशन व्यवस्था।
- **प्रारम्भिक विद्यालयों की निर्देशन व्यवस्था** (Organization of Guidance in Primary Level School)–प्राथमिक विद्यालयों अथवा प्राइमरी स्तर पर बालकों की समस्याएँ कम एवं अधिक गम्भीर नहीं होती हैं। अतः प्राथमिक स्तर पर शिक्षा द्वारा ही निर्देशन का कार्य किया जाता है। इस स्तर पर किसी प्रशिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता नहीं होती है। प्राइमरी स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम का कार्यभार प्रधानाध्यापक तथा अन्य शिक्षकों पर होता है।
- इस स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं-**अवलोकन करना**–विद्यार्थियों की वैयक्तिक समस्याओं, आवश्यकताओं तथा गुणों का अवलोकन करना; अवलोकन किये गये तथ्यों को **संचयी आलेख** पत्र में लिखना; उपस्थिति अधिकारियों के साथ **सहयोग** के साथ कार्य करना; अभिभावकों एवं विद्यालयों के मध्य **मधुर सम्बन्ध** बनाना।
- **माध्यमिक विद्यालय की निर्देशन व्यवस्था** (Organization of Guidance in High School)–इस स्तर पर निर्देशन व्यवस्था का रूप, व्यवस्थित एवं संगठित होता है। इन विद्यार्थियों में, निर्देशन कार्य में, निर्देशन समिति एवं निर्देशन प्रदात्ता, प्रधानाचार्य की सहायता करते हैं।
- **उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की निर्देशन व्यवस्था** (Organization of Guidance in Higher Secondary Schools)–मुदालियर आयोग की संस्तुति के आधार पर देश के कुछ विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों को प्रमुखतः निर्देशन सहायता की आवश्यकता होती है। इसी स्तर पर विद्यार्थी विभिन्न व्यवसायों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। अतः उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में, निर्देशन क्रियाओं तथा निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को अधिक आवश्यकता होती है। इन विद्यालयों में, प्रधानाचार्यो पर अत्यधिक कार्यभार होने के कारण, वे निर्देशन कार्यो पर कोई विशेष ध्यान नहीं दे पाते हैं। अतः प्रधानाचार्य द्वारा निर्देशन कार्य के संगठन के कार्यो को निर्देशन-संचालक अथवा निर्देशन प्रदाता को सौंप दिया जाता है।

नोट

- **निर्देशन कर्मचारियों का उत्तरदायित्व**–निर्देशन कार्यकर्त्ता, परस्पर सहयोग के सिद्धान्त का पालन करें। निर्देशन सेवाओं के संगठन की योजना के आधार पर ही, निर्देशन कार्यकर्त्ताओं की संख्या निर्धारित की जाती है। इसमें दो प्रकार के कार्यकर्त्ता होते हैं-
- **सामान्य कार्यकर्त्ता अथवा कर्मचारी**– विद्यालय की निर्देशन सेवा का निरीक्षण करने वाले कर्मचारी, सामान्य कर्मचारियों की श्रेणी के अन्तर्गत होता है। विद्यालय में निरीक्षण करने वाले व्यक्ति निम्नलिखित होते हैं- (अ) अधीक्षक; (ब) सहायक अधीक्षक तथा (स) प्रधानाचार्य।
- **निर्देशन में विशेषज्ञ**– निर्देशन कार्य में विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति विशेषज्ञ कहलाते हैं। परामर्शदाता, विद्यालय मनोवैज्ञानिक, निर्देशक-संचालक आदि।
- **प्रधानाचार्य की भूमिका:** विद्यालय में प्रधानाचार्य का मुख्य स्थान होता है। विद्यालय में प्रधानाचार्य के स्थान के बारे में-
- **प्रधानाचार्य के निर्देशन कार्यक्रम व सम्बद्ध उत्तरदायित्व**-विद्यालय का मुख्य अधिकारी प्रधानाचार्य होता है, अत: वहीं विद्यालय की समस्त क्रियाओं को सफलता के साथ करने के लिए उत्तरदायी होता है। निर्देशन कार्यक्रम, विद्यालय के कार्यक्रम का ही अंग होता है। अत: प्रधानाचार्य के निर्देशन कार्यक्रम निर्वाह में प्रमुख उत्तरदायित्व अग्रलिखित हैं-

    1. परामर्श सेवा हेतु उत्तम भवन की व्यवस्था करना।
    2. निर्देशन कार्यक्रम के लिये धन की व्यवस्था करना।
    3. छात्रों के अभिभावकों को निर्देशन सेवाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।
    4. निर्देशन कार्यक्रम प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने हेतु शिक्षकों को सहयोग प्राप्त करना।
    5. निर्देशन समिति का गठन करना।
- **निदेशक के उत्तरदायित्व:** विद्यालय में विभिन्न प्रकार के निर्देशन सेवाएँ कार्य करती हैं। निर्देशन कार्यक्रम सफलता के लिये यह आवश्यक है कि निर्देशन सेवाओं को निर्देशन के हाथों में सौंप दिया जाये। निर्देशक के मुख्य उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं-

    1. निर्देशन क्रियाओं का निरीक्षण करना।
    2. शिक्षकों को, निर्देशन कार्यक्रम से सम्बद्ध विभिन्न क्रियाओं से अवगत कराना।
    3. समायोजन से सम्बन्धित जटिल समस्याओं के निराकरण में निर्देशक शिक्षकों की सहायता करना है।
    4. निर्देशक, निर्देशन नीतियों का निर्धारण, प्रधानाचार्य की स्वीकृति एवं शिक्षकों के सहयोग से करता है।
    5. निर्देशन कार्यक्रम की प्रगति में अपना नेतृत्व प्रदान करना।
- **परामर्शदाता का कार्य:** प्रत्येक विद्यालय में परामर्शदाता होता है। बालकों को परामर्श प्रदान करने हेतु या तो शिक्षक को ही प्रशिक्षित कर दिया जाता है अथवा परामर्श विशेषज्ञ को नियुक्त किया जाता है। परामर्श के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

    1. विद्यालय से गहन सम्बन्ध बनाये रखना।
    2. यथा समय अभिभावकों की बैठक कर, उनसे सम्पर्क बनाये रखने का प्रयास करना।
    3. विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक परीक्षण करना।
- **शिक्षक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य तथा उत्तरदायित्व:** शिक्षक अपने छात्रों का अध्ययन अनेक परिस्थितियों में करता है, क्योंकि वह उनके सर्वाधिक निकट सम्पर्क में रहता है, उसे छात्रों की आवश्यकताओं के सम्बन्ध

नोट

में जानकारी होती है तथा उनकी विभिन्न समस्याओं का भी उसे ज्ञान होता है। शिक्षकों के निर्देशन सम्बन्धी कार्य एवं उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं।

1. छात्रों के साथ वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करना; 2. कुसमायोजित बालकों का पता लगाना; 3. अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करना।

- **कक्षा अध्यापक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य:** अत: कक्षा अध्यापक, शिक्षार्थियों से सम्बन्धित कार्यो एवं उत्तरदायित्वों का निर्वाह करके वह निम्नलिखित तथ्यों के सम्बन्ध में निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को जानकारी प्रदान कर सकता है-

1. कक्षा में उत्तम वातावरण पैदा करना; 2. अन्य निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को अपना सहयोग प्रदान करना।

- वैसे तो निर्देशन का क्षेत्र असीमित है; लेकिन विद्यालय जीवन से सम्बन्धित कतिपय ऐसे विशिष्ट कार्य होते हैं; जिन पर निर्देशन सेवायें ही ध्यान देती हैं तथा इन्हीं के द्वारा उन कार्यों को किया जा सकता है-

1. बालक को विद्यालय में प्रवेश पाने तथा विद्यालयी जीवन की ओर उन्मुख करना, निर्देशन सेवा का विशिष्ट कार्य है। विद्यालय में प्रवेश के नियम, समय, शुल्क तथा योग्यता से सम्बन्धित विभिन्न सूचनायें छात्रों को निर्देशन सेवा प्रदान करती हैं।
2. निर्देशन सेवा छात्रों से सम्बद्ध अभिलेख (Students Records), छात्रों की प्रगति तथा मूल्यांकन से सम्बन्धित सूचनायें एवं अन्य विवरण को समुचित एवं व्यवस्थित ढ़ंग से रखती हैं।
3. निर्देशन सेवा, छात्रों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित कार्य भी करती हैं।
4. छात्रों के सामाजिक समायोजन, पारिवारिक समस्याओं तथा अवकाश सम्बन्धी निर्देशन प्रदान करना निर्देशन सेवा का विशिष्ट कार्य है।

- इस स्तर पर, छात्रों की संख्या तथा आवश्यकताओं के अनुरूप अलग-अलग ढंग से, निर्देशन कार्य को संगठित किया जाता है। इस स्तर पर निर्देशन के सामान्य संगठन की रूपरेखा निम्नवत् हो सकती है- रेखीय संगठन सिद्धान्त के आधार पर, महाविद्यालय में संगठन का प्रमुख ट्रस्ट ही बोर्ड का अध्यक्ष हो सकता है और विश्वविद्यालय में कुलपति को प्रमुख के रूप में माना जा सकता है। सामान्यत: अधीक्षक के अधीनस्थ कार्य करने वाले तथा, निर्देशन कार्यक्रमों में कुलपति को परामर्श प्रदान करने हेतु पाँच निदेशक होते हैं जो कि कर्मचारी एवं रेखा अधिकारियों की भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। (*i*) विद्यार्थी सेवाओं के निदेशक (*ii*) स्वास्थ्य सेवाओं के निदेशक (*iii*) आर्थिक विषयों संबंधी निदेशक, (*iv*) शिक्षण-निदेशक तथा (*v*) पुस्तकालय-निदेशक।
- शिक्षण संस्थाओं में, निर्देशन सेवा-संगठन हेतु, निर्देशन सेवा-समिति की मुख्य आधारभूत आवश्यकता है। इस निर्देशन सेवा समिति के प्रमुख रूप से तीन कार्य होते हैं-

1. विद्यालयों में उपलब्ध, निर्देशन सुविधाओं का सर्वेक्षण करना,
2. छात्रों की उन समस्याओं को संकलित करना, जिनके लिए निर्देशन की व्यवस्था करनी है।

- निर्देशन संगठन के प्रमुख अधिकारी का व्यक्तित्व तथा, उसकी कार्यक्षमताओं का प्रभाव; निर्देशन कार्यक्रमों की सफलता पर पड़ता है निर्देशन संगठन के प्रमुख अधिकारी की छवि, सम्पूर्ण निर्देशन योजना में होती है। वही अन्य कर्मचारियों की प्रेरणा का स्रोत होता है। अत: उसे निर्देशन सेवाओं की क्रियान्विति उत्साह एवं लगन के साथ करना चाहिए, उसे एक संरक्षक के रूप में अपने कार्यों को करना चाहिए।
- 'विद्यार्थी-कर्मचारी कार्य' के उद्देश्यों की विवेचना करते समय हम पाते हैं कि इसका एकमात्र उद्देश्य मोटे तौर से विद्यालय के वातावरण को विकास योग्य बनाना है।

नोट

- 'विद्यार्थी-कर्मचारी कार्य' के अनेक उद्देश्य है- छात्रों की इस प्रकार सहायता करना जिससे वह शैक्षिक वातावरण से अधिक से अधिक लाभ उठा सकें। इस उद्देश्य के कारण कुछ लोग निर्देशन तथा 'छात्र-कर्मचारी कार्य' में कोई अन्तर नहीं समझते हैं। कुछ लोग निर्देशन के स्थान पर 'छात्र-कर्मचारी कार्य' का प्रयोग करते हैं। ऐसा वे क्यों करते हैं?
- उच्च कक्षाओं में छात्र-कर्मचारी कार्य भी ठीक उसी प्रकार सम्पन्न किया जा सकता है जिस प्रकार माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में। परन्तु इन दोनों में कुछ अन्तर समझ लेना आवश्यक है। छोटी कक्षाओं में बालक विद्यार्थी होता है जबकि बड़ी कक्षाओं में आकर वह छात्र बन जाता है।

7.8 शब्दकोश (Keywords)

- **निर्देशन**– नाम से संकेत करना।
- **उत्तरदायित्व**–जबाबदेही।

7.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

(*i*) विद्यालय से सम्बन्धित निर्देशन कार्यक्रमों के संगठन में किन प्रमुख बातों को ध्यान में रखना चाहिए?

(*ii*) विद्यालय निर्देशन सेवा द्वारा किये जाने वाले प्रमुख कार्यो का उल्लेख कीजिए।

(*iii*) विद्यालय निर्देशन सेवा की प्रमुख भूमिका पर संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

(*iv*) निर्देशन सेवाओं को संगठित करने के प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए। निर्देशन कार्यक्रम के प्रकारों को उल्लेख करते हुए एक अच्छे निर्देशन संगठन की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

(*v*) निर्देशन प्रदान करने से संबंधित कर्मचारियों की भूमिका का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

(*vi*) ''प्रधानाचार्य अपने विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम का प्रमुख व्यक्ति होता है।'' इस कथन की पुष्टि कीजिए तथा कार्यो कर्त्तव्यों को बताइये।

(*vii*) 'छात्र-कर्मचारी कार्य' को समझाइए।

उत्तर– स्व–मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	(*i*).	अंग	(*ii*)	प्राचार्य	(*iii*)	परामर्शदाता
	(*iv*)	प्राचार्य	(*v*)	कुलपति		
2.	(*i*).	सत्य	(*ii*)	सत्य	(*iii*)	सत्य
	(*iv*)	असत्य	(*v*)	सत्य		

7.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श* (Educational Vocational Guidance and Councelling) – डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–8: व्यक्तिगत एवं सामूहिक निर्देशन (Personal and Group Guidance)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 व्यक्तिगत निर्देशन के आधारभूत प्रत्यय, उद्देश्य, प्रकार, प्रक्रिया एवं आवश्यकता (Basic Concept, Objectives, Types, Process and Needs of Personal Guidance)

8.2 समूह निर्देशन के प्रकार एवं क्षेत्र (Types and Scope of Group Guidance)

8.3 समूह निर्देशन के प्रमुख आधार एवं उद्देश्य (Bases and Aims of Group Guidance)

8.4 सारांश (Summary)

8.5 शब्दकोश (Keywords)

8.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

8.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- व्यक्तिगत एवं सामूहिक निर्देशन के आधारभूत प्रत्यय, उद्देश्य, प्रकार, प्रक्रिया और क्षेत्र की व्याख्या करने और विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

समूह निर्देशन का क्षेत्र असीमित है, तथापि इसमें विशेषत: उन समस्याओं का अध्ययन एवं चर्चा की जाती है, जो विद्यार्थियों की शैक्षिक योजनाओं, परिवार एवं शिक्षालय में सामंजस्य कार्य-जगत् का चयन व्यवसाय खोजने, सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक परिस्थितियाँ एवं व्यक्तित्व सम्बन्धित होती हैं।

8.1 व्यक्तिगत निर्देशन के आधारभूत प्रत्यय (Basic Concept of Personal Guidance)

व्यक्तिगत निर्देशन के प्रत्यय इस प्रकार हैं-

(1) व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान हेतु अन्तर्दृष्टि के विकास का विशेष महत्व होता है।

(2) व्यक्ति से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान की दिशा में उसकी अपनी धारणा सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

(3) व्यक्ति का समग्र व्यक्तित्व अखण्ड एवं जटिल होता है।

(4) व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित समस्त समस्याओं में अपना सम्बन्ध रहता है।

(5) प्रत्येक व्यक्तिगत समस्या के साथ कोई न कोई संवेगात्मक पहलू भी संयुक्त रूप से प्रभावित रहता है।

नोट

व्यक्तिगत निर्देशन के उद्देश्य (Objectives of Personal Guidance)

व्यक्तिगत निर्देशन के अधोलिखित उद्देश्य होते हैं:-

(1) व्यक्ति में समायोजन की योग्यता का विकास करना।
(2) पारस्परिक सम्बन्धों को बनाये रखने से सम्बन्धित कौशल के विकास में सहायता प्रदान करना।
(3) जीवन से सम्बन्धित विभिन्न परिस्थितियों में विवेक एवं सूझबूझयुक्त व्यवहार का विकास करने में सहयोग प्रदान करना।
(4) व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित समस्याओं की जानकारी प्राप्त करने, उनके कारणों एवं प्रभावों को खोजने तथा उनका समाधान खोजने में सहायता देना।
(5) व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित समस्याओं के सन्दर्भ में निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।
(6) परिवार एवं समाज में सम्बन्धित सदस्यों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने की योग्यता का विकास करने में सहायता देना।
(7) अपने स्वास्थ्य के प्रति निरन्तर सचेत रहने तथा मानसिक एवं सांवेगिक सन्तुलन को बनाये रखने में सहायता प्रदान करना।
(8) अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं की सही उपयोग तथा बाह्य पर्यावरण में उत्पन्न अवसरों की सम्भावनाओं के सन्दर्भ में विचार करने की योग्यता का विकास करने में सहायता प्रदान करना।
(9) परिवार, पड़ोस, विद्यालय एवं समुदाय के मध्य समायोजन की योग्यता का प्रदर्शन करते हुए जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करना।
(10) संवेगात्मक नियन्त्रण हेतु आवश्यक अभ्यास की दिशा में व्यक्ति को प्रेरित करना।
(11) इस प्रकार के अवसरों की व्यवस्था करना, जिनके माध्यम से पारस्परिक सम्पर्कों को स्थापित करने तथा उनका विकास करने हेतु प्रोत्साहन प्राप्त हो सके।
(12) स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेने और आत्म-विश्वासपूर्वक कार्य करने की क्षमता का विकास करने में सहायता प्रदान करना।

व्यक्तिगत समस्याओं के प्रकार (Types of Personal Problems)

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों तथा निर्देशन के क्षेत्र में किए जाने वाले अनुसन्धानों के आधार पर, मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन तथा वर्गीकरण करने के अनेक प्रयास किए गए हैं। *रॉस एल॰ मूनी* एवं *रेमर्स* ने अपने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर इन समस्याओं को गहनता से अध्ययन किया है। इन समस्त समस्याओं को *सीताराम जायसवाल* ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक, 'शिखा में निर्देशन और परामर्श' में सात वर्गों में विभक्त किया है।

(1) स्वास्थ्य एवं शारीरिक समस्यायें (Problems related to the health and physical development)
(2) सामाजिक सम्बन्धों से जुड़ी समस्यायें (Problems related social relationship)
(3) संवेगात्मक व्यवहार से सम्बन्धित समस्यायें (Problems related to emotional behaviour)
(4) पारिवारिक जीवन एवं पारिवारिक सम्बन्धों से सम्बन्धित समस्यायें (Problems related to home and family relationship)
(5) यौन प्रेम एवं विवाह सम्बन्धी समस्यायें (Problems related to the sex, courtship and marriage)
(6) आर्थिक जीवन से सम्बन्धित समस्यायें (Problems related to economic life)
(7) धर्म चरित्र आदर्श एवं मूल्यों से सम्बन्धित समस्यायें (Problems related to religion, morals, ideals and values)

नोट

व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया (Process of Personal Guidance)

व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया अथवा उसी कार्यप्रणाली का संचालन करने के लिए विभिन्न सोपानों का क्रमिक रूप से अनुसरण करना आवश्यक होता है। इन सोपानों का उल्लेख निम्नलिखित है-

प्रथम सोपान: सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि जिस व्यक्ति की समस्याओं के सन्दर्भ में प्रयास किया जा रहा है, उस व्यक्ति के साथ इस प्रकार के सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना की जाए, जिससे वह अपनी समस्याओं के सन्दर्भ में नि:संकोच विवरण दे सके।

द्वितीय सोपान: व्यक्तिगत निर्देशन के दूसरे सोपान के अन्तर्गत, विभिन्न प्रकार की मापनियों एवं परीक्षणों के आधार पर, व्यक्ति की रूचि एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की जाती है।

तृतीय सोपान: रूचि एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर लेने के उपरान्त मनोविश्लेषणात्मक विधियों के आधार पर व्यक्ति के अहं (Ego), इसमें (id) पराहम (Super-ego), की स्थिति तथा समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन एवं मूल्यांकन किया जाता है।

चतुर्थ सोपान: उपरोक्त अध्ययन एवं मूल्यांकन के उपरान्त, वास्तविक, समस्या के समाधान की दिशा में व्यक्ति को परामर्श प्रदान किया जाता है।

पंचम सोपान: अपनी समस्याओं के सन्दर्भ में स्व:मूल्यांकन, एवं विवेकपूर्ण निर्णय की क्षमता, के विकास की प्रक्रिया के उपरान्त अन्तिम रूप में निर्णित की जाने वाली कार्ययोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहायता प्रदान करना कि समाधान से सम्बन्धित उन योजनाओं की क्रियान्विति के उपरान्त, उनकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

षष्टम सोपान: यथा समय व्यक्ति की समस्याओं के समाधान के सन्दर्भ में विचार-विमर्श का अवसर उत्पन्न करना।

सप्तम सोपान: समस्या के स्वरूप, समस्या के समाधान, तथा उन समाधानों के उपरान्त प्राप्त परिणामों का मूल्यांकन करना। इस मूल्यांकन के आधार पर प्राप्त परिणामों अथवा अनुभवों का भविष्य में उपयोग करना सम्भव होता है।

व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता (Need for Personal Guidance)

व्यक्तिगत निर्देशन की प्रमुख आवश्यकता इस प्रकार की होती है-

(1) व्यक्तिगत जीवन में सुख-शान्ति एवं सन्तोष का विकास करने हेतु,

(2) व्यक्तिगत समस्याओं के सन्दर्भ में सही निर्णय लेने हेतु,

(3) व्यक्तिगत समायोजन की क्षमता का विकास करने हेतु,

(4) व्यक्तिगत कौशलों का विकास करने की दृष्टि से,

(5) पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने हेतु, तथा

(6) पारस्परिक तनावों को कम करने हेतु।

उपरोक्त आवश्यकताओं का संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया गया है-

(1) व्यक्तिगत जीवन में सुख-शान्ति एवं सन्तोष का विकास करने हेतु (To Develop the Feelings of Happiness, Peace and Satisfaction): प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में अधिक से अधिक सुख, शान्ति एवं सन्तोष चाहता है। प्राय: यह देखने में आता है कि विभिन्न दृष्टियों से बहुत कुछ उपलब्ध करने के उपरान्त भी व्यक्ति में सन्तोष वृत्ति का उदय नहीं हो पाता है और वह मृत्युपर्यन्त कुछ न कुछ और पाने की धुन में तनावग्रस्त बना रहता है। इसी स्थिति में जो उपलब्ध है, उसका सुख भी वह नहीं भोग पाता है और परिणामत: अशान्त रहता है। ऐसा नहीं है कि सुख, सन्तोष अथवा शान्ति की स्थिति को प्राप्त कर पाना असम्भव है। यह सम्भव है, परन्तु इसके लिए जिस आत्मबोध का विकास आवश्यक है, उससे प्राय: हम वंचित रहते हैं। व्यक्तिगत निर्देशन के द्वारा व्यक्ति में इस आत्मबोध का विकास किया जा सकता है।

(2) व्यक्तिगत समस्याओं के सन्दर्भ में सही निर्णय लेने हेतु (To Take Proper decision in the context of

नोट

Personal Problems): निर्णय लेने की क्षमता का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सर्वाधिक महत्व होता है। जो व्यक्ति अपने वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं के सन्दर्भ में समुचित निर्णय लेने में दक्ष होता है, निःसन्देह वही व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक प्रगति करने की दिशा में सफल हो पाता है। अतः इस क्षमता का विकास बाल्यकाल से ही किया जाना चाहिए। इस दिशा में व्यक्ति को यह बताया जा सकता है कि उसे किस प्रकार अपनी क्षमता, योग्यता, समय एवं साधनों के सन्दर्भ में निर्णय लेना चाहिए तथा निर्णय लेते समय किस मानसिक प्रक्रिया को प्रयुक्त करना चाहिए।

(3) व्यक्तिगत समायोजन की क्षमता का विकास करने हेतु (To Develop the Efficiency of Personal Adjustment): व्यक्तिगत समायोजन की क्षमता का, विशेषकर वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्व है। परिवार, समुदाय अथवा समाज के व्यक्तियों से बने सम्बन्धों को यह क्षमता प्रभावित करती ही है, व्यक्ति के निजी एवं भावी जीवन की दृष्टि से भी समायोजन की क्षमता का अधिक महत्व होता है। अपने एवं दूसरे व्यक्ति के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना एवं उनको यथावत बनाए रखना ही इस योग्यता की कसौटी है। इसलिए अपना एवं समाज के सदस्यों का सही अध्ययन एवं मूल्यांकन नितान्त आवश्यक होता है। इस योग्यता का व्यक्ति अपने परिवार, समुदाय अथवा समाज में समायोजित नहीं हो पाता है वह अपने विद्यालयी जीवन तथा व्यावसायिक क्षेत्र में भी किसी न किसी दृष्टि से असमायोजित ही रहता है।

(4) व्यक्तिगत कौशलों का विकास करने की दृष्टि से (To Develop the skills related to individual life): शैक्षिक एवं व्यावसायिक जीवन के अतिरिक्त, वैयक्तिक जीवन में भी अनेक प्रकार के कौशलों की आवश्यकता होती है। इन कौशलों को विकास करके शैक्षिक एवं व्यावसायिक उपलब्धियों की गति में वृद्धि की जा सकती है। हम किस प्रकार अपने स्वास्थ्य को बनाएं रखे, किस प्रकार अपने लक्ष्यों एवं दैनिक दिनचर्या का निर्धारण करे, किस प्रकार अपने मित्रों, बालकों, अभिभावकों, पड़ोसियों, गुरूजनों के साथ व्यवहार करें, आदि से सम्बद्ध कौशलों को विकास होने की स्थिति में हमारी जीवनधारा अपेक्षाकृत अधिक सहज गति से प्रवाहित होने लगती हैं। व्यक्तिगत निर्देशन के द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सहायता प्रदान की जा सकती है।

(5) पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने हेतु (To Develop Co-ordination in between Familial and Vocational Life): व्यक्ति की पारिवारिक परिस्थितियों का व्यावसायिक जीवन पर विशेष प्रभाव होता है। जो व्यक्ति अपने परिवार में समायोजित नहीं है तथा परिवार के सदस्यों से असन्तुष्ट है वह स्वाभाविक रूप से व्यावसायिक क्षेत्र में कार्य करते हुए भी अपनी पारिवारिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में विचार करता रहेगा। उसकी खिन्नता, असन्तोष, निराशा, चिन्ता एवं विरक्ति का प्रभाव, उसकी व्यावसायिक उपलब्धियों एवं व्यवसाय में लगन सहकर्मियों के साथ स्थापित किए गए सम्बन्धों पर भी होगा। इसी प्रकार व्यावसायिक जीवन के प्रति असन्तोष, निराशा अथवा उग्रता का प्रभाव उसके पारिवारिक जीवन पर पड़ेगा। व्यक्तिगत निर्देशन द्वारा व्यावसायिक एवं पारिवारिक जीवन में समन्वय स्थापित करने हेतु सहायता प्रदान की जा सकती है।

(6) पारस्परिक तनावों को कम करने हेतु (To Minimise the Mutual Tensions): वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, व्यक्ति की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एवं प्रतिस्पर्धाओं में होने वाले तीव्रगामी विकास को सहज ही देखा जा सकता है। इन समस्त परिवर्तनों के फलस्वरूप, पारस्परिक सम्बन्धों को सौहार्दपूर्ण बनाये रखना अत्यन्त जटिल होता जा रहा है वरन् स्वयं को लाभान्वित करने के साथ ही दूसरों का अहित करने की प्रवृत्ति का भी विकास करता चला जा रहा है। इस प्रकार की स्थिति से व्यक्ति एवं समाज को विमुक्त करने हेतु भी व्यक्तिगत निर्देशन का प्रभावी उपयोग किया जा सकता है।

स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

1 . **निम्नलिखित कथनों में से 'सत्य' तथा 'असत्य' बताएँ (State whether the following statements are 'True' or 'False')**

1. व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्ति में समायोजन की योग्यता का विकास करता है।
2. व्यक्तिगत निर्देशन पारस्परिक संबंधों को बनाये रखने संबंधित कौशल के विकास में सहायक नहीं होता।

नोट

3. स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने और आत्मविश्वास पूर्वक कार्य करने की क्षमता का विकास व्यक्तिगत निर्देशन से होता है।
4. संवेगात्मक नियंत्रण हेतु व्यक्तिगत निर्देशन आवश्यक अभ्यास की दिशा में व्यक्ति को कभी प्रेरित नहीं करता।
5. अपने स्वास्थ्य के प्रति निरंतर सचेत रहने तथा मानसिक एवं सांवेगिक संतुलन को बनाये रखने में व्यक्तिगत निर्देशन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

8.2 समूह निर्देशन के प्रकार एवं क्षेत्रः (Types and Scope of Group Guidance)

समूह निर्देशन की व्यवस्था, विद्यालय अथवा शैक्षिक संस्थानों में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के समूहों में की जा सकती है। हमारे देश की परिस्थितियों के संदर्भ में समूह निर्देशन की व्यवस्था निम्नलिखित परिस्थितियों में की जा सकती है।-

1. विद्यालय की सामान्य सभाओं के अन्तर्गत।
2. अनिवार्य पाठयक्रमों की कक्षाओं के अन्तर्गत।
3. सामान्य कक्षाओं में जब विषय अध्यापक शिक्षण अधिगम की व्यवस्थाओं का गठन करते हैं।
4. राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा अन्य सामुदायिक सेवाओं के कार्यक्रमों में आयोजित की जाने वाली गोष्ठियों एवं सभाओं के माध्यम से।
5. स्वेच्छा व अभिरूचि के माध्यम से।
6. छोटे समूहों के माध्यम से तथा
7. सम्मेलनों एवं कैरियर सम्मेलनों के द्वारा।

इससे यह स्पष्ट होता है कि हमारे देश में समूह-निर्देशन पद्धति को विभिन्न प्रकार के समूहों के माध्यम से लागू करने की व्यवस्था उपलब्ध है। चर्चा के लिए विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों का ही उल्लेख किया जा रहा है।

सामूहिक-निर्देशन की विशिष्ट प्रविधियाँ (Specific Techniques of Group Guidance)

समूह-निर्देशन हेतु प्रयुक्त प्रविधियों का उल्लेख निम्नलिखित है-

(1) समूह अधिगम समूह प्रविधि (Team Learning Technique): इस प्रविधि को विशिष्ट प्रविधि के रूप में, *बेलान* एवं अन्य शोध-कर्त्ताओं ने प्रयुक्त किया है। इस प्रविधि में कक्षा को विभिन्न छोटे-छोटे उपवर्गों में, परिवार की इकाइयों के समान विभक्त कर दिया जाता है तथा प्रत्येक वर्ग एवं उपवर्ग का नेता एवं उप-नेता बना दिया जाता है। जिसमें अध्यापक को नियोजन, परामर्श तथा सुधारात्मक कार्यों के लिए अवसर प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार के छोटे समूहों द्वारा किया गया कार्य अत्यन्त प्रभावशाली पाया गया है।

(2) फिल्म प्रयोग प्रविधि (Use of Films): कुछ विशिष्ट समस्याओं के बारे में, विद्यार्थियों में चिन्तन को विकसित करने की दृष्टि से समूह-परामर्श की एक सम्पूर्ण बैठक को चलचित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। आरम्भ में चलचित्र के मात्र कुछ भाग को दिखाकर ही उसकी समस्याओं के सम्बन्ध में चर्चा की जाती है। सम्पूर्ण समस्या को चलचित्र के माध्यम से प्रस्तुत कर दिए जाने के उपरान्त उस समस्या के बोध एवं समाधान के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जाते हैं।

(3) प्रश्न-पेटी (Questions Box): इस प्रविधि में समूह के प्रत्येक विद्यार्थी अथवा सदस्य को अपनी आवश्यकता एवं रूचि के अनुसार प्रश्न पूछने हेतु कहा जाता है। इस प्रविधि में लज्जालु एवं संकोची स्वभाव वाले विद्यार्थियों को भी प्रश्न पूछने का अवसर प्राप्त हो जाता है तथा पूछने सम्बन्धी कुशलता का विकास हो जाता है। *जोन्स* ने इस प्रविधि को विद्यार्थियों में प्रेरणा देने हेतु उत्तम प्रविधि स्वीकार किया है।

(4) व्याख्यान प्रविधि (Lecture Technique): इस विधि में विद्वानों अथवा विशेष व्यक्तियों द्वारा चयनित विषयों पर व्याख्यान कराये जाते हैं।

(5) लघु समूह प्रतिवेदन (Small Groups Reports): लघु समूह प्रतिवेदन में, विद्यार्थियों को लघु समूहों में विभक्त कर, उनसे विशेष प्रश्नों पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु कहा जाता है तथा सामान्यत: इन वर्गों को समितियों के रूप में गठित कर दिया जाता है।

(6) अनौपचारिक वार्तायें (Informal Talks): इन वार्ताओं को अध्यापक अथवा परामर्शदाता, छात्रों से अपने निरीक्षण में करवाता है। इसमें विद्यार्थियों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होती है, कि वे कैसे एवं किन विषयों पर अपनी बात कहें।

(7) इकाई सम्मेलन प्रविधि (Case Conference Technique): इस विधि के अन्तर्गत अधिकांश विद्यार्थियों द्वारा अनुभूत की गई समस्या को अत्यन्त मूर्त तरीके से, इकाई के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा प्रत्येक विद्यार्थी वैसी ही परिस्थिति में स्वयं के अनुभवों को बतलाता है। छात्र को, स्वयं से पृथक् कर, स्थायी तथा अमूर्त मूल्यों के सम्बन्ध में सोचने हेतु अभिमुख किया जाता है। इसके पश्चात् प्रस्तावित योजनाओं के सम्भावित परिणामों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया जाता है। इस क्रम के अन्तर्गत ही सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है और कमियों की एक सूची तैयार की जाती है। *जोन्स* का यह कहना है कि इस विधि की सम्पूर्ण प्रक्रिया सामाजिक चिन्तन हेतु छात्रों में अनुभवों का विकास करती है और निर्देशन कार्यक्रमों में इस विधि का सकारात्मक व अमूल्य योगदान है।

(8) अनुकरण तथा नाटक (Simulation and Drama): इस विधि में परामर्शदाता, विद्यार्थियों द्वारा पूर्व निश्चित किए गए शीर्षकों पर भूमिका का निर्वाह करता है और नाटक के पात्रों के रूप में सम्पूर्ण परिस्थिति में भाग लेता है। अनुरूपण में परामर्शदाता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि विद्यार्थी तदनुभूति के द्वारा यथार्थ परिस्थितियों का अभ्यास करें। परिस्थितियों की कल्पना करके, उसको ज्ञात करना, उसके सम्बन्ध में समझ विकसित करना, परिस्थितियों में आने वाली घटनाओं तथा पत्रों के अनुसार भूमिका अभिनय एवं समूह के विद्यार्थियों में इस प्रकार के अभ्यास के माध्यम से क्षमता का विकास कर, उस क्षमता की उपयोगिता का मूल्यांकन करना, इसके प्रमुख तत्व माने जाते हैं। नाटक के अन्तर्गत किसी समस्यात्मक स्थिति अथवा अन्तर्द्वन्द्व की मनोदशा को अभिव्यक्त करने के लिए छात्र को भूमिका अभिनय कराया जाता है तथा पूर्ण समूह की सहभागिता में वृद्धि की जाती है।

(9) अपेक्षित स्तर की पहचान (Identification Level Selection): संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य में इस प्रविधि का प्रयोग सर्वप्रथम किया गया। इस प्रविधि में सदस्यों का चयन, उसकी जीवन-पद्धति एवं परिपक्वता की क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्ति अपेक्षित स्तर के अनुसार ही किया जाता है। ऐसे व्यक्ति जो चालाक, आक्रामक अथवा गम्भीर प्रकृति के होते हैं, उन सभी को एक वर्ग में रखकर, अपने व्यवहार को व्यक्त करने का अवसर सुलभ कराया जाता है तथा समूह के किसी भी सदस्य को पूर्ण परिचर्चा के संचालन का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाता है।

(10) परिवार-समूह कार्य-प्रविधि (Family Group Work): इस प्रविधि के अन्तर्गत, परामर्शदाता, अध्यापक एवं माता-पिता एक टोली के रूप में, समूह-निर्देशन के कार्यों में अपना सहयोग देते हैं। इस प्रविधि का प्रयोग निदानात्मक रूप में अधिक किया जाता है।

(11) समाजमिति-मापन (Sociometric Evaluation): सामाजिक विकास का मापन करने के लिए, समाजमिति प्रविधि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रविधि के द्वारा व्यक्तिगत संवेदनाओं का उचित रूप से मूल्यांकन किया जा सकता है।

(12) परामर्शदाता द्वारा लघुगणक पुस्तिका का निर्माण (Construction of a Counseller's Log-book): प्रत्येक परामर्शदाता, परामर्श तथा प्रत्येक निर्देशन सत्र का विवरण रखने हेतु एक लघुगणक पुस्तिका का निर्माण करता है। इस पुस्तिका में परामर्शदाता सत्र की अवधि में आई कठिनाइयों एवं विशिष्ट प्रकार की बाधाओं का लेखा-जोखा तैयार किया जाता है।

नोट

(13) जादुई-वृत्त कार्यक्रम प्रविधि (Magic Circle Programme): जादुई-वृत्त कार्यक्रम प्रविधि, समूह-परामर्श अथवा समूह-निर्देशन की एक आधुनिक प्रविधि है। प्रविधि को प्रयोग विशेषत: प्राथमिक कक्षाओं एवं *किण्डर गार्टन* बालकों हेतु किया गया है। दस बालकों के अथवा दस से कम बालकों के समूह में, प्रत्येक बालक को दूसरे बालकों के प्रति सद्व्यवहार करने हेतु कहा जाता है। इस सद्व्यवहार का प्रदर्शन सफलतापूर्वक करने से उस बालक को पुनर्बलन दिया जाता है तथा इसके साथ ही नकारात्मक व्यवहार से सम्बद्ध चित्रों को भी प्रत्येक बालक को दिखाया जाता है। तदुपरान्त इन चित्रों के बारे में चर्चायें की जाती हैं। चर्चा में प्रत्येक बालक को अपना विचार अभिव्यक्ति करने हेतु बाध्य किया जाता है। इस प्रकार यह क्रम एक गोले के रूप में चलता रहता है। इस प्रविधि के द्वारा समूह के सदस्यों में विभिन्न गुणों का विकास किया जा सकता है जैसे-पहचान, दया, सहयोग, तद्नुभूति इत्यादि।

(14) अधिगम क्रिया परामर्श प्रविधि (Learning Activity Counseling): अधिगम क्रिया उपबोधन प्रविधि के अन्तर्गत, प्रत्येक विद्यार्थी को विशेष प्रकार की क्रियाओं को चुनाव करके एक टोली के रूप में कार्य करना होता है छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन करना ही इस प्रविधि का उद्देश्य है। इस दृष्टि से छात्रों को अपनी क्रियाओं के चयन में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और वे अपना सहयोगी का चयन करने में भी स्वतन्त्र होते हैं। प्रोजेक्ट के द्वारा छात्रों को अधिगम कराने की व्यवस्था इस प्रविधि में होती है।

(15) अन्त:क्रिया विश्लेषण प्रविधि (Interaction Analysis): *हिंकमायर एवं काल्डवेल* के अनुसार एमिडन, हण्टर एवं नैडल्फैण्डरस द्वारा उपयोग की गई, अन्तर्क्रिया विश्लेषण की प्रविधियों को समूह-परामर्श एवं समूह निर्देशन के अन्तर्गत प्रयुक्त किया जा सकता है। इन प्रविधियों के अन्तर्गत, प्रशिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों की अन्तर्दृष्टि संवेदनशीलता की क्षमता में वृद्धि की जाती है तथा वृद्धि की दृष्टि से परिणामों को भी सहजता से देखा जा सकता है।

(16) आत्म प्रत्यय में परिवर्तन (Change in Self-Concept): इस प्रविधि में, समूह के सदस्यों में आत्म-अवबोध का विकास करने हेतु आत्म-कथा वर्णनों से लिए गए आत्म-परक शब्दों को प्रयुक्त किया जाता है। समूह के सदस्यों द्वारा उन पदों का चयन किया जाता है जो उनका वर्णन सही तरीके से करते हैं। इस प्रकार समूह के सदस्यों को स्वयं के आत्म प्रत्यय को परिवर्तित करने हेतु अवसर प्राप्त होता है।

क्या आप जानते हैं इकाई सम्मेलन विधि को समूह-निर्देशन की एक प्रभावशाली प्रविधि के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

8.3 समूह निर्देशन के प्रमुख आधार एवं उद्देश्य (Bases and Aims of Group Guidance)

समूह परामर्श अथवा समूह निर्देशन की प्रक्रिया एक विशिष्ट प्रकार के तर्क आधारों पर निर्भर करती है। ये मुख्य तर्क निम्नलिखित हैं-

(1) लोकतान्त्रिक आचरण एवं वातावरण के समूह निर्देशन का गहन सम्बन्ध है।

(2) समूह निर्देशन में इस बात पर बल दिया जाता है कि परामर्शदाता विद्यार्थियों के व्यवहारों को परिवर्तित करने के अवसरों में वृद्धि करे। अवसरों में अभिवृद्धि करने के लिए इस प्रक्रिया में, विद्यार्थी अन्य छात्रों से कितनी अन्त:क्रिया कर रहा है, स्वयं को कैसे अभिव्यक्त कर रहा है? सामाजिक लक्ष्य क्या हैं? इत्यादि का अवलोकन करने के लिए उचित अवसर प्राप्त होता है।

(3) प्रभाव की दृष्टि से भी, समूह निर्देशन का उपचारात्मक महत्व है, क्योंकि समूह के समस्त सदस्यों के सहयोग से परस्पर मेल-जोल, समझ एवं समस्या की सम्भावना में वृद्धि होती है तथा विद्यार्थी यह अनुभव करने लगता है कि वह अकेला नहीं है। डिंकामायर एवं काल्डवैल के विचारानुसार- ''अन्धकार के बारे में पैदा भय, भाइयों एवं बहिनों के प्रति अन्तर्द्वन्द्व, गृह-कार्य अथवा प्रदत्त कार्यों को पूर्ण करना, साथ-साथ दूरदर्शन देखना, गृह के उत्तरादायित्व एवं परीक्षाओं का भय एक ऐसा विषय है जिनके प्रति समूह निर्देशन के माध्यम से विद्यार्थियों में पायी जाने वाली अनावश्यक

नोट

एवं आधार-विहीन शंकायें, तनाव एवं मनचाही स्थितियाँ बहुत सीमा तक कम की जा सकती हैं।''

(4) समूह निर्देशन, सुसंगठित प्रश्नों एवं प्रश्नों को प्रस्तुत करने हेतु प्रभावी विधियों की अपेक्षा करता है। *डिंकमायर एवं काल्डवैल* के कथनानुसार समूह निर्देशन विधि सुकराती विधि से समर्थन प्राप्त करती है।

अपेक्षित सावधानियाँ (Considerable Precautions): समूह निर्देशन के सही संचालनार्थ कतिपय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

(1) समूह निर्देशन के अन्तर्गत पारस्परिक विश्वास का वातावरण बनाये रखना आवश्यक है, जिससे विद्यार्थी स्वतन्त्र रूप से अपनी भावनाएँ रखना, आवश्यक है, जिससे विद्यार्थी स्वतन्त्र रूप से अपनी भावनाओं एवं व्यवस्थाओं की अभिव्यक्ति कर सकें।

(2) यदा-कदा, समूह निर्देशन के अवसरों पर विद्यार्थियों के अभिभावकों को तथा अध्यापकों को भी आमन्त्रित करना चाहिए। ऐसे करने पर परस्पर सौहार्द का वातावरण स्थापित होता है।

(3) समूह निर्देशन की व्यवस्था लड़के एवं लड़कियों के लिए पृथक-पृथक समूहों में की जानी चाहिए, क्योंकि लिंग विशिष्टताओं के परिणामस्वरूप लड़कों की जिन विषयों में रूचि हो सकती है, वे लड़कियों हेतु अनुपयुक्त भी हो सकती है।

(4) परामर्शदाता को, समूह निर्देशन का संचालन करने की दृष्टि से दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। एक ओर परामर्शदाता विद्यार्थियों में नेतृत्व प्रदान करके सम्बन्धों का निर्माण करता है तथा दूसरी ओर वह स्वयं को एक प्रौढ़ व्यक्ति के रूप में भी प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अवसर भी आते हैं, जिनमें परामर्शदाता को, समूह के सदस्य के रूप में विद्यार्थियों के साथ सम्मिलित होना पड़ता है।

(5) समूह निर्देशन में, समूह के सदस्यों का चयन करने में विशिष्ट सावधानी रखनी आवश्यक है। एक समूह के सदस्य प्रायः समान आयुवर्ग, समान योग्यता तथा एक समान आर्थिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि वाले होने चाहिए। कुछ विशिष्ट प्रकार के प्रश्नों के आधार पर ही सदस्यों का चयन किया जाना चाहिए। जैसे-क्या आपकी कोई ऐसे समस्या है, जिसके सम्बन्ध में आप अपने समूह में चर्चा करना चाहेंगे?

(6) समूह में परिचर्चा के माध्यम किसी व्यक्ति विशेष पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए। सभी को सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए।

(7) समूह निर्देशन में इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि व्यक्ति की समस्यायें मूल रूप में सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है। इस दृष्टि से समाजमिति साधनों के द्वारा एकाकी छात्र, लोकप्रिय विद्यार्थी की पहचान कर लेनी चाहिए।

(8) परामर्शदाता को, प्राथमिक स्तर के बालकों तथा माध्यमिक स्तर के लड़के एवं लड़कियों हेतु आयोजित समूह निर्देशन के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि इन समस्त छात्र एवं छात्राओं को आवश्यक सामाजिक कुशलता अर्जित करनी है जिससे परस्पर अन्तःसम्बन्धों, योजनाओं एवं आकांक्षाओं पर सही समक्ष विकसित करने में सहायता प्राप्त हो सके।

(9) समूह निर्देशन अथवा समूह परामर्श के आरम्भ में ही, परिचर्चा में भाग लेने सम्बन्धित नियमों तथा उपनियमों में समूह के सदस्यों को परिचित करा देना चाहिए तथा उन्हें परिचर्चा समाप्त होने पर अपेक्षित व्यवहार मानकों में सम्बन्धित जानकारी भी उन्हें प्रदान करनी चाहिए।

(10) समूह परामर्श एवं समूह निर्देशन के नेता को निर्देशन एवं उपबोधन में निहित प्रक्रियाओं के विशेष रूप से तीन पक्षों का ध्यान रखना चाहिए-

(अ) निदानात्मक पक्ष-इस पक्ष का उद्देश्य विद्यार्थियों के तनावों को कम किया जाता है।

(ब) चिकित्सात्मक पक्ष-द्वितीय पक्ष के अन्तर्गत, विद्यार्थियों के तनावों को कम किया जाता है तथा उनमें परस्पर विश्वास को सुदृढ़ बनाया जाता है।

नोट

(स) **शिक्षण पक्ष**-इसका मुख्य उद्देश्य है-सूचनाओं को सम्प्रेषित करना, तथा प्रत्यक्ष रूप से अधिगम के विकास पर बल देना।

> *नोट्स* परामर्शदाता को, समूह निर्देशन का संचालन करने की दृष्टि से दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। एक ओर परामर्शदाता विद्यार्थियों में नेतृत्व प्रदान करके सम्बन्धों का निर्माण करता है तथा दूसरी ओर वह स्वयं को एक प्रौढ़ व्यक्ति के रूप में भी प्रस्तुत करता है।

डिंकमायर एवं काल्डवेल का कहना है कि उपरोक्त तीनों पक्षों में उत्तार-चढ़ाव पाया जाना आवश्यक है, जिसमें परामर्शदाता समूह की आवश्यकता के अनुसार एक पक्ष से दूसरे पक्ष की ओर अग्रसरित होता है।

(11) परामर्शदाता को समूह की गतिशीलता के सम्बन्ध में भी पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। प्रत्येक समूह की गतिशीलता उस समूह की कार्यविधि का प्रतीक होती है। कांसिनी एवं रोजनवर्ग ने समूह की कार्य-विधि पर प्रभाव डालने वाले तीन कारण बतायें हैं।

(अ) **सांवेगिक कारण** **(Emotional Factors)**-सांवेगिक कारणों में समूह से सम्बन्ध स्थापित करना, सामुदायिक भावना का विकास एवं पृथक्‌कीकरण की समाप्ति प्रमुख है। इसके अन्तर्गत अन्तरण की प्रक्रिया को एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया माना जाता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से समूह के सदस्य परस्पर अथवा समूह के प्रबन्धक अथवा नेता के साथ सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं।

(ब) **बौद्धिक कारक** **(Intellectualization Factors)**-बौद्धिक कारक से आशय समूह में होने वाले अधिगम से है। सामूहिक प्रक्रिया मूलरूप में शैक्षिक प्रक्रिया ही है। इसमें वांछनीय अन्त:दृष्टि का विकास होता है तथा समूह के सदस्य परस्पर सम्बन्धों के सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया जाता है। इसी मध्य सार्वभौमीकरण की प्रवृत्ति का विकास होता है। इस प्रवृत्ति में विद्यार्थी यह अनुभव करने लगता है कि वह अकेला नहीं है वरन् अन्य व्यक्तियों अथवा छात्रों में भी इसी प्रकार की भावनायें विद्यमान होती हैं।

(स) **क्रियात्मक कारक** **(Actional Factors)**-इसमें समूह में छात्रों को क्रिया द्वारा अधिगम का अवसर प्राप्त होता है। विचारों की अभिव्यक्ति एवं भावनाओं के प्रदर्शन को, क्रियात्मक कारकों के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इसे निराकरण के नाम से भी सम्बोधित किया जा सकता है। इसमें व्यक्ति सरलता के परिणामस्वरूप अपने समूह में स्वतन्त्रतापूर्वक स्वयं की बात कह देते हैं।

समूह निर्देशन के उद्देश्य (Aims of Group Guidance)

डिंकमायर एवं काल्डवेल के अनुसार समूह निर्देशन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

(1) छात्रों में आत्मस्वीकृति एवं स्वयं में उपयोगी अथवा महत्वपूर्ण बनने की भावना का विकास करना।

(2) जीवन के विभिन्न विकासात्मक कार्यों को सम्पन्न करने हेतु अपेक्षित अथवा वांछनीय उपायों का विकास करना।

(3) छात्रों में अधिक आत्मनिर्देशन उच्चकोटि का समस्या निराकरण तथा निर्णय लेने की क्षमता विकसित करना।

(4) दूसरे छात्रों की आवश्यकताओं को समझने हेतु संवेदनशीलता का विकास करना, जिससे विद्यार्थी, अन्य विद्यार्थियों के संदर्भ में स्वयं की भूमिका एवं महत्व को समझ सकें।

(5) समूह के प्रत्येक सदस्य की, स्वयं को जानने तथा समझने में सहायता करना।

समूह निर्देशन प्रणाली (Process of Guidance)

समूह परामर्श अथवा समूह निर्देशन प्रणाली में कुछ विशिष्ट सोपानों का अनुसरण किया जाता है *आर्थरजोन्स* ने समूह निर्देशन या परामर्श के अन्तर्गत प्रयुक्त किए जाने वाले निम्नलिखित सात सोपानों का उल्लेख किया है–

(1) **उद्देश्य की पहचान**–प्रथम सोपान में, समूह के प्रत्येक सदस्य के उद्देश्य की पहचान की जाती है, जिससे उपर्युक्त वर्ग बनाने में सहायता प्राप्त होती है।

(2) **संगठनात्मक निर्णय लेना**–इसके अन्तर्गत, समूह की अधिकतम संख्या जैसे स्थान, प्रत्येक समूह से मिलने का समय इत्यादि के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया जाता है।

(3) **समूह बनाना**–समूहों का निर्माण करने में परामर्श अथवा निर्देशन से अधिक लाभान्वित होने की दृष्टि से उपयोगी समूहों को निर्माण करने पर बल दिया जाता है।

(4) **निर्देशन अथवा परामर्श की प्रक्रिया आरम्भ करना**–इसके अन्तर्गत, परामर्शदाता द्वारा कुछ विषयों अथवा प्रकरणों पर प्रभाव डाला जाता है।

(5) **अपेक्षित सम्बन्ध स्थापित करना**–पंचम सोपान में, समूह के सदस्यों में परस्पर समक्ष का विकास करने पर अधिक बल दिया जाता है।

(6) **समूह की सदस्यता की समाप्ति**–निर्देशन अथवा परामर्श का कार्य पूर्ण होने के साथ ही समूह के सदस्यों को, समूह से अलग करने का निर्णय लिया जाता है।

(7) **परिणामों का मूल्यांकन**–परिणामों के मूल्यांकन के अन्तर्गत, निर्देशन अथवा परामर्श की प्रभावशीलता को ज्ञात किया जाता है।

उपरोक्त सोपानों के आधार पर, यह कहा जा सकता है कि समूह निर्देशन अथवा समूह उपबोधन की प्रणाली में, निर्देशक अथवा निर्देशनप्रदाता की सूझ, समूह व्यवस्था से सम्बन्धित योग्यता एवं कुशलता तथा समूह को उचित नेतृत्व करने की क्षमता अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण होती है।

टास्क समूह निर्देशन प्रणाली किसे कहते हैं?

स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

2 . रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)—

1. .... आचरण एवं वातावरण से समूह निर्देशन का गहन सम्बन्ध है।
2. समूह निर्देशन में इस बात पर बल दिया जाता है कि परामर्शदाता विद्यार्थियों के व्यवहारों को . ... करने के अवसरों में वृद्धि करें।
3. समूह निर्देशन .... प्रश्नों को प्रस्तुत करने हेतु प्रभावी विधियों की अपेक्षा करता है।
4. समूह में .... से किसी व्यक्ति विशेष पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए।
5. समूह निर्देशन के अंतर्गत .... का वातावरण बनाये रखना आवश्यक है।

8.4 सारांश (Summary)

- व्यक्तिगत निर्देशन के सिद्धांत इस प्रकार हैं–

(1) व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान हेतु अन्तर्दृष्टि के विकास का विशेष महत्व होता है।

(2) व्यक्ति से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान की दिशा में उसकी अपनी धारणा सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

नोट

(3) व्यक्ति का समग्र व्यक्तित्व अखण्ड एवं जटिल होता है।

(4) व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित समस्त समस्याओं में अपना सम्बन्ध रहता है।

- व्यक्तिगत निर्देशन के अधोलिखित उद्देश्य होते हैं-

(1) व्यक्ति में समायोजन की योग्यता का विकास करना।

(2) पारस्परिक सम्बन्धों को बताये रखने से सम्बन्धित कौशल के विकास में सहायता प्रदान करना।

(3) जीवन से सम्बन्धित विभिन्न परिस्थितियों में विवेक एवं सूझयुक्त व्यवहार का विकास करने में सहयोग प्रदान करना।

(4) व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित समस्याओं की जानकारी प्राप्त करने, उनके कारणों एवं प्रभावों को खोजने तथा उनका समाधान खोजने में सहायता देना।

- व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया अथवा उसी कार्यप्रणाली का संचालन करने के लिए विभिन्न सोपानों का क्रमिक रूप से अनुसरण करना आवश्यक होता है। इन सोपानों का उल्लेख निम्नलिखित है-

प्रथम सोपान: सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि जिस व्यक्ति की समस्याओं के सन्दर्भ में प्रयास किया जा रहा है, उस व्यक्ति के साथ इस प्रकार के सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना की जाए, जिससे वह अपनी समस्याओं के सन्दर्भ में नि:संकोच विवरण दे सके।

द्वितीय सोपान: व्यक्तिगत निर्देशन के दूसरे सोपान के अन्तर्गत, विभिन्न प्रकार की मापनियों एवं परीक्षणों के आधार पर, व्यक्ति की रूचि एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की जाती है।

तृतीय सोपान: रूचि एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर लेने के उपरान्त मनोविश्लेषणात्मक विधियों के आधार पर व्यक्ति के अहं (Ego), इसमें (id) पराहम (Super-ego), की स्थिति तथा समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन एवं मूल्यांकन किया जाता है।

चतुर्थ सोपान: उपरोक्त अध्ययन एवं मूल्यांकन के उपरान्त, वास्तविक, समस्या के समाधान की दिशा में व्यक्ति को परामर्श प्रदान किया जाता है।

पंचम सोपान: अपनी समस्याओं के सन्दर्भ में स्व:मूल्यांकन, एवं विवेकपूर्ण निर्णय की क्षमता, के विकास की प्रक्रिया के उपरान्त अन्तिम रूप में निर्णित की जाने वाली कार्ययोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहायता प्रदान करना कि समाधान से सम्बन्धित उन योजनाओं की क्रियान्विति के उपरान्त, उनकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

षष्टम सोपान: यथा समय व्यक्ति की समस्याओं के समाधान के सन्दर्भ में विचार-विमर्श का अवसर उत्पन्न करना।

सप्तम सोपान: समस्या के स्वरूप, समस्या के समाधान, तथा उन समाधानों के उपरान्त प्राप्त परिणामों का मूल्यांकन करना।

- व्यक्तिगत निर्देशन की प्रमुख आवश्यकता इस प्रकार की होती हैं-

(1) व्यक्तिगत जीवन में सुख-शान्ति एवं सन्तोष का विकास करने हेतु,

(2) व्यक्तिगत समस्याओं के सन्दर्भ में सही निर्णय लेने हेतु,

(3) व्यक्तिगत समायोजन की क्षमता का विकास करने हेतु।

- समूह निर्देशन की व्यवस्था, विद्यालय अथवा शैक्षिक संस्थानों में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के समूहों में की जा सकती है। हमारे देश की परिस्थितियों के संदर्भ में समूह निर्देशन की व्यवस्था निम्नलिखित परिस्थितियों में की जा सकती है।-

1. विद्यालय की सामान्य सभाओं के अन्तर्गत।
2. अनिवार्य पाठयक्रमों की कक्षाओं के अन्तर्गत।

नोट

3. सामान्य कक्षाओं में जब विषय अध्यापक शिक्षण अधिगम की व्यवस्थाओं का गठन करते हैं।
4. राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा अन्य सामुदायिक सेवाओं के कार्यक्रमों में आयोजित की जाने वाली गोष्ठियों एवं सभाओं के माध्यम से।
5. स्वेच्छा व अभिरूचि के माध्यम से।
6. छोटे समूहों के माध्यम से तथा

- समूह-निर्देशन हेतु प्रयुक्त प्रविधियों का उल्लेख निम्नलिखित है- (1) समूह अधिगम समूह प्रविधि; (2) फिल्म प्रयोग प्रविधि; (3) प्रश्न-पेटी; (4) व्याख्यान प्रविधि; (5) लघु समूह प्रतिवेदन; (6) अनौपचारिक वार्तायें; (7) इकाई सम्मेलन प्रविधि; (8) अनुकरण तथा नाटक; (9) अपेक्षित स्तर की पहचान; (10) परिवार-समूह कार्य-प्रविधि; (11) समाजमिति-मापन; (12) परामर्शदाता द्वारा लघुगणक पुस्तिका का निर्माण; (13) जादुई-वृत्त कार्यक्रम प्रविधि; (14) अधिगम क्रिया परामर्श प्रविधि; (15) अन्त:क्रिया विश्लेषण प्रविधि; (16) आत्म प्रत्यय में परिवर्तन।
- समूह निर्देशन के सही संचालनार्थ कतिपय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

(1) समूह निर्देशन के अन्तर्गत पारस्परिक विश्वास का वातावरण बनाये रखना आवश्यक है, जिससे विद्यार्थी स्वतन्त्र रूप से अपनी भावनाओं एवं व्यवस्थाओं की अभिव्यक्ति कर सकें।

(2) यदा-कदा, समूह निर्देशन के अवसरों पर विद्यार्थियों के अभिभावकों को तथा अध्यापकों को भी आमन्त्रित करना चाहिए। ऐसे करने पर परस्पर सौहार्द्र का वातावरण स्थापित होता है।

(3) समूह में परिचर्चा के माध्यम से किसी व्यक्ति विशेष पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए। सभी को सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए।

- **समूह निर्देशन के उद्देश्य:** डिंकमायर एवं काल्डवेल के अनुसार समूह निर्देशन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

(1) छात्रों में आत्मस्वीकृति एवं स्वयं में उपयोगी अथवा महत्वपूर्ण बनने की भावना का विकास करना।

(2) जीवन के विभिन्न विकासात्मक कार्यों को सम्पन्न करने हेतु अपेक्षित अथवा वांछनीय उपायों का विकास करना।

(3) छात्रों में अधिक आत्मनिर्देशन उच्चकोटि का समस्या निराकरण तथा निर्णय लेने की क्षमता विकसित करना।

- **समूह निर्देशन प्रणाली (Process of Guidance)–** समूह परामर्श अथवा समूह निर्देशन प्रणाली में कुछ विशिष्ट सोपानों का अनुसरण किया जाता है *आर्थरजोन्स* ने समूह निर्देशन या परामर्श के अन्तर्गत प्रयुक्त किए जाने वाले निम्नलिखित सात सोपानों का उल्लेख किया है- (1) उद्देश्य की पहचान; (2) संगठनात्मक निर्णय लेना; (3) समूह बनाना; (4) निर्देशन अथवा परामर्श की प्रक्रिया आरम्भ करना; (5) अपेक्षित सम्बन्ध स्थापित करना; (6) समूह की सदस्यता की समाप्ति; (7) परिणामों का मूल्यांकन।

8.5 शब्दकोश (Keywords)

- **व्यक्तिगत**–निजी।
- **समूह**–एकत्रित।

8.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. व्यक्तिगत निर्देशन के आधारभूत प्रत्यय एवं उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
2. व्यक्तिगत निर्देशन की प्रक्रिया एवं आवश्यकताओं का विश्लेषणात्मक वर्णन कीजिए।
3. सामूहिक निर्देशन के प्रकार एवं क्षेत्र की व्याख्या कीजिए।

नोट

4. समूह के आधार एवं उद्देश्यों का विश्लेषण कीजिए।
5. समूह निर्देशन की विशिष्ट प्रविधियों कौन-कौन सी हैं? व्याख्या कीजिए।

उत्तर– स्व–मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. (1) सत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) सत्य

2. (1) लोकतांत्रिक (2) परिवर्तित (3) सुसंगठित (4) परिचर्चा के माध्यम (5) परस्पर विश्वास

8.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Councelling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—9: विद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance at School Level)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance at Different Levels of Education)

9.2 सारांश (Summary)

9.3 शब्दकोश (Keywords)

9.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- स्कूल स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन की विवेचना करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के अतिरिक्त जितनी भी समस्याएं व्यक्ति के समक्ष आती हैं, उन समस्याओं को व्यक्तिगत निर्देश के अन्तर्गत रखा जाता है। प्राय: व्यक्तिगत जीवन को चार प्रमुख पक्षों में विभक्त किया जाता है—शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक एवं सामाजिक। इन समस्त क्षेत्रों में उत्पन्न समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करना ही व्यक्तिगत निर्देशन की कार्यविधि के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इस दृष्टि से व्यक्तिगत निर्देशन का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक होता है। बाल्यावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक व्यक्तिगत निर्देशन की सतत् रूप से आवश्यकता होती है। वस्तुत: प्राय: प्रत्येक प्रकार का निर्देशन व्यक्तिगत रूप में ही सम्पन्न होता है। *लेस्टर डी. क्रो* तथा *एलिस क्रो* ने इस सन्दर्भ में लिखा है जीवन के समस्त क्षेत्रों तथा अभिवृत्तियों के विकास को दृष्टि में रखकर, उपयुक्त समायोजन के प्रति निर्दिष्ट होती है।" इस प्रकार व्यक्तिगत दृष्टि से समायोजन की क्षमता का विकास करना ही, व्यक्तिगत निर्देशन का उद्देश्य होता है। स्वाभाविक रूप से व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान की योग्यता अथवा सामंजस्य की क्षमता शैक्षिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र के लिए किए जाने वाले समायोजन को भी प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए यदि परिवार में व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह-भली-भाँति कर रहा है, परिवार में उत्पन्न होने वाली समस्याओं को स्नेह, सहयोग एवं सन्तुलित व्यवहार के आधार पर समाधान करने का प्रयास कर रहा है तथा किसी भी पारिवारिक परिस्थिति में अपना आत्म सन्तुलन खोने के स्थान पर समस्याओं के समाधान की विवेकपूर्ण चेष्टा कर रहा है तो स्वाभाविक रूप में परिवार में उत्पन्न समायोजन की यह योग्यता उसकी शैक्षिक एवं व्यावसायिक उपलब्धियों को भी किसी न किसी रूप में प्रभावित करेगी। इसी प्रकार व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक व्यवहार भी अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित उपलब्धियों को प्रभावित करता है।

नोट

9.1 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance at Different Levels of Education)

व्यक्ति की आयु में परिवर्तन होने के साथ-साथ उसकी वैयक्तिक समस्याओं में भी परिवर्तन होते रहते हैं। यही कारण है कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों—पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक जूनियर हाईस्कूल एवं कॉलेज तथा विश्वविद्यालय, पर वैयक्तिक निर्देशन के उद्देश्यों एवं विधियों में अन्तर पाया जाता है। अत: उपबोधक के लिए यह आवश्यक है कि उसे बालक की आयु के विभिन्न स्तरों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि वैयक्तिक समस्यायें मुख्य रूप से, मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से ही सम्बन्धित होती है।

(1) पूर्व प्राथमिक स्तर (Pre-Primary Stage)

शैशवावस्था व्यक्ति के जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था होती है, क्योंकि इसी अवस्था में डाली गई आदतें, व्यक्ति जब तक जीवित रहता है, तब तक यथावत ही रहती हैं। बालक पूर्व-प्राथमिक स्तर अवस्था में जो कुछ भी अपने परिवार एवं शिक्षालय में सीखता है, वही उस बालक भविष्य के अध्ययन एवं वैयक्तिक बातों का निर्देशन प्रदान किया जा सकता है। अपने मित्रों के साथ सहयोग तथा परस्पर मिल कर खेलते हैं। अत: इस स्तर पर वैयक्तिक निर्देशन का उद्देश्य बालकों को निम्नलिखित बातों को सीखने में सहायता देना है—

1. बालकों को कविता एवं कहानी कहकर उन्हें अपनी अभिव्यक्ति का अवसर उपलब्ध प्रदान करने में सहायता देना।
2. बालकों में उत्तरदायित्व निर्वाह करने की भावना का विकास करना जैसे—खिलौनों को यथास्थान रखकर, अपने परिवेश का उचित मूल्यांकन करने की दिशा में निर्देशन के द्वारा सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
3. बालकों को स्वयं का तथा अपने परिवेश का उचित मूल्यांकन करने की दिशा में निर्देशन के द्वारा सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
4. बालकों के लिए खेल एवं खिलौनों की समुचित व्यवस्था करना, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि खेल बालकों को, नेतृत्व की भावना विकसित करने, सहयोग की भावना का विकास करने तथा भावात्मक नियन्त्रण का प्रशिक्षण देने हेतु अवसर सुलभ कराते हैं।
5. बालकों की अपने स्वास्थ्य की देख-रेख करने में सहायता करना।
6. बालकों में उत्तम आदतों से निर्माण में सहायता प्रदान करना।

इन प्रयोजनों के अतिरिक्त *क्रो* एण्ड *क्रो* ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक *'एन इन्ट्रोडक्शन टु गाइडेन्स'* में इस स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन का प्रयोजन निम्नलिखित बातों को अधिगम करने में सहायता प्रदान करना बतलाया है—

1. स्वयं के हाथों से काम करके, गीतों का अनुसरण करके, कहानियों को अनुभव करके, स्वयं को व्यक्त करना एवं दूसरों की बात को ध्यानपूर्वक सुनना।
2. पालतू जानवरों की देख-रेख करके, खेल की वस्तुओं का उनके स्थान पर रखकर, स्वयं के वस्त्रों की देखभाल करके, उत्तरदायित्व युक्त व्यवहार करना बालकों की सीखना।
3. परस्पर एक-दूसरे से मिलना तथा अपने अनुभवों का परस्पर आदान प्रदान करना, खिलौनों का आदान-प्रदान करना, नम्रता सीखना, क्रोध को नियन्त्रित करने की आदत का निर्माण करना, नेतृत्व करना सीखना तथा अनुयायी के रूप में समूह में उत्तरदायित्व की भावना का प्रदर्शन करना और खेल में ईमानदारी की भावना का प्रदर्शन करना।

> शैशवावस्था व्यक्ति के जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था होती है, क्योंकि इसी अवस्था में डाली गई आदतें, व्यक्ति जब तक जीवित रहता है, तब तक यथावत ही रहती हैं।

(2) प्राथमिक स्तर (Primary Stage)

प्राथमिक स्तर पर बालकों की आयु 6 वर्ष से 11 वर्ष तक ही होती है। अत: इस आयु वर्ग के बालकों की विशिष्टताओं में दृष्टि रखकर ही, वैयक्तिक निर्देशन का गठन किया जाना चाहिए। क्रो एण्ड क्रो का कहना है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के कैलीफोर्निया राज्य के मोटेवेलों के विद्यालयों में, चलने वाले निर्देशन कार्यक्रमों को छात्रों को निम्नलिखित मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास किया जाता है।

1. *व्यावसायिक कौशल*—विश्व के कार्यो की सामान्य जानकारी।
2. *अवकाश काल के क्रियाकलाप*—व्यक्तिगत रूचियों तथा मनोरंजन के सम्बन्ध में।
3. *अनुशासन*—स्नेहयुक्त एवं सुदृढ़, आत्म-अनुशासन की ओर उन्नति।
4. *मित्रों तथा समाज स्वीकृति की इच्छा*—बालकों एवं प्रौढ़ों के बीच।
5. *आधारभूत कौशलों की जानकारी*—अधिगम तथा अवबोध की योग्यतानुरूप।
6. *उत्तम स्वास्थ्य*—पर्याप्त व सन्तुलित भोजन, अपेक्षित नींद एवं आराम।

इस स्तर पर, बालकों की उपरोक्त आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर ही व्यक्तिगत निर्देशन की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त भी इस स्तर पर, निर्देशन के प्रयोजन निम्नलिखित हो सकते हैं—

1. बालकों में भावात्मक असन्तुलन को विकसित होने से रोकना।
2. प्राथमिक स्तर से ही बालकों में आत्म-अनुशासन की भावना का विकास आरम्भ किया जाना चाहिए। अनुशासन के वास्तविक उद्देश्यों को समझाने पर ही बालकों में आत्म-अनुशासन की भावना का विकास हो सकेगा। अत: बालकों को अनुशासन का महत्व समझने हेतु, विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं में उन्हें भाग लेने का अवसर प्रदान करना चाहिए।
3. सृजनात्मक कार्यो के प्रति छात्रों में रूचि का विकास करना तथा रूचि के विकास हेतु अवसर उपलब्ध कराना।
4. इस आयु में बालकों में खेल की भावना के आधार पर, सामाजिकता का विकास किया जाना चाहिए।
5. बालकों में शारीरिक स्वास्थ्य को देख-रेख तथा स्वच्छता की आदतों का निर्माण करने में सहायता प्रदान करना।

> *टास्क* प्राथमिक स्तर पर बालकों की आयु कितने से कितने वर्ष के बीच होती है?

(3) जूनियर हाई स्कूल स्तर (Junior High School Stage)

किशोरावस्था से पूर्व की आयु के छात्र जूनियर हाईस्कूल स्तर पर अध्ययन करने वाले होते हैं। किशोरावस्था से पूर्व की आयु में बालकों के सम्मुख अनेक ऐसी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं, जिनका समाधान, निर्देशन द्वारा ही किया जा सकता है। इस स्तर पर वैयक्तिक निर्देशन के निम्नलिखित उपयोग हो सकते हैं।

1. विद्यार्थियों को अपनी रूचि एवं योग्यतानुसार व्यवसाय की धारणा का विकास करने में सहायता प्रदान करना।
2. इस स्तर पर शिक्षक को इस प्रकार का नेतृत्व करना चाहिए कि इस आयु के सृजनात्मक, हठी, व्यग्र एवं सक्रिय बालक स्वयं के लाभ तथा समस्त समूह के लाभ हेतु कार्य कर सकें।

नोट

3. छात्र एवं छात्रों को स्वयं को विचारों, भावनाओं एवं अभिरुचियों की अभिव्यक्ति हेतु अवसर प्रदान करने चाहिए।
4. इस स्तर पर बालकों में व्यवहार से सम्बन्धित विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। अत: शिक्षक को भावात्मक नियन्त्रण तथा सम्पूर्ण स्थिति को विवेकपूर्ण समझकर ऐसे अवसर उपलब्ध कराने चाहिए जिससे बालक स्व-अनुशासन सीख सकें।

क्रो तथा *क्रो* ने जूनियर हाई स्कूल पर व्यक्तिगत निर्देशन की व्यवस्था करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक बताया है।

1. अग्रिम शिक्षा के प्रति छात्रों को प्रोत्साहित करना तथा सक्रिय बनाना।
2. बालकों को श्रम के महत्व तथा जीविकोपार्जन के विभिन्न प्रकारों से परिचित करना।
3. विद्यार्थियों को इस तथ्य से परिचित कराना कि व्यक्तिगत समायोजन की समस्याएँ विकास की प्रक्रिया में सामान्य रूप से आती रहती हैं।
4. विभिन्न व्यवसायों के आरम्भिक अध्ययन में छात्रों को निर्देशन प्रदान करना तथा योग्यता एवं रूचि के अनुसार व्यवसाय की धारणा का विकास करना।
5. छात्रों को कुछ ऐसे व्यवसायों से परिचित कराना, जिनका साक्षात्कार उनको बाद में देना पड़ सकता है।
6. छात्रों को स्वयं तथा दूसरों के लाभ हेतु उत्तरोत्तर अधिक उत्तरदायित्वों को निर्वाह की प्रेरणा देना।
7. आवश्यकता अनुभव होने पर व्यक्तिगत परामर्श हेतु नि:संकोच रूप से उपस्थित होना।
8. रचनात्मक जीवन हेतु आवश्यक गुणों के विकास की प्रेरणा प्रदान करना।
9. वर्तमान जीवन की तथा भविष्य की योजनाओं के बारे में अपने अभिभावक, शिक्षक एवं उपबोधक आदि के मध्य सह-चिन्तन की आवश्यकता पर बल देना।

नोट्स अपने संवेगों पर नियन्त्रण रखने का निर्देशन भी पूर्व प्राथमिक स्तर पर ही बालकों को प्रदान किया जा सकता है।

(4) हाई स्कूल स्तर (High-School Stage)

हाईस्कूल स्तर पर शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी, किशोरावस्था में प्रविष्ट हो चुके होते हैं। यही समय होता है जब बालक के भावी जीवन की नींव रखी जाती है। इस स्तर के बालकों में, विचारों में परिवर्तन होने लगता है अत: हाई स्कूल स्तर पर वैयक्तिक निर्देशन का स्वरूप किशोर एवं किशोरियों की रूचियों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही निर्धारित करना चाहिए। *क्रो एण्ड क्रो* ने हाई स्कूल स्तर पर वैयक्तिक निर्देशन के निम्नलिखित प्रायोजन बताये हैं–

1. पूर्व में आरम्भ किये गये स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा तथा शारीरिक कार्यक्रमों को यथावत रखने हेतु विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना।
2. विद्यार्थियों को यह समझने में सहायता करना कि, इस आयु में मानसिक अव्यवस्था पैदा होना अस्वाभाविक नहीं है।
3. अपने नागरिक एवं सामाजिक सम्बन्धों में विद्यालय का उत्तम नागरिक बनने में बालकों की सहायता करना।
4. अपने नागरिक एवं सामाजिक सम्बन्धों में विद्यालय का उत्तम नागरिक बनने में बालकों की सहायता करना।
5. किशोर एवं किशोरियों के परस्पर सम्बन्धों तथा यौन-कार्यों को, विवेकपूर्वक एवं नियंत्रित भावना से समझने के फलस्वरूप होने वाले मूल्यों के प्रत्येक विद्यार्थी को अवगत कराना।

नोट

> नोट्स हाईस्कूल स्तर पर शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थी, किशोरावस्था में प्रविष्ट हो चुके होते हैं। यही समय होता है जब बालक के भावी जीवन की नींव रखी जाती है।

(5) महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय (College and University)

इस स्तर पर युवक, प्रौढ़ावस्था की ओर अग्रसरित होने लगते हैं कालेज एवं विश्वविद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों के समक्ष विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जैसे—विवाह सम्बन्धी समस्या, आर्थिक समस्याएँ इत्यादि। भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों पर, पाश्चात्य संस्कृति के पड़ने वाले प्रभाव ही इन समस्याओं का मुख्य कारण हैं। अत: इन समस्याओं के निराकरण के लिए छात्र वैयक्तिक निर्देशन की आवश्यकता को अनुभव करते हैं।

नैतिक एवं चारित्रिक विकास की दृष्टि से भी, इस स्तर पर, निर्देशन छात्रों की सहायता करता है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थी-वर्ग में स्वास्थ्य सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण का विकास करने में सहायता प्रदान करना, व्यक्तिगत निर्देशन का इस स्तर पर एक महत्वपूर्ण कार्य है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. पूर्व-प्राथमिक स्तर पर वैयक्तिक निर्देशन का उद्देश्य बालकों को .... कहकर अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करने में सहायता देना है।
2. वैयक्तिक निर्देशन का उद्देश्य बालकों में उत्तरदायित्व निर्वाह करने की .... का विकास करना है।
3. प्राथमिक स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन का उद्देश्य बालकों में स्नेहपूर्ण एवं सुदृढ़ .... का विकास करना है।
4. प्राथमिक स्तर पर बालकों को .... के लिए प्रेरित करना।
5. व्यक्तिगत निर्देशन का उद्देश्य प्राथमिक स्तर पर बालकों में .... को विकसित होने से रोकना है।

9.2 सारांश (Summary)

- शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के अतिरिक्त जितनी भी समस्याएं व्यक्ति के समक्ष आती हैं, उन समस्याओं को व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत रखा जाता है। प्राय: व्यक्तिगत जीवन को चार प्रमुख पक्षों में विभक्त किया जाता है—शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक एवं सामाजिक। इन समस्त क्षेत्रों में उत्पन्न समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करना ही व्यक्तिगत निर्देशन की कार्यविधि के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।
- व्यक्ति की आयु में परिवर्तन होने के साथ-साथ उसकी वैयक्तिक समस्याओं में भी परिवर्तन होते रहते हैं। यही कारण है कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों—पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, जूनियर हाईस्कूल एवं कॉलेज तथा विश्वविद्यालय, पर वैयक्तिक निर्देशन के उद्देश्यों एवं विधियों में अन्तर पाया जाता है। अत: उपबोधक के लिए यह आवश्यक है कि उसे बालक की आयु के विभिन्न स्तरों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि वैयक्तिक समस्यायें मुख्य रूप से, मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से ही सम्बन्धित होती है।
- बालक पूर्व-माध्यमिक स्तर अवस्था में जो कुछ भी अपने परिवार एवं शिक्षालय में सीखता है, वही उस बालक भविष्य के अध्ययन एवं वैयक्तिक बातों का निर्देशन प्रदान किया जा सकता है। अपने मित्रों के साथ सहयोग तथा परस्पर मिल कर खेलने। अपने संवेगों पर नियन्त्रण रखने का निर्देशन भी पूर्व प्राथमिक स्तर पर ही बालकों को प्रदान किया जा सकता है।
  1. बालकों में उत्तरदायित्व निर्वाह करने की भावना का विकास करना जैसे—खिलौनों को यथास्थान रखकर, अपने परिवेश का उचित मूल्यांकन करने की दिशा में निर्देशन के द्वारा सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

नोट

2. बालकों को स्वयं का तथा अपने परिवेश का उचित मूल्यांकन करने की दिशा में निर्देशन के द्वारा सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
3. बालकों के लिए खेल एवं खिलौनों की समुचित व्यवस्था करना, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि खेल बालकों को, नेतृत्व की भावना विकसित करने, सहयोग की भावना का विकास करने तथा भावात्मक नियन्त्रण का प्रशिक्षण देने हेतु अवसर सुलभ कराते हैं।

- प्राथमिक स्तर पर बालकों की आयु 6 वर्ष से 11 वर्ष तक ही होती है। अतः इस आयु वर्ग के बालकों की विशिष्टताओं में दृष्टि रखकर ही, वैयक्तिक निर्देशन का गठन किया जाना चाहिए। क्रो एण्ड क्रो का कहना है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के कैलीफोर्निया राज्य के मोटेवेलों के विद्यालयों में, चलने वाले निर्देशन कार्यक्रमों को छात्रों को निम्नलिखित मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास किया जाता है।
  1. *व्यावसायिक कौशल*–विश्व के कार्यों की सामान्य जानकारी।
  2. *अवकाश काल के क्रियाकलाप*–व्यक्तिगत रूचियों तथा मनोरंजन के सम्बन्ध में।
  3. *अनुशासन*–स्नेहयुक्त एवं सुदृढ़, आत्म-अनुशासन की ओर उन्नति।
  4. *मित्रों तथा समाज स्वीकृति की इच्छा*–बालकों एवं प्रौढ़ों के बीच।
  5. *आधारभूत कौशलों की जानकारी*–अधिगम तथा अवबोध की योग्यतानुरूप।
  6. *उत्तम स्वास्थ्य*–पर्याप्त व सन्तुलित भोजन, अपेक्षित नींद एवं आराम।
- किशोरावस्था से पूर्व की आयु के छात्र जूनियर हाईस्कूल स्तर पर अध्ययन करने वाले होते हैं। किशोरावस्था से पूर्व की आयु में बालकों के सम्मुख अनेक ऐसी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं, जिनका समाधान, निर्देशन द्वारा ही किया जा सकता है।
  1. विद्यार्थियों को अपनी रूचि एवं योग्यतानुसार व्यवसाय की धारणा का विकास करने में सहायता प्रदान करना।
  2. इस स्तर पर शिक्षक को इस प्रकार का नेतृत्व करना चाहिए कि इस आयु के सृजनात्मक, हठी, व्यग्र एवं सक्रिय बालक स्वयं के लाभ तथा समस्त समूह के लाभ हेतु कार्य कर सकें।
  3. इस स्तर पर बालकों में व्यवहार से सम्बन्धित विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। अतः शिक्षक को भावात्मक नियन्त्रण तथा सम्पूर्ण स्थिति को विवेकपूर्ण समझकर ऐसे अवसर उपलब्ध कराने चाहिए जिससे बालक स्व-अनुशासन सीख सकें।
- हाई स्कूल स्तर पर वैयक्तिक निर्देशन का स्वरूप किशोर एवं किशोरियों की रूचियों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही निर्धारित करना चाहिए।
  1. पूर्व में आरम्भ किये गये स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा तथा शारीरिक कार्यक्रमों को यथावत रखने हेतु विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना।
  2. विद्यार्थियों को यह समझने में सहायता करना कि, इस आयु में मानसिक अव्यवस्था पैदा होना अस्वाभाविक नहीं है।
  3. अपने नागरिक एवं सामाजिक सम्बन्धों में विद्यालय का उत्तम नागरिक बनने में बालकों की सहायता करना।

9.3 शब्दकोश (Keywords)

- **वैयक्तिक**–व्यक्तिगत, व्यक्ति विशेष से संबंधित।
- **शैशवावस्था**–बचपन।

नोट

9.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर व्यक्तिगत निर्देशन का विवेचन कीजिए।
2. पूर्व-प्राथमिक स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
3. प्राथमिक, जूनियर और हाई स्कूल स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन की व्याख्या कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. कविता एवं कहानी 2. भावना 3. आत्म-अनुशासन 4. उत्तम स्वास्थ्य
5. भावनात्मक असंतुलन।

9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—10: महाविद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance at College Level)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 महाविद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance at College level)

10.2 महाविद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन में सम्मिलित लोगों के कार्य (Functions of different Persons in Personal Guidance at College level)

10.3 महाविद्यालय स्तर पर निर्देशन संगठन की विशेषताएँ (Characteristics of Organization of Personal Guidance at College level)

10.4 सारांश (Summary)

10.5 शब्दकोश (Keywords)

10.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- मनो-उपचार की प्रक्रिया और अर्थ को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के साथ-साथ व्यक्तिगत निर्देशन का भी, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में विशेष महत्व है। स्वास्थ्य, परिवार, मानसिक सन्तुलन तथा सामाजिक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं को व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार की व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के उपरान्त ही व्यक्ति को एक सन्तुलित जीवन व्यतीत करने हेतु बनाया जा सकता है।

व्यक्तिगत निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य, व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक एवं भौतिक पक्षों के मध्य समुचित समायोजन की योग्यता का उदय करना होता है। व्यक्तिगत समायोजन एवं व्यक्तिगत कुशलता के आधार पर ही व्यक्ति को अपने सामाजिक परिवेश के साथ समायोजन स्थापित करने, पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित करने तथा अपने एवं समाज के जीवन में सुखद बनाने में सफलता प्राप्त हो पाती है। व्यक्तिगत समंजन की सम्भावना में वृद्धि व्यक्तिगत कुशलता के विकास, व्यक्तिगत मामलों में उचित निर्णय ले सकने की क्षमता के विकास तथा व्यक्ति के जीवन में सुख, शान्ति, सन्तोष की अभिवृद्धि की दृष्टि से वैयक्तिक निर्देशन की प्रक्रिया का संचालन किया जाता है।

नोट

10.1 महाविद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन (Guidance Services of College Level)

प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन का विशेष महत्व एवं उपयोग होता है इसी प्रकार विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर पर व्यावसायिक निर्देशन का अधिक महत्व तथा उपयोग होता है। इस स्तर पर सभी रोजगार तथा व्यवसाय की सोचने लगते हैं। उनकी योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुकूल रोजगार दिलाना व्यावसायिक निर्देशन का कार्य है इसे स्थापन सेवा भी कहते हैं।

व्यावसायिक निर्देशन तथा स्थापन सेवा के लिए विश्वविद्यालय से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक ब्यूरो केन्द्र की व्यवस्था की जाती है। इसमें शिक्षा पूरी करने के उपरान्त छात्र अपना पंजीकरण कराते हैं। इस केन्द्र का मुख्य कार्य विभिन्न संस्थाओं में रिक्त स्थानों के विज्ञापनों की सूचना करते हैं। इन केन्द्रों पर रोजगार सम्बन्धी पत्र पत्रिकायें तथा समाचार पत्र भी उपलब्ध रहते हैं। केन्द्र के कर्मचारी भी इन सूचनाओं का संकलन करते हैं और छात्रों की सुविधा हेतु विवरण रखते हैं।

कुछ संस्थाएँ अपनी आवश्यकताओं को इन केन्द्रों पर सीधे भेज सकते हैं। उनकी आवश्यकतानुसार अभ्यर्थियों की सूची भेजते हैं जिन्हें साक्षात्कार के लिए बुला लिया जाता है। इन केन्द्रों का मुख्य कार्य छात्रों की शैक्षिक योग्यताओं और क्षमताओं का रोजगार सम्बन्धी कार्य कुशलताओं का मेल-मिलाप करना और छात्रों का स्थापन कराना है। यह केन्द्र प्रशिक्षण संस्थाओं से भी सम्पर्क रखते हैं। आज अधिकांश रोजगारों में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है तथा प्रत्येक संस्था चयन हेतु परीक्षण करता है तथा साक्षात्कार भी किया जाता है। यह केन्द्र प्रभावशाली ढंग से अपनी भूमिका निर्वाह नहीं कर रहे हैं।

10.1.1 रोजगार समाचार पत्र (Employment News Paper)

स्थापन सेवा तथा व्यावसायिक निर्देशन में रोजगार समाचार की आज महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्येक सप्ताह में रोजगार समाचार पत्र का प्रकाशन होता है। सप्ताह के अन्त में शनिवार को इसका वितरण होता है। इस समाचार पत्र में सभी प्रकार के विज्ञापनों जिनमें विभिन्न पदों, विभिन्न संस्थाओं के रिक्त स्थानों को विवरण दिया जाता है। अन्य दैनिक समाचार पत्रों के विज्ञापनों को भी सम्मिलित किया जाता है। सम्पूर्ण सप्ताह में सभी विज्ञापन स्रोतों को इस रोजगार समाचार में सम्मिलित किया जाता है। यह समाचार पत्र ब्यूरो केन्द्रों पर भी उपलब्ध होते हैं इन केन्द्रों पर इनको व्यवस्थित ढंग से रखा जाता है। रिक्त स्थानों का वर्गीकरण भी किया जाता है।

छात्र अपनी योग्यताओं के अनुसार संस्थाओं में आवेदन पत्र सीधे भेजते हैं। किन्हीं संस्थाओं में आवेदन पत्र रोजगार कार्यालय के माध्यम से मंगाये जाते हैं कुछ संस्थायें साक्षात्कार से पूर्व चयन परीक्षा की व्यवस्था करती हैं। प्रशिक्षण संस्थाएँ साक्षात्कार से पूर्व चयन परीक्षा की व्यवस्था करती हैं। प्रशिक्षण संस्थायें भी प्रवेश परीक्षा का आयोजन करती हैं। प्रशिक्षण संस्थाओं के विज्ञापन भी इन्हीं रोजगार समाचार में दिए जाते हैं। कुछ संस्थायें आवेदन-पत्र का प्रारूप भी प्रकाशित कर देते हैं तथा प्रवेश परीक्षा की तिथियों को भी दे देते हैं।

व्यावसायिक निर्देशन तथा स्थानापन सेवाओं में इन रोजगार समाचार पत्रों का विशेष महत्व है। छात्रों को रोजगार खोजने तथा आवेदन करने में अधिक सहायता होती है। इन्हें निर्देशन केन्द्रों तथा ब्यूरो विभागों में रखा जाता है और रिक्त स्थानों का विवरण तैयार किया जाता है।

हिन्दुस्तान कैरियर का प्रकाशन प्रति सप्ताह रविवार को रोजगार सम्बन्धी रिक्त स्थानों का विज्ञापन देता है। इसके अतिरिक्त सभी समाचार पत्रों में रोजगार सम्बन्धी विज्ञापन दिए जाते हैं। अभ्यर्थी अपनी योग्यताओं के अनुसार आवेदन करते हैं। चयन की प्रक्रिया से अभ्यर्थी होते हैं।

10.1.2 व्यवसायों का राष्ट्रीय वर्गीकरण (National Classification of Occupations)

भारतवर्ष में (1968) में व्यवसायों का वर्गीकरण किया गया। यह वर्गीकरण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्थान (I.L.O.) द्वारा प्रकाशित हुआ।

व्यवसायों का वर्गीकरण चार मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है—

नोट

(1) कार्य के प्रकार से सम्बन्धित होता है एक ही प्रकार के कार्य में लगे व्यक्तियों को एक समूह में रखते हैं। इसमें संस्था के औद्योगिक वर्गीकरण पर ध्यान नहीं दिया जाता है क्योंकि यह आर्थिक क्रिया की एक शाखा होती है।

(2) व्यवसाय के पाँच बिन्दु अनुस्थिति पर मूलभूत मानदण्ड का उपयोग अधिक सरल एवं सुगम होता है।

(3) विशिष्ट भूमिका एवं कार्यों के संयोग के अनुसार व्यवसायों में शैक्षिक योग्यता, प्रशिक्षण या अनुभव का उल्लेख नहीं होता है।

(4) इस वर्गीकरण में अखिल भारतीय शब्दावली का उपयोग किया जाता है।

राष्ट्रीय वर्गीकरण में सभी व्यवसायों को 8 भागों में विभाजित किया है–

1. व्यावसायिक, तकनीकी और अनुबन्धित कर्मचारी,
2. प्रशासकीय तथा कार्यालयों से सम्बन्धित कर्मचारी,
3. लिपिकीय तथा कार्यालयों से सम्बन्धित कर्मचारी,
4. विक्रय तथा ऐजेण्ट कर्मचारी,
5. किसान, चरवाहे, शिकारी तथा मछुआरे,
6. सेवा कर्मचारी,
7. तथा 8-उत्पादक और इससे सम्बन्धित कर्मचारी।

कार्य स्थिति के अनुसार व्यवसायों को छः स्तरों में विभाजित किया है–

(1) व्यावसायिक और प्रबन्ध सम्बन्ध (उच्च स्तरीय),

(2) व्यावसायिक और प्रबन्ध सम्बन्धी (नियमित),

(3) अर्द्ध-व्यावसायिक और निम्न प्रबन्धकीय, व्यवसाय,

(4) कौशलपूर्ण और जीविका सम्बन्धी व्यवसाय,

(5) अर्द्ध कौशल पूर्ति और जीविका सम्बन्धी व्यवसाय तथा

(6) अकुशल और जीविका सम्बन्धी व्यवसाय।

नोट्स अतीत की परम्परानुसार व्यवसाय को जाति से जोड़ा जाता था यह परिवार का उत्तरदायित्व होता था कि वे उन्हें पैतृक व्यवसाय में प्रशिक्षण देकर दक्षता विकसित करे। परन्तु आज योग्यता तथा क्षमताओं के अनुरूप व्यवसाय के चयन में सहायता की जाए यह उत्तरदायित्व व्यावसायिक निर्देशन का है। व्यवसाय के लिए किस प्रकार की कार्यकुशलता अपेक्षित वैसे ही व्यक्तियों का चयन किया जाए।

10.2 महाविद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन में सम्मिलित कर्मचारियों के कार्य (Functions of Different Persons in Personal Guidance at College Level)

महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर विभिन्न गणमान्य लोग निर्देशन सेवा के प्रबन्धन तथा आयोजन में भाग लेते हैं, उनकी गतिविधियाँ तथा अन्य कार्य निर्देशन सेवाओं के आयोजन में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। प्रशासनिक स्तर से लेकर शिक्षण कार्य में व्यक्तिगत निर्देशन में भाग लेने वाले लोगों के कार्य निम्नलिखित हैं–

नोट

10.2.1 प्रशासक के कार्य

प्रशासक किसी भी महाविद्यालय में निर्देशन कार्यक्रमों में प्रमुख स्थान रखता है। निर्देशन कार्यक्रम तब ही सफल रूप से सम्पन्न किया जा सकता है, जब प्रशासक का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। व्यक्तिगत निर्देशन के क्षेत्र में प्रशासक का कार्य निम्नलिखित है–

(1) व्यक्तिगत परामर्श सेवा के लिए उचित स्थान तथा सेवाओं का प्रबन्ध करता है।

(2) कॉलेज में इस प्रकार से समय प्रबन्धन करता है कि अधिक से अधिक छात्र लाभान्वित हो सकें।

(3) यदि अल्पावधि के लिए कोई निर्देशन अधिकारी रखा गया है तो उसे कम-से-कम 6 पीरियड का समय उपलब्ध कराना भी प्रशासक का कार्य है, जिससे कि अधिकारी, प्रवेश, छात्र संबंधी जानकारी, व्यावसायिक जानकारी निर्देशन संबंधी जानकारी छात्रों को दे सके।

(4) महाविद्यालय के फंड में निर्देशन कार्यक्रम व सेवाओं के लिए बजट बनाना।

(5) प्रतिमाह या एक निश्चित अन्तराल के बाद व्यक्तिगत निर्देशन सेवाओं का अवलोकन तथा परीक्षण करना तथा उसमें सुधार हेतु नवीन प्रयास करना भी प्रशासक का कार्य है।

> राधाकृष्णन रिपोर्ट (1942) ने भारतीय महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में छात्र कल्याण हेतु 'डीन' पद की सिफारिश की।

10.2.2 डीन की भूमिका

शिक्षा आयोग ने छात्रों के बहुमुखी विकास तथा कल्याण हेतु (1964-66) में डीन पद को बहुत महत्वपूर्ण माना है। महाविद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन के क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य हैं–

(*i*) छात्रों के व्यक्तिगत रूप से उनके बारे में समूह मीटिंग तथा लिखित वार्तालाप के द्वारा निकाले गये निष्कर्षों स्वरूप रिपोर्ट तैयार करना।

(*ii*) आर्थिक रूप से कमजोर बच्चों की आर्थिक सहायता करना मनोचिकित्सकीय निर्देशन तथा नये छात्रों को महाविद्यालय से संबंधित जानकारी देना।

(*iii*) विभिन्न छात्र गतिविधियों में सामंजस्य तथा समय निर्धारण करना।

(*iv*) छात्र गतिविधियों तथा सेवाओं से संबंधित द्विदिशा संबंध बनाना। पहला तो कॉलेज के प्रधानाचार्य को सभी निर्देशन सेवाओं से संबंधित तथ्यों तथा समस्याओं से अवगत कराना तथा दूसरे विभिन्न सेवाओं के निर्देशकों से जानकारी प्राप्त करना।

(*v*) छात्रों की आवश्यकताओं तथा उनकी समस्याओं को समझकर विश्वविद्यालय को जानकारी देना तथा उसके समाधान में यूनिवर्सिटी की सहायता करना।

(*vi*) छात्रों में आत्मविश्वास पैदा करना।

10.2.3 निर्देशन अधिकारी के कार्य

निर्देशन अधिकारी निर्देशन कार्यक्रम का केन्द्र है। निर्देशन अधिकारी ने किसी विश्वविद्यालय से निर्देशन तथा परामर्श के क्षेत्र में कम से कम 1 वर्ष का पाठ्यक्रम अवश्य किया होना चाहिए। उसका व्यक्तित्व, आकर्षक तथा छात्रों की समस्याओं को समझने की कला में निपुणता प्राप्त होनी चाहिए।

निर्देशन अधिकारी के निम्नलिखित कार्य हैं–

(*i*) अध्यापकों की सहभागिता तथा सहयोग के लिए आरंभिक कार्यक्रमों की व्यवस्था करना।

(*ii*) निर्देशन समिति का गठन करना।

नोट

(iii) प्राप्त व एकत्रित जानकारी को आकर्षक ढंग से प्रदर्शित करना।

(iv) समूह चर्चा तथा व्यावसायिक चर्चा के द्वारा छात्रों को शिक्षा तथा व्यवसाय संबंधी जानकारी देना।

(v) विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकुशल लोगों से वार्तालाप का आयोजन करना।

(vi) वृत्तिक दिन, वृत्तिक सप्ताह, वृत्तिक कॉन्फ्रेंस का आयोजन करना।

(vii) छात्रों के विकास के लिए उन्हें उचित शिक्षण आदतों के बारे में बताना।

(viii) कार्यालय, कारख़ानों तथा उच्च शिक्षा संस्थानों की यात्रा करना तथा छात्रों को उससे संबंधित जानकारी देना।

10.3 महाविद्यालय स्तर पर निर्देशन संगठन की विशेषताएँ (Characteristics of Organization of Personal Guidance at College level)

(1) **समस्त व्यक्तियों को निर्देशन सेवायें प्राप्त होनी चाहिये**—भारत एक प्रजातान्त्रिक देश है। अत: इस देश में प्रत्येक छात्र को निर्देशन प्राप्त करने का अधिकार है साधारणत: आजकल विद्यालयों में शिक्षण शान्त अथवा विचारों में लीन रहने वाले विद्यार्थियों पर कोई ध्यान नहीं देते। वरन् शिक्षकों का ध्यान, अनुशासनहीन बालकों अथवा ऐसे बालक जो विद्यालय छोड़कर चले जाते हैं उन पर ही अधिक रहता है, जो कि अनुचित है। अत: निर्देशन प्रदाताओं एवं शिक्षकों को प्रत्येक बालक पर ध्यान देना चाहिये।

(2) **सेवार्थी-केन्द्रित**—एक अच्छे निर्देशन संगठन की द्वितीय महत्वपूर्ण विशेषता है—निर्देशन कार्यक्रम का सेवार्थी-केन्द्रित होना। जिस प्रकार आज बाल केन्द्रित शिक्षा पर अत्याधिक बल दिया जा रहा है, उसी प्रकार निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत, सेवार्थी अथवा छात्र पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये। सेवार्थी को अपनी योजनाओं की उन्नति एवं सफलता अर्जित करने में तथा सेवार्थी की सहायता करना ही, निर्देशन कार्यक्रम का प्रमुख लक्ष्य है।

(3) **व्यक्ति की क्षमताओं का सम्पूर्ण विकास करने में सहायक**—व्यक्ति की क्षमताओं का विकास इस प्रकार किया जाये, जो कि समाज हेतु अधिकाधिक लाभदायक हो। विद्यार्थी, समाज का ही अंग होता है। शिक्षा का उद्देश्य बालक को एक सामाजिक प्रणाली बनाना होता है। अत: बालक को एक योग्य नागरिक बनाकर, उसको समाजोपयोगी सदस्य बनाने में, निर्देशन कार्यक्रम अधिकाधिक सहायक होने चाहिए।

(4) **सेवार्थी को ही अन्तिम निर्णय लेने हेतु अवसर प्रदान करना**—निर्देशन कार्यक्रम में सेवार्थी को ही अन्तिम निर्णय लेने हेतु अवसर प्रदान किया जाना चाहिये। चूँकि हमारा देश प्रजातान्त्रिक देश है। अत: प्रजातान्त्रिक देश में निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत, निर्देशन-प्रक्रिया को लोकतान्त्रिक बनाने हेतु यह अत्यंत आवश्यक है कि सेवार्थी को अंतिम निर्णय लेने हेतु स्वतन्त्र छोड़ दिया जाये।

(5) **निर्देशन कर्मचारियों का चयन, उनके अनुभव, प्रशिक्षण एवं योग्यता के आधार पर ही किया जाना चाहिए**—निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्त कार्य शिक्षकों द्वारा पूर्ण नहीं किया जा सकता है। अत: विभिन्न कार्यों हेतु छात्रों को निर्देशन देने के लिए, विशिष्ट योग्यता अर्जित व्यक्तियों अर्थात् विशेषज्ञों को ही नियुक्त किया जाना चाहिए। निर्देशन कर्मचारी विभिन्न क्षेत्र के होने चाहिए।

(6) **विभिन्न विधियों का उपयोग**—निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत, निर्देशन कर्मचारियों को, निर्देशन प्रदान करते समय विभिन्न विधियों को उपयोग करना चाहिए क्योंकि एक विधि के द्वारा, छात्रों के बारे में विश्वसनीय सूचनाएँ प्राप्त नहीं की जा सकती हैं। यही कारण है कि एक योग्य एवं कुशल निर्देशन प्रदाता अलग-अलग व्यक्तियों के लिये भिन्न-भिन्न विधियों को विभिन्न समय एवं परिस्थितियों में प्रयुक्त करता है।

(7) **निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को अपनी योग्यता एवं ज्ञान में वृद्धि करने हेतु अवसर खोजने चाहिए**—निर्देशन के क्षेत्र में प्रत्येक वर्ष अनेक नवीन विधियों की खोज की जाती है तथा कुछ प्रचलित विधियों में परिवर्तन किये जाते हैं। मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में भी प्रतिवर्ष हुए अनुसंधान कार्य के आधार पर नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है तथा नवीन परीक्षणों का निर्माण होता है। इन समस्त बातों का ज्ञान निर्देशन कर्मचारियों को होना आवश्यक है।

नोट

(8) **विद्यालयों के समस्त कर्मचारियों का अपनी योग्यता के अनुसार निर्देशन के उत्तरदायित्वों का आवंटन करना चाहिए**—प्रत्येक विद्यालय में, समस्त कर्मचारी किसी न किसी रूप में निर्देशन कार्य करते हैं, चाहे निर्देशन कार्य विचारपूर्वक किया जाय अथवा नहीं। अनेक शिक्षक विद्यार्थियों को सुझाव देकर ही, निर्देशन कार्य को पूर्ण करते हैं। लेकिन समस्त कर्मचारियों को एक कुशल एवं योग्य निर्देशन प्रदात्ता बनने हेतु प्रयास करने चाहिए। व्यवस्थित निर्देशन का उत्तरदायित्व मात्र अनुभवी एवं प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों को ही प्रदान किया जाना चाहिए तथा विद्यालय के प्रधानाचार्य को, इस कार्यक्रम की समुचित व्यवस्था करने हेतु अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करना चाहिए।

(9) **निर्देशन प्रदान करने हेतु पर्याप्त समय मिलना चाहिए**—निर्देशन प्रदाताओं की, छात्रों को निर्देशन प्रदान करने हेतु पर्याप्त समय प्राप्त होना चाहिए। परीक्षा लेने तथा सुझाव देने हेतु निर्देशन प्रदात्ताओं को अधिक समय की आवश्यकता होती है। अत: विद्यालय में, प्रधानाध्यापक की समय-चक्र का निर्माण करते समय, निर्देशन हेतु समय पर भी ध्यान देना चाहिए।

(10) **विद्यालय बजट में ही निर्देशन कार्यक्रम को स्थान प्राप्त होना चाहिए**—विद्यालय की क्रियाओं का एक अन्तरंग भाग है—निर्देशन कार्यक्रम। अत: इस कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु पर्याप्त मात्रा में धनराशि प्राप्त होनी आवश्यक है।

(11) **समस्त विद्यालयों हेतु पृथक-पृथक निर्देशन कार्यक्रम होने चाहिए**—यह आवश्यक नहीं है कि एक ही प्रकार का निर्देशन कार्यक्रम समस्त विद्यालयों में सफल हो सके क्योंकि सभी विद्यालयों की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ, समाज की स्वीकृति, विद्यालय की परिस्थितियाँ इत्यादि ही निर्देशन कार्यक्रम का आधार होती है। अत: निर्देशन कार्यक्रम को अधिक उपयोगी एवं सफल बनाने हेतु यह आवश्यक है कि कार्यक्रम स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल हो।

(12) निर्देशन प्रदाताओं को निर्देशन प्रदान करने हेतु पर्याप्त एवं समुचित निर्देशन सामग्री भी उपलब्ध होनी चाहिए। विभिन्न परीक्षणों के अभाव में, निर्देशन विद्यार्थियों की बुद्धि, अभियोग्यताओं एवं रुचियों के बारे में ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है।

(13) निर्देशन कार्यक्रम को अधिकाधिक सफल बनाने हेतु यह आवश्यक है कि समाज की अन्य निर्देशक संस्थाओं से सहयोग प्राप्त किया जाये।

टास्क 'सेवायी केन्द्रित' निर्देशन सेवा से क्या अभिप्राय है?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. व्यावसायिक निर्देशन तथा स्थानापन सेवा के लिए विश्वविद्यालय से सम्बन्धित .... केन्द्र की स्थापना की जाती है।
2. .... में विज्ञापनों तथा जिनमें विभिन्न पदों, विभिन्न संस्थाओं के रिक्त स्थानों को विवरण दिया जाता है।
3. .... अध्यापकों की सहभागिता तथा सहयोग के लिए आरंभिक कार्यक्रमों की व्यवस्था करता है।
4. निर्देशन कार्यक्रम में .... को ही अंतिम निर्णय लेने हेतु अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

नोट

10.4 सारांश (Summary)

- प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन का विशेष महत्व एवं उपयोग होता है इसी प्रकार विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर पर व्यावसायिक निर्देशन का अधिक महत्व तथा उपयोग होता है। इस स्तर पर सभी रोजगार तथा व्यवसाय की सोचने लगते हैं। उनकी योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुकूल रोजगार दिलाना व्यावसायिक निर्देशन का कार्य है इसे स्थापन सेवा भी कहते हैं।

  व्यावसायिक निर्देशन तथा स्थापन सेवा के लिए विश्वविद्यालय से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक ब्यूरो केन्द्र की व्यवस्था की जाती है। इसमें शिक्षा पूरी करने के उपरान्त छात्र अपना पंजीकरण कराते हैं। इस केन्द्र का मुख्य कार्य विभिन्न संस्थाओं में रिक्त स्थानों के विज्ञापनों की सूचना देना है। इन केन्द्रों पर रोजगार सम्बन्धी पत्र पत्रिकायें तथा समाचार पत्र भी उपलब्ध रहते हैं। केन्द्र के कर्मचारी भी इन सूचनाओं का संकलन करते हैं और छात्रों की सुविधा हेतु विवरण रखते हैं।
- स्थापन सेवा तथा व्यावसायिक निर्देशन में रोजगार समाचार की आज महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्येक सप्ताह में रोजगार समाचार पत्र का प्रकाशन होता है। सप्ताह के अन्त में शनिवार को इसका वितरण होता है। इस समाचार पत्र में सभी प्रकार के विज्ञापनों जिनमें विभिन्न पदों, विभिन्न संस्थाओं के रिक्त स्थानों को विवरण दिया जाता है।
- छात्र अपनी योग्यताओं के अनुसार संस्थाओं में आवेदन पत्र सीधे भेजते हैं। किन्हीं संस्थाओं में आवेदन पत्र रोजगार कार्यालय के माध्यम से मंगाये जाते हैं कुछ संस्थायें साक्षात्कार से पूर्व चयन परीक्षा की व्यवस्था करती है। प्रशिक्षण संस्थाएँ साक्षात्कार से पूर्व चयन परीक्षा की व्यवस्था करती है। प्रशिक्षण संस्थायें भी प्रवेश परीक्षा का आयोजन करती हैं।
- भारतवर्ष में (1968) में व्यवसायों का वर्गीकरण किया गया। यह वर्गीकरण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्थान (I.L.O.) द्वारा प्रकाशित हुआ।

  व्यवसायों का वर्गीकरण चार मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है–

  (1) कार्य के प्रकार से सम्बन्धित होता है एक ही प्रकार के कार्य में लगे व्यक्तियों को एक समूह में रखते हैं। इसमें संस्था के औद्योगिक वर्गीकरण पर ध्यान नहीं दिया जाता है क्योंकि यह आर्थिक क्रिया की एक शाखा होती है।

  (2) व्यवसाय के पाँच बिन्दु अनुस्थिति पर मूलभूत मानदण्ड का उपयोग अधिक सरल एवं सुगम होता है।
- महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर विभिन्न गणमान्य लोग निर्देशन सेवा के प्रबन्धन तथा आयोजन में भाग लेते हैं, उनकी गतिविधियाँ तथा अन्य कार्य निर्देशन सेवाओं के आयोजन में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।
- निर्देशन कार्यक्रम तब ही सफल रूप से सम्पन्न किया जा सकता है, जब प्रशासक का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। व्यक्तिगत निर्देशन के क्षेत्र में प्रशासक का कार्य निम्नलिखित है–

  (1) व्यक्तिगत परामर्श सेवा के लिए उचित स्थान तथा सेवाओं का प्रबन्ध करता है।

  (2) कॉलेज में इस प्रकार से समय प्रबन्धन करता है कि अधिक से अधिक छात्र लाभान्वित हो सकें।

  (3) यदि अल्पावधि के लिए कोई निर्देशन अधिकारी रखा गया है तो उसे कम-से-कम 6 पीरियड का समय उपलब्ध कराना भी प्रशासक का कार्य है, जिससे कि अधिकारी, प्रवेश, छात्र संबंधी जानकारी, व्यावसायिक जानकारी निर्देशन संबंधी जानकारी छात्रों को दे सकें।
- शिक्षा आयोग ने छात्रों के बहुमुखी विकास तथा कल्याण हेतु (1964-66) में डीन पद को बहुत महत्वपूर्ण माना है। महाविद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन के क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य हैं–

  (*i*) छात्रों के व्यक्तिगत रूप से उनके बारे में समूह मीटिंग तथा लिखित वार्तालाप के द्वारा निकाले गये निष्कर्षों स्वरूप रिपोर्ट तैयार करना।

नोट

(*ii*) आर्थिक रूप से कमजोर बच्चों की आर्थिक सहायता करना मनोचिकित्सकीय निर्देशन तथा नये छात्रों को महाविद्यालय से संबंधित जानकारी देना।

(*iii*) विभिन्न छात्र गतिविधियों में सामंजस्य तथा समय निर्धारण करना।

(*iv*) छात्र गतिविधियों तथा सेवाओं से संबंधित द्विदिशा संबंध बनाना।

- निर्देशन अधिकारी निर्देशन कार्यक्रम का केन्द्र है। निर्देशन अधिकारी ने किसी विश्वविद्यालय से निर्देशन तथा परामर्श के क्षेत्र में कम से कम 1 वर्ष का पाठ्यक्रम अवश्य किया होना चाहिए। उसका व्यक्तित्व, आकर्षक तथा छात्रों की समस्याओं को समझने की कला में निपुणता प्राप्त होनी चाहिए।

  निर्देशन अधिकारी के निम्नलिखित कार्य हैं:–

  (*i*) अध्यापकों की सहभागिता तथा सहयोग के लिए आरंभिक कार्यक्रमों की व्यवस्था करना।

  (*ii*) निर्देशन समिति का गठन करना।

  (*iii*) प्राप्त व एकत्रित जानकारी को आकर्षक ढंग से प्रदर्शित करना।

  (*iv*) समूह चर्चा तथा व्यावसायिक चर्चा के द्वारा छात्रों को शिक्षा तथा व्यवसाय संबंधी जानकारी देना।

  (*v*) विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकुशल लोगों से वार्तालाप का आयोजन करना।

  (*vi*) वृत्तिक दिन, वृत्तिक सप्ताह, वृत्तिक कार्फ्रेंस का आयोजन करना।

  (*vii*) छात्रों के विकास के लिए उन्हें उचित शिक्षण आदतों के बारे में बताना।

10.5 शब्दकोश (Keywords)

- **व्यावसायिक**—व्यवसाय से संबंधित।
- **स्थापन**—दूसरे व्यक्ति द्वारा किसी स्थान को भरना।

10.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. महाविद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन सेवाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. महाविद्यालय स्तर पर व्यक्तिगत निर्देशन में 'प्रशासक' तथा 'डीन' के कार्यों की विवेचना कीजिए।
3. निर्देशन संगठन की विशेषताएँ बताइये।
4. व्यवसायों के राष्ट्रीय वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. मनोवैज्ञानिक केन्द्र 2. रोजगार समाचार पत्र 3. निर्देशन अधिकारी 4. सेवार्थी।

10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–11: परामर्श: अवधारणा, आवश्यकता तथा भारत के संदर्भ में उद्देश्य (Counseling: Concept, Need and Goals with Reference to India)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 परामर्श की अवधारणा (Concept of Counseling)

11.2 परामर्श की विशेषताएँ (Characteristics of Counseling)

11.3 परामर्श की आवश्यकता (Need of Counseling)

11.4 परामर्श के लक्ष्य (Goals of Counseling)

11.5 सारांश (Summary)

11.6 शब्दकोश (Keywords)

11.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

11.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- परामर्श की अवधारणा, विशेषताएँ, आवश्यकता और लक्ष्य की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्ति के समक्ष किसी न किसी प्रकार की समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। समस्याओं का स्वरूप अथवा उनकी गम्भीरता में भिन्नता हो सकती है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति समस्या-समाधान की प्रक्रिया के उपरान्त ही आगे बढ़ पाता है। इन समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करने की दिशा में निर्देशन प्रक्रिया से सम्बन्ध विभिन्न सेवाओं का संगठन किया जाता है। निर्देशन से सम्बन्धित इन सेवाओं के अन्तर्गत, परामर्श सेवा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन समय में, परामर्श का कार्य अपेक्षाकृत सहज था तथा विद्यालय के शिक्षकों एवं समाज के अन्य व्यक्तियों के द्वारा, परामर्श प्रदान किया जाता है। परन्तु वर्तमान समय में समाज का स्वरूप अत्यन्त जटिल हो गया है। आज पग-पग पर व्यक्ति पर व्यक्ति के समक्ष, समस्याएँ हैं तथा इन समस्याओं का अध्ययन एवं समाधान भी एक जटिल कार्य हो गया है। अत: समस्याओं का अध्ययन एवं समाधान भी एक जटिल कार्य हो गया है। अत: समस्याओं के स्वरूप के आधार पर परामर्श की प्रक्रिया भी परिवर्तित हो चुकी है। अब इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिये अधिक योग्य, कुशल एवं प्रशिक्षित विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। परामर्श की इस प्रक्रिया से सम्बन्धित विविध पक्षों का अध्ययन करें, इससे पूर्व यह आवश्यक है कि परामर्श के अर्थ को स्पष्ट समझ लिया जाये।

नोट

11.1 परामर्श की अवधारणा (Concept of Counseling)

परामर्श एक प्राचीन शब्द है और शब्द को परिभाषित करने के प्रयास प्रारम्भ से ही किए गए हैं। वैबस्टर शब्दकोष के अनुसार-''परामर्श का आशय पूछताछ, पारस्परिक तर्क वितर्क अथवा विचारों का पारस्परिक विनिमय है।'' इस शाब्दिक आशय के अतिरिक्त परामर्श के अन्य पक्ष भी हैं जिनके आधार पर परामर्श का अर्थ स्पष्ट हो सकता है। उनके विद्वानों ने इन पक्षों पर प्रकाश डालकर परामर्श का अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

परामर्श के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके आधार पर सेवार्थी को वैयक्तिक दृष्टि से ही सहायता प्रदान की जाती है। गिलबर्ट रेन के अनुसार भी - ''परामर्श सर्वप्रथम एक व्यक्तिगत सन्दर्भ, का परिसूचक है। इसे सामूहिक रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है। सामूहिक परामर्श जैसा शब्द असंगत है तथा व्यक्तिगत परामर्श जैसा शब्द भी संगत नहीं है क्योंकि परामर्श सदैव व्यक्तिगत रूप में ही सम्पन्न हो सकता है।''

"First of all counseling is personal. It can be performed with a group. Group conseling is an anomally : the terms are not in harmony. 'Personal counseling' is a tautology, counseling is always personal."

- C. Gilbert Wrenn

परामर्श के आशय के सन्दर्भ में एक विशिष्ट पक्ष यह भी है कि परामर्श की प्रक्रिया के द्वारा परामर्श प्राप्तकर्त्ता अथवा सेवार्थी पर किसी निर्णय को थोपा नहीं जाता है, वरन् उसकी सहायता इस प्रकार की जाती है कि वह स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो सके। जॉर्ज ई॰ मायर्स के अनुसार- ''परामर्श का कार्य जब सम्पन्न होता है, जब यह सेवार्थी को अपने निर्णय स्वयं लेने के लिये बुद्धिमत्तापूर्ण विधियों का उपयोग करके सहायता प्रदान करता है। परामर्श स्वयं उसके लिये निर्णय नहीं लेता है। वस्तुत: इस प्रक्रिया में सेवार्थी हेतु स्वयं निर्णय लेना उतना ही असंगत है जितना कि बीजगणित के शिक्षण में शिक्षार्थी के लिए प्रदत्त समस्या का समाधान शिक्षक के द्वारा स्वयं करना है।''

"Its duty is performed when it helps the individual to follow a wire procedure in arriving at his own decisions, not when it tries to make decisions for him. Counseling is no more making decisions for the counselor than is the teaching of algebra solving problems for the one taught."

- G.E. Myers

राबिन्स के अनुसार परामर्श के अन्तर्गत उन समस्त परिस्थितियों को सम्मिलित किया जाता है जो वातावरण से समायोजन हेतु अपेक्षित होती है। उनके ही शब्दों में - परामर्श के अन्तर्गत वे समस्त परिस्थितियाँ सम्मिलित कर ली जाती हैं जिनके आधार पर परामर्श प्राप्तकर्त्ता को अपने वातावरण में समायोजन हेतु सहायता प्राप्त होती है। परामर्श का सम्बन्ध दो व्यक्तियों से होता है- परामर्शदाता एवं परामर्श प्रार्थी का सम्बन्ध दो व्यक्तियों से होता है- परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी अपनी समस्याओं का समाधान, बिना किसी सुझाव के स्वयं ही करने में सक्षम नहीं हो सकता है। उसकी समस्याओं का समाधान, बिना किस सुझाव की आवश्यकता होती है और ये वैज्ञानिक सुझाव ही परामर्श कहलाते है।''

इसी प्रकार कार्ल रोजर्स ने परामर्श की आत्म बोध की प्रक्रिया में सहायक बताये हुये लिखा है कि- ''परामर्श एक निर्धारित रूप से स्वीकृत ऐसा सम्बन्ध है जो परामर्शप्रार्थी को, स्वयं को समझने मे पर्याप्त सहायता देता है, जिसे वह अपने नवीन ज्ञान के उपयोग से नये निर्णय ले सकें।''

... a definitely structured permissive relationship which allows the client to gain and understanding to himself to a degree which enables him to take positive steps in the light of his new orientation.

-Carl Rogers

एडमण्ड विलियमसन-ने परामर्श के विभिन्न पक्षों का व्यापक स्तर पर अध्ययन किया तथा कहा कि- ''एक प्रभावी परामर्शदाता उसी को कहा जाता है जो अपने विद्यार्थियों को अपनी सेवाओं को प्राप्त करने की दिशा में प्रोत्साहित कर सके तथा जिसके फलस्वरूप उन्हें सन्तोष एवं सफलता प्राप्त हो सके। वस्तुत: परामर्श तो एक प्रकार का ऐसा समाधान है जिसके आधार पर सेवार्थी को अपनी समस्याओं का समाधान करने से सम्बन्धित अधिगम होता है।''

नोट

हम्फ्री एवं ट्रेक्सलर-ने परामर्श को समस्या समाधान में सहायक बताया है। परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि किस प्रकार की समस्याओं के समाधान में परामर्श की प्रक्रिया सहायक है। उनके शब्दों में- ''परामर्श व्यक्ति की समस्या समाधान हेतु विद्यालय या अन्य संस्थानों के कर्मचारियों के उत्सवों का प्रयोग है।'' विली तथा एण्ड्रू (Willy and Andrew) के अनुसार-''ये पारस्परिक रूप से सीखने की प्रक्रिया है तथा इसके अन्तर्गत दो व्यक्ति सम्मिलित होते हैं- एक सहायता प्राप्तकर्त्ता और दूसरा वह व्यक्ति जो इस प्रथम व्यक्ति की सहायता इस प्रकार करता है कि उसका अधिकतम विकास हो सके।''

जोन्स (Jones)-ने परामर्श को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है जिसके अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी को प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत रूप में सहायता प्रदान की जाती है। उसके अनुसार परामर्श की प्रक्रिया निर्देशीय अधिक है। इस प्रक्रिया में विद्यार्थी से सम्बन्धित समस्त तथ्यों के संकलन एवं विद्यार्थी से सम्बन्धित अनुभवों के अध्ययन पर बल दिया जाता है। विद्यार्थी से सम्बन्धित अनुभवों के अध्ययन पर बल दिया जाता है। विद्यार्थियों की योग्यताओं का अध्ययन किसी विशिष्ट परिस्थिति के सन्दर्भ में किया जाता है इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि परामर्श के आधार पर परामर्शप्रार्थी की समस्याओं का समाधान नहीं किया जाता है वरन् उसे स्वयं ही इस योग्य बना दिया जाता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सके।

कॉम्बस ने परामर्श की प्रक्रिया में, परामर्शदाता के स्थान पर परामर्शप्रार्थी को अधिक महत्व प्रदान किया है। इस प्रकार उनके अनुसार यह एक परामर्शप्रार्थी केन्द्रित प्रक्रिया है।

कॉम्बस (Combas)-के अनुसार ब्रोवर (Brewer) ने भी इस प्रक्रिया को परामर्शप्रार्थी-केन्द्रित ही स्वीकार किया है। उनके अनुसार इस प्रक्रिया के अन्तर्गत पारस्परिक विचार-विमर्श, बातचीत एवं सौहार्दपूर्ण, तर्क-वितर्क के आधार पर व्यक्ति को इस प्रकार सहायता प्रदान की जाती है कि वह अपनी समस्याओं से सम्बन्धित निर्णय स्वयं ले सके। पारस्परिक विचार विनिमय के लिए सौहार्द्रपूर्ण वातावरण का सर्जन एवं समानता के धरातल पर बातचीत करना आवश्यक होता है। इस विचार विनिमय का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति में निहित योग्यताओं की जानकारी एवं उनका अधिकतम विकास होता है। इस प्रकार विचार-विनिमय के निरन्तर दोनों ही एक दूसरे पर अपने विचार आरोपित करने का प्रयास नहीं करते हैं।

रूथ स्ट्रैग के शब्दों में परामर्शप्रार्थी में आत्म बोध की योग्यता का विकास किया जाता है। इसके आधार पर ही व्यक्ति को यह ज्ञात हो पाता है कि वह अपनी समस्या का समाधान किस प्रकार कर सकता है? उसकी समस्या का स्वरूप क्या है? तथा समस्या के समाधान हेतु कौन सी योग्यताएँ उसमें विद्यमान हैं।

स्ट्रैंग के अनुसार-परामर्श प्रक्रिया एक संयुक्त प्रयास है। विद्यार्थी का उत्तरदायित्व स्वयं को समझाने की चेष्टा करना तथा उस मार्ग का पता लगाना है जिस पर उसे जाना है तथा जैसे ही समस्या उत्पन्न हो, उसके समाधान के लिए आत्म विश्वास का विकास होना है। परामर्शदाता का उत्तरदायित्व इस प्रक्रिया में जब कभी छात्र को आवश्यकता हो, सहायता प्रदान करना है।''

"Counseling process is a joint quest. The students responsibility is to try to understand himself and the direction in which he should go an to gain self-confidence in handling problems as the arise. The counsellor's responsibility is to assist in this process whenever the student needs and is ready for help."

- Ruth Strong

रोलो मे (Rollo May) के अनुसार, परामर्श की प्रक्रिया में परामर्शप्रार्थी के स्थान पर परामर्शदाता को भूमिका के केन्द्र मानते हैं। उनके शब्दों में-''परामर्श प्रार्थी को समाजिक दायित्वों को सहर्ष स्वीकार कराने में सहायता करना, उसे साहस देना, जिससे उसमें हीन भावना उत्पन्न न हो तथा सामाजिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों की प्राप्ति में उसकी सहायता करना है।''

"His function is to assist the counsellee to a cheerful acceptances of his social responsibility to give him courage which will release him from the compulsion of his inferiority feelings and to help him to direct his striving towards socially constructive ends". *- Rollo May*

नोट

रोलो मे के विपरीत इरिक्सन (Erickson)–ने परामर्श को परामर्शप्रार्थी केन्द्रित मानते हुये लिखा है कि– ''एक परामर्श साक्षात्कार व्यक्ति से व्यक्ति का सम्बन्ध है जिसमें एक व्यक्ति अपनी समस्याओं तथा आवश्यकताओं के साथ, दूसरे व्यक्ति के पास सहायता हेतु जाता है।''

"A counseling interview is a person to person relationship in which one individual with problems and needs turns to another person for assistance". *- Erickson*

11.2 परामर्श की विशेषताएँ (Charactristics of Counseling)

इन परिभाषाओं के अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने परामर्श के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु परामर्श से सम्बन्धित विभिन्न तत्वों का निर्धारण भी किया है। उनके अनुसार इन तत्वों अथवा विशेषताओं के आधार पर परामर्श को परिभाषित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए आर्बकल (Arbuckle) के अनुसार परामर्श की प्रमुख विशेषताएँ हैं:-

1. परामर्श की प्रक्रिया दो व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारित है।
2. दानों के मध्य विचार-विमर्श के अनेक साधन हो सकते हैं।
3. प्रत्येक परामर्शदाता को अपनी प्रक्रिया का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।
4. प्रत्येक परामर्श साक्षात्कार पर आधारित होता है।
5. परामर्श के फलस्वरूप, परामर्शप्रार्थी की भावनाओं में परिवर्तन होता है। उपरोक्त परिभाषाओं में परामर्श की विशेषताओं, उद्देश्यों तथा कार्यों का उल्लेख किया गया है, परामर्श की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं-
    1. परामर्श वैयक्तिक सहायता प्रदान की प्रक्रिया है इसे सामूहिक रूप में सम्पादित नहीं किया जाता है।
    2. परामर्श शिक्षण की भाँति निर्णय नहीं लिया जाता है अपितु परामर्श प्रार्थी स्वयं निर्णय लेता है।
    3. परामर्शदाता सम्पूर्ण परिस्थितियों के आधार पर समायोजन हेतु प्रार्थी को जानकारी देता है, और उसकी सहायता भी करता है।
    4. परामर्शप्रार्थी अपनी समस्याओं का समाधान बिना किसी सुझाव व सहायता के स्वयं ही करने में समर्थ नहीं होता है। समस्याओं के समाधान हेतु वैज्ञानिक सुझाव की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिक सुझाव को ही परामर्श कहते हैं।
    5. परामर्शप्रार्थी को समझने में पर्याप्त सहायता देता है जिससे वह अपनी समस्याओं के समाधान के लिये निर्णय लेता है।
    6. परामर्श द्वारा प्रार्थी को अपनी सेवाओं को प्राप्त करने की दिशा में प्रोत्साहित कर सके तथा जिसके फलस्वरूप उसे सफलता एवं सन्तोष प्राप्त हो सके।
    7. परामर्श में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की समस्याओं के समाधान हेतु सहायता इस प्रकार करता है जिससे स्वयं लेकर सीखता है।
    8. परामर्श की प्रक्रिया निर्देशीय अधिक होती है। इसमें प्रार्थी के सम्बन्ध में सम्पूर्ण तथ्यों का संकलन करके सम्बन्धित अनुभवों पर बल दिया जाता है।
    9. परामर्श में प्रार्थी की समस्याओं का समाधान नहीं किया जाता है अपितु इस प्रक्रिया से उसे स्वयं ही इस योग्य बना दिया जाता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सके।
    10. परामर्श की प्रक्रिया-केन्द्रित होती है जिसमें पारस्परिक विचार-विमर्श, वार्तालाप, तथा सौहार्द्रपूर्ण तर्क-वितर्क के आधार पर प्रार्थी को इस योग्य बनाया जाता है कि अपनी समस्याओं के समाधान के लिये स्वयं निर्णय ले सके।

नोट

11. परामर्श की प्रक्रिया में प्रार्थी का उत्तरदायित्व स्वयं को समझाना तथा उस मार्ग को सुनिश्चित करना जिस ओर उसे अग्रसर होना है। परामर्श से समाधान के लिए आत्म विश्वास का विकास होता है।
12. परामर्श प्रार्थी को सामाजिक उत्तरदायित्वों को सहर्ष स्वीकार करने में सहायता करना, उसे साहस देना जिससे उसमें हीन भावना न विकसित हो।

परामर्श में प्रार्थी की समस्या व्यक्तिगत होती है। मानसिक रूप से प्रार्थी स्वस्थ नहीं होता है। इसलिये वह निर्णय लेने में समर्थ नहीं होता है उसके परामर्श की आवश्यकता होती है। गीता प्रकरण में अर्जुन कुरूक्षेत्र में युद्ध करने को गये, परन्तु अपने सगे सम्बन्धियों को देखकर मोह के कारण कृष्ण से युद्ध के लिये मना कर दिया। कृष्ण अर्जुन को परामर्श देते हैं- विचार-विमर्श, वार्तालाप तथा सौहार्दपूर्ण तर्क-वितर्क से अर्जुन को मोह से मुक्त करते है और क्षत्रिय धर्म की जानकारी देते हैं कि एक क्षत्रीय का धर्म युद्ध करना है तथा युद्ध से भागना कायरता है। इतिहास तुम्हें कायर कहेगा यह तुम्हें स्वीकार है। अर्जुन कहता है यह स्वीकार नहीं है, तब निर्णय लीजिये, युद्ध करना है अथवा नहीं। यह परामर्श की प्रक्रिया का विशिष्ट उदाहरण है।

उपरोक्त समस्त विवरण के आधार पर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि परामर्श एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें साक्षात्कार के माध्यम से दो व्यक्तियों के मध्य विचार-विमर्श होता है। दोनों ही, अर्थात् परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी के मध्य सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होना इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने की प्राथमिक आवश्यकता है। इस पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारित विचार-विमर्श का उद्देश्य, परामर्शप्रार्थी को इस योग्य बनाना है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सके। इस प्रकार मानवीय सम्बन्ध एवं सहायता और वह सहायता भी प्रत्यक्ष रूप में आमने-सामने प्रदान करना, परामर्श के महत्वपूर्ण तत्व हैं। जिनके आधार पर इसे अन्य प्रत्ययों से पृथक किया जा सकता है तथा इसका आशय स्पष्ट किया जा सकता है।

नोट्स परामर्श में प्रार्थी की समस्या व्यक्तिगत होती है। मानसिक रूप से प्रार्थी स्वस्थ नहीं होता है। इसलिये वह निर्णय लेने में समर्थ नहीं होता है उसके परामर्श की आवश्यकता होती है।

स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' तथा 'असत्य' लिखिए (State whether the following statements are 'True' or 'False')–**
   (*i*) परामर्श एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके आधार पर सेवार्थी को वैयक्तिक दृष्टि से ही सहायता प्रदान की जाती है।
   (*ii*) जोन्स के अनुसार परामर्श की प्रक्रिया निर्देशीय नहीं होती है।
   (*iii*) प्रत्येक परामर्श साक्षात्कार पर आधारित होता है।
   (*iv*) परामर्श में प्रार्थी की समस्या व्यक्तिगत नहीं होती है।

11.3 परामर्श की आवश्यकता (Need of Counseling)

सी॰ सी॰ डन्सूमर एवं मिलर ने अपनी पुस्तक 'प्रिन्सिपल्स एण्ड मैथड्स ऑफ गाईडेन्स फॉर टीचर' में विद्यार्थियों हेतु परामर्श के निम्नलिखित आठ आवश्यकताओं का उल्लेख किया है-

1. छात्र को उसी सफलता के महत्व के विषयों की जानकारी प्रदान करना।
2. छात्र की शैक्षिक एवं व्यावसायिक चयन की योजना निर्माण में सहायता करना।

3. शैक्षिक उद्देश्य की पूर्ति यथोचित प्रयास करने की प्रेरणा छात्र को देना।
4. छात्रों में, विशिष्ट योग्यताओं एवं सही दृष्टिकोणों को प्रोत्साहित तथा विकसित करना।
5. छात्रों की स्वयं की योग्यताओं, रूचियों, एवं अवसरों आदि को समझकर स्वयं को और भली प्रकार समझने में सहायता करना।
6. छात्रों की स्वयं की कठिनाइयों को हल करने की योजना बनाने में सहायता करना।
7. शिक्षक एवं विद्यार्थी के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों की भावना विकसित करना, तथा।
8. छात्रों के सम्बन्ध में वे सूचनाएं प्राप्त करना जो उसकी समस्याओं के निराकरण में सहायक हों।

परामर्श की प्रक्रिया के जो उद्देश्य हैं उनकी प्राप्ति, प्रक्रिया के अन्य अंगों सेवार्थी तथा उपबोधक के सम्बन्धों पर निर्भर करती है।

11.4 परामर्श के लक्ष्य (Goals of Counseling)

परामर्श मनोवैज्ञानिकों (Counseling Psychologists) ने उपबोधन एवं मनोचिकित्सा (Phychotheraphy) को पर्यायवाची माना है तथा इसी को ध्यान में रखकर ही उपबोध के लक्ष्यों को निर्धारित किया है। राबर्ट डब्ल्यू ह्वाइट के शब्दों में–'जब कोई व्यक्ति मनोचिकित्सक के रूप में कार्य करता है तब उसका अभीष्ट प्रभाव डालने या सहमति प्राप्त न होकर मात्रा उत्तम स्वास्थ्य की स्थिति को पुन:स्थापित करना होता है। एक मनोचिकित्सक को न तो कुछ कहना होता है और न ही प्रस्तावित करना।''

"When a person acts in the capacity of the therapist, his goal is not to dominate or peruade, but simply to restore a state of goods health.... A therapist has nothing to sell and nothing to prescribe".

- Robert W. White

ह्वाइट महोदय के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि उपबोधक अथवा मनोचकित्सक का कार्य मात्र प्रार्थी के मानसिक स्वास्थ्य को सामान्य बनाना है। अपना कोई विचार, सुझाव अथवा दृष्टिकोण को उस पर थोपना उसका लक्ष्य नहीं होता। उपबोधन के अन्तर्गत उपबोधक सेवार्थी को किसी विशिष्ट जीवन शैली अथवा विचारधारा को स्वीकार करने पर बल नहीं देता।

सेवार्थी–केन्द्रित परामर्श (Client-centred Counseling) की प्रकृति के बारे में ए॰ बी॰ ब्वाय एवं जी॰ जे पाइन ने उपबोध द्वारा विशिष्ट रूप से माध्यमिक स्तर पर, विद्यार्थी को ''अधिक परिपक्व एवं स्वयं क्रियाशील बनाने, विशेषयात्मक तथा रचनात्मक दिशा की ओर अग्रसरित होने, अपने साधनों एवं संभावनाओं के उपयोग तथा समाजीकरण की ओर अग्रसारित होने में सहायता प्रदान करने के लक्ष्य पर ध्यान देने हेतु कहा है।

"To help the students become more nature and more self actuated to help student more forward in a positive and constructive way, to help the student to grow towards socialisation by utilising his own resources and potential".

- Boy & Pyne

इस प्रकार परामर्श का लक्ष्य है- विद्यार्थी को स्वयं कार्य करने तथा अधिक परिपक्व ढंग से विचार–विमर्श करने में सहायता प्रदान करना। इसके अतिरिक्त विद्यार्थी को स्वयं की योग्यताओं व सम्भाव्यताओं को ज्ञान करने तथा योग्यताओं का स्वयं के सामाजिक विकास में उपयोग करना भी उपबोधन का महत्वपूर्ण लक्ष्य माना गया है। ब्वाय एवं पाइन ने, सामान्य नैदानिक उपबोधन (General Clinical Counseling) के जिन लक्ष्यों को ध्यान में रखने हेतु बताया है वे हैं–प्रार्थी को अधिक अच्छा करने में सहायता देने अर्थात् सेवार्थी को स्वयं के महत्व को स्वीकार करने, वास्तविक 'स्व' के मध्य अन्तर को समाप्त करने में सहायता देने तथा व्यक्तियों को स्वयं की व्यक्तिगत समस्याओं में अपेक्षाकृत स्पष्टतापूर्वक विचार करने में सहायता प्रदान करने से सम्बन्धित है।

नोट

"To help the counsellee 'feel better' i.e., to help the counsellee accept himself to diminish the disparity between real self and ideal self and to help person think more clearly in solving their wowen personal problems".

संक्षेप में, ब्वाय एवं पाइन के अनुसार उपबोधन का उद्देश्य है- विद्यार्थी को और अधिक परिपक्व बनाने में सहायता प्रदान करना, स्वयं सक्रिया बनने और स्वयं के यथोचित मूल्यांकन में सक्षम हो सकने में सहायता देना है।

अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ (American Psychological Association) के अनुसार उपबोध के तीन लक्ष्य हैं-

1. परामर्शप्रार्थी द्वारा स्वयं के अभिप्रेरकों, आत्म-दृष्टिकोणों एवं क्षमताओं को यथार्थ रूप से स्वीकार करना,
2. सेवार्थी के द्वारा सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक वातावरण के साथ तर्कयुक्त सामंजस्य की प्राप्ति करना तथा
3. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समाज द्वारा स्वीकृति एवं समुदाय, रोजगार व वैवाहिक सम्बन्धों के क्षेत्र में उनका निहितार्थ करना।

इस वर्णन के आधार पर परामर्श के तीन मुख्य उद्देश्य माने जा सकते हैं-

1. आत्म-ज्ञान प्रदान करना (Self-Knowledge),
2. आत्म-स्वीकृति का विकास करना (Self-Acceptance) तथा
3. सामाजिक सामंजस्य का विकास करना (Social-Harmony)।

1. आत्म-ज्ञान (Self-knowledge): परामर्श का प्रथम महत्वपूर्ण उद्देश्य है- व्यक्ति को, स्वयं के मूल्यांकन में सहायता प्रदान करना। व्यक्ति को उपबोधन की आवश्यकता, स्वयं के बारे में जानने, स्वयं की शक्ति, योग्यता एवं सम्भावनाओं को पहचानने के लिए होती है। सीताराम जायसवाल के अनुसार-''उपबोधन एक प्रकार से उस ज्योति के समान है, जिसके उपयोग से व्यक्ति को स्वयं के अन्दर व बाह्य स्वरूप को पहचानने में सहायता प्राप्त होती है।''

व्यक्ति के आत्म-ज्ञान हेतु और उसके मूल्यांकन हेतु उपबोधन की विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। यथा अनिदेशात्मक परामर्श (Non-directive Counseling) परामर्श साक्षात्कार (Counseling Interview) इत्यादि। इन विभिन्न प्रकार की विधियों से व्यक्ति को स्वयं के वास्तविक स्वरूप में अवगत होने से सहायता प्राप्त होती है। उपबोधन, सेवार्थी को उसके यथार्थ आत्म ज्ञान से परिचित कराने में कहाँ तक सहायक हुआ है, इसके द्वारा उपबोध की प्रक्रिया की सफलता का मूल्यांकन किया जाता है। लियोना टायलर के शब्दों में- ''हमें उपबोधन को एक सहायक प्रक्रिया के रूप में प्रयोग करना है, जिसका उद्देश्य व्यक्ति को परिवर्तित करना नहीं है वरन् उसके उन श्रोतों के उपयोग में सक्षम बनाना है जो उसके पास इस समय जीवन का सामना करने हेतु योग्यता उपलब्ध है। तब उपबोधन में इस उपलब्धि की अपेक्षा करेंगे कि सेवार्थी स्वयं की ओर से कतिपय रचनात्मक क्रिया करे।''

"Let us use counseling to refer to a helping process of which is not change the person but to enable him to utilise the resources now he has for copying with life the outcome we would then expect for counseling is that the client do something, take some constructive action on his own behalf".

- Lyon Tylor

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उपबोधन की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति स्वयं में अनेक प्रकार की समस्याओं के प्रति अन्तर्दृष्टि का विकास करता है तथा अपनी क्षमता एवं योग्यतानुरूप समस्याओं का निराकरण ढूंढने में सक्षम बनता है।

2. आत्म-स्वीकृति (Self-Acceptance): आत्म-स्वीकृति से आशय व्यक्ति द्वारा स्वयं के व्यक्तित्व या प्रतिबिम्ब (Image) को स्वीकार करना है। अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो स्वयं के बारे में उचित दृष्टिकोण नहीं बना पाते, कोई

निर्णय नहीं ले पाते। ऐसे व्यक्तियों, जैसे दूसरे व्यक्ति जिस भी रूप में स्वीकार कर लेते हैं, वह उससे ही अपना वास्तविक स्वरूप मानने लगते हैं। लेकिन व्यक्ति का जहाँ, अन्य व्यक्तियों द्वारा स्वीकार करना होता है। अत: व्यक्ति स्वयं के वास्तविक मूल्यांकन के रूप में, अपने यथार्थ स्वरूप को ही स्वीकृति प्रदान करे। इस कार्य में उपबोधन उसे सहायता प्रदान कर सकता है।

आत्म-स्वीकृति के अन्तर्गत, व्यक्ति को स्वयं के स्वरूप के निर्माण एवं मूल्यांकन में स्वयं की न्यूनताओं एवं सीमाओं को भी ध्यान में रखना चाहिए। व्यक्ति स्वयं के स्वरूप के ज्ञान के आधार पर, जीवन के लक्ष्यों को सुगमता से निर्धारित कर सकता है तथा लक्ष्यों की प्राप्ति में सफलता भी प्राप्त कर सकता है।

क्या आप जानते हैं न्यूनताओं एवं सीमाओं के ज्ञान के अभाव में व्यक्ति स्वयं के बारे में अनुचित धारणा विकसित कर सकता है तथा उसे भविष्य में निराशा, हताशा एवं असफलता का भी सामना करना पड़ सकता है। यदि परामर्श, व्यक्ति को स्वयं को सही एवं वास्तविक स्वरूप को स्वीकार करने में सहायक बनता है तो परामर्श व्यक्ति के विकास एवं प्रगति हेतु सुदृढ़ आधार भी प्रदान कर सकता है।

3. सामाजिक-सामंजस्य (Social-Harmony): व्यक्ति के सामाजिक जीवन में सहायक बनना भी उपबोध का एक अन्य महत्वपूर्ण लक्ष्य माना जाता है। व्यक्ति के समक्ष विभिन्न समस्याओं का उद्भव समाज के साथ उचित समायोजन न कर पाने के कारण होता है। सामाजिक जीवन एवं व्यवहार को समझने के लिए तथा समाज-स्वीकृत व्यवहार के अनुरूप कार्य करने के लिए, व्यक्ति को स्वयं के व्यक्तिगत स्वार्थों की सीमा का परित्याग करना पड़ता है। ऐसा व्यक्ति तभी कर सकता है जब वह उदार, सहिष्णु एवं मित्र बनाने के गुणों से युक्त हो। परामर्श के माध्यम से व्यक्ति अपने संकीर्ण चिन्तन से मुक्त होता है। इसके अतिरिक्त, उपबोधन, व्यक्ति को सामाजिक जीवन के साथ समायोजित करने में भी सहायक होता है। निष्कर्ष रूप में, सामाजिक सामंजस्य की प्राप्ति में व्यक्ति की सहायता करनी, उपबोधन का अन्तिम महत्वपूर्ण लक्ष्य माना जाता है।

टास्क आत्म स्वीकृति क्या है?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

(*i*) परामर्श प्रक्रिया का आशय पारस्परिक .... से होता है।
(*ii*) परामर्श प्रक्रिया द्वारा प्रार्थी को निर्णय लेने में .... की जाती है।
(*iii*) परामर्श की प्रक्रिया .... होती है।
(*iv*) परामर्श के मुख्य .... उद्देश्य होते हैं।
(*v*) परामर्शदाता सम्पूर्ण परिस्थितियों के आधार पर .... हेतु प्रार्थी को जानकारी देता है।
(*vi*) परामर्श की प्रक्रिया .... अधिक होती है।

नोट

11.5 सारांश (Summary)

- ''परामर्श का आशय पूछताछ, पारस्परिक तर्क वितर्क अथवा विचारों का पारस्परिक विनिमय है।'' इस शाब्दिक आशय के अतिरिक्त परामर्श के अन्य पक्ष भी हैं जिनके आधार पर परामर्श का अर्थ स्पष्ट हो सकता है।
- परामर्श के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके आधार पर सेवार्थी को वैयक्तिक दृष्टि से ही सहायता प्रदान की जाती है।
- विशेषताओं के आधार पर परामर्श को परिभाषित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए आर्बकल (Arbuckle) के अनुसार परामर्श की प्रमुख विशेषताएँ है-

1. परामर्श की प्रक्रिया दो व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारित है।
2. दानों के मध्य विचार-विमर्श के अनेक साधन हो सकते हैं।
3. प्रत्येक परामर्शदाता को अपनी प्रक्रिया का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।
4. प्रत्येक परामर्श साक्षात्कार पर आधारित होता है।
5. परामर्श के फलस्वरूप, परामर्शप्रार्थी की भावनाओं में परिवर्तन होता है। परामर्श की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं-

(1) परामर्श वैयक्तिक सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है इसे सामूहिक रूप में सम्पादित नहीं किया जाता है।

(2) परामर्श में शिक्षण की भाँति निर्णय नहीं लिया जाता है अपितु परामर्श प्रार्थी स्वयं निर्णय लेता है।

(3) परामर्शदाता सम्पूर्ण परिस्थितियों के आधार पर समायोजन हेतु प्रार्थी को जानकारी देता है, और उसकी सहायता भी करता है।

(4) परामर्शप्रार्थी अपनी समस्याओं का समाधान बिना किसी सुझाव व सहायता के स्वयं ही करने में समर्थ नहीं होता है।

- विद्यर्थियों हेतु परामर्श में निम्नलिखित आवश्यकताओं का उल्लेख किया है-

1. छात्र को उसी सफलता के महत्व के विषयों की जानकारी प्रदान करना।
2. छात्र की शैक्षिक एवं व्यावसायिक चयन की योजना निर्माण में सहायता करना।
3. छात्रों में, विशिष्ट योग्यताओं एवं सही दृष्टिकोणों को प्रोत्साहित तथा विकसित करना।
4. छात्रों की स्वयं की योग्यताओं, रूचियों, एवं अवसरों आदि को समझकर स्वयं को और भली प्रकार से समझने में सहायता करना।
5. छात्रों की स्वयं की कठिनाइयों को हल करने की योजना बनाने में सहायता करना।
6. शिक्षक एवं विद्यार्थी के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों की भावना विकसित करना, तथा।

- परामर्श मनोवैज्ञानिकों (Counseling Psychologists) ने उपबोधन एवं मनोचिकित्सा (Phychotheraphy) को पर्यायवाची माना है, तथा इसी को ध्यान में रखकर ही उपबोध के लक्ष्यों को निर्धारित किया है।
- इस प्रकार परामर्श का लक्ष्य है- विद्यार्थी को स्वयं कार्य करने तथा अधिक परिपक्व ढंग से विचार-विमर्श करने में सहायता प्रदान करना, इसके अतिरिक्त विद्यार्थी को स्वयं की योग्यताओं व सम्भाव्यताओं को ज्ञान करने तथा योग्यताओं का स्वयं के सामाजिक विकास में उपयोग करना भी उपबोधन का महत्वपूर्ण लक्ष्य माना गया है।
- अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ (American Psychological Association) के अनुसार उपबोध के तीन लक्ष्य हैं-

1. परामर्शप्रार्थी द्वारा स्वयं के अभिप्रेरकों, आत्म-दृष्टिकोणों एवं क्षमताओं को यथार्थ रूप से स्वीकार करना,

नोट

2. सेवार्थी के द्वारा सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक वातावरण के साथ तर्कयुक्त सामंजस्य की प्राप्ति करना तथा
3. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समाज द्वारा स्वीकृति एवं समुदाय, रोजगार व वैवाहिक सम्बन्धों के क्षेत्र में उनका निहितार्थ करना।

- इस वर्णन के आधार पर परामर्श के तीन मुख्य उद्देश्य माने जा सकते हैं-

1. आत्म-ज्ञान प्रदान करना (Self-Knowledge),
2. आत्म-स्वीकृति का विकास करना (Self-Acceptance) तथा
3. सामाजिक सामंजस्य का विकास करना (Social-Harmony)।

11.6 शब्दकोश (Keywords)

- **सामंजस्य**–तालमेल बैठाना।
- **मनोचिकित्सा**– मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति।

11.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

(*i*) परामर्श की व्यापक परिभाषा दीजिए तथा उसका अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(*ii*) परामर्श की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए निर्देशन एवं परामर्श में अन्तर बताइए तथा उदाहरण से स्पष्ट कीजिए।

(*iii*) परामर्श एक त्रिपदी प्रक्रिया का अर्थ बताइए।

(*iv*) परामर्श के मुख्य तीन उद्देश्य बताइए।

उत्तर– स्व–मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. 1. सत्य   2. असत्य   3. सत्य   4. असत्य

2. 1. विनिमय (बात-चीत)   2. सहायता   3. त्रिपदी   4. तीन
5. समायोजन   6. निर्देशीय

11.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।
3. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–12: परामर्श: सिद्धान्त और प्रक्रिया (Counseling: Principles and Process)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
12.1 परामर्श के सिद्धांत (Principles of Counseling)
12.2 परामर्श की प्रक्रिया (Process of Counseling)
12.3 सारांश (Summary)
12.4 शब्दकोश (Keywords)
12.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
12.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- परामर्श के सिद्धांत एवं प्रक्रिया का विश्लेषण करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

परामर्श अथवा उपबोधन की प्रक्रिया एक विशिष्ट प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने से पूर्व इसकी प्रक्रिया के प्रमुख अंगों का ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। कोई भी प्रक्रिया किसी न किसी दिशा में एक अथवा अनेक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये ही सम्पन्न की जाती है। अत: लक्ष्य अथवा उद्देश्य किसी प्रक्रिया का प्रमुख बिन्दु माना जाता है। इस लक्ष्य को अपने समक्ष रखकर ही प्रयासकर्त्ता विशिष्ट कार्यों का सम्पादन करता है।

12.1 परामर्श के सिद्धांत (Principles of Counseling)

परामर्श की प्रक्रिया विविध सिद्धांतों पर आधारित है। ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं।

(*i*) परामर्श एक प्रक्रिया है। एक परामर्शदाता के लिए यह समझना आवश्यक है कि परामर्श एक मंदगति से चलने वाली प्रक्रिया है। इस तथ्य को न समझ पाने के कारण परामर्शदाता तथा प्रार्थी दोनों में ही निराशा का भाव उत्पन्न हो सकता है।

(*ii*) परामर्श प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। विद्यालय स्तर पर परामर्श केवल बाधाओं तथा विभिन्न प्रकार के आर्थिक, सामाजिक व अन्य समस्याओं से जूझने वाले बच्चों के लिए ही नहीं, बल्कि प्रत्येक बच्चे के लिए आवश्यक है।

(*iii*) परामर्श प्रक्रिया का अर्थ केवल परामर्श देना ही नहीं है बल्कि प्रार्थी के साथ उसकी परिस्थितियों के साथ प्रत्येक कदम पर चलने वाली सोच तथा मार्गदर्शन है। परामर्श प्रक्रिया प्रार्थी को न्यायपूर्ण सोच के योग्य बनाती है।

नोट

(iv) परामर्श प्रक्रिया समस्या को सुलझाने की कोई विधि नहीं है बल्कि व्यक्ति को अपनी समस्या का समाधान ढूँढने में सहायता करती है।

(v) परामर्श प्रक्रिया साक्षात्कार नहीं बल्कि प्रार्थी से बातचीत करके उसमें आत्मनिरीक्षण का विकास करना है।

(vi) परामर्शदाता के लिए कुछ तथ्यों की जानकारी बहुत आवश्यक है।

(i) इस दुनियां में प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव तथा प्रकृति अलग है।

(ii) परामर्शदाता को प्रार्थी की आलोचना व समस्याओं का समाधान करना चाहिए।

(iii) परामर्शदाता केवल प्रार्थी के लिए परामर्श, प्रेम तथा सहयोग द्वारा ऐसा वातावरण तैयार करता है, जिससे प्रार्थी को आत्मनिरीक्षण करने तथा जीवन को बेहतर ढंग से समझने का अवसर प्राप्त हो सके।

12.2 परामर्श की प्रक्रिया (Process of Counseling)

परामर्श अथवा उपबोधन की प्रक्रिया एक विशिष्ट प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने से पूर्व इसकी प्रक्रिया के प्रमुख अंगों का ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। कोई भी प्रक्रिया किसी न किसी दिशा में एक अथवा अनेक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये ही सम्पन्न की जाती है। अत: लक्ष्य अथवा उद्देश्य किसी प्रक्रिया का प्रमुख बिन्दु माना जाता है। इस लक्ष्य को अपने समक्ष रखकर ही प्रयासकर्त्ता विशिष्ट कार्यों का सम्पादन करता है। परामर्श का प्रमुख लक्ष्य विद्यार्थी, अथवा अन्य किसी सेवार्थी में आत्मबोध एवं सामंजस्य की योग्यता का विकास करना है। इस योग्यता के विकसित होने पर वह स्वयं ही अपनी समस्या का समाधान करने योग्य बन जाता है, इस प्रकार लक्ष्य किस प्रक्रिया की व्यावहारिक क्रियान्विति का प्राथमिक आधार है। इसके अतिरिक्त जिसके लिये प्रयास किया जा रहा है, तथा जिसके द्वारा प्रयास किया जा रहा है अर्थात् परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी भी परामर्श की प्रक्रिया के प्रमुख आधार बिन्दु होते हैं। इसलिये यह कहा जाता है कि परामर्श एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है जिसके तीन प्रमुख अंग है- लक्ष्य, परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी। इन तीन बिन्दुओं पर आधारित परामर्श की प्रक्रिया पर ही इस अध्याय में वर्णन किया गया है।

समाहारक परामर्श की प्रवृत्ति के अनुरूप इसके अन्तर्गत आवश्यकता पड़ने पर और सेवार्थी के हित में होने पर भावात्मक अभिव्यक्ति पर नियन्त्रण भी लगाया जा सकता है। इसमें उपबोधक पूर्णरूप से तटस्थ नहीं रहता है। इसमें परिस्थिति के अनुरूप उपबोधक तथा सेवार्थी के सम्बन्धों के मध्य कुछ पूर्व निश्चित दूरी (Reservations) निहित रहती है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन एफ॰ सी॰ थार्न ने किया।

परामर्श की प्रक्रिया के घटक (Components of Process of Counseling)

परामर्श की प्रक्रिया के तीन घटक मुख्य हैं-

1. परामर्श के लक्ष्य (Goal of Counseling)
2. सेवार्थी (उपबोध्य) (Client) तथा
3. परामर्शदाता (Counselor)

परामर्श की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण घटक है-लक्ष्य को निर्धारित करना इन लक्ष्यों को उपबोधक एवं कौशलों के वातावरण एवं समाज के अनुरूप ही निर्धारित किया जाता है अर्थात् उपबोधक एवं सेवार्थी के धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण के जो मूल्य एवं आदर्श मान्य होंगे उन्हीं के अनुरूप लक्ष्यों को निर्धारित किया जायेगा। लक्ष्यों के निर्धारण में सेवार्थी की रूचियों, आवश्यकताओं एवं वातावरण का भी ध्यान रखना पड़ता है। इस प्रकार से उपबोधन का लक्ष्य, सेवार्थी को मूल्यों के पुन: अन्वेषण (Rediscovery) में सहायता प्रदान करना होता है।

परामर्श की प्रक्रिया में पारस्परिक सम्पर्क मुख्य साधन माना जाता है। अत: पारस्परिक सम्पर्क की सार्थकता हेतु सेवार्थी व उपबोधक, दोनो को एक दूसरे को जानना एवं समझना आवश्यक है। दोनों को ही एक-दूसरे का आदर भी करना

नोट

चाहिए। यदि सेवार्थी एवं परामर्शदाता के मध्य समुचित सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाते हैं तो उपबोधन की प्रक्रिया सफल नहीं हो सकती है।

मानवीय सम्बन्धों के विकास की तकनीक ही इन प्रविधियों का आधार है। रोजर्स एवं बैलने ने अधोलिखित परामर्शदाता केन्द्रित (Counselor-Centered) तकनीकों का उल्लेख किया है।

1. **परिचय (Identificatin):** सेवार्थी के अनुभवों को यह कहकर अपना परिचयन दिया जा सकता है कि जैसा तुम अनुभव कर रहे हो वैसा ही मैने भी अनुभव किया था।

2. **सलाह तथा सुझाव (Advice and Suggestions):** सेवार्थी द्वारा अपनाये जाने वाले मार्गों एवं कार्यों की ओर इंगित करना या उन दृष्टिकोण तथा मानदण्डों को निर्देशन प्रदान करना जिन्हें सेवार्थी को अपनाना चाहिए।

3. **सहमति (Persuation):** यह समझना कि उपबोध द्वारा सुझाये गये कार्यों व तत्वों को किस लिए करे तथा कुछ ऐसे व्यक्तियों का उदाहरण देना जिन्हें अपनाकर सेवार्थी अपनी समस्याओं का निराकरण कर सके।

4. **प्रश्न करना (Questioning):** समस्या को गहनता से समझने में सहायक होने वाले प्रश्नों को निर्माण करना तथा प्रार्थी से प्रश्नों को पूछना।

5. **अर्थापन (Interpretation):** सेवार्थी द्वारा स्वयं के बारे में कही गयी पूर्ण अथवा अपूर्ण बात के प्रयास का अर्थापन करना तथा सेवार्थी को इस बात की जानकारी प्रदान करना कि किस प्रकार व्यवहार के विभिन्न पक्ष परस्पर सम्बन्धित हैं।

6. **पुनः आश्वासन या प्रशंसा करना (Reassurance or Praise):** परामर्श द्वारा सेवार्थी के सकारात्मक मूल्यांकन की दृष्टि से, उसकी प्रशंसा करना तथा आत्मस्वीकृति में उसकी सहायता करना।

7. **आलोचना या निषेधात्मक मूल्यांकन (Criticism or Negative Evaluation):** इस तकनीक के अन्तर्गत परामर्शदाता, सेवार्थी का निषेधात्मक मूल्यांकन करता है।

नोट्स परामर्श का महत्वपूर्ण तत्व है-परस्पर विचारों का आदान-प्रदान। यदि विचारों के आदान-प्रदान में कोई विघ्न आता है तो उपबोधन पूर्ण ही रहता है समुचित उपबोधक-सेवार्थी सम्बन्धों को विकसित करने हेतु कतिपय तकनीकों का विकास किया गया है।

सेवार्थी को ध्यान में रखते हुए उपबोध को निम्नलिखित तकनीकों का उपयोग करना चाहिए।

1. **अनिदेशात्मक मार्ग दर्शन करना (Non-Directive Lead):** वार्तालाप आरम्भ करने तथा उसे जारी रखने अभीष्ट से बनाये गए उन सामान्य प्रश्नों को, परामर्शदाता को पूछना चाहिए जिनका अभीष्ट बातचीत की दिशा प्रदान करना हो।

2. **स्थापना (Structuring):** इस तकनीकी के अन्तर्गत उपबोधक को स्वयं सेवार्थी के मध्य सम्बन्धों के स्वरूप की सामान्य सहज व्याख्या करनी चाहिए।

3. **अनुभूति की अभिव्यक्ति (Expression of the Feelings):** सामान्यतः सेवार्थी अभिव्यक्ति की कठिनाई के कारण, उपबोधक को स्वयं के बारे में स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाता है। ऐसी स्थिति में उपबोध को, सेवार्थी द्वारा अभिव्यक्ति विचारों में से मूल विचारों की यह नवीन अभिव्यक्ति सेवार्थी को स्वयं को और अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होगी।

नोट

क्या आप जानते हैं जब सेवार्थी अपनी कठिनाई को परामर्शदाता के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हो तो मध्य में, उपबोधक को सामान्य स्वीकृति सूचक उत्तर जैसे- हूँ, हाँ आदि देते रहना चाहिए। इससे मात्र यह ज्ञात होता है कि परामर्शदाता सेवार्थी को स्वीकार कर उसे समझ रहा है।

परामर्श द्वारा अनुभव (Counseling-Experiences)

परामर्श की प्रक्रिया के निरन्तर उपबोध को विभिन्न अनुभव प्राप्त होते हैं। इन अनुभवों से लाभान्वित होने हेतु उपबोधन के सत्र की पूर्व तैयारी करनी आवश्यक है। उपबोध को सेवार्थी के बारे में आवश्यक प्रदत्त एवं पूर्ण जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। उपबोधक को सेवार्थी के बारे में आवश्यक प्रदत्त एवं पूर्व जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। उपबोधन एवं सेवार्थी के मिलने का स्थान शान्त होना चाहिए। परामर्श की प्रक्रिया से पहले, उपबोधक एवं सेवार्थी के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना भी आवश्यक है। क्योंकि परामर्श की सफलता हेतु सम्बन्ध एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। परस्पर सम्बन्ध के स्वरूप के बारे में *डी॰ एस॰ आरिविकिल* ने लिखा है–

''सम्बन्ध की स्थिति को सेवार्थी एवं परामर्शदाता के मध्य विकसित आदर्श सम्बन्ध कहा जा सकता है, यह एक ऐसा सम्बन्ध है जो सरल सुखद तथा स्वतन्त्र होता है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति ईमानदार है।''

"Rapport might be described as the ideal relationship that is developed between the client and the counseller, relationship that is easy and comfortable and free, where each person can be honest."

आरिविकिल द्वारा उपबोधन के निरन्तर समस्याओं का भी उल्लेख किया गया है। इन समस्याओं का समाधान करने हेतु उपबोधक को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. परामर्शदाता को सेवार्थी को यह अनुभव करा देना चाहिए कि अन्य सत्रों के समान, आरम्भिक सत्र भी सेवार्थी से ही सम्बन्धित है तथा उपबोधन का केन्द्र बिन्दु सेवार्थी ही है।
2. परामर्शदाता को अपने कार्यों को पूर्ण निष्ठा के साथ करने चाहिए। उसके लिए यह अनिवार्य रूप से स्थान दे।
3. सत्र-समाप्ति के समय उपबोध को सेवार्थी को यह कह देना चाहिए कि वह उससे पुनः मिलने में रूचि रखता है।
4. सेवार्थी अपने मन में उपबोधक की एक प्रतिमा बना लेता है। उपबोधन के निरन्तर सेवार्थी अपनी बनाई गई उस प्रतिमा से उपबोधक की जाँच करता है तथा यह देखता है कि वह उसके द्वारा बनाई गई प्रतिमा से कितनी समानता एवं विभिन्नता रखता है।
5. जब परामर्श अथवा आरम्भिक सत्र (Beginning Session) ही उसका अन्तिम सत्र (Concluding Session) भी हो तब उपबोधक यह मान सकता है कि प्रथम सत्र का मुख्य कार्य एक ऐसा धनात्मक वातावरण (Positive-Climate) उत्पन्न करता है। जिससे सेवार्थी अपनी समस्याओं के बारे में विचार हेतु पुनः आने की इच्छा रखें।

परामर्श की प्रक्रिया के अन्तर्गत सेवार्थी के अन्तर्विकास (Development from with) में उसको सहायता प्रदान की जाती है। उपबोधन का कार्य तभी सफल हो सकता है जब उपबोधक सेवार्थी को अपने विचारों एवं स्थितियों को व्यक्ति करने हेतु उचित अवसर दे तथा सेवार्थी को एक महत्वपूर्ण व्यक्ति माने। निराशा, आत्म-विश्वास का न होना, स्वयं को महत्वहीन समझने में ही कुसमायोजन का मूल होता है। उपबोधन की प्रक्रिया द्वारा सेवार्थी में इसी महत्व तथा आत्मविश्वास को पैदा किया जाता है।

सारांश के रूप में, यह कहा जा सकता है कि उपबोधन की प्रक्रिया, एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। जब उपबोध एवं सेवार्थी परस्पर सम्बन्धों की समुचित पृष्ठभूमि बनाने में सफल हो जाते हैं और उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के अनुरूप उपबोध का वे उपयोग करते हैं। तभी उपबोध की प्रक्रिया सार्थक एवं सफल मानी जा सकती है।

नोट

> *टास्क* परामर्श प्रक्रिया में परामर्श दाता का क्या महत्त्व है?

स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' तथा 'असत्य' लिखिए-

1. परामर्श और निर्देशन में कोई अन्तर नहीं होता है।
2. परामर्श का अर्थ पारस्परिक विनिमय से होता है।
3. परामर्श में प्रार्थी पर कोई निर्णय थोपा नहीं जाता है।
4. रामर्श प्रक्रिया में प्रार्थी को निर्णय लेने में सहायता की जाती है। और स्वयं निर्णय लेने में समर्थ बनाया जाता है।
5. परामर्श की प्रक्रिया त्रिपादी होती है।
6. परामर्श प्रक्रिया के मुख्य तीन उद्देश्य होते हैं।
7. स्वरूप के आधार पर परामर्श के दो प्रकार होते हैं।

12.3 सारांश (Summary)

- परामर्श की प्रक्रिया विविध सिद्धांतों पर आधारित है। ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं।
  - (*i*) परामर्श एक प्रक्रिया है। एक परामर्शदाता के लिए यह समझना आवश्यक है कि परामर्श एक मंदगति से चलने वाली प्रक्रिया है। इस तथ्य को न समझ पाने के कारण परामर्शदाता तथा प्रार्थी दोनों में ही निराशा का भाव उत्पन्न हो सकता है।
  - (*ii*) परामर्श प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। विद्यालय स्तर पर परामर्श केवल बाधाओं तथा विभिन्न प्रकार के आर्थिक, सामाजिक व अन्य समस्याओं से जूझने वाले बच्चों के लिए ही नहीं, बल्कि प्रत्येक बच्चे के लिए आवश्यक है।
  - (*iii*) परामर्श प्रक्रिया का अर्थ केवल परामर्श देना ही नहीं है बल्कि प्रार्थी के साथ उसकी परिस्थितियों के साथ प्रत्येक कदम पर चलने वाली सोच तथा मार्गदर्शन है। परामर्श प्रक्रिया प्रार्थी को न्यायपूर्ण सोच के योग्य बनाती है।
- परामर्श अथवा उपबोधन की प्रक्रिया एक विशिष्ट प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने से पूर्व इसकी प्रक्रिया के प्रमुख अंगों का ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। कोई भी प्रक्रिया किसी न किसी दिशा में एक अथवा अनेक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये ही सम्पन्न की जाती है। अत: लक्ष्य अथवा उद्देश्य किसी प्रक्रिया का प्रमुख बिन्दु माना जाता है।
- **परामर्श की प्रक्रिया के घटक:** परामर्श की प्रक्रिया के तीन घटक मुख्य हैं-1. परामर्श के लक्ष्य (Goal of Counseling), 2. सेवार्थी (उपबोध्य) (Client) तथा 3. परामर्शदाता (Counselor)
- परामर्श की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण घटक है-लक्ष्य को निर्धारित करना इन लक्ष्यों को उपबोधक एवं कौशलों के वातावरण एवं समाज के अनुरूप ही निर्धारित किया जाता है अर्थात् उपबोधक एवं सेवार्थी के धार्मिक, राजनीति एवं सामाजिक वातावरण के जो मूल्य एवं आदर्श मान्य होंगे उन्हीं के अनुरूप लक्ष्यों को निर्धारित किया जायेगा।
- अधोलिखित परामर्शदाता केन्द्रित (Counselor-Centered) तकनीकों का उल्लेख किया है। 1. परिचय; 2. सलाह तथा सुझाव; 3. सहमति; 4. प्रश्न करना; 5. अर्थापन; 6. पुन: आश्वासन या प्रशंसा करना; 7. आलोचना या निषेधात्मक मूल्यांकन।

नोट

- सेवार्थी को ध्यान में रखते हुए उपबोध को निम्नलिखित तकनीकों का उपयोग करना चाहिए। 1. अनिदेशात्मक मार्ग दर्शन करना; 2. स्थापना; 3. अनुभूति की अभिव्यक्ति;
- **परामर्श द्वारा अनुभव:** परामर्श की प्रक्रिया के निरन्तर उपबोध को विभिन्न अनुभव प्राप्त होते हैं। इन अनुभवों से लाभान्वित होने हेतु उपबोधन के सत्र की पूर्व तैयारी करनी आवश्यक है। उपबोध को सेवार्थी के बारे में आवश्यक प्रदत्त एवं पूर्ण जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। उपबोधक को सेवार्थी के बारे में आवश्यक प्रदत्त एवं पूर्व जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। उपबोधन एवं सेवार्थी के मिलने का स्थान शान्त होना चाहिए।
- इन समस्याओं का समाधान करने हेतु उपबोधक को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए-
  1. परामर्शदाता को सेवार्थी को यह अनुभव करा देना चाहिए कि अन्य सत्रों के समान, आरम्भिक सत्र भी सेवार्थी से ही सम्बन्धित है तथा उपबोधन का केन्द्र बिन्दु सेवार्थी ही है।
  2. परामर्शदाता को अपने कार्यों को पूर्ण निष्ठा के साथ करने चाहिए। उसके लिए यह अनिवार्य रूप से स्थान दे।
- परामर्श की प्रक्रिया के अन्तर्गत सेवार्थी के अन्तर्विकास (Development from with) में उसको सहायता प्रदान की जाती है। उपबोधन का कार्य तभी सफल हो सकता है जब उपबोधक सेवार्थी को अपने विचारों एवं स्थितियों को व्यक्त करने हेतु उचित अवसर दे तथा सेवार्थी को एक महत्वपूर्ण व्यक्ति माने।
- सारांश के रूप में, यह कहा जा सकता है कि उपबोधन की प्रक्रिया, एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। जब उपबोध एवं सेवार्थी परस्पर सम्बन्धों की समुचित पृष्ठभूमि बनाने में सफल हो जाते हैं और उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के अनुरूप उपबोध का वे उपयोग करते हैं। तभी उपबोध की प्रक्रिया सार्थक एवं सफल मानी जा सकती है।

12.4 शब्दकोश (Keywords)

- **उपबोधन**–सलाह एवं सहायता देना।
- **परामर्शप्रार्थी**–सलाह का इच्छुक।

12.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. परामर्श की प्रक्रिया के घटकों का उल्लेख कीजिए।
2. परामर्श प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
3. परामर्श प्रक्रिया के विभिन्न सिद्धांतो का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– स्व–मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य
6. सत्य 7. सत्य

12.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–13: परामर्श के प्रकार: निदेशात्मक परामर्श (Types of Counseling: Directive Counseling)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
13.1 निदेशात्मक परामर्श की अवधारणा (Concept of Directive Counseling)
13.2 निदेशात्मक परामर्श के सोपान (Steps in Directive Counseling)
13.3 निदेशात्मक परामर्श की विशेषताएँ (Characteristics of Directive Counseling)
13.4 निदेशात्मक परामर्श के लाभ (Advantages of Directive Counseling)
13.5 निदेशात्मक परामर्श की सीमाएँ (Limitations of Directive Counseling)
13.6 सारांश (Summary)
13.7 शब्दकोश (Keywords)
13.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
13.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- निदेशात्मक परामर्श की अवधारणा, विशेषताएँ और इसकी सीमाओं का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

निदेशात्मक परामर्श की विधि परम्परागत एवं अत्यन्त प्रचलित है। ई॰ जी॰ *विलियमसन* इस विधि के प्रमुख समर्थक हैं। निर्देशात्मक परामर्श के अन्तर्गत, परामर्श का मुख्य उत्तरदायित्व विशिष्ट रूप से प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति का होता है। जिसे 'परामर्शदाता' कहा जाता है। परामर्शदाता, उपबोध्य को स्वयं की राय से परिचित करता है और सेवार्थी को वांछनीय दिशा की ओर अग्रसरित करने हेतु सुझाव भी देता है। परामर्श की सम्पूर्ण प्रक्रिया के अन्तर्गत वह धुरी के समान क्रियाशील रहता है। अत: परामर्शदाता को परामर्श का केन्द्र कहना, अनुचित नहीं होगा।

13.1 निदेशात्मक परामर्श की अवधारणा (Concept of Directive Counseling)

निदेशात्मक परामर्श विधि में परामर्शदाता की अहम भूमिका होती है, तथा प्रार्थी गौण रूप से इसमें सम्मिलित होता है। परामर्शदाता अपने विभिन्न अनुभवों तथा कौशलों की सहायता से प्रार्थी की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करता है।

नोट

फ्रेडरिक थार्न के अनुसार, परामर्शदाता की यह प्रयास प्रार्थी के व्यक्तिगत विभवों के व्युत्क्रमानुपाती होता है। परामर्शदाता इस विधि में अधिकाधिक प्रयास द्वारा प्रार्थी की समस्याओं का निदान करने का प्रयास करता है।

13.2 निदेशात्मक परामर्श के सोपान (Steps in Directive Counseling)

निदेशात्मक परामर्श की विधि परम्परागत एवं अत्यंत प्रचलित है। विलियमसन ने निदेशात्मक उपबोधन के अग्रलिखित छः सोपान दिए हैं-

1. **विश्लेषण (Analysis):** विश्लेषण के अन्तर्गत उपबोध्य के बारे में सही जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक स्रोतों द्वारा आधार-सामग्री एकत्रित की जाती है।

2. **संश्लेषण (Synthesis):** द्वितीय सोपान में, संकलित आधार सामग्रियों को क्रमबद्ध, व्यवस्थित एवं संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है। जिससे सेवार्थी के गुणों, न्यूनताओं समायोजन एवं कुसमायोजन की स्थितियों का पता लगाया जा सके।

3. **निदान (Diagnosis):** निदान के अन्तर्गत सेवार्थी द्वारा अभिव्यक्ति समस्या के कारण तत्वों तथा उनकी प्रकृति के बारे में निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

4. **पूर्व अनुमान (Prognosis):** इसमें छात्रों की समस्या के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जाती है।

5. **परामर्श (Counseling):** पंचम सोपान में, परामर्शदाता सेवार्थी के समायोजन तथा पुनः समायोजन के बारे में वांछनीय प्रयास करता है।

6. **अनुगामी (Follow up):** इसमें उपबोध्य की नयी समस्याओं के पुनः घटित होने की सम्भावनाओं से निपटने में सहायता की जाती है और सेवार्थी को प्रदान किए गए परामर्श की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है।

नोट्स निदेशात्मक परामर्श की विधि परम्परागत एवं अत्यंत प्रचलित है।

13.3 निदेशात्मक परामर्श की विशेषताएं (Characteristics of Directive Counseling)

निदेशात्मक परामर्श की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. परामर्शदाता का कर्त्तव्य, अपने निदान के अनुरूप निर्णय लेने में उपबोध्य की सहायता करना होता है।
2. परामर्शदाता प्रार्थी को आवश्यक सूचनाओं से परिचित कराता है, सेवार्थी की परिस्थिति, वस्तुनिष्ठ वर्णन व अर्थापन करता है तथा उसे विवेकयुक्त उपबोधन प्रदान करता है।
3. निदेशात्मक परामर्श में, सेवार्थी के बौद्धिक पक्ष पर बल दिया जाता है।
4. इस प्रकार के उपबोध्य के अन्तर्गत, सेवार्थी की उपेक्षा उसकी 'समस्या' पर अधिक ध्यान दिया जाता है। जिससे सम्पूर्ण परिस्थिति एवं उसमें उत्पन्न समस्याओं को जाना जा सके।
5. इसके अन्तर्गत, परामर्शदाता के निर्देशन के अनुसार ही उपबोध्य को कार्य करना होता है। इस दृष्टि से परामर्श की सम्पूर्ण प्रक्रिया में सेवार्थी का सहयोग आवश्यक हो जाता है।
6. निदेशात्मक परामर्श में, परामर्श प्रदान करने हेतु प्रत्यक्ष, व्याख्यात्मक तथा समझाने-बुझाने की ओर प्रवृत्त करने वाली विधियों का उपयोग किया जाता है। इस धारणा के अन्तर्गत परामर्शदाता को वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ, दोनो प्रकार की विधियों के मध्य के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

नोट

क्या आप जानते हैं — निदेशात्मक परामर्श में, परामर्श प्रदान करने हेतु प्रत्यक्ष, व्याख्यात्मक तथा समझाने-बुझाने की ओर प्रवृत्त करने वाली विधियों का उपयोग किया जाता है।

13.4 निदेशात्मक परामर्श के लाभ (Advantages of Directive Counseling)

निदेशात्मक परामर्श निम्नलिखित रूप से लाभप्रद है:

(*i*) यह विधि समय की बचत करती है। यह समय की दृष्टि से एक लाभप्रद विधि है।
(*ii*) इस विधि का मुख्य केन्द्र समस्या तथा व्यक्ति होता है।
(*iii*) इसमें परामर्शदाता प्रार्थी को प्रत्यक्ष रूप से देखता है।
(*iv*) इस विधि में भावनात्मक पहलुओं से अधिक बौद्धिक पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।
(*v*) इस विधि में परामर्शदाता सहायता के लिए तत्पर रहता है। जिससे प्रार्थी को आराम का अनुभव होता है।

13.5 निदेशात्मक परामर्श की सीमायें (Limitations of Directive Counseling)

कार्ल रोजर्स का यह कहना है कि निदेशात्मक परामर्श की प्रक्रिया के अन्तर्गत उपबोध्य से अलग व्यक्ति द्वारा समस्या का निदान करने, समस्या के बारे में सुझाव देने और सेवार्थी की परिस्थिति का वर्णन करने का परिणाम यह होता है कि यह अनावश्यक रूप से, दूसरे व्यक्ति पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित करने लगता है, तथा स्वयं की समायोजन की समस्याओं का समाधान करने में वह आत्म विश्वास का अभाव अनुभव करता है।

टास्क — निदेशात्मक परामर्श में पूर्व अनुमान से क्या समझते हो?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks) –

(*i*) .... में परामर्शदाता की अहम भूमिका होती है।
(*ii*) .... में संकलित आधार सामग्रियों को क्रमबद्ध, व्यवस्थित एवं संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।
(*iii*) .... के अन्तर्गत सेवार्थी द्वारा अभिव्यक्ति समस्या के कारण तत्वों तथा उनकी प्रकृति के बारे में निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
(*iv*) निदेशात्मक परामर्श विधि .... की बचत करती है।

13.6 सारांश (Summary)

- निदेशात्मक परामर्श विधि में परामर्शदाता की अहम भूमिका होती है, तथा प्रार्थी गौण रूप से इसमें सम्मिलित होता है। परामर्शदाता अपने विभिन्न अनुभवों तथा कौशलों की सहायता से प्रार्थी की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करता है।

नोट

- परामर्शदाता का यह प्रयास प्रार्थी के व्यक्तिगत विभवों के व्युत्क्रमानुपाती होता है। परामर्शदाता इस विधि में अधिकाधिक प्रयास द्वारा प्रार्थी की समस्याओं का निदान करने का प्रयास करता है।
- निदेशात्मक परामर्श की विधि परम्परागत एवं अत्यंत प्रचलित है। विलियमसन ने निदेशात्मक उपबोधन के अग्रलिखित छः सोपान दिए हैं- 1. विश्लेषण; 2. संश्लेषण; 3. निदान; 4. पूर्व अनुमान; 5. परामर्श; 5. अनुगामी।
- निदेशात्मक परामर्श की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-
  1. परामर्शदाता का कर्त्तव्य, अपने निदान के अनुरूप निर्णय लेने में उपबोध्य की सहायता करना होता है।
  2. परामर्शदाता प्रार्थी को आवश्यक सूचनाओं से परिचित कराता है, सेवार्थी की परिस्थिति, वस्तुनिष्ठ वर्णन व अर्थापन करता है तथा उसे विवेकयुक्त उपबोधन प्रदान करता है।
  3. निदेशात्मक परामर्श में, सेवार्थी के बौद्धिक पक्ष पर बल दिया जाता है।
- निदेशात्मक परामर्श निम्नलिखित रूप से लाभप्रद है:
  (*i*) यह विधि समय की बचत करती है। यह समय की दृष्टि से एक लाभप्रद विधि है।
  (*ii*) इस विधि का मुख्य केन्द्र समस्या तथा व्यक्ति होता है।
- कार्ल रोजर्स का यह कहना है कि निदेशात्मक परामर्श की प्रक्रिया के अन्तर्गत उपबोध्य से अलग व्यक्ति द्वारा समस्या का निदान करने, समस्या के बारे में सुझाव देने और सेवार्थी की परिस्थिति का वर्णन करने का परिणाम यह होता है कि यह अनावश्यक रूप से, दूसरे व्यक्ति पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित करने लगता है।

13.7 शब्दकोश (Keywords)

- **परामर्शदाता**–जो सलाह देता हो।
- **विश्लेषण**–सूक्ष्म अध्ययन।

13.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

(*i*) निदेशात्मक परामर्श विधि की अवधारणा क्या है?

(*ii*) निदेशात्मक परामर्श विधि की क्या विशेषताएँ हैं?

(*iii*) निदेशात्मक परामर्श के लाभ तथा सीमाएँ लिखिए?

(*iv*) निदेशात्मक परामर्श के सोपान क्या हैं?

उत्तर– स्व–मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

(*i*) निदेशात्मक परामर्श विधि (*ii*) संश्लेषण (*iii*) निदान (*iv*) समय

13.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—14: परामर्श के प्रकार: अनिदेशात्मक परामर्श (Types of Counseling: Non-Directive Counseling)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

14.1 अनिदेशात्मक परामर्श की अवधारणा (Concept of Non-directive Counseling)

14.2 अनिदेशात्मक परामर्श के सोपान (Steps in Non-directive Counseling)

14.3 अनिदेशात्मक परामर्श की विशेषताएँ (Characteristics of Non-directive Counseling)

14.4 अनिदेशात्मक परामर्श के संदर्भ में रोगर्स सिद्धांत (Roger's Theory Postulates about Non-directive Counseling)

14.5 अनिदेशात्मक परामर्श की सीमाएँ (Limitations of Non-diractive Counseling)

14.6 निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक परामर्श में अंतर (Difference between Directive and Non-directive Counseling)

14.7 सारांश (Summary)

14.8 शब्दकोश (Keywords)

14.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

14.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- अनिदेशात्मक परामर्श की अवधारणा, विशेषताएँ और इसके सोपान का विश्लेषण करने में।
- अनिदेशात्मक परामर्श के संदर्भ में रोगर सिद्धांत एवं तकनीक की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अनिदेशात्मक परामर्श सेवार्थी केन्द्रित होता है। इस प्रकार के परामर्श द्वारा व्यक्ति को बिना किसी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष निर्देशन के आत्म-निर्भरता, आत्म-साक्षात्कार (Self-actualization) एवं आत्मानुभूति (Self-realisation) की ओर उन्मुख किया जाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने तथा इसे सर्व प्रचलित करने का श्रेय कार्ल रोजर्स को प्रदान किया जाता है।

नोट

14.1 अनिदेशात्मक परामर्श विधि की अवधारणाः (Concept of Non-Directive Counseling)

अनिदेशात्मक परामर्श विधि पूर्ण रूप से प्रार्थी केन्द्रित होती है। इस विधि में परामर्शदाता एक ऐसा सहयोगपूर्ण वातावरण तैयार करता है, जिससे प्रार्थी अपने अंदर छिपी गूढ़ भावनाओं व मनोविकारों को पूर्ण रूप से वार्तालाप के द्वारा बाहर प्रदर्शित करता है, वह भी बिना किसी भय अथवा दबाव के यहाँ पर परामर्श संबंधी सभी उत्तरदायित्व प्रार्थी पर होते हैं।

14.2 अनिदेशात्मक परामर्श के सोपान (Steps in Non-Directive Counseling)

इस प्रकार के परामर्श के प्रमुख सोपान निम्नलिखित हैं-

1. **वार्तालाप** (Conversation): प्रथम सोपान में, परामर्शदाता तथा उपबोध्य के बीच अनेक बैठकों में अनौपचारिक रूप से विभिन्न विषयों पर बातचीत होती है। अनेक बार ये दोनों बिना किसी उद्देश्य के भी मिलते हैं। लेकिन प्रथम सोपान का मुख्य उद्देश्य है- परस्पर सौहार्द्र की स्थापना करना जिससे उपबोध्य नि:संकोच रुप से अपनी बात को कहने हेतु मानसिक रूप से तैयार हो सके। परामर्शदाता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वह उपबोध्य के साथ मित्र के समान सम्बन्ध स्थापित कर ले और उसके समक्ष ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दे कि मित्र-चिकित्सा (फ्रेंड-थेरैपी) की पद्धति को प्रयुक्त किया जा सके।

2. **जाँच-पड़ताल** (Probing): उपबोध्य की वैयक्तिक समस्या, परिस्थिति एवं सन्दर्भों के सम्बन्ध में सविस्तार जाँच पड़ताल की व्यवस्था इस सोपान के अन्तर्गत की जाती है। इसलिए परामर्शदाता विभिन्न परोक्ष प्रविधियों का प्रयोग करता है।

3. **संवेगात्मक अभिव्यक्ति** (Emotional Release): उपबोध्य की व्यवस्थाओं भावनाओं तथा मानसिक तनावों को अभिव्यक्त करने हेतु उसे अवसर प्रदान करना ही, इस सोपान का मुख्य उद्देश्य है।

4. **परोक्ष रूप से प्रदान किए गए सुझावों पर चर्चा** (Discussion on Indirectly given Suggestions): इस सोपान में उपबोध्य, परामर्शदाता द्वारा दिए गए सुझावों को एक आलोचनात्मक दृष्टि से देखता है।

5. **योजना का प्रतिपादन** (Project Formulation): इसमें परामर्शदाता को स्वयं की समस्या का हल प्राप्त करने हेतु एक वास्तविक योजना का निर्माण करने का अवसर प्रदान किया जाता है। इस योजना के स्वरूप, प्रभाव इत्यादि के सम्बन्ध, में दोनो विचार-विमर्श करते हैं।

6. **योजना का क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन** (Project Implementation and Evaluation): षष्ठम् सोपान के अन्तर्गत, उपबोध्य द्वारा बनाई गई योजना को क्रियान्वित किया जाता है, तथा उसकी प्रभावशीलता ज्ञात करने के लिए आत्म-मूल्यांकन की व्यवस्था भी इस सोपान में की जाती है।

फ्रेडरिक थार्न के अनुसार, परामर्शदाता का यह प्रयास प्रार्थी के व्यक्तिगत विभवों के व्युत्क्रमानुपाती होता है। परामर्शदाता इस विधि में अधिकाधिक प्रयास द्वारा प्रार्थी की समस्याओं का निदान करने का प्रयास करता है।

नोट्स परामर्शदाता द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वह उपबोध्य के साथ मित्र के समान सम्बन्ध स्थापित कर ले और उसके समक्ष ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दे कि मित्र-चिकित्सा (फ्रेंड-थेरैपी) की पद्धति को प्रयुक्त किया जा सके।

14.3 अनिदेशात्मक परामर्श की विशेषताएँ (Characteristics of Non-directive Counseling)

इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. इसके अन्तर्गत सेवार्थी को अपनी समस्या का हल स्वयं खोजने हेतु प्रेरित किया जाता है।

नोट

2. इस उपबोधन में किसी भी प्रकार के निदानात्मक उपकरण अथवा परीक्षण का प्रयोग नहीं किया जाता है। किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में उपबोध्य की सीमाओं को ज्ञात करने हेतु परीक्षाओं का उपयोग किया जाता है।
3. सेवार्थी को स्वतन्त्र दृष्टिकोण अपनाने हेतु इस के अन्तर्गत अवसर प्रदान किया जाता है।
4. सेवार्थी के विकास तथा समायोजन की प्रक्रिया में उसकी सहायता करना ही, इसका मुख्य उद्देश्य होता है। अतः परामर्शदाता, एक मित्र के समान, उपबोध्य में रूचि लेता है, बातचीत करता है और सेवार्थी की समस्याओं एवं कठिनाइयों में सम्मिलित होने हेतु तत्परता अभिव्यक्त करता है।
5. इस प्रकार के परामर्श में यथार्थता, संवेदनशीलता एवं स्वाभाविकता का होना परम आवश्यक है।

क्या आप जानते हैं इस प्रकार के परामर्श में यथार्थता, संवेदनशीलता एवं स्वाभाविकता का होना परम आवश्यक है।

14.4 अनिदेशात्मक परामर्श के संदर्भ में रोगर्स सिद्धांत (Roger's Theory Postulates about Non-directive Counseling)

रॉगर्स ने अनिदेशात्मक परामर्श विधि के संदर्भ में कई सिद्धांत दिये हैं जो निम्नलिखित हैं–

(*i*) प्रति व्यक्ति इस परिवर्तनीय संसार में अस्तित्व रखता है।

(*ii*) हर व्यक्ति अपने आप को दुनिया में सबसे अधिक अच्छी तरह जानता और समझता है, इसलिए अपनी जानकारी के लिए सबसे अच्छा स्त्रोत वह व्यक्ति स्वयं होता है।

(*iii*) प्रत्येक व्यक्ति में अपने आप को समझने, अपनी क्षमताओं व योग्यताओं को बनाये रखने के लिए तथा उन्हें बढ़ाने के लिए एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है।

(*iv*) भावनाएँ तथा संवेग किसी भी व्यक्ति की क्षमताओं के विकास में बाधक नहीं बल्कि वृद्धि तथा विकास के लिए आवश्यक हैं।

(*v*) किसी भी व्यक्ति के स्वभाव को समझने के लिए उसकी अन्तर्मुखी स्वभाव को समझना बहुत आवश्यक है।

14.5 अनिदेशात्मक परामर्श की सीमायें (Limitations of Non-directive Counseling)

1. इस प्रकार के परामर्श को शिक्षालय अथवा महाविद्यालयों की परिस्थितियों में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है।
2. इसके अन्तर्गत उपबोध्य की अपनी आवश्यकताओं एवं सुविधाओं के अनुसार समय देना पड़ता है, जिससे सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया पूर्ण होने में अधिक समय लगता है।
3. वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि अनेक परिस्थितियों में कुछ छात्र स्वयं कोई कदम उठाने में संकोच करते हैं तथा कुछ विद्यार्थी ऐसे भी होते हैं जो परामर्शदाता के बगैर कुछ भी करने को तैयार नहीं होते हैं।

14.6 निदेशात्मक एवं अनिदेशात्मक परामर्श में अन्तर (Difference between Directive and Non-directive Counseling)

1. समय की दृष्टि से दोनों परामर्शों में अन्तर है। अनिदेशीय उपबोधन में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।
2. निदेशात्मक उपबोध के अन्तर्गत, विश्लेषण को तथा अनिदेशात्मक परामर्श सेवार्थी–केन्द्रित होता है।

नोट

3. निदेशात्मक परामर्श समस्या-केन्द्रित होता है, जबकि अनिदेशात्मक परामर्श सेवार्थी-केन्द्रित होता है।
4. निदेशात्मक परामर्श के अन्तर्गत, सभी बौद्धिक पक्ष को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता है, जबकि अनिदेशात्मक उपबोधन, में सेवार्थी के संवेगात्मक पक्ष ही का महत्व दिया जाता है।
5. निदेशात्मक उपबोधन में व्यक्ति इतिहास (Case-Histroy) का उपयोग किया जाता है तथा अनिदेशात्मक परामर्श में यह अध्ययन नहीं किया जाता है।
6. निदेशात्मक परामर्श का वह रूप माना जाता है जिसमें व्यक्ति की क्षमताओं की सीमाएँ होती हैं अत: सेवार्थी हेतु अपनी समस्याओं का पूर्वाग्रहों से मुक्त अध्ययन असम्भव है। जबकि अनिदेशात्मक परामर्श के अन्तर्गत यह स्वीकार किया जाता है कि व्यक्तियों में स्वयं की समस्याओं का समाधान करने की क्षमता एवं योग्यता निहित होती है। अत: उसे मात्र क्षमता व शक्ति के अनुकूल पहचान करने की आवश्यकता होती है।

प्रत्युत्तर देना: जब प्रार्थी अपनी सारी स्थिति से परामर्शदाता को अवगत कराता है, तो परामर्शदाता उसको सकारात्मक ढंग से प्रत्युत्तर के तौर पर उसको समझाता है तथा परामर्श देता है। यदि प्रार्थी की बातें सुनकर परामर्शदाता नकारात्मक ढंग से प्रत्युत्तर देता है या नकारात्मक व्यवहार करता है, तो प्रार्थी अपनी छिपी भावनाओं को अंदर ही दबा लेता है, तथा परामर्शदाता को पूर्ण सहयोग नहीं देता है।

टास्क 'सुनने' की तकनीक का अनिदेशात्मक परामर्श विधि में क्या महत्व है?

स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो: (Fill in the blanks)–

(*i*) अनिदेशात्मक परामर्श विधि को .... भी कहा जाता है।

(*ii*) .... ने प्रार्थी केन्द्रित विधि को प्रतिपादित किया।

(*iii*) .... अनिदेशात्मक विधि की कुँजी है।

(*iv*) अनिदेशात्मक विधि में .... का उपयोग नहीं किया जाता।

14.7 सारांश (Summary)

- अनिदेशात्मक परामर्श विधि पूर्ण रूप से प्रार्थी केन्द्रित होती है। इस विधि में परामर्शदाता एक ऐसा सहयोगपूर्ण वातावरण तैयार करता है, जिससे प्रार्थी अपने अंदर छिपी गूढ़ भावनाओं व मनोविकारों को पूर्ण रूप से वार्तालाप के द्वारा बाहर प्रदर्शित करता है, वह भी बिना किसी भय अथवा दबाव के। यहाँ पर परामर्श संबंधी सभी उत्तरदायित्व प्रार्थी पर होते हैं।
- इस प्रकार के परामर्श के प्रमुख सोपान निम्नलिखित हैं- 1. वार्तालाप; 2. जाँच-पड़ताल; 3. संवेगात्मक अभिव्यक्ति; 4. परोक्ष रूप से प्रदान किए गए सुझावों पर चर्चा; 5. योजना का प्रतिपादन; 6. योजना का क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन।
- **अनिदेशात्मक परामर्श की विशेषताएँ:** इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–
  1. इसके अन्तर्गत सेवार्थी को अपनी समस्या का हल स्वयं खोजने हेतु प्रेरित किया जाता है।
  2. इस उपबोधन में किसी भी प्रकार के निदानात्मक उपकरण अथवा परीक्षण का प्रयोग नहीं किया जाता है। किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में उपबोध्य की सीमाओं को ज्ञात करने हेतु परीक्षाओं का उपयोग किया जाता है।

नोट

- रॉगर्स ने अनिदेशात्मक परामर्श विधि के संदर्भ में कई सिद्धांत दिये हैं जो निम्नलिखित हैं-
  - (*i*) प्रति व्यक्ति इस परिवर्तनीय संसार में अस्तित्व रखता है।
  - (*ii*) हर व्यक्ति अपने आप को दुनिया में सबसे अधिक अच्छी तरह जानता और समझता है, इसलिए अपनी जानकारी के लिए सबसे अच्छा स्त्रोत वह व्यक्ति स्वयं होता है।
  - (*iii*) प्रत्येक व्यक्ति में अपने आप को समझने, अपनी क्षमताओं व योग्यताओं को बनाये रखने के लिए तथा उन्हें बढ़ाने के लिए एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है।
- इस प्रकार के परामर्श को शिक्षालय अथवा महाविद्यालयों की परिस्थितियों में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत उपबोध्य की अपनी आवश्यकताओं एवं सुविधाओं के अनुसार समय देना पड़ता है, जिससे सम्पूर्ण परामर्श प्रक्रिया पूर्ण होने में अधिक समय लगता है। वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि अनेक परिस्थितियों में कुछ छात्र स्वयं कोई कदम उठाने में संकोच करते हैं तथा कुछ विद्यार्थी ऐसे भी होते हैं जो परामर्शदाता के बगैर कुछ भी करने को तैयार नहीं होते हैं।
- निदेशात्मक एवं अनिदेशात्मक परामर्श में अन्तर: 1. समय की दृष्टि से दोनों परामर्शो में अन्तर है। अनिदेशात्मक परामर्श में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। 2. निदेशात्मक परामर्श के अन्तर्गत, विश्लेषण को तथा अनिदेशात्मक परामर्श सेवार्थी-केन्द्रित होता है। 3. निदेशात्मक परामर्श समस्या-केन्द्रित होता है जबकि अनिदेशात्मक परामर्श सेवार्थी-केन्द्रित होता है।

14.8 शब्दकोश (Keywords)

- **क्रियान्वयन**—लागू करना।
- **प्रतिपादन**—निरूपण, प्रमाण, उत्पत्ति।

14.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

(*i*) अनिदेशात्मक परामर्श विधि की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

(*ii*) अनिदेशात्मक परामर्श विधि की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

(*iii*) अनिदेशात्मक परामर्श विधि के संदर्भ में रॉजर्स के सिद्धान्तों का प्रतिपादन कीजिए।

(*iv*) निदेशात्मक तथा अनिदशात्मक परामर्श में अंतर स्पष्ट कीजिए।

(*v*) अनिदेशात्मक परामर्श के विभिन्न सोपानों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– स्व–मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

(*i*) प्रार्थी केन्द्रित विधि (*ii*) कार्ल रॉगर्स (*iii*) आत्म निरीक्षण

(*iv*) व्यक्ति इतिहास

14.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।
3. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—15: परामर्श के प्रकार: समाहारक परामर्श (Types of Counseling : Non-Directive Counseling)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
15.1 समाहारक परामर्श की अवधारणा (Concept of Eclectic Counseling)
15.2 समाहारक परामर्श की विशेषताएँ (Characteristics of Eclectic Counseling)
15.3 समाहारक परामर्श के सोपान (Steps in Eclectic Counseling)
15.4 समाहारक परामर्श के उपचारात्मक उपयोग (Therapeautic Implications of Eclectic Counseling)
15.5 समाहारक परामर्श की सीमाएँ (Limitations of Eclectic Counseling)
15.6 सारांश (Summary)
15.7 शब्दकोश (Keywords)
15.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
15.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- समाहारक परामर्श की अवधारणा, सोपान, विशेषताएँ और उपयोग का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

जो परामर्शदाता निदेशात्मक या अनिदेशात्मक विचारधाराओं से असहमत हैं उन्होंने उपबोधन (परामर्श) के एक अन्य प्रकार की तकनीक को विकसित किया है, जिसे 'समन्वित परामर्श अथवा 'समाहारक परामर्श' कहा जाता है। समन्वित परामर्श एक प्रकार से दोनों उपबोधनों के मध्य का परामर्श है, इसे मध्यमार्गीया' के नाम से भी सम्बोधित किया जा सकता है।

समाहारक परामर्श की प्रवृत्ति के अनुरूप इसके अन्तर्गत आवश्यकता पड़ने पर और सेवार्थी के हित में होने पर भावात्मक अभिव्यक्ति पर नियन्त्रण भी लगाया जा सकता है। इसमें उपबोधक पूर्णरूप से तटस्थ नहीं रहता है। इसमें परिस्थिति के अनुरूप उपबोधक तथा सेवार्थी के सम्बन्धों के मध्य कुछ पूर्व निश्चित दूरी (Reservations) निहित रहती है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन एफ॰ सी॰ थार्न ने किया।

15.1 समाहारक परामर्श की अवधारणा (Concept of Eclectic Counseling)

समाहारक परामर्श निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक विधियों का विश्लेषणात्मक समागम है। यह इन दोनों विधियों के बीच के स्तर की परामर्श विधि है। समाहारक परामर्श में परामर्शदाता न तो निदेशात्मक परामर्श विधि की तरह अग्रणी

नोट

व प्रमुख भूमिका निभाता है न ही अनिदेशात्मक परामर्श विधि की तरह गौण रूप से भाग लेता है, अपितु दोनों के मध्य का रास्ता अपनाता है।

समाहारक परामर्श में, व्यक्ति तथा उसके व्यक्तित्व संबंधी आवश्यकताओं का परामर्शदाता अध्ययन करता है। अध्ययन के पश्चात वह परामर्श के लिए उचित विधि का चयन करता है।

समाहारक परामर्श में परामर्शदाता प्रार्थी की आवश्यकता के अनुरूप परामर्श निदेशात्मक विधि से आरंभ करता है तथा धीरे-धीरे अनिदेशात्मक विधि की ओर बढ़ता है, कभी अनिदेशात्मक विधि से चलकर निदेशात्मक विधि की ओर बढ़ता है, तथा बीच बीच में प्रार्थी को स्थिति के अनुसार हर प्रकार का सहयोग प्रदान करता है।

15.2 समाहारक परामर्श की विशेषताएँ (Characteristics of Eclectic Counseling)

थॉर्न द्वारा अनुमोदित, सम्भावनात्मक परामर्श की प्रमुख विशेषतायें अग्रलिखित हैं-

1. इसमें सामान्यत: वस्तुनिष्ठ एवं समन्वयपरक विधियों का प्रयोग किया जाता है।
2. परामर्श की विधि का प्रयोग करते समय अल्पव्यय के सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाता है।
3. परामर्श के प्रारम्भ में सामान्यत: उन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें उपबोध्य की भूमिका सक्रिय होती है तथा परामर्शदाता की भूमिका निष्क्रिय हो।
4. समस्त विधियों एवं प्रविधियों का प्रयोग करने हेतु परामर्शदाता में अपेक्षित व्यावसायिक दक्षता व कुशलता होना आवश्यक है।
5. इसके अन्तर्गत, उपबोध्य की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक विधियों को प्रयुक्त करने का निर्णय लिया जाता है।
6. समन्वित परामर्श के अन्तर्गत कार्य कुशलता एवं उपचार प्राप्त कराने को विशिष्ट महत्व दिया जाता है।

क्या आप जानते हैं समाहारक उपबाध्य में अपेक्षित अवसर उपलब्ध कराने पर बल दिया जाता है, जिससे वे स्वयं की पहल के अनुसार समस्याओं का समाधान स्वयं खोज सकें।

15.3 समाहारक परामर्श के सोपान (Steps in Eclectic Counseling)

समन्वित परामर्श के प्रमुख सोपान अधोलिखित हैं-

1. उपबोध्य की आवश्यकता तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यकताओं का अध्ययन (Study of the need and personality characteristics of the client): प्रथम सोपान में परामर्शदाता यह प्रयास करता है कि उपबोध्य की वास्तविक आवश्यकता क्या है? प्रार्थी की व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाये। सर्वप्रथम उसकी वास्तविक आवश्यकता ज्ञात की जाती है।

2. प्रविधियों का चयन (Selection of the Techniques): इसके अन्तर्गत, उपबोध्य की आवश्यकता के अनुसार प्रविधियों का चयन कर, उनका उपयोग किया जाता है। द्वितीय सोपान की मुख्य विशेषता है- परामर्श की प्रविधियों को व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुकूल प्रयुक्त करने का प्रयास करना।

3. प्रविधियों का प्रयोग (Application of Techniques): चयनित प्रविधियों को विशिष्ट परिस्थिति में प्रयुक्त किया जाता है। जिन प्रविधियों का चयन किया जाता है। उनकी उपयोगिता उपबोध्य की परिस्थिति के अनुसार ही देखी जाती है।

4. प्रभावशीलता का मूल्यांकन (Evaluation of Effectiveness): उपबोध्य को यथोचित परामर्श देने तथा पथ-प्रदर्शन हेतु वांछनीय तैयारी इस सोपान में की जाती है। इसमें प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है।

5. परामर्श की तैयारी (Preparation for Counseling): उपबोध्य को यथोचित परामर्श तथा पथ-प्रदर्शन हेतु वांछनीय तैयारी इस सोपान में की जाती है।

6. उपबोध्य एवं अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों की राय प्राप्त करना (Seeking the opinion of the client and other related people): परामर्श के कार्यक्रम एवं अन्य आवश्यक उद्देश्य एवं विषयों पर उपबोध्य एवं उससे सम्बद्ध अन्य व्यक्तियों की राय को जाना जाता है।

15.4 समाहारक परामर्श के उपचारात्मक उपयोग (Therapectic Implications of Eclectic Counseling)

सभी प्रकार की मनोचिकित्सकीय परामर्शों का एक मात्र तथा विशिष्ट लक्ष्य मनोरोगी अथवा प्रार्थी की मनोस्थिति में सुधार लाना होता है। मनोचिकित्सिक या परामर्शदाता इस विधि का उपयोग यह जानने में करते हैं कि व्यक्ति अपनी क्षमताओं का उपयोग करके जीवन के दायित्वों को पूर्ण कर सकता है या नहीं यदि परामर्शदाता इस बात से पूर्ण रूप से सहमत हो जाता है तो प्रार्थी की चिकित्सा के लिए दैनिकचर्या के कुछ कार्यक्रम संयोजित कर लेता है। इस पद्धति में प्रार्थी के प्रशिक्षण तथा पुनर्शिक्षा पर ध्यान दिया जाता है।

15.5 समाहारक परामर्श की सीमाएँ (Limitations of Eclectic Counseling)

समाहारक परामर्श की सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

(*i*) निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक परामर्श को एक दूसरे से मिलाकर उपचार करना अत्यधिक समस्या उत्पन्न करता है।

(*ii*) इस पद्धति में यह प्रश्न उठता है कि व्यक्ति को कितनी स्वतंत्रता देनी चाहिए इस प्रकार की स्वतंत्रता के लिए कोई निश्चित नियम नहीं हैं।

(*iii*) इस प्रकार की पद्धति में यदि परामर्शदाता, प्रार्थी की समस्या को न समझे या पूर्ण रूप से न समझ सके तो, उसे गलत परामर्श दे सकता है, जिससे प्रार्थी को लाभ की जगह नुकसान पहुँचा सकता है।

टास्क समाहारक परामर्श में प्रभावशीलता के मूल्यांकन पर टिप्पणी लिखिए।

स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए: (Fill in the blanks)–

(*i*) .... परामर्श, निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक विधि के बीच की पद्धति है।

(*ii*) समाहारक परामर्श में .... और सामंजस्य विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं।

(*iii*) समाहारक परामर्श के आरंभ में .... प्रयुक्त किये जाते हैं तथा परामर्शदाता गौण रहता है।

(*iv*) समाहारक परामर्श की प्रकृति के अनुरूप इसके अन्तर्गत आवश्यकता पड़ने पर और सेवार्थी के हित में होने पर .... पर नियंत्रण भी लगाया जा सकता है।

15.6 सारांश (Summary)

- समाहारक परामर्श निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक विधियों का विश्लेषणात्मक समागम है। यह इन दोनों विधियों के बीच के स्तर की परामर्श विधि है। समाहारक परामर्श में परामर्शदाता न तो निदेशात्मक परामर्श विधि की तरह अग्रणी व प्रमुख भूमिका निभाता है।

नोट

- समाहारक परामर्श में, व्यक्ति तथा उसके व्यक्तित्व संबंधी आवश्यकताओं का परामर्शदाता अध्ययन करता है।
- थॉर्न द्वारा अनुमोदित, सम्भावनात्मक परामर्श की प्रमुख विशेषतायें अग्रलिखित हैं-

1. इसमें सामान्यत: वस्तुनिष्ठ एवं समन्वयपरक विधियों का प्रयोग किया जाता है।
2. परामर्श की विधि का प्रयोग करते समय अल्पव्यय के सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाता है।
3. परामर्श के प्रारम्भ में सामान्यत: उन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें उपबोध्य की भूमिका सक्रिय होती है तथा परामर्शदाता की भूमिका निष्क्रिय हो।

- समन्वित परामर्श के प्रमुख सोपान अधोलिखित हैं- 1. उपबोध्य की आवश्यकता तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यकताओं का अध्ययन; 2. प्रविधियों का चयन; 3. प्रविधियों का प्रयोग; 4. प्रभावशीलता का मूल्यांकन; 5. परामर्श की तैयारी; 6. उपबोध्य एवं अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों की राय प्राप्त करना।
- सभी प्रकार की मनोचिकित्सकीय परामर्शों का एक मात्र तथा विशिष्ट लक्ष्य मनोरोगी अथवा प्रार्थी की मनोस्थिति में सुधार लाना होता है।
- समाहारक परामर्श की सीमाएँ निम्नलिखित हैं-

  (*i*) निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक परामर्श को एक दूसरे से मिलाकर उपचार करना अत्यधिक समस्या उत्पन्न करता है।

15.7 शब्दकोश (Keywords)

- **समाहारक**–संग्रह करने वाला।
- **उपबोध्य**–सलाह योग्य।
- **प्रविधि**–तकनीकी कुशलता।

15.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

(*i*) समाहारक परामर्श की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

(*ii*) समाहारक परामर्श पद्धति के विभिन्न सोपानों की चर्चा कीजिए।

(*iii*) समाहारक परामर्श की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

(*iv*) समाहारक परामर्श की सीमाओं तथा उपयोग के विषय में समझाइये।

(*v*) अनिदेशात्मक परामर्श के विभिन्न सोपानों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– स्व–मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

(*i*) समाहारक परामर्श (*ii*) विकल्पीय (*iii*) प्रार्थी केन्द्रित

(*iv*) भावात्मक अभिव्यक्ति

15.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)* – डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—16: परामर्श में साक्षात्कार प्रक्रिया (Interview Process in Counseling)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

16.1 साक्षात्कार का अर्थ (Meaning of Interview)

16.2 परामर्श में साक्षात्कार प्रक्रिया (Interview Process in Counseling)

16.3 साक्षात्कार प्रक्रिया के लाभ (Advantages of Interview Process)

16.4 साक्षात्कार प्रक्रिया की सीमाएँ (Limitations of Interview Process)

16.5 सारांश (Summary)

16.6 शब्दकोश (Keywords)

16.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

16.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- परामर्श प्रक्रिया में साक्षात्कार प्रविधि को समझने में।
- परामर्शदाता के व्यक्तिगत गुणों का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

परामर्श प्रक्रिया में साक्षात्कार प्रविधि का विशेष महत्व है। साक्षात्कार की सहायता से प्रार्थी अपनी गहरी छिपी भावनाओं तथा समस्याओं की चर्चा परामर्शदाता की सहायता से कर लेता है। परामर्शदाता का व्यवहार सहानुभूति पूर्ण, तथा मित्रतापूर्ण होना चाहिए जिससे प्रार्थी अपनी भावनाओं को खुलकर परामर्शदाता के समक्ष प्रस्तुत करे। इस प्रक्रिया में प्रार्थी भय तथा चिंतामुक्त होकर परामर्शदाता से अपनी समस्या के संबंध में विचार विमर्श करता है। इस इकाई के हम परामर्श के दौरान साक्षात्कार प्रविधि के विषय में चर्चा करेंगे।

16.1 साक्षात्कार का अर्थ (Meaning of Interview)

मौखिक-प्रश्न समूह (Oral-Questionnaire) को ही साक्षात्कार कहा जाता है। स्पष्ट है कि साक्षात्कार दो प्रकार के हो सकते हैं—

(1) निदेशित साक्षात्कार (Directed or Structured Interview or Schedule)

(2) अनिदेशित साक्षात्कार (Undirected or Unstructured Interview)

निदेशित साक्षात्कार—यह एक प्रकार का अमुक्त प्रश्न समूह (Close Questionnaire) ही है। इस प्रकार के

नोट

साक्षात्कार में विधि, प्रश्न, उनकी भाषा एवं क्रम तथा समय पूर्व-निश्चित होते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार से कई व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

अनिदेशित साक्षात्कार—यह एक प्रकार का मुक्तोत्तर प्रश्न समूह (Open end Questionnaire) है इसको निदानात्मक साक्षात्कार, केन्द्रीकृत साक्षात्कार कहकर भी पुकारते हैं। इसका उपयोग मनोवैज्ञानिक अधिकतर प्रत्यक्षीकरण, प्रेरणा, अभिवृत्ति आदि के अध्ययन के लिये करते हैं। अब तो इस प्रविधि का प्रयोग समाचार-सम्पादकों के द्वारा बहुतायत से किया जाने लगा है।

16.2 परामर्श में साक्षात्कार प्रक्रिया (Interview Process in Counseling)

'साक्षात्कार' परामर्श प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण अंग है, इसके बिना परामर्शदाता, प्रार्थी की समस्या को नहीं सुलझा सकता और न ही उसे ठीक से परामर्श दे सकता है। विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में छात्रों के लिए परामर्श परम आवश्यक है। विद्यालयों में परामर्शदाता एक निश्चित समय अन्तराल पर मीटिंग करते हैं जिससे प्रत्येक विद्यार्थी के समस्याओं को सुना व समझा जाता है। परामर्श के साक्षात्कार प्रक्रिया एक कला है वहीं परामर्शदाता में प्रशिक्षण, अनुभव, ईमानदारी, मानवता आदि कई गुणों का समावेश होना चाहिए। परामर्शदाता का व्यवहार मित्रतापूर्ण किन्तु प्रतिष्ठापूर्ण होना चाहिए। उसे किसी प्रकार की मूर्खतापूर्ण विधि से प्रार्थी को प्रभावित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। विद्यालय में परामर्श संबंधी कार्य करने के लिए शैक्षणिक योग्यता के साथ ही शिक्षण अनुभव भी होना चाहिए। जिससे वह बालकों की शैक्षणिक तथा सामाजिक समस्याओं में उनकी सहायता कर सके। पमरार्शदाता का व्यक्तित्व में अपनापन, प्रेम, तथा छात्रों के प्रति संवेदनशीलता होनी चाहिए, जिससे कि वे उनकी समस्याओं को समझकर, बेहतर ढंग से उनकी समस्याओं का समाधान कर सके। पहली बार हुए साक्षात्कार में परामर्शदाता प्रार्थी की समस्या को समझता है, किन्तु उनमें विश्वास या सहयोग का संबंध उत्पन्न नहीं होता है, किन्तु धीरे धीरे साक्षात्कार विधि द्वारा परामर्शदाता तथा प्रार्थी के बीच आपसी विश्वास का संबंध बन जाता है, तथा परामर्शदाता, प्रार्थी को समझकर उसे यथोचित परामर्श देकर उसका मार्गदर्शन करता है। परामर्श में साक्षात्कार प्रक्रिया के विभिन्न चरण होते हैं जो निम्नलिखित हैं:—

(*i*) **साक्षात्कार के लिए तैयार होना तथा आरंभ करना**—परामर्शदाता तथा प्रार्थी को साक्षात्कार प्रक्रिया के बारे में पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। उन्हें साक्षात्कार के दौरान होने वाली समस्त गतिविधियों तथा वार्तालाप का ज्ञान होना चाहिए। परामर्शदाता को प्रार्थी की समस्त समस्याओं तथा उसके पिछले रिकार्ड के बारे में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। परामर्शदाता को प्रार्थी के हाव-भाव स्वभाव, प्रकृति को साक्षात्कार से पहले अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार प्रार्थी को भी साक्षात्कार से पहले अपने विद्यालयी तथा सामाजिक जीवन के हर पहलू की जानकारी होनी चाहिए, जिससे साक्षात्कार के समय किसी प्रकार की विषम परिस्थिति का सामना न करना पड़े।

क्या आप जानते हैं परामर्शदाता की शारीरिक भाव भंगिमाओं जैसे प्रार्थी के प्रति आदर भाव रखना, उसे 'आप' आदि शब्दों द्वारा सम्बोधित करना, अलग-अलग बातों पर अलग प्रकार की संवेदना प्रकट करना, प्रार्थी को देखकर मुस्कुराना, आदि से प्रार्थी के मन में परामर्शदाता के प्रति विश्वास तथा अपनेपन का अनुभव होता है।

(*ii*) **अनुकूल वातावरण तैयार करना**—छात्र को परामर्शदाता के बारे में ठीक जानकारी होनी चाहिए, उसको पता होना चाहिए कि क्या वह उसकी समस्याओं को सुलझाने में उसकी मदद कर सकेगा। अनुभवी परामर्शदाता अच्छी तरह जानते हैं कि प्रार्थी को किस प्रकार वार्तालाप के द्वारा शीघ्र तथा प्रभावी परामर्श देना है। अत: साक्षात्कार के समय वे ऐसा वातावरण तैयार कर लेते हैं जिसमें प्रार्थी को परामर्शदाता के साथ एक आपसी

नोट

संबंध बन जाता है, तथा साक्षात्कार में सुलभता हो जाती है।

(*iii*) **'उद्देश्य' को समझना**—अपने प्रशिक्षण तथा पूर्वानुभवों के फलस्वरूप परामर्शदाता, परामर्श अपने उद्देश्य से पूर्णत: अवगत होता है। प्रार्थी के साथ हुए वार्तालाप से परामर्शदाता जान लेता है कि प्रार्थी की समस्या के अनुरूप उसे किस प्रकार का परामर्श देना है। उसकी मानसिक व मनोवैज्ञानिक स्थिति को देखकर ही वह अपने उद्देश्य तथा उसकी प्राप्ति के लिए पूर्णत: प्रयास करता है।

(*iv*) **आपसी संबंधों का निर्माण**—जैसे-जैसे साक्षात्कार की प्रक्रिया आगे बढ़ती है, परामर्शदाता तथा प्रार्थी के बीच आपसी विश्वास के संबंधों का निर्माण होता जाता है। जब प्रार्थी, परामर्शदाता की लगन, ईमानदारी तथा अन्य मानवीय गुणों से परिचित होता है तो वह अपनी सभी समस्याओं तथा गहरी छिपी भावनाओं को उसके समक्ष प्रस्फुटित करता है, तथा परामर्शदाता के प्रति आश्वस्त हो जाता है कि वह उसकी समस्या को न सिर्फ बेहतर ढंग से समझ सकता है उसका बल्कि उसका निदान भी कर सकता है। जिससे प्रार्थी साक्षात्कार के दौरान सहजता का अनुभव करता है।

(*v*) **वार्तालाप द्वारा अथवा प्रार्थी की सहायता करना**—वार्तालाप एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने अंदर छिपी भावनाओं को बाहर रख सकता है तथा परामर्शदाता उसको समझकर उसकी सहायता कर सकता है। परामर्शदाता वार्तालाप के द्वारा तीन प्रकार से प्रार्थी को समझ सकता है।

(*i*) प्रार्थी की छिपी भावनाओं को बाहर लाने में

(*ii*) प्रार्थी की समस्या को समझने में, कि वह इस प्रकार की परेशानी क्यों अनुभव कर रहा है?

(*iii*) उस समस्या से प्रार्थी को निकालने में।

(*vi*) **साक्षात्कार को समाप्त करना**—साक्षात्कार में विभिन्न प्रकार के उतार-चढ़ावों द्वारा परामर्शदाता, प्रार्थी की सभी समस्याओं को जानने के बाद उस पर गहन विचार करता है। विभिन्न परिस्थितियों में अलग अलग परामर्श जाता है, यदि समस्या गंभीर नहीं है तो एक ही साक्षात्कार में परामर्श द्वारा प्रार्थी की समस्या का समाधान हो जाता है और यदि समस्या गंभीर है, तो समस्या का विश्लेषण किया जाता है, तथा उसे अगली बार साक्षात्कार के लिए दोबारा बुलाया जाता है, परामर्शदाता प्रार्थी को संतोषजनक उत्तर देकर उसे मुस्कुराकर, विदा करता है।

परामर्शदाता को साक्षात्कार के समय सभी मुख्य बिन्दुओं को नोट कर लेना चाहिए जिससे वे आगे की साक्षात्कार मीटिंग्स में दोबारा संवेदनशील क्षेत्रों को न उठायें, तथा प्रक्रिया को आगे बढ़ायें। परामर्शदाता, प्रार्थी को समस्या का विश्लेषण करके उसे बेहतर परामर्श देता है।

(*vii*) **साक्षात्कार के बाद प्रार्थी को फॉलोअप करना**—साक्षात्कार हो जाने के बाद भी परामर्शदाता प्रार्थी की देखरेख व निगरानी करते हैं, जब एक निश्चित समय अन्तराल पर प्रार्थी को दोबारा बुलाया जाता है तो सोच में हुए परिवर्तन को देखता है, तथा सुधार तथा अन्य परिवर्तनों को नोट करता है और उसका रिकॉर्ड रखता है, ताकि भविष्य में प्रार्थी या अन्य लोगों की एक ही जैसे मामलों में सहायता कर सके।

नोट्स साक्षात्कार में परामर्शदाता तथा प्रार्थी के बीच आपसी विश्वास बहुत आवश्यक है।

16.3 साक्षात्कार प्रक्रिया के लाभ (Advantages of Interview Process)

साक्षात्कार प्रविधि के प्रश्न समूह की अपेक्षा अनेकों लाभ हैं जिन्हें आगे सूची बद्ध किया गया है—

(1) इसकी प्रकृति लचीली (Flexible) होती है। अतएव किसी महत्वपूर्ण बात को पकड़कर आगे बढ़ा जा सकता है। इस प्रकार के वार्तालाप के द्वारा व्यक्तित्व के किसी ऐसे विशिष्ट पक्ष के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है जो अन्तत: व्यक्तित्व को समझने में अर्न्तदृष्टि प्रदान करता है।

नोट

(2) इस प्रविधि के दौरान ऐसे प्रश्नों का स्पष्टीकरण किया जा सकता है जो व्यक्ति की समझ में न आया हो।

(3) इसी प्रकार ऐसे उत्तरों के विषय में भी स्पष्टीकरण प्राप्त किया जा सकता है जो साक्षात्कर्ता न समझ पाया हो।

(4) इसके द्वारा साक्षात्कारकर्ता को व्यक्ति से सामरस्य (rapport) स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता है।

(5) इसके द्वारा ऐसे व्यक्तियों से सूचनायें प्राप्त की जा सकती है जो तथ्यों को लिखित में देने से झिझकतें हों।

(6) वार्तालाप के दौरान साक्षात्कारकर्ता ऐसे संकेतों का अवलोकन कर सकता है जिससे व्यक्ति की अनिच्छा, असहयोग आदि मनोभावों का ज्ञान हो सकें। इन्हीं संकेतों के आधार पर वह उत्तरों की वैधता की माप कर सकता है।

(7) साक्षात्कारकर्ता व्यक्ति के हाव-भाव को देखकर उसकी मनोवृत्तियों के विषय में धारणा बना सकता है, जैसे, आन्तरिक इच्छा, तनाव, रूचि, घृणा आदि।

16.4 साक्षात्कार प्रक्रिया की सीमाएँ (Limitations of Interview Process)

उल्लेखित अच्छाइयों के साथ-साथ साक्षात्कारकर्ता प्रविधि की अपनी सीमायें भी हैं–

(1) यह विधि अधिक लचीली है, अतएव साक्षात्कारर्ता को पूरी स्वतन्त्रता होती है कि वह वार्तालाप को ऐसा मोड़ देता रहे कि उसे अपने मनपसन्द का उत्तर प्राप्त हो जाये।

(2) सामाजिक मान्यताओं में बंधे होने के कारण व्यक्ति (Subject) साक्षात्कारकर्ता की उपस्थिति में सहिष्णु, सौम्य एवं सदाचारी बनने की चेष्टा करता है और इस कारण वह स्पष्टवादिता से दूर हट जाता है।

(3) साक्षात्कारकर्ता द्वारा वार्तालाप को लिपिबद्ध करने के कारण व्यक्ति उत्तर देते समय अपने कथनों के द्वारा प्रत्यक्ष समर्थन प्रकट नहीं करता। वह गोल-मोल उत्तरों के माध्यम से स्वयं को एक सुरक्षित स्थिति में रखने की चेष्टा करता है।

(4) व्यक्ति अपने उत्तरों को देते समय साक्षात्कारकर्ता की जाति, पद, लिंग आदि का ध्यान रखता है अतएव उसके उत्तर स्वाभाविक न रहकर कृत्रिम एवं साक्षात्कारकर्ता को प्रसन्न करने वाले बन जाते हैं।

(5) आवश्यक प्रशिक्षण के अभाव में साक्षात्कारकर्ता सही तरीके से व्यक्तित्व-मूल्यांकन के लिये तथ्य एकत्रित करने में कठिनाई का अनुभव करता है।

समाज में और विशेषकर विद्यालयों में बालकों के मानसिक विकास पर अधिक बल दिया जाता है। यहां तक कि स्कूल में अधिकांश समय बालकों के ज्ञान को ही बढ़ाने में लगाया जाता है। एक प्रकार से विद्यालय की सभी गतिविधियाँ ज्ञान-वर्धन पर ही केन्द्रित होती हैं। यही कारण है कि बालक के व्यक्तित्व के बारे में सामान्यत: उसके ज्ञान के स्तर से ही अनुमान लगाया जाता है।

टास्क निदेशित साक्षात्कार क्या होता है?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct Option)–

निम्नलिखित वाक्यों में से 'सत्य' अथवा 'असत्य' कथन छाँटिए

1. मौखिक प्रश्न समूह को ही साक्षात्कार कहा जाता है।
2. अपनी छिपी भावनाओं को बाहर प्रदर्शित करने का कोई साधन नहीं होता है।
3. परामर्शदाता का व्यवहार मित्रता पूर्ण किन्तु प्रतिष्ठापूर्ण होना चाहिए।

नोट

16.5 सारांश (Summary)

- मौखिक-प्रश्न समूह (Oral-Questionnaire) को ही साक्षात्कार कहा जाता है। स्पष्ट है कि साक्षात्कार दो प्रकार के हो सकते हैं—

  (1)निदेशित साक्षात्कार (Directed or Structured Interview or Schedule)

  (2)अनिदेशित साक्षात्कार (Undirected or Unstructured Interview)

  निदेशित साक्षात्कार—यह एक प्रकार का अमुक्त प्रश्न समूह (Close Questionnaire) ही है। इस प्रकार के साक्षात्कार में विधि, प्रश्न, उनकी भाषा एवं क्रम तथा समय पूर्व-निश्चित होते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार से कई व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

  अनिदेशित साक्षात्कार—यह एक प्रकार का मुक्तोत्तर प्रश्न समूह (Open end Questionnaire) है इसको निदानात्मक साक्षात्कार, केन्द्रीकृत साक्षात्कार कहकर भी पुकारते हैं। इसका उपयोग मनोवैज्ञानिक अधिकतर प्रत्यक्षीकरण, प्रेरणा, अभिवृत्ति आदि के अध्ययन के लिये करते हैं।
- 'साक्षात्कार' परामर्श प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण अंग है, इसके बिना परामर्शदाता, प्रार्थी की समस्या को नहीं सुलझा सकता और न ही उसे ठीक से परामर्श दे सकता है। विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में छात्रों के लिए परामर्श परम आवश्यक है। विद्यालयों में परामर्शदाता एक निश्चित समय अन्तराल पर मीटिंग करते हैं जिससे प्रत्येक विद्यार्थी की समस्याओं को सुना व समझा जाता है।
- परामर्शदाता तथा प्रार्थी को साक्षात्कार प्रक्रिया के बारे में पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। उन्हें साक्षात्कार के दौरान होने वाली समस्त गतिविधियों तथा वार्तालाप का ज्ञान होना चाहिए। परामर्शदाता को प्रार्थी की समस्त समस्याओं तथा उसके पिछले रिकार्ड के बारे में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।
- छात्र को परामर्शदाता के बारे में ठीक जानकारी होनी चाहिए, उसको पता होना चाहिए कि क्या वह उसकी समस्याओं को सुलझाने में उसकी मदद कर सकेगा। अनुभवी परामर्शदाता अच्छी तरह जानते हैं कि प्रार्थी को किस प्रकार वार्तालाप के द्वारा शीघ्र तथा प्रभावी परामर्श देना है अत: साक्षात्कार के समय वे ऐसा वातावरण तैयार कर लेते हैं
- अपने प्रशिक्षण तथा पूर्वानुभवों के फलस्वरूप परामर्शदाता, परामर्श अपने उद्देश्य से पूर्णत: अवगत होता है। प्रार्थी के साथ हुए वार्तालाप से परामर्शदाता जान लेता है कि प्रार्थी की समस्या के अनुरूप उसे किस प्रकार का परामर्श देना है।
- जैसे-जैसे साक्षात्कार की प्रक्रिया आगे बढ़ती है, परामर्शदाता तथा प्रार्थी के बीच आपसी विश्वास के संबंधों का निर्माण होता जाता है। जब प्रार्थी, परामर्शदाता की लगन, ईमानदारी तथा अन्य मानवीय गुणों से परिचित होता है तो वह अपनी सभी समस्याओं तथा गहरी छिपी भावनाओं को उसके समक्ष प्रस्फुटित करता है, तथा परामर्शदाता के प्रति आश्वस्त हो जाता है कि वह उसकी समस्या को न सिर्फ बेहतर ढंग से समझ सकता है उसका बल्कि उसका निदान भी कर सकता है।
- वार्तालाप एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने अंदर छिपी भावनाओं को बाहर रख सकता हैं तथा परामर्शदाता उसको समझकर उसकी सहायता कर सकता है।
- साक्षात्कार में विभिन्न प्रकार के उतार-चढ़ावों द्वारा परामर्शदाता, प्रार्थी की सभी समस्याओं को जानने के बाद उस पर गहन विचार करता है। विभिन्न परिस्थितियों में अलग अलग परामर्श जाता है, यदि समस्या गंभीर नहीं है तो एक ही साक्षात्कार में परामर्श द्वारा प्रार्थी की समस्या का समाधान हो जाता है और यदि समस्या गंभीर है, तो समस्या का विश्लेषण किया जाता है, तथा उसे अगली बार साक्षात्कार के लिए दोबारा बुलाया जाता है।
- साक्षात्कार हो जाने के बाद भी परामर्शदाता प्रार्थी की देखरेख व निगरानी करते हैं, जब एक निश्चित समय अन्तराल पर प्रार्थी को दोबारा बुलाया जाता है तो सोच में हुए परिवर्तन को देखता है, तथा सुधार तथा अन्य परिवर्तनों को नोट करता है।

नोट

- परामर्श के साक्षात्कार प्रक्रिया एक कला है वहीं परामर्शदाता में प्रशिक्षण, अनुभव, ईमानदारी, मानवता आदि कई गुणों का समावेश होना चाहिए। परामर्शदाता का व्यवहार मित्रतापूर्ण किन्तु प्रतिष्ठापूर्ण होना चाहिए।
- इसकी प्रकृति लचीली (Flexible) होती है। अतएव किसी महत्वपूर्ण बात को पकड़कर आगे बढ़ा जा सकता है। इस प्रकार के वार्तालाप के द्वारा व्यक्तित्व के किसी ऐसे विशिष्ट पक्ष के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है जो अन्ततः व्यक्तित्व को समझने में अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है।
- इस प्रविधि के दौरान ऐसे प्रश्नों का स्पष्टीकरण किया जा सकता है जो व्यक्ति की समझ में न आया हों
- इसी प्रकार ऐसे उत्तरों के विषय में भी स्पष्टीकरण प्राप्त किया जा सकता है जो साक्षात्कारकर्ता न समझ पाया हो।
- इसके द्वारा साक्षात्कारकर्ता को व्यक्ति से सामरस्य (rapport) स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता है।
- इसके द्वारा ऐसे व्यक्तियों से सूचनायें प्राप्त की जा सकती हैं, जो तथ्यों को लिखित में देने से झिझकतें हों।
- वार्तालाप के दौरान साक्षात्कारकर्ता ऐसे संकेतों का अवलोकन कर सकता है जिससे व्यक्ति की अनिच्छा, असहयोग आदि मनोभावों का ज्ञान हो सके। इन्हीं संकेतों के आधार पर वह उत्तरों की वैधता की माप कर सकता है।
- साक्षात्कारकर्ता व्यक्ति के हाव-भाव को देखकर उसकी मनोवृत्तियों के विषय में धारणा बना सकता है, जैसे, आन्तरिक इच्छा, तनाव, रूचि, घृणा आदि।

16.6 शब्दकोश (Keywords)

- **साक्षात्कार**–व्यक्तित्व परीक्षण।
- **निदेशित**–निर्देश प्राप्त।
- **अनिदेशित**–बगैर निर्देश के।

16.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. साक्षात्कार प्रविधि क्या हैं? इसके कितने प्रकार हैं?
2. साक्षात्कार प्रविधि के विभिन्न चरणों का उल्लेख कीजिए।
3. साक्षात्कार प्रविधि की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
4. परामर्शदाता की व्यक्तिगत विशेषताएँ क्या हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

16.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counceling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—17: परामर्श सेवाएँ : व्यक्तिगत परामर्श (Counseling Services : Individual Counseling)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

17.1 व्यक्तिगत परामर्श की अवधारणा (Concept of Individual Counseling)

17.2 व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता (Need of Individual Counseling)

17.3 समस्याएँ तथा व्यक्तिगत परामर्श (Problems and Individual Counseling)

17.4 व्यक्तिगत परामर्श के लाभ (Advantages of Individual Counseling)

17.5 सारांश (Summary)

17.6 शब्दकोश (Keywords)

17.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

17.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- व्यक्गित परामर्श की अवधारणा, आवश्यकता, लाभ एवं सीमाओं की व्याख्या एवं विश्लेषण करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

वैयक्तिक समस्याओं का जन्म केवल प्रत्यक्ष कारणों से ही नहीं होता, वरन् अपने परोक्ष कारण इनके लिए उत्तरदायी होते हैं। अत: इन समस्याओं से संबंधित मूल कारणों की खोज के आधार पर ही इस प्रकार की समस्याओं के समाधान की दिशा में सहायता प्रदान की जानी चाहिए। व्यक्तिगत परामर्श में व्यक्तिगत जीवन से संबंधित समस्याओं का बोध एवं उन समस्याओं का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करने की योग्यता को विकसित किया जाता है। इस इकाई में हम व्यक्तिगत परामर्श के संदर्भ में अध्ययन करेंगे।

17.1 व्यक्तिगत परामर्श की अवधारणा (Concept of Individual Counseling)

व्यक्तिगत परामर्श, परामर्श की एक प्रविधि है जिसमें व्यक्ति विशेष को उसकी समस्याओं या भावनाओं को बहुत निकटता से सुना व समझा जाता है। व्यक्तिगत परामर्श का मानव जीवन में अधिक महत्व है। शिक्षा के उपरान्त व्यक्तिगत परामर्श ही ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के विकास एवं प्रगति हेतु सर्वाधिक सहायक होती है। इसमें सन्देह नहीं है कि यदि व्यक्तिगत परामर्श सेवाओं का सुव्यवस्थित जाल एवं यथोचित लाभ प्राप्त कराया जा सके तो अपेक्षित प्रगति की दिशा में अग्रसरित हुआ जा सकता है। यथेष्ठ मात्रा में परामर्श सेवाओं की व्यवस्था के साथ यह भी आवश्यक है कि भारत देश में परामर्श की जो व्यवस्था उपलब्ध है, उसे अधिकाधिक उद्देश्य केन्द्रित बनाया जाये।

नोट

यह व्यक्तियों को जिम्मेदारियों को लेने के लिए और अपने निर्णय लेने की अनुमति देकर एक अधिक परिपक्वता के लिए विकसित करने के लिए मदद करता है।

नोट्स परामर्श व्यक्ति के मार्गदर्शन की एक विधि है।

17.2 व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता (Need of Individual Counseling)

कभी-कभी जीवन में बहुत सी ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं जब व्यक्ति विवश होकर जीवन से हार जाता है, तथा निराश रहने लगता है, ऐसे समय में उसे परामर्श की आवश्यकता होती है। प्रत्येक छात्र को जीवन में विविध स्थितियों में निर्णय लेने तथा शिक्षा व वृत्तिक (Career) संबंधी लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता पड़ती है। बहुत से छात्र शारीरिक तथा मानसिक तौर पर बिल्कुल ठीक होते हुए भी निराशा अनुभव करते हैं। घर पर माता-पिता, मित्रों तथा अन्य व्यक्तियों के समझाने बुझाने का भी उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि वे छात्र के अंदर की मानसिक परेशानियों व उलझनों को समझने में सक्षम नहीं होते। व्यक्तिगत परामर्श प्रार्थी की आयु, रूचि तथा अनुभवों से संबंधित होता है। प्रार्थी की उलझन तथा समस्या घर में, घर के सदस्यों, शैक्षिक, सामाजिक तथा वृत्तिक कई प्रकार की हो सकती है, एक अच्छे परामर्शदाता का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रार्थी की समस्याओं व उलझनों को सुलझाकर तथा समस्या की जड़ तक पहुँचकर उसे समूल नष्ट किया जा सके, छात्र में आत्मविश्वास उत्पन्न हो तथा छात्र हर प्रकार की समस्याओं का सामना करने के योग्य बना सके।

17.2.1 घरेलू अनुभव

बहुत से बच्चों का जीवन कड़वे घरेलू अनुभवों से भरा होता है। कई बच्चे मातापिता तथा अन्य सदस्यों द्वारा अन्यायपूर्ण व्यवहार के कारण अपने आप को कुंठित महसूस करते हैं तो कुछ माता पिता के बीच घरेलू हिंसा को दिन रात देखने के कारण मानसिक तौर पर परेशान हो जाते हैं। कुछ बच्चे अपने माता पिता द्वारा अपने उसके छोटे भाई बहन को अधिक प्रेम व दुलार देने के कारण कुपित हो जाते हैं। इसी प्रकार किशोरावस्था में बहुत सी शारीरिक व मानसिक उलझनों तथा परेशानियों में उलझकर छात्र अपनी क्षमताओं तथा योग्यताओं का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाता है। ऐसे में व्यक्तिगत परामर्श की बहुत आवश्यकता होती है।

17.2.2 विद्यालयी अनुभव

विद्यालयी स्तर पर छात्रों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्राथमिक स्तर पर बच्चा जब विद्यालय में प्रवेश करता है तब उसे विद्यालय में एडजस्टमेंट की समस्या से जूझना पड़ता है। घर के प्रेम, वात्सल्य की आवश्यकता उसे विद्यालय में खलने लगती है। वह अपने सहपाठियों तथा अध्यापकों से प्रारम्भिक दौर में ठीक प्रकार से घुल मिल नहीं पाता, वहाँ बच्चे को व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता होती है, जोकि अध्यापक उसे कक्षा में या कक्षा के बाहर भी दे सकता है।

शैक्षणिक समस्याओं में बच्चे कई बार घिरकर अपने आपको असहाय महसूस करने लगते हैं, कई बच्चे किसी विशेष विषय (गणित, संस्कृत, विज्ञान) में कमज़ोर होते हैं, जिसके कारण वे अपने सहपाठियों से कक्षा कार्य तथा गृहकार्य में पीछे रह जाते हैं उनके परीक्षा परिणाम भी अच्छे नहीं आते, जिससे वे निराश होकर कई बार विद्यालय छोड़ देते हैं। कुछ बच्चे अन्तर्मुखी स्वभाव के होते हैं, जिसके कारण वे विद्यालय के कार्यक्रमों व क्रियाकलापों में भाग नहीं लेते, अध्यापक उन्हें प्रोत्साहित करते हैं पर वे उसे नहीं समझते हैं, इसलिए ऐसे बच्चों को उचित परामर्श तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। कई बार किशोरावस्था में बच्चे समाजविरोधी व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर दुर्व्यसनों का शिकार हो जाते हैं। वे अपनी पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते तथा परीक्षा में असफल हो जाते हैं, ऐसे बच्चों को भी व्यक्तिगत परामर्श की बहुत आवश्यकता होती है।

नोट

क्या आप जानते हैं जिन बच्चों के माता पिता दोनों कार्यालय जाते हैं तथा बच्चा आया अथवा नौकरानी के पास रहता है, उसमें माता पिता का प्यार न मिल पाने के कारण कई मानसिक व्याधियाँ आ जाती हैं।

17.3 समस्याएँ तथा व्यक्तिगत परामर्श (Problems and Individual Counseling)

छात्र जीवन में विभिन्न समस्याएँ जिनके समाधान के लिए व्यक्तिगत परामर्श बहुत आवश्यक है।

(*i*) तनाव
(*ii*) अवसाद
(*iii*) चिंता
(*iv*) आत्मसम्मान संबंधी
(*v*) शारीरिक छवि
(*vi*) दुर्व्यवहार
(*vii*) शैक्षणिक मामले

17.4 व्यक्तिगत परामर्श के लाभ (Advantages of Individual Counseling)

व्यक्तिगत परामर्श के कई लाभ हैं–

(*i*) प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत रूप से समझा जा सकता है जो परिवार के अन्य सदस्यों के साथ बैठकर नहीं किया जा सकता है।

(*ii*) व्यक्तिगत परामर्श के द्वारा व्यक्ति के दुख व समस्या का मूल कारण जाना जा सकता है जैसे छात्र संबंधी पढ़ाई में कमज़ोर होने के कारण, विविध परेशानियाँ।

(*iii*) छात्र अपनी अंदरूनी परेशानियों को दूसरों से गुप्त रख सकता है तथा परामर्शदाता द्वारा उसका समाधान पा सकता है।

व्यक्तिगत परामर्श की सीमाएँ–

(*i*) व्यक्तिगत परामर्श में केवल छात्र की समस्याओं और परेशानियों को समझा जाता है, किन्तु उसकी गल्तियों को अनदेखा किया जाता है।

(*ii*) व्यक्तिगत परामर्श द्वारा छात्र गलत तथ्यों की जानकारी दे सकता है जिससे परामर्शदाता परामर्श नहीं दे पाता।

टास्क व्यक्तिगत परामर्श द्वारा किन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. परामर्श व्यक्ति के मार्गदर्शन की एक विधि है।
2. बच्चों को विद्यालय में किसी प्रकार के मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं पड़ती।
3. व्यक्तिगत परामर्श प्रार्थी की आयु, रूचि तथा अनुभवों पर निर्भर करता है।
4. किशोरावस्था में छात्र किसी प्रकार की समस्या या उलझन महसूस नहीं करते हैं।

नोट

17.5 सारांश (Summary)

- काउंसलिंग व्यक्ति के मार्गदर्शन की एक विधि है। यह व्यक्तियों को जिम्मेदारियों को लेने के लिए और अपने निर्णय लेने की अनुमति देकर एक अधिक परिपक्वता के लिए विकसित करने के लिए मदद करता है।
- कभी-कभी जीवन में बहुत सी ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं जब व्यक्ति विवश होकर जीवन से हार जाता है, तथा निराश रहने लगता है, ऐसे समय में उसे परामर्श की आवश्यकता होती है। प्रत्येक छात्र को जीवन में विविध स्थितियों में निर्णय लेने तथा शिक्षा व वृत्तिक (Career) संबंधी लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता पड़ती है। बहुत से छात्र शारीरिक तथा मानसिक तौर पर बिल्कुल ठीक होते हुए भी निराशा अनुभव करते हैं।
- बहुत से बच्चों का जीवन कड़वे घरेलू अनुभवों से भरा होता है। कई बच्चे मातापिता तथा अन्य सदस्यों द्वारा अन्यायपूर्ण व्यवहार के कारण अपने आप को कुंठित महसूस करते हैं तो कुछ माता पिता के बीच घरेलू हिंसा को दिन रात देखने के कारण मानसिक तौर पर परेशान हो जाते हैं।
- विद्यालयी स्तर पर छात्रों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्राथमिक स्तर पर बच्चा जब विद्यालय में प्रवेश करता है तब उसे विद्यालय में एडजस्टमेंट की समस्या से जूझना पड़ता है। घर के प्रेम, वात्सल्य की आवश्यकता उसे विद्यालय में खलने लगती है। वह अपने सहपाठियों तथा अध्यापकों में खलने लगती है। वह अपने सहपाठियों तथा अध्यापकों से प्रारम्भिक दौर में ठीक प्रकार से घुल मिल नहीं पाता, वहाँ बच्चे को व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता होती है।
- कई बार किशोरावस्था में बच्चे समाजविरोधी व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर दुर्व्यसनों का शिकार हो जाते हैं। वे अपनी पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते तथा परीक्षा में असफल हो जाते है।
- छात्र जीवन में विभिन्न समस्याएँ जिनके समाधान के लिए व्यक्तिगत परामर्श बहुत आवश्यक है।

  (*i*) तनाव
  (*ii*) अवसाद
  (*iii*) चिंता
  (*iv*) आत्मसम्मान संबंधी समस्या
  (*v*) शारीरिक छवि
  (*vi*) दुर्व्यवहार
  (*vii*) शैक्षणिक मामले
- व्यक्तिगत परामर्श के कई लाभ हैं–

  (*i*) प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत रूप से समझा जा सकता है जो परिवार के अन्य सदस्यों के साथ बैठकर नहीं किया जा सकता है।

  (*ii*) व्यक्तिगत परामर्श के द्वारा व्यक्ति के दुख व समस्या का मूल कारण जाना जा सकता है जैसे छात्र संबंधी पढ़ाई में कमज़ोर होने के कारण, विविध परेशानियाँ।

  (*iii*) छात्र अपनी अंदरूनी परेशानियों को दूसरों से गुप्त रख सकता है तथा परामर्शदाता द्वारा उसका समाधान पा सकता है।
- व्यक्तिगत परामर्श की सीमाएँ–

  (*i*) व्यक्तिगत परामर्श में केवल छात्र की समस्याओं और परेशानियों को समझा जाता है, किन्तु उसकी गल्तियों को अनदेखा किया जाता है।

17.6 शब्दकोश (Keywords)

- **व्यक्तिगत**–निजी मामला।
- **परामर्श**–सलाह।

नोट

17.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. व्यक्तिगत परामर्श की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
2. किन समस्याओं से निबटने के लिए विद्यालयों में व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता होती है?
3. व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
4. व्यक्तिगत परामर्श के लाभ तथा हानियाँ लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य।

17.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–18: परामर्श सेवाएँ (Counseling Services)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
18.1 सामूहिक परामर्श तकनीक (Group Counseling Technique)
18.2 समूह निर्देशन तथा समूह परामर्श का महत्व (Importance of Group Guidance and Group Counseling)
18.3 सारांश (Summary)
18.4 शब्दकोश (Keywords)
18.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)
18.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- सामूहिक परामर्श सेवा तकनीक की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

समस्याओं का उत्पन्न होना व्यक्ति के लिए कोई नयी बात नहीं है। व्यक्ति के सम्मुख समस्याएँ आती रहती हैं। समस्याओं की गम्भीरता और स्वरूप में अन्तर हो सकता है। लेकिन कोई भी व्यक्ति समस्या समाधान की प्रक्रिया के उपरान्त ही आगे बढ़ पाता है। इन समस्याओं के समाधान सहायता प्रदान करने की दिशा में निर्देशन प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न सेवाओं का संगठन किया जाता है। निर्देशन से सम्बन्धित इन सेवाओं के अंतर्गत, परामर्श सेवा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

18.1 सामूहिक-परामर्श तकनीक: (Group Counseling Technique)

परामर्श की प्रक्रिया मूलरूप में वैयक्तिक होती है, इस प्रक्रिया को सदैव ही वैयक्तिक रूप में आयोजित करना सम्भव है। यही कारण है कि गत तीन दशकों में, समूह निर्देशन विधि का प्रयोग प्रारम्भ हुआ है। लेकिन निर्देशन के कुछ विशेषज्ञ समूह निर्देशन को निर्देशन अथवा परामर्श की संज्ञा देना नहीं चाहते हैं। तथा उन्हें इसमें निर्देशन के वास्तविक स्वरूप की विकृति ही परिलक्षित होती है। डिंकमायर का मानना है कि छात्र के स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया को तीव्र एवं प्रभावशाली बनाने का साधन है। इस प्रकार, डिकमायर एवं काल्डवेल ने ही को ''शैक्षिक प्रक्रिया का अंग माना है। उनके अनुसार यह प्रत्येक छात्र को एक ऐसी अन्तर्वैयक्तिक प्रक्रिया में सम्मिलित होने का अवसर देता है, जिसके द्वारा वह अपने सम-समूह के साथ कार्य करते हुए, अपनी विकासात्मक समस्याओं से अधिक सामर्थ्य से समाधान हेतु तैयार होता है।''

"Development group counseling is a part of the educational process. It provides the opportunity for each students to engage in an interpersonal process through which he works with a peer group to explore his feelings, attitudes, values and concerns, thus preparing himself to deal more capably with developments problems.

-Dink Myre and Coldwel

समूह-निर्देशन एवं 'समूह-परामर्श' दोनों शब्दों का अर्थ अलग-अलग है। समूह निर्देश के अन्तर्गत, अधिकांश छात्र निष्क्रिय रूप में सम्मिलित हो सकते हैं, जबकि समूह-उपबोधन में स्थिति बिल्कुल भिन्न होता है। इसमें समूह के छात्रों को सक्रिय सहभागिता के आधार पर परस्पर अन्त:क्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित करना होता है। इस प्रकार के समूह-निर्देशन में, समूह उपबोधन की अपेक्षा बड़ा समूह उपयुक्त होता है। उद्देश्यों की दृष्टि से दोनों समान है परन्तु कार्यपद्धति भिन्न-भिन्न है।

नोट्स समूह-परामर्श के सन्दर्भ में दो से छ: छात्रों के छोटे समूह में समस्त छात्रों को सक्रिय रूप से सम्मिलित होना आवश्यक है।

कोहन के अनुसार- ''समूह परामर्श छोटे समूह के अन्तर्गत अन्त:क्रिया पर आधारित अपेक्षाकृत अधिक गहन एवं वैयक्तिक तरीके से सम्पन्न होता है। जबकि समूह-निर्देशन की क्रियाओं में अधिकांश बालक मात्र दर्शक होते हैं। लेकिन इससे सीखने में तत्पर होते हैं। इनमें परस्पर सम्बन्ध परिवार के समान रहता है, जिसमें समस्त सूचनायें प्रकट नहीं होती हैं और व्यक्ति अपनी गम्भीर शंकाओं को भी अभिव्यक्ति करने हेतु स्वतंत्र होता है। इस मामले में व्यक्ति अपनी गहनतम शंकाओं को भी अभिव्यक्ति करने का अवसर देते हैं। इस मामले में वैयक्तिक अन्तर्भाविता अत्यन्त महत्वपूर्ण बन जाती है।''

"Group counseling based upon interaction within a small group, operates at a greater depth and in a much more personal manner. In group guidance activities, many of the children may be spectators but they are still learning. In the counseling context within a group of two to six pupils the usual number all should be or become active participants. The relationship becomes like that within a family where all information is not public and when one is free to reveal even his darkest deads. In this context personal involvements is cruicial."

—Kphan

कोहन के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि समूह-परामर्श की प्रक्रिया के अन्तर्गत, सक्रिय सहभागिता, व्यक्तिगत अन्तर्भाविता एवं अन्त:क्रिया का होना अत्यन्त आवश्यक है। इस बात का समर्थन करते हुए *हिल* एवं *लकी* ने लिखा है- ''समूह-परामर्श के माध्यम से अत्यन्त वैयक्तिक ढंग का अधिगम अनुभव प्राप्त होते हैं।''

क्या आप जानते हैं डिंकमायर ने समूह निर्देशक को ''विकासात्मक समूह परामर्श'' कहा है।

18.2 समूह निर्देशन तथा समूह परामर्श का महत्त्व (Importance of Group Guidance and Group Counseling)

सीखने से सम्बन्धित अनुभवों की गहनता तथा बोध क्षमता के समुचित विकास हेतु इन दोनों प्रविधियों का विशेष महत्व है। समूह-निर्देशन एवं समूह-परामर्श द्वारा छात्रों में आत्म-बोध का विकास किया जा सकता है तथा इससे छात्रों के परस्पर सम्बन्धों को मधुर एवं स्वस्थ बनाने में भी सहायता प्राप्त होती है। समूह-परामर्श तथा समूह-निर्देशन महत्व अनेक दृष्टियों से होता है।

नोट

(1) छात्र में सामूहिक निर्णय लेने की क्षमता विकसित करने की दृष्टि से–इन प्रविधियों के माध्यम से छात्रों में स्वयं की समस्याओं का सामूहिक रूप में विश्लेषण करने, समस्याओं को समझने एवं मूल्यांकन करने की योग्यता का विकास होता है। इसमें छात्रों में समूह के अन्य सदस्यों के प्रति सहयोग करने की भावना विकसित होती है। यह सहयोग की भावना, सामूहिक जीवन हेतु अपेक्षित समायोजन की क्षमता का विकास करने में भी सहायक होती है।

(2) परामर्शदाताओं एवं अध्यापकों को, विद्यार्थी के व्यक्तित्व से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों को स्पष्ट करने की दृष्टि से–छात्र की व्यक्तित्व से सम्बन्धित अनेक विशेषताएं, अपने सम-समूहों में अन्त:क्रिया के अन्तर्गत सामने आती हैं। अध्यापक एवं परामर्शदाता, समूह-निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत छात्र के व्यक्तित्व के इन गुणों को अवलोकन सहजता से कर सकने में सफल हो सकते हैं।

(3) आवश्यकताओं तथा समस्याओं को पहचानने की दृष्टि से–छात्र समूह-निर्देशन के द्वारा अपनी आवश्यकताओं एवं समस्याओं को पहचानने लग जाते हैं, परिणामस्वरूप वैयक्तिक परामर्श का कार्य सहज हो जाता है।

(4) सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों पर ध्यान देने की दृष्टि से–निर्देशन प्रक्रिया में सामान्यत: सामान्य वर्ग के शब्दों पर ध्यान देने हेतु समय प्राप्त नहीं हो पाता है। अत: समूह निर्देशन के माध्यम से सामान्य वर्ग के छात्रों हेतु विशिष्ट सुविधायें प्राप्त कराई जा सकती हैं।

(5) अभिव्यक्तियों व व्यवहारों में सुधार करने की दृष्टि से–समूह उपबोधन के माध्यम से, विद्यार्थियों के अनैतिक व्यवहारों, दृष्टियों एवं प्रवृत्तियों में परिष्करण कर, उन्हें वांछनीय मान्यताओं एवं मानकों की ओर सहजता से अग्रसरित किया जा सकता है।

(6) अधिक से अधिक विद्यार्थियों से सम्पर्क स्थापित करने की दृष्टि से–समूह परामर्श में, परामर्शदाता एक साथ अधिक से अधिक छात्रों से मिल सकता है और उन छात्रों की सामान्य कठिनाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है।

(7) छात्रों को परस्पर विचारों तथा आदान-प्रदान में सहायता करने की दृष्टि से–समूह-निर्देशन पद्धति के माध्यम से शिक्षार्थी परस्पर विचार विमर्श करने हेतु प्रोत्साहित होते हैं, परिणामस्वरूप उनमें सहयोग एवं सद्‌भाव की भावना का विकास होता है।

(8) मितव्ययी एवं कुशलता की दृष्टि से–आवश्यक सूचनाओं एवं निर्देशन के सुझावों को अल्प समय में, अधिक छात्रों को समूह-निर्देशन द्वारा सम्प्रेषित किया जा सकता है। इससे परामर्शदाता को अन्य महत्वपूर्ण पक्षों पर ध्यान देने तथा विचार करने हेतु समय प्राप्त हो जाता है।

टास्क व्यक्तिगत परामर्श से आप क्या समझते हैं?

स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें। (State whether the following statements are 'True' or 'False')

1. परामर्श और निर्देशन में कोई अन्तर नहीं होता है।
2. परामर्श का अर्थ पारस्परिक विनिमय से होता है।
3. परामर्श में प्रार्थी पर कोई निर्णय थोपा नहीं जाता है।
4. परामर्श की प्रक्रिया त्रिपादी होती है।
5. स्वरूप के आधार पर परामर्श के दो प्रकार होते हैं।

नोट

18.3 सारांश (Summary)

- परामर्श की प्रक्रिया मूलरूप में वैयक्तिक होती है, इस प्रक्रिया को सदैव ही वैयक्तिक रूप में आयोजित करना सम्भव है। यही कारण है कि गत तीन दशकों में, समूह निर्देशन विधि का प्रयोग प्रारम्भ हुआ है। लेकिन निर्देशन के कुछ विशेषज्ञ समूह निर्देशन को निर्देशन अथवा परामर्श की संज्ञा देना नहीं चाहते हैं। तथा उन्हें इसमें निर्देशन के वास्तविक स्वरूप की विकृति ही परिलक्षित होती है।
- समूह-निर्देशन एवं 'समूह-परामर्श' दोनों शब्दों का अर्थ अलग-अलग है। समूह निर्देशन के अन्तर्गत, अधिकांश छात्र निष्क्रिय रूप में सम्मिलित हो सकते हैं, जबकि समूह-उपबोधन में स्थिति बिल्कुल भिन्न होता है। इसमें समूह के छात्रों को सक्रिय सहभागिता के आधार पर परस्पर अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित करना होता है।
- सीखने से सम्बन्धित अनुभवों की गहनता तथा बोध क्षमता को समुचित विकास हेतु इन दोनों प्रविधियों का विशेष महत्व है। समूह-निर्देशन एवं समूह-परामर्श द्वारा छात्रों में आत्म-बोध का विकास किया जा सकता है तथा इससे छात्रों के परस्पर सम्बन्धों को मधुर एवं स्वस्थ बनाने में भी सहायता प्राप्त होती है। समूह-परामर्श तथा समूह-निर्देशन महत्व अनेक दृष्टियों से होता है।

  (1) **छात्र में सामूहिक निर्णय लेने की क्षमता विकसित करने की दृष्टि से**-इन प्रविधियों के माध्यम से छात्रों में स्वयं की समस्याओं का सामूहिक रूप में विश्लेषण करने, समस्याओं को समझने एवं मूल्यांकन करने की योग्यता का विकास होता है।

  (2) **परामर्शदाताओं एवं अध्यापकों को, विद्यार्थी के व्यक्तित्व से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों को स्पष्ट करने की दृष्टि से**-छात्र की व्यक्तित्व से सम्बन्धित अनेक विशेषताएं, अपने सम-समूहों में अन्तःक्रिया के अन्तर्गत सामने आती हैं।

  (3) **आवश्यकताओं तथा समस्याओं को पहचानने की दृष्टि से**-छात्र समूह-निर्देशन के द्वारा अपनी आवश्यकताओं एवं समस्याओं को पहचानने लग जाते हैं, परिणामस्वरूप वैयक्तिक परामर्श का कार्य सहज हो जाता है।

  (4) **सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों पर ध्यान देने की दृष्टि से**-निर्देशन प्रक्रिया में सामान्यतः सामान्य वर्ग के शब्दों पर ध्यान देने हेतु समय प्राप्त नहीं हो पाता है।

  (5) **अभिव्यक्तियों व व्यवहारों में सुधार करने की दृष्टि से**-समूह उपबोधन के माध्यम से, विद्यार्थियों के अनैतिक व्यवहारों, दृष्टियों एवं प्रवृत्तियों में परिष्करण कर, उन्हें वांछनीय मान्यताओं एवं मानकों की ओर सहजता से अग्रसरित किया जा सकता है।

  (6) **अधिक से अधिक विद्यार्थियों से सम्पर्क स्थापित करने की दृष्टि से**-समूह परामर्श में, परामर्शदाता एक साथ अधिक से अधिक छात्रों से मिल सकता है और उन छात्रों की सामान्य कठिनाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है।

  (7) **छात्रों को परस्पर विचारों तथा आदान-प्रदान में सहायता करने की दृष्टि से**-समूह-निर्देशन पद्धति के माध्यम से शिक्षार्थी परस्पर विचार विमर्श करने हेतु प्रोत्साहित होते हैं, परिणामस्वरूप उनमें सहयोग एवं सद्भाव की भावना का विकास होता है।

18.4 शब्दकोश (Keywords)

- **उपरान्त–** बाद में।
- **परिलक्षित–** दिखाई देना।

नोट

18.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सामूहिक परामर्श तकनीक से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिए।
2. समूह निर्देशन एवं समूह परामर्श के महत्व का विवेचन कीजिए।

उत्तर– स्व–मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

(1) असत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) सत्य

(5) सत्य

18.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–19: मनो-उपचार
(Psychotherapy)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

19.1 मनोपचार का अर्थ (Meaning of Psychotherapy)

19.2 मनोपचार की विभिन्न प्रविधियाँ (Different Methods of Psychotherapy)

19.3 मनो-उपचार की प्रक्रिया (Process of Psychotherapy)

19.4 सारांश (Summary)

19.5 शब्दकोश (Keywords)

19.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

19.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मनो-उपचार की प्रक्रिया और अर्थ को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मानसिक चिकित्सा में बालक के अपराध का मनोवैज्ञानिक निदान एवं उपचार किया जाता है। अपराध के कारणों को जानकर उन कारणों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। सर्वप्रथम मानसिक चिकित्सक बाल-अपराध के लक्षणों को ध्यान से समझने की कोशिश करता है। वह अपराध की प्रवृत्ति को हर पहलू से समझता है। अपराध के कारणों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। तत्पश्चात् इस प्रवृत्ति के प्रति बालापराधी की चेतना को प्रसुप्त करना चाहता है।

19.1 मनो-उपचार का अर्थ (Meaning of Psychotherapy)

मनो-उपचार प्रविधि एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के आन्तरिक चिन्ताओं एवं कठिनाइयों से मुक्ति दिलाने में सहायता करती है। व्यक्ति में समाहारक व आशावान भावनाओं को उत्पन्न करती है। *हेमफ्री* तथा *टेक्सलर* ने परिभाषा दी है–

"उपचार प्रविधि से व्यक्तिगत समस्याओं के लिए सन्तोषजनक समाधान का विकास किया जाता है। प्रार्थी और परामर्शदाता प्रथम सम्पर्क में ऐसा प्रयास करते हैं।"

"Therapy, the development of satisfactory solution of a personal problem, is a goal towards which the counselor and counselee have worked from the moment of their first contact."

– J.A. Hamphrys & A.E. Traxlar

नोट

मनो-उपचार प्रविधि का लक्ष्य आत्म-अनुभूति का विकास करना है और उसको अज्ञानता से मुक्त कराना है। मनो-उपचार प्रविधि से स्वयं ज्ञान, आत्म-अनुभूति एवं सूझ का बोध व्यक्ति स्वयं करने लगता है।

> *नोट्स* मनो-उपचार प्रविधि से मानसिक स्वास्थ्य सामान्य किया जाता है और व्यक्ति अधिक परिपक्व, लचीला तथा अनुकूलित एवं सहयोगी गुणों का विकसित किया जाता है।

मनो-उपचार प्रविधि की आवश्यकता एवं उपयोग (Need and Use of Therapeautic Device)

मनो-उपचार प्रविधि की आवश्यकता तथा उपयोग तब किया जाता है जब व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य, सन्तुलन तथा समायोजन अधिक गम्भीर हो जाता है। इसका उपचार सामान्य प्रविधियों से करना सम्भव नहीं होता है। गम्भीर कुसमायोजन के व्यक्तियों के लिए मनो-उपचार प्रविधि प्रयुक्त की जाती है।

मनो-उपचार प्रविधि का उपयोग निम्नांकित परिस्थितियों में होता है–

1. संवेगात्मक विक्षिप्त बालकों हेतु,
2. मानसिक रूप से कमजोर बालकों हेतु,
3. शारीरिक रूप से अपंग या बाधित बालकों हेतु,
4. शैक्षिक मन्दित बालकों हेतु,
5. विभिन्न परिस्थितियों में समस्यात्मक बालक हेतु,
6. सामान्य बालकों के कुसमायोजन हेतु।

निदान तथा मनो-उपचार को पृथक करना कठिन है। *वारेन* ने इनमें अन्तर करने का प्रयास किया। *वारेन* के अनुसार परामर्शदाता प्रयास करता है कि–

1. छात्र को समझने का भरसक प्रयास करता है।
2. प्रत्यक्ष रूप में मनो-उपचार प्रविधि से छात्र की सहायता करता है वह उसका अथार्पन करता है।

इस प्रकार प्रविधि में दो सोपानों का अनुसरण किया जाता है–(1) प्रथम निदान करना, (2) द्वितीय मनो-उपचार करना। निदान में एकल अध्ययन तथा जीवनगाथा का अर्थापन किया जाता है। यह मनो-उपचार प्रक्रिया मुख्य उपकरण है।

19.2 मनो-उपचार की विभिन्न प्रविधियाँ (Different Methods of Psychotherapy)

मनो-उपचार की प्रक्रिया की कई रूपों में प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ कुछ प्रमुख मनो-उपचार के रूपों का उल्लेख किया गया है–

(1) मनो-उपचार प्रत्यक्ष प्रविधि (Direct Form Therapy)
(2) सामूहिक मनो-उपचार प्रविधि (Group Psycho-Therapy)
(3) शाब्दिक सामूहिक मनो-उपचार प्रविधि (Verbal Group Therapy)
(4) सामूहिक कार्य मनो-उपचार प्रविधि (Activity Group Therapy)
(5) रोजगार मनो-उपचार प्रविधि (Occupational Therapy)
(6) खेल मनो-उपचार प्रविधि (Play Therapy) तथा
(7) पर्यावरण मनो-उपचार प्रविधि (Environmental Therapy)

इन मनो-उपचार प्रविधियों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया गया है–

(1) मनो-उपचार प्रत्यक्ष प्रविधि (Direct Form Therapy)–इस प्रविधि में प्रत्यक्ष रूप से जो असमायोजन के

नोट

लक्षण दिखाई देते हैं उनका सुधार तथा उपचार किया जाता है उससे मनोविज्ञान का ज्ञान भी होता है। यह सुझाव भी है कि उसे चिन्ताओं के कुप्रभाव की जानकारी देने से उसके स्वास्थ्य और मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा और इससे कुछ भी भला नहीं होना है।

(2) सामूहिक मनो-उपचार प्रविधि (Group Psycho-Therapy)–इस प्रविधि का विकास तथा उपयोग *एस. आर. सलवसन* ने न्यूयार्क में किया था। यह सामाजिक अनुभव प्रदान करती है। उपचारकर्त्ता व्यक्ति के सम्बन्धों का अध्ययन करता है तथा साक्षात्कार भी करता है कि आन्तरिक पक्षों को कौन से सामाजिक व्यवहार प्रभावित करते हैं और उनसे मुक्ति में क्या कठिनाई आती है इससे निदान किया जाता है और उसी के अनुरूप उपचार किया जाता है। इस प्रविधि से एक बड़ी संख्या में व्यक्तियों/बालकों का उपचार किया जाता है और वे ठीक हो जाते हैं। समूह का आकार छोटा होता है जिसमें 5 से 10 तक सदस्य ही रखे जाते हैं।

स्ट्रेंग रथ ने इसके चार लाभ बताये हैं–(1) व्यक्ति की मूल आवश्यकताओं को स्वीकार करके उनकी पूर्ति की जाती है। (2) आवश्यकता की पूर्ति से अहम् की सन्तुष्टि की जाती है। (3) आवश्यकता की पूर्ति सर्जनात्मक क्रियाओं से की जाती है तथा (4) आवश्यकता की पूर्ति हेतु सामाजिक पुनर्शिक्षा भी दी जाती है।

(3) शाब्दिक सामूहिक मनो-उपचार प्रविधि (Verbal Group Therapy)–इस प्रविधि में विशेषज्ञ समूह को क्रमशः एक श्रेणीबद्ध व्याख्यान देता है, किस सामायोजन की प्रक्रिया किस प्रकार सम्पादित होती है और व्यक्ति समस्याओं का भी उदाहरण देकर स्पष्टीकरण करता है। व्यक्ति संवेगात्मक समस्याओं से किस प्रकार चिन्तित हो जाता है। समूह के सदस्यों को अपनी-अपनी समस्याओं को समझाने और उनसे मुक्ति पाने का उपाय भी मिल जाता है।

(4) सामूहिक कार्य मनो-उपचार प्रविधि (Activity Group Therapy)–इस प्रविधि में व्यक्ति को सामूहिक कार्य में लगाया जाता है जैसे–चित्रकारी, लकड़ी का कार्य, कुटीर-उद्योग, मिट्टी से मॉडल बनाना तथा धातु सम्बन्धी कार्य, टोकरी बनाना, सिलाई, बुनाई आदि। सामूहिक खेल का भी आयोजन किया जाता है। बालकों को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने तथा खेलने का अवसर दिया जाता है जिससे समायोजन प्रवृत्ति विकसित होती है और कुसमायोजन से छुटकारा मिलता है। मानसिक एवं शारीरिक रूप से क्रियाशील रहते हैं।

(5) रोजगार मनो-उपचार प्रविधि (Occupational Therapy)–इस प्रविधि के अन्तर्गत रोगी को किसी शारीरिक कार्य में लगाया जाता है और खेलने का भी अवसर दिया जाता है। कोई बन्धन नहीं होता है कार्य करने तथा खेलने की पूर्ण स्वतंत्रता दी जाती है। जिससे अचेतन दबी हुई इच्छाओं की पूर्ति होती है।

(6) खेल मनो-उपचार प्रविधि (Play Therapy)–इस प्रविधि में प्रक्षेपण प्रविधियों की सहायता ली जाती है। जिससे उनके अचेतन मस्तिष्क की जानकारी होती है और उसी के अनुरूप उपचार किया जाता है।

क्लार्क ई. मौस ने खेल मनो-उपचार प्रविधि को अधिक प्रभावशाली बताया है क्योंकि बालक को अपनी अभिव्यक्ति करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी जाती है। उसे सुरक्षा का अनुभव होता है। जिसके परिणाम स्वरूप अपने संवेगों के प्रति सूझ होने लगती है। वे अपनी अभिवृत्तियों का सम्प्रेषण भी करते हैं। यह सब कुछ उन्हें पढ़ाया नहीं जा सकता अपितु वे स्वयं सीखते हैं। खेल मनो-उपचार प्रविधि सामान्य बालकों समस्याओं के उपचार हेतु भी प्रयुक्त की जाती है। खेल-प्रविधि में अपनी अभिवृत्तियों की अभिव्यक्ति करते जिन्हें कक्षा-शिक्षण में नहीं कर पाते हैं। जिससे उनके उपचार तथा निदान में सहायता मिलती है।

(7) पर्यावरण मनो-उपचार प्रविधि (Environmental Therapy)–किसी भी उपचार को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए पर्यावरण परिस्थितियों में सुधार की आवश्यकता होती है। कभी-कभी घर बदलने से, विद्यालय बदलने से समुचित समायोजन परिस्थितियों को उत्पन्न करने से समस्या का समाधान हो जाता है। माता-पिता का व्यवहार भी कुसमायोजन के लिए उत्तरदायी होता है। घर के वातावरण की भूमिका अहम् होती है। उपचार विशेषज्ञ को माता-पिता का सहयोग लेना नितान्त आवश्यक होता है तभी उसे निदान एवं उपचार में सफलता मिल सकती है।

मानसिक चिकित्सा में कई प्रविधियों का आश्रय लिया जाता है। सम्मोहन द्वारा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को चेतना के पटल से हटाया जाता है। बालापराधी में कभी-कभी कोई संवेग बड़ा प्रबल हो जाता है और वह बालक के मन में अन्तर्द्वन्द्व

नोट

की उत्पत्ति कर देता है। इस अन्तर्द्वन्द्व के कष्ट से मुक्ति प्रदान करने के लिए मानसिक चिकित्सक सम्मोहन का आश्रय लेता है। कभी-कभी किसी औषधि द्वारा भी बाल-अपराधी को अचेत कर दिया जाता है। सम्मोहन की अवस्था में बालक को अनेकों संकेत प्रदान किए जाते हैं जिससे वह अपने मानसिक विकास से छुटकारा पा लिया जाय। संकेत प्रदान करने का उद्देश्य यह होता है कि बालापराधी का 'अहम' जाग्रत हो जाय और उसमें दृढ़ता आ जाय। अहम की दृढ़ता से रोग या अपराध के लक्षण धीरे-धीरे मिटने लगते हैं।

सम्मोहन की अवस्था में संकेत प्रदान करने के अतिरिक्त कभी-कभी बालापराधी को जाग्रत अवस्था में भी संकेत दिए जाते हैं। इन संकेतों का भी उद्देश्य 'अहं' को दृढ़ बनाना ही रहता है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कुछ बालापराधी संवेगात्मक प्रबलता के ही कारण अपराध करने लगते हैं। अत्यधिक चिन्ता, क्रोध, भय आदि कभी-कभी अपराध को जन्म दे देते हैं। कभी-कभी बालकों में काम-ग्रन्थि, अधिकार-ग्रन्थि, उच्चता-ग्रन्थि, हीनता-ग्रन्थि आदि भावना-ग्रन्थियाँ उत्पन्न होती हैं। कभी-कभी बालकों में स्नायुविकृति का मानसिक रोग हो जाता है। ऐसी अवस्था में अपराधियों का सुधार प्रोबेशन पर रिहा कर देने से अथवा सुधारगृह में भेज देने से नहीं होता है। इनके लिए मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता होती है। अत: मानसिक चिकित्सा की प्रक्रिया को भी संक्षेप में समझ लेना आवश्यक समझ पड़ता है।

मानसिक चिकित्सा का सबसे पहला कदम ग्रन्थियों तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों को खोजना है। बालापराधी की उन प्रवृत्तियों को जानने का प्रयत्न किया जाता है जिनके वश में आकर बालक विशेष ने अपराध किया है। इसी समय यह देखने का प्रयत्न किया जाता है कि अपराध के कारण का बालक की किसी ग्रन्थि से संबंध तो नहीं है। यदि यह निश्चय हो जाता है कि बालापराधी के अपराध का कारण उसके संवेग में अथवा अचेतन मस्तिष्क में है तो मनोविश्लेषण की प्रक्रिया प्रारंभ होती है।

मानसिक चिकित्सा की विधि बालापराध को दूर करने की एक प्रमुख विधि है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' अथवा 'असत्य' लिखिए** (State whether the following statements are 'True' or 'False')–
   1. मनो-उपचार प्रविधि की आवश्यकता तथा उपयोग तब किया जाता है जब व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य, संतुलन तथा समायोजन अधिक गम्भीर हो जाता है।
   2. सामूहिक मनो-उपचार प्रविधि में समूह का आकार छोटा होता है जिसमें 5 से 10 तक सदस्य ही रखे जाते हैं।
   3. सामूहिक मनो-उपचार प्रविधि का विकास तथा उपयोग क्लार्क ई. मौस ने दक्षिणी अफ्रीका में किया था।
   4. खेल मनो-उपचार प्रविधि में विशेषज्ञ समूह को क्रमश: एक श्रेणीबद्ध व्याख्यान देता है।

19.3 मनो-उपचार की प्रक्रिया (Process of Psychotherapy)

मनोविश्लेषक मनोविश्लेषण की प्रक्रिया में बाल-अपराधी की जीवनी मालूम करता है। मनोविश्लेषक की कुशलता इसी में है कि वह बालक के सही इतिवृत्त को मालूम कर ले। उसे सदैव बालक को यह बतला देना चाहिए कि वह कोई वकील या अफसर नहीं है, वह बालक के कारनामों पर कोई कानूनी कार्यवाही नहीं करेगा तथा वह बालक की समस्याओं को जानने के लिए ही उसकी जीवनी जानना चाहता है। उसे सदैव बालक को यह आभास करा देना चाहिए कि वह उसका सहायक तथा मित्र है। बालक में मनोविश्लेषक के सामने निर्भयता लाना एक कला है। मनोविश्लेषक अपनी चतुरता से बालक की लज्जा को दूर कर सकता है। कभी-कभी बालक अपनी पुरानी

नोट

घटनाओं को बतलाने में भय या लज्जा करते हैं। विशेषत: काम संबंधी घटनाओं को तो बालक छिपाने का ही प्रयत्न करते हैं। इन सब बातों का मनोविश्लेषक को ध्यान रखना है। मनोविश्लेषक बालक से पूछ सकता है, "तुमने सबसे पहले कौन-सा अपराध किया?" पहले अपराध का जानना बड़ा आवश्यक है। बालक को यह बतला देना है कि वह अपनी स्मृति में पीछे की ओर जितना लौट सके लौटे और सबसे पहले की घटना को याद करे। वह पहला अपराध किन परिस्थितियों में हुआ? उस समय बालक के माता-पिता की आर्थिक दशा कैसी थी? उस समय बालक के मन में क्या विचार मँडरा रहे थे? उसकी कल्पना का क्या हाल था? उनकी आशाएँ एवं निराशाएँ क्या थीं? उस समय उसकी आवश्यकताएँ, इच्छाएँ एवं रुचियाँ कैसी थीं? इन सब प्रश्नों का उत्तर मनोविश्लेषक ढूँढने का प्रयत्न करता है। वह बालक की गाथा को शान्ति-पूर्वक एवं धैर्यवान श्रोता की भाँति सुनता जाता है।

मनोविश्लेषक अवसर पाकर बालक के स्वप्नों के विषय में भी पूछताछ करता है। कभी-कभी बालक के साथ अनौपचारिक रीति से वार्तालाप करने लगता है। जिस समय बालक अपनी घटनाओं का वर्णन करता रहता है उस समय मनोविश्लेषक बड़े ध्यान से मन में ही बालक के वर्णन की शैली को नोट करता रहता है। वह बालक के हावभाव को तथा उसके अंगों के संचालन को भी देखता रहता है। बालक की आवाज के उतार-चढ़ाव का भी ध्यान रखता है। बालक किन-किन जगहों पर अपने वर्णन में रुकता है? उसके वर्णन की गति कैसी है? इन बातों को भी मनोविश्लेषक चुपचाप देखता रहता है। बालक के चेहरे पर लाली का दौड़ना, लज्जाशील होना, घृणा का भाव, भौहें टेढ़ी होना आदि पर भी वह अपनी नजर रखता है। मानसिक चिकित्सा में इन सबका महत्व है।

कभी-कभी बालक अपनी घटनाओं में नमक-मिर्च लगा देते हैं। कभी-कभी वे झूठ बोलते हैं। कभी-कभी वे चिकित्सक को भी बेवकूफ बनाने का प्रयत्न करते हैं। कभी-कभी वे कल्पना-लोक में उड़ जाते हैं। कभी-कभी वे रोने या हँसने लगते हैं। मनोविश्लेषक को ऐसे समय में बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए तो सभी व्यक्ति मनोविश्लेषण का कार्य नहीं कर सकते हैं। इसके लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता होती है।

जब बाल-अपराधी की दबी हुई मानसिक ग्रन्थियों को अथवा अतृप्त इच्छाओं एवं वासनाओं को मनोविश्लेषक जाना लेता है एवं वह उसे बालक के चेतना के स्तर पर लाने में समर्थ हो जाता है, तब वह बालक को यह समझाने का प्रयत्न करता है कि उसके अपराधों के अज्ञात कारण के रूप में ये दबी हुई अतृप्त इच्छाएँ एवं वासनाएँ थीं। बालक अपनी इन दबी हुई इच्छाओं को जान लेने के पश्चात् प्राय: इनसे मुक्त हो जाता है। यदि बालक को अपनी ग्रन्थियों का सही कारण मालूम हो जाता है तो प्राय: यह मानसिक गाँठ खुल जाती है। ग्रन्थि का निवास अचेतन मस्तिष्क में ही रहता है, चेतन स्तर पर आते ही वह अदृश्य हो जाती है, किन्तु इतने से ही मनोविश्लेषण की क्रिया की इतिश्री नहीं होती है। अचेतन मन में बैठकर कारणों को खोजना ही सब कुछ नहीं है। कभी-कभी केवल इतनी प्रक्रिया से ही बालक में वाँछित सुधार भी नहीं हो पाता। बाल-अपराधी में वाँछित सुधार लाने के लिए बालक को उपर्युक्त प्रक्रिया के पश्चात् कुछ प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पड़ती है। मानसिक चिकित्सा में इसे पुन: शिक्षा कहा जाता है।

पुन: शिक्षा केवल व्याख्यान देना नहीं है। इसमें बालक को केवल सूचना देने से ही काम नहीं चलता है। कभी-कभी हम शिक्षा के नाम पर बालक को आवश्यक बातें याद करवा देते हैं। बालक को किसी बात को मौखिक रूप से कह देना या किसी पुस्तक के किसी अंश को रटवा देना अथवा किसी दुरूह विचार को सरल भाषा में समझा देना ही शिक्षा नहीं है पुन: शिक्षा का स्वरूप व्यावहारिक है। बाल-अपराधी के समक्ष ऐसा अवसर प्रस्तुत किया जाता है जिसमें वह सही सिद्धान्त का प्रयोग कर सके। जो बालक चोरी करने का आदी हो गया है, उसकी चोरी की प्रवृत्ति का संबंध संभव है अचेतन मन से हो। यह मालूम हो जाने पर कि बालक विशेष की चोरी की आदत जीवन में घटी किसी घटना विशेष के कारण है, मनोविश्लेषक बालक को इस कारण से अवगत करा देता है। साथ ही वह बालापराधी को चोरी न करने का परामर्श देता है। इसके पश्चात् विभिन्न परिस्थितियों में उसकी चोरी न करने की प्रवृत्ति को दृढ़ दिया जाता है। हो सकता है बालक कापी, पेंसिल, कलम आदि का चुराना बन्द कर दे, किन्तु

नोट

मिठाई देखकर वह अपने पर नियन्त्रण न कर सके। मनोविश्लेषक बारम्बार बाल अपराधी को परामर्श देता है। उसे अनेकों प्रकार के वह संकेत देता है। वह विभिन्न परिस्थितियों में उसका निरीक्षण करता रहता है। अचेतन अवस्था में भी वह संकेत देता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि कभी-कभी मनोविश्लेषक बालक के सुधार के लिए सम्मोहन की प्रविधि का सहारा लेता है।

इन सब संकेतों में एवं बाल-अपराधियों को सुधारने के अन्य मानसिक, चिकित्सात्मक उपायों में बालक की इच्छा-शक्ति को दृढ़ करने का प्रयत्न किया जाता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, मानसिक चिकित्सा में बालापराधी के 'अहम्' को जाग्रत करने का बहुत प्रयत्न किया जाता है। बालक को इस बात की ट्रेनिंग दी जाती है कि वह अपने 'स्व' से परिचित हो जाये। कभी-कभी हम अपने 'स्व' को अपने दृष्टिकोण से ही देखते हैं। यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना उचित समझ पड़ता है कि हम अपने स्वरूप को स्वयं जिस प्रकार देखते हैं, दूसरे उसे वैसा ही नहीं देखते। हमें अपनी आवाज, अपने चेहरे, अपनी मुस्कान आदि का जैसा अभ्यास होता है, दूसरों को भी वैसा ही आभास नहीं होता है। दूसरे व्यक्ति हमें किस प्रकार का समझते हैं, इसकी भी जानकारी आवश्यक है।

जब बाल-अपराधी का 'अहम्' जाग्रत हो उठता है तो वह मानापमान पर बहुत ध्यान देने लगता है। समाज में सम्मान प्राप्त करने की उसकी इच्छा तीव्र हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में उसे समाज के अनुकूल कार्यों की झाँकी दिखा देनी चाहिए। बालक समाज के अनुकूल कार्यों में रुचि लेने लगेगा। वह सोचेगा कि समाज के विरुद्ध कार्य करने से समाज में निन्दा होती है। यदि समाज की मान्यताओं के अनुरूप कार्य होते हैं, तो समाज में सम्मान प्राप्त होता है। समाज के नियमों का पालन करने की आवश्यकता का शनैः-शनैः वह इसी प्रकार अनुभव करने लगता है।

बाल-अपराधी में 'अहम्' की जागृति के साथ ही साथ उसकी इच्छा-शक्ति में दृढ़ता आने लगती है। जिस व्यक्ति की इच्छा-शक्ति निर्बल होती है वह मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का बहुत शीघ्र शिकार बन जाता है। निर्बल इच्छा-शक्ति से बालक में निर्णय शक्ति का ह्रास हो जाता है। मानसिक चिकित्सा में इच्छा-शक्ति की दृढ़ता पर भी ध्यान दिया जाता है। विभिन्न प्रकार के संकेतों को प्रदान कर बाल-अपराधी की इच्छा-शक्ति में सबलता लाने का प्रयास किया जाता है। बालक को बीच-बीच में प्रोत्साहित भी किया जाता है। बालक के मन की हीनता की भावना को निकालने का प्रयत्न किया जाता है। मानसिक चिकित्सक इस बात की कोशिश करता है कि बालक अपने 'स्व' को दूसरों के दृष्टिकोण से देखे। उसे इस बात को भी समझा दिया जाता है कि वह एक अच्छा एवं सुयोग्य नागरिक बन सकता है। उसे अपने अनुचित विचारों के शोध की भी शिक्षा प्रदान की जाती है। इस प्रकार बाल-अपराधी को कर्त्तव्य-परायणता, नियमपालिता, आज्ञाकारिता, सहयोग आदि सद्गुणों का भी ज्ञान कराया जाता है। विभिन्न परिस्थितियों में इन सद्गुणों के प्रयोग पर भी बल दिया जाता है।

द्वितीय महायुद्ध के मध्य में एवं उसके कुछ समय पूर्व मानसिक चिकित्सा की एक नई प्रविधि निकाली। यह प्रविधि वैयक्तिक सम्मोहन, संकेत आदि से भिन्न है। इस नई प्रविधि को सामूहिक चिकित्सा के नाम से पुकारा जाता है। वास्तव में यदि देखा जाये तो यह कोई नई प्रविधि नहीं है वरन् एक पुरानी प्रविधि को वैज्ञानिक रीति से क्रमबद्ध किया गया है। इसमें कई व्यक्तियों की एक साथ ही चिकित्सा की जाती है। समूह निर्माण की परिस्थिति में बालक की नैतिक भावनाओं में परिवर्तन करना ही इस प्रविधि का उद्देश्य है।

मानसिक चिकित्सा की विधि का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इस विधि से बाल-अपराधी का सुधार शीघ्र होता है। यह विधि संक्षिप्त भी है, किन्तु इस विधि से सभी बाल-अपराधियों का सुधार नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त इस विधि में एक दोष यह भी है कि बाल-अपराधी कुछ समय के लिए अपराध की प्रवृत्ति से मुक्त दिखाई पड़ता है, किन्तु उसकी प्रवृत्ति जड़ से समाप्त नहीं होती। वस्तुतः होता यह है कि अपराध के लक्षण चेतन से अचेतन मस्तिष्क में चले जाते हैं और हम कह उठते हैं कि अपराध के लक्षण समाप्त हो गए। अचेतन मस्तिष्क में पहुँच कर ये लक्षण अपराध के अन्य लक्षणों को किसी भी समय जन्म दे सकते हैं, तथापि मानसिक चिकित्सा के उपयोग से हम आँख नहीं बन्द कर सकते और यह कहना उपयुक्त ही है कि वर्तमान समय में कुछ बाल-अपराधियों के लिए यह विधि सर्वश्रेष्ट विधि है।

मानसिक चिकित्सा वास्तव में मानसिक रोगों को दूर करने का उपाय है। हम "मानसिक आरोग्य" एवं "मानसिक रोग

नोट

निरोध" के अध्यायों में इसका उल्लेख कर चुके हैं। यहाँ पर मानसिक चिकित्सा का बालापराध को दूर करने के उपाय के रूप में ही उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार बालापराधी को सुधारने का प्रयत्न किया जाता है एवं उसे एक सुयोग्य नागरिक बनाने का सदा उद्देश्य रखा जाता है। पहले अपराधी को बन्दीगृह में ही भेज कर अपराध से छुट्टी लेने की कोशिश की जाती थी, किन्तु उससे समस्या का समाधान नहीं हुआ। अब अपराधी को सुधारने पर बल दिया जाता है।

टास्क मानसिक चिकित्सा में पुन: शिक्षा से आप क्या समझते हैं?

सफल मनो-उपचार विशेषज्ञ के गुण (Qualities of a Successful Therapist)

एक सफल मनो-उपचार विशेषज्ञ के अधोलिखित गुण होने चाहिए–

(1) वह भावनाओं, अभिवृत्तियों, अभिरूचियों तथा व्यवहारों के प्रति अधिक संवेदनशील होना चाहिए।

(2) मानव व्यवहार का पर्याप्त ज्ञान तथा बोध होना चाहिए।

(3) उसे अपने रोगी का समुचित आदर सम्मान करना चाहिए।

(4) उसे धैर्यवान श्रेता भी होना चाहिए।

(5) वह अधिक नैतिकवादी नहीं होना चाहिए।

(6) रोगी की समस्याओं के प्रति वैज्ञानिक तथा वस्तुनिष्ठ दृष्टि कोण होना चाहिए।

(7) रोगी के उपचार में धैर्य तथा निरन्तरता होनी चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें** (Fill in the blanks)–

एक सफल मनो-उपचार विशेषज्ञ में निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

1. वह भावनाओं, अभिवृत्तियों, ... तथा व्यवहारों के प्रति अधिक संवदेनशील होना चाहिए।
2. .... का पर्याप्त ज्ञान तथा बोध होना चाहिए।
3. मनो-उपचार विशेषज्ञ को .... भी होना चाहिए।
4. रोगी की समस्याओं के प्रति वैज्ञानिक तथा वस्तुनिष्ठ .... होना चाहिए।
5. रोगी के उपचार में .... होनी चाहिए।

19.4 सारांश (Summary)

- मनो-उपचार प्रविधि एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के आन्तरिक चिन्ताओं एवं कठिनाइयों से मुक्ति दिलाने में सहायता करती है। व्यक्ति में समाहारक व आशावान भावनाओं को उत्पन्न करती है।
- मनो-उपचार प्रविधि का लक्ष्य आत्म-अनुभूति का विकास करना है और उसको अज्ञानता से मुक्त कराना है।
- मनो-उपचार प्रविधि की आवश्यकता तथा उपयोग तब किया जाता है जब व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य, सन्तुलन तथा समायोजन अधिक गम्भीर हो जाता है। इसका उपचार सामान्य प्रविधियों से करना सम्भव नहीं होता है। गम्भीर कुसमायोजन के व्यक्तियों के लिए मनो-उपचार प्रविधि प्रयुक्त की जाती है।
- मानसिक चिकित्सा में कई प्रविधियों का आश्रय लिया जाता है। सम्मोहन द्वारा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को चेतना के पटल से हटाया जाता है। बालापराधी में कभी-कभी कोई संवेग बड़ा प्रबल हो जाता है और वह बालक

नोट

के मन में अन्तर्द्वन्द्व की उत्पत्ति कर देता है। इस अन्तर्द्वन्द्व के कष्ट से मुक्ति प्रदान करने के लिए मानसिक चिकित्सक सम्मोहन का आश्रय लेता है। कभी-कभी किसी औषधि द्वारा भी बाल-अपराधी को अचेत कर दिया जाता है। सम्मोहन की अवस्था में बालक को अनेकों संकेत प्रदान किए जाते हैं जिससे वह अपने मानसिक विकास से छुटकारा पा लिया जाय। संकेत प्रदान करने का उद्देश्य यह होता है कि बालापराधी का 'अहम' आहत हो जाय और उसमें दृढ़ता आ जाय। अहम की दृढ़ता से रोग या अपराध के लक्षण धीरे-धीरे मिटने लगते हैं।

- जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कुछ बालापराधी संवेगात्मक प्रबलता के ही कारण अपराध करने लगते हैं। अत्यधिक चिन्ता, क्रोध, भय आदि कभी-कभी अपराध को जन्म दे देते हैं। कभी-कभी बालकों में काम-ग्रन्थि, अधिकार-ग्रन्थि, उच्चता-ग्रन्थि, हीनता-ग्रन्थि आदि भावना-ग्रन्थियाँ उत्पन्न होती हैं। कभी-कभी बालकों में स्नायुविकृति का मानसिक रोग हो जाता है। ऐसी अवस्था में अपराधियों का सुधार प्रोबेशन पर रिहा कर देने से अथवा सुधारगृह में भेज देने से नहीं होता है। इनके लिए मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता होती है।
- मनोविश्लेषक मनोविश्लेषण की प्रक्रिया में बाल-अपराधी की जीवनी मालूम करता है। मनोविश्लेषक की कुशलता इसी में है कि वह बालक के सही इतिवृत्त को मालूम कर ले। उसे सदैव बालक को यह बतला देना चाहिए कि वह कोई वकील या अफसर नहीं है, वह बालक के कारनामों पर कोई कानूनी कार्यवाही नहीं करेगा तथा वह बालक की समस्याओं को जानने के लिए ही उसकी जीवनी जानना चाहता है।
- मनोविश्लेषक अवसर पाकर बालक के स्वप्नों के विषय में भी पूछताछ करता है। कभी-कभी बालक के साथ अनौपचारिक रीति से वार्तालाप करने लगता है। जिस समय बालक अपनी घटनाओं का वर्णन करता रहता है उस समय मनोविश्लेषक बड़े ध्यान से मन में ही बालक के वर्णन की शैली को नोट करता रहता है। वह बालक के हावभाव को तथा उसके अंगों के संचालन को भी देखता रहता है।
- बाल-अपराध को दूर करने के उपाय मुख्यत: दो प्रकार के हैं–

  (1) निरोधात्मक तथा (2) परिचर्यात्मक।
- निरोधात्मक उपायों में परिवार का जीवन सुखी बनाना, विद्यालय के कार्यो को रूचिकर बनाना, स्वस्थ मनोरंजन का प्रबन्ध करना तथा शिक्षकों एवं अभिभावकों में पारस्परिक सम्पर्क बढ़ाना हो सकता है।
- परिचर्यात्मक उपायों में प्रोबेशन, सुधारगृह तथा मानसिक चिकित्सा का स्थान आता है। अब बाल-अपराधी को जेल नहीं भेजा जाता वरन् समाज में ही कुछ शर्तों पर रहने दिया जाता है। आजकल बाल न्यायालयों की स्थापना हो गई है।
- प्रोबेशन आफीसर इस न्यायालय का प्रमुख व्यक्ति है। वह बाल-अपराधी को अपने संरक्षण में रखकर सुधारने का प्रयत्न करता है।
- कुछ बाल-अपराधियों को सुधारगृहों में भेजा जाता है। सुधारगृहों में उन्हें औद्योगिक कार्य दिया जाता है तथा उन्हें सुयोग्य नागारिक बनाने का प्रयत्न होता है। सुधारगृहों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार की संस्थाएँ इस क्षेत्र में काम कर रही हैं। बोर्स्टल स्कूल, अनाथालय, बाल कारागार, आदि संस्थाएँ हमारे देश में बाल-अपराधियों को सुधारने का प्रयत्न करती है।
- अत्याधिक भावुकतावश अपराध करने वाले बालकों की मानसिक चिकित्सा होती है। इसमें मनमोहन करके संकेत दिया जाता है। कभी-कभी जाग्रत अवस्था में भी संकेत प्रदान किया जाता है। मनोविश्लेषण से मानसिक चिकित्सा में बड़ी मदद मिलती है। रेचन तथा पुन: शिक्षा द्वारा बाल-अपराधी की इच्छा शक्ति दृढ़ बनायी जाती है तथा उसके "अहम्" को जाग्रत किया जाता है।

19.5 शब्दकोश (Keywords)

- **प्रविधि**–विधि, तकनीक।
- **मनोवैज्ञानिक**–मानसिक स्थिति का अवलोकन करना।

19.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मनो-उपचार का क्या अर्थ हैं? इसकी आवश्यकता और उपयोग का विवेचन कीजिए।
2. मनो-उपचार की प्रक्रिया को समझाइये।
3. मनो-उपचार विशेषज्ञ के गुणों का वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. 1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य

2. 1. अभिरुचियों 2. मानव व्यवहार 3. धैर्यवान श्रोता 4. दृष्टिकोण 5. निरंतरता

19.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।
3. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–20: मनोपचार–मनोविकार (Psychotherapy—Psychological Disturbance)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
20.1 मनोरोग (Mental Disease)
20.2 मनोरोगों के प्रकार (Kinds of Mental Diseases)
20.3 मानसिक रोगों के कारण (Causes of Mental Diseases)
20.4 मानसिक रोगों का उपचार (Remedy of Mental Diseases)
20.5 मानसिक तनाव कम करने के उपाय (Solutions of Decreasing Mental Tension)
20.6 मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम (Prevention of Mental Illness)
20.7 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का महत्त्व (Importance of Mental Illness Science Study)
20.8 मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभावक प्रतिकारक (Influencing Factors on Mental Illness)
20.9 सारांश (Summary)
20.10 शब्दकोश (Keywords)
20.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
20.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मनोरोग के अर्थ को जानने एवं इसके प्रकार, कारण और उपचार का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मानव विकास में मन और मस्तिष्क के विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। मन और मस्तिष्क का स्वस्थ रहकर कार्य करने की क्षमता बनाये रखना ही मानसिक स्वास्थ्य है। मानसिक स्वास्थ्य के अभाव में व्यक्ति के विकास का मार्ग कुण्ठित हो जाता है। वह समाज पर बोझ बन जाता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वही है जो स्वयं सुखी है, अपने पड़ोसियों में शान्तिपूर्वक रहता है, अपने बच्चों को स्वस्थ नागरिक बनाता है तथा अपनी शक्ति के अनुरूप समाज के हित के लिये भी कुछ करता है। वास्तव में, मानसिक रूप से स्वस्थ रहने पर व्यक्ति अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित कर लेता है और अपनी, अपने परिवार की तथा अपने समाज की उन्नति के लिये प्रयत्न करता है। अत:, वातावरण से सामंजस्य स्थापित रखना मानसिक स्वास्थ्य का प्रमुख लक्षण है। सामंजस्य जितना अधिक होगा व्यक्ति मानसिक रूप से उतना ही अधिक स्वस्थ माना जा सकता है। वह जितना कम होगा उतनी ही मानसिक अस्वस्थता होगी। स्वस्थ व्यक्ति हर नई परिस्थिति को समझकर अपने को उसके अनुकूल बना लेता है अथवा परिस्थिति को ही अपने अनुकूल बना लेता है। वह हर परिस्थिति का स्वागत करता है। वह जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता है। इस प्रकार मानसिक

नोट

स्वास्थ्य जीवन जीने का ऐसा तरीका है जिसमें व्यक्ति का वातावरण में भली प्रकार सामंजस्य होता है। मैनिगर (Menninger) अपनी पुस्तक (The Human Mind) में लिखता है, कि "हमें मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा अधिकतम प्रभावोत्मकता और आनन्द के साथ मानव प्राणियों का संसार से परस्पर सामंजस्य के रूप में कर सकते हैं। यह (मानसिक स्वास्थ्य) एक सम स्वभाव, जागरूक बुद्धि, सामाजिक रूप से सन्तुलित व्यवहार और एक आनन्दमय मानसिक स्थिति बनाये रखने की योग्यता है।" इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य वह योग्यता है जिससे व्यक्ति जीवन की कठिन परिस्थितियों से अपना सामंजस्य बनाये रखता है। मानसिक स्वास्थ्य को भली प्रकार से समझने के लिये मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के मुख्य लक्षणों को जान लेना लाभदायक होगा। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों का वर्णन हम आगे के पृष्ठों में मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान को समझ लेने के बाद करेंगे।

20.1 मनोरोग (Mental Disturbances)

मानसिक स्वास्थ्य मानसिक असामान्यताओं के निवारण तथा रोकथाम और मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण के नियमों तथा विधियों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। इसका उद्देश्य केवल मानसिक रोगों की रोकथाम अथवा मानसिक स्वास्थ्य को कायम रखने के उपाय बताना ही नहीं है, अपितु मानसिक रोगों के इलाज के उपाय भी बताना है। विद्यार्थी की स्थिति में घर, परिवार, शिक्षा संस्था मानसिक स्वास्थ्य स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान समय में अनेक प्रौढ़ अनेक मानसिक रोगों से ग्रसित पाये जाते हैं। ऐसा कहा जा रहा है कि औद्योगीकरण तथा मशीनीकरण के कारण मानसिक रोग अधिक हो रहे हैं। मानसिक रोग प्राय: कुंठा के कारण होते हैं। इससे व्यवहार में असामान्यता आ जाती है।

नोट्स मानसिक स्वास्थ्य भी शारीरिक स्वास्थ्य की ही भाँति मानव विकास की एक दशा है और इस दशा को उसके लक्षणों से ही पहचाना जा सकता है।

20.2 मनोरोगों के प्रकार (Kinds of Mental Disturbance)

मानसिक बीमारियों में निम्नलिखित बीमारियाँ सामान्यत: प्रचलित हैं–

(1) **मनस्ताप (Psycho-neurosis)**–इस बीमारी का मुख्य लक्षण संवेगात्मक अस्थिरता है। यह आन्तरिक अथवा बाह्य दोनों प्रकार की उत्तेजना से सम्भव है। मनस्ताप के तीन रूप हैं। (क) साइको स्थेनिक (Psychosthenic neurosis) जिसमें बहुत-सी संवेगात्मक अस्थिरतायें विद्यमान रहती हैं। इसके अन्तर्गत काल्पनिक भय अथवा अकारण भय (Phobia); आधारहीन चिन्ता (Obsession) तथा एक ही कार्य को बार-बार करना (Compulsion) सम्मिलित हैं; (ख) न्यूरोस्थेनिक (Neurosthenic) इस प्रकार का मानसिक रोग शारीरिक क्रियाओं में तनाव द्वारा अभिव्यक्ति पाते हैं, जैसे दु:ख एवं सुख तथा बीमार समझने में आनन्द का अनुभव करना (Hepochodina) तथा नींद न आना (Insomnia) आदि विशेष लक्षण हैं; (ग) हिस्टीरिया (Hysteristic neurosis) यह रोग भी संवेगात्मक अस्थिरता के कारण ही होता है। इसके अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं, जैसे कभी-कभी व्यक्ति अंधा तथा बहरा भी हो जाता है। दौरे पड़ने लगना, व्यक्ति में चिड़-चिड़ापन आदि प्रमुख लक्षण हैं।

(2) **अमनोविकृत व्यवहार** (Non-Psychotic Behaviour)–साधारण असामान्य व्यवहार ही इस मानसिक रोग की विशेषता तथा लक्षण है। इस प्रकार के रोगी व्यक्तियों में अहं अधिक होता है, दूसरों की बातों तथा कार्यों की परवाह नहीं करते, चिन्ताओं तथा तनाव को कामेच्छा पूर्ति से दूर करते हैं; छोटे-छोटे कार्यों के लिये भी पराश्रयी होते हैं तथा समाज विरोधी कार्य भी कर सकते हैं।

नोट

(3) **प्रक्षेपण** (Projection)—मानसिक द्वन्द से बचने के लिये व्यक्ति अपनी विफलताओं को दूसरे व्यक्तियों की सफलता पर आरोपित करता है, जैसे अपने दूसरे साथियों अथवा सहयोगियों पर अपनी असफलता की स्थिति में दोषारोपण करना। इससे तनाव से व्यक्ति मुक्त हो सकता है।

(4) **क्षतिपूर्ति** (Compensation)—जब व्यक्ति अपने जीवन के एक क्षेत्र की कमी को उसी क्षेत्र में आगे चलकर सफलता प्राप्त कर अथवा जीवन के दूसरे क्षेत्र में पूरा करने का प्रयास करता है तो उसे क्षतिपूर्ति (compensation) की स्थिति कहते हैं।

(5) **दमन** (Repression)—अनेक कारणों से व्यक्ति अपनी बहुत-सी इच्छाओं को व्यक्त नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में कभी-कभी व्यक्ति मानसिक बाधाओं से दु:खी होकर वह अपने साधारण व्यवहार की ओर लौट आता है। इसके विपरीत तीव्र इच्छाओं और वृत्तियों का दमन कभी-कभी उनसे सम्बन्धित प्रतिक्रियाओं में बदल जाता है। वह चेतन रूप में उन क्रियाओं के विपरीत आचरण करने लगता है।

(6) **पलायन** (Withdrawal)—पलायन के द्वारा व्यक्ति अपने आपको मानसिक द्वन्द की परिस्थिति से बचा लेता है। वह उस समस्या के हल का प्रयत्न ही नहीं करता है। सम्भव है कि उस कार्य के प्रति वह विपरीत दृष्टिकोण अपना ले।

(7) **मनतंरग** (Phantasy)—यथार्थ जीवन की असफलताओं से परेशान होकर व्यक्ति कल्पना की शरण में चला जाता है और इस प्रकार की स्थिति में जाकर अपने को मानसिक तनाव से बचाता है।

20.3 मानसिक रोगों के कारण (Causes of Mental Diseases)

मानसिक रोगों की उत्पत्ति किसी एक ही कारण से नहीं होती, अपितु इनके अनेक कारण उत्तरदायी हो सकते हैं। प्राय: निम्न कारणों में से एक से अधिक के संयोग से मानसिक रोग होते हैं।

(क) **वंशक्रम**—कभी-कभी धरोहर के रूप में माता-पिता अथवा परिवार के अन्य सदस्यों से ये रोग प्राप्त होते हैं जो प्राय: बाद में उभरते हैं। वैज्ञानिक विधियों से, इनका निदान तथा निवारण भी सम्भव है।

(ख) **शारीरिक विकृति**—शारीरिक रूप से पूर्ण विकसित न होने के कारण अथवा कोई विकृति होने के कारण मानसिक रोग विकसित हो सकते हैं।

(ग) **संवेगात्मक अनुभव**—व्यक्ति को जब बार-बार संवेगात्मक धक्के लगते हैं तो उसके मस्तिष्क के सन्तुलन के बिगड़ने का भय रहता है जो मानसिक रोग में बदल सकते हैं।

(घ) **अनुपयुक्त वातावरण**—यदि वातावरण स्वस्थ नहीं होता तो अनेक प्रकार की संवेगात्मक अस्थिरताएँ उत्पन्न होती रहती हैं जिनमें मानसिक रोग हो सकते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **सही विकल्प चुनिए** (Choose the correct option)—

(*i*) मनस्ताप का मुख्य लक्षण .... अस्थिरता है।

(*a*) संवेगात्मक (*b*) आवेशात्मक (*c*) आदेशात्मक (*d*) निर्देशात्मकता

(*ii*) .... न्यूरोस्थेनिक रोग का लक्षण नहीं है।

(*a*) हीपोकॉडनिया (*b*) ज्वर (*c*) इनसोमनिया (*d*) अकारण भय

(*iii*) .... में जीवन की असफलताओं से परेशान होकर व्यक्तिगत कल्पना की शरण में चला जाता है।

(*a*) पलायन (*b*) दमन (*c*) मनतरंग (*d*) क्षतिपूर्ति

(*iv*) .... की स्थिति में व्यक्ति मानसिक बाधाओं से दुखी होकर वह अपने साधारण व्यवहार की ओर लौट आता है।

(*a*) संवेगात्मक (*b*) आवेशात्मक (*c*) आदेशात्मक (*d*) निर्देशात्मकता

20.4 मानसिक रोगों के उपचार (Remedy of Mental Diseases)

मानसिक रोगों का उपचार उनकी गम्भीरता पर निर्भर करता है। यदि रोग साधारण है तो उनके लिये सामान्य उपाय जैसे परामर्श (Counseling), मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा (Psycho-analysis), खेल द्वारा (Play Therapy), वातावरण में परिवर्तन (Change in environment) आदि उपाय प्रयोग में आते हैं। रोग की गम्भीरता पर उसके निदान के ही लिये शारीरिक परीक्षण अथवा व्यक्तित्व परीक्षण आदि कराने पड़ते हैं। सामान्य रूप से मानसिक उपचार के लिये निम्न उपाय किये जा सकते हैं–

(क) **परामर्श** (Counseling)–यदि व्यक्ति साधारण समायोजन दोष से पीड़ित है जैसे–चिन्ता, व्यावसायिक समस्या आदि तो उसे निराकरण के उपाय परामर्श के रूप में बताये जा सकते हैं। इसके लिये उसके मित्रों, सहयोगियों आदि को भी कभी-कभी परामर्श देना पड़ सकता है। व्यवहार सम्बन्धी मानदण्ड स्थिर करने पड़ सकते हैं।

(ख) **मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा** (Psycho-analysis)–इस विधि का प्रवर्त्तक फ्राइड था। उसने स्वतन्त्र साहचर्य्य (Free-association), स्वप्न विश्लेषण द्वारा मानसिक रोगों का उपचार किया। वर्तमान समय में इस विधि का प्रयोग प्राय: किया जाता है।

(ग) **व्यक्ति-केन्द्रित चिकित्सा** (Client-Centred Therapy)–यह विधि कार्ल रोजर (Carl Roger) ने विकसित की थी। इसमें व्यक्ति को अधिक से अधिक अभिव्यक्ति का अवसर दिया जाता है जिससे वह मानसिक समस्याओं को हल करने में समर्थ हो जाता है। ऐसी स्थिति में समस्या समाधान के लिये वातावरण उत्पन्न किया जाता है।

(घ) **खेल द्वारा** (Play Therapy)–इस विधि से प्राय: बच्चों के मानसिक रोगों की चिकित्सा की जाती है। यह आशा की जाती है कि खेल ही खेल में व्यवहार की समस्यायें सुलझ जायें।

(ङ) **साइकोड्रामा (Psychodrama)**–इस विधि में रोगी को ड्रामा करने का अवसर प्रदान किया जाता है। प्राय: यह विधि सामूहिक रूप में काम में लाई जाती है।

जैसे कि ऊपर निर्देशित किया जा चुका है कि गम्भीर रूप से रोगी व्यक्ति के निदान के लिये अनेकों परीक्षण करने पड़ते हैं जो कि रोगी की चिकित्सा पद्धति के ही एक अंग होते हैं। जैसे–

(1) **शारीरिक परीक्षण**–मुख्य उद्देश्य शारीरिक दोषों का पता लगाना होता है।

(2) **मानसिक परीक्षण**–इनसे भी मानसिक रोग को समझने में सहायता मिलती है।

(3) **व्यक्ति इतिहास** (Case History)–रोगी के सम्बन्ध में भूत तथा वर्तमान से सम्बन्धित सूचनायें एकत्र कर, उनका विश्लेषण करने से भी समस्या के निदान में सहायता मिलती है।

उपचार के रूप में जो रोगी गम्भीर होते हैं अथवा उग्र रूप धारण कर लेते हैं उनकी चिकित्सा टैंक्विलाइजर्स के उपयोग, रासायनिक विधियों एवं बिजली के धक्कों (Shock therapy) से की जाती है। पुरानी मानसिक रोगों की चिकित्सा मनोशल्य (Psycho-Surgery) द्वारा भी की जाती है।

(ख) बाधायें–कार्य के सम्पादन की प्रक्रिया में अनेक बाधायें आती हैं। ये बाधायें मानसिक, आर्थिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत हो सकती हैं। जब प्रक्रिया में इन बाधाओं से निपटना कठिन होता है तो मानसिक कुण्ठा होती है जिससे मानसिक तनाव बढ़ता है।

(ग) प्राकृतिक प्रकोप–प्राकृतिक बाधायें जैसे–बाढ़, भूकम्प, वर्षा, तूफान तथा युद्ध आदि भी मानसिक तनाव का कारण बन सकती हैं अथवा वर्तमान मानसिक तनाव में वृद्धि कर सकती हैं।

(घ) अन्तर्द्वन्द–अन्तर्द्वन्द मानसिक तनाव में वृद्धि करते हैं। अन्तर्द्वन्द विभिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर एक परिस्थिति यह होती है जिसमें व्यक्ति के सम्मुख समान स्तर तथा महत्व के अनेक उद्देश्य आ जाते हैं और उसके लिये यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि किस उद्देश्य को वरीयता दे

नोट

और कौन-सा कार्य करे। इस स्थिति में सभी उद्देश्य सकारात्मक होते हैं दूसरी स्थिति में सम्मुख आये उद्देश्य नकारात्मक हो सकते हैं और अन्तर्द्वन्द इसलिये उत्पन्न होता है अथवा उसमें वृद्धि होती है कि किससे सबसे पहले बचाव आवश्यक है। एक तीसरी स्थिति भी होती है जिसमें सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार के उद्देश्य सम्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में अन्तर्द्वन्द की गति बढ़ती है। मनुष्य के मस्तिष्क की प्रक्रिया में जब भी बाधा उत्पन्न होती है तभी मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। स्वस्थ जीवन के लिये अन्तर्द्वन्द कम किया जाना जरूरी है, क्योंकि इससे मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।

क्या आप जानते हैं विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों जैसे रोशा-परीक्षण, थिमेटिक एपरसेप्शन टेस्ट अथवा चिल्ड्रेन एपरसेप्शन टेस्ट C.A.T के द्वारा रोगी के व्यक्तित्व के अचेतन स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। व्यक्तित्व प्रश्नावली द्वारा समायोजन दोष का क्षेत्र निर्धारित किया जा सकता है। इस प्रकार सूचनाओं को एकत्र कर उनका विश्लेषण कर कारणों का पता लगाया जा सकता है तथा उपचार की व्यवस्था की जा सकती है।

20.5 मानसिक तनाव कम करने के उपाय (Methods of Removing Mental Tension)

मानसिक तनाव कम करने में प्रायः दो विधियों का प्रयोग किया जाता है—

(1) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method) तथा (2) अप्रत्यक्ष विधि (Indirect Method)

(1) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)—इस विधि में व्यक्ति स्वयं ही उन उपायों का प्रयोग करता है अथवा कार्य प्रणाली का अनुसरण करता है जैसे—

(क) **बाधा को नष्ट अथवा दूर करना**—जब किसी उद्देश्य की प्राप्ति में कोई बाधा उत्पन्न हो जाती है तो व्यक्ति उस बाधा को दूर कर सकता है अथवा उसे समाप्त कर अपने कार्य के मार्ग को प्रशस्त करता है और लक्ष्य की ओर बढ़ता है।

(ख) **कार्य विधि में परिवर्तन**—बाधा को सरलता से पार न कर सकने की स्थिति में व्यक्ति अपनी पूर्व कार्य योजना पर चिन्तन करता है और फिर वे वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल योजना में परिवर्तन कर गन्तव्य की ओर बढ़ता है।

(ग) **प्रतिस्थापन**—लक्ष्य तक पहुँचने की स्थिति में व्यक्ति उस लक्ष्य को छोड़कर दूसरा अपना लेता है। हमारे समाज में ऐसे व्यक्तियों की संख्या काफी है जो प्रतिस्थापन के द्वारा अपने को समाज में समायोजित कर ले रहे हैं।

(घ) **पलायन**—बाधाओं के बार-बार आने अथवा उनकी गम्भीरता के कारण परेशान होकर कार्य योजना को बीच ही में छोड़ देता है, जैसे बार-बार असफल होने पर विद्यार्थी पढ़ना छोड़ देते हैं।

(2) अप्रत्यक्ष विधि (Indirect Method)—इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति मानसिक तनाव के कारणों जैसे मानसिक द्वन्द, निराशा तथा विफलता से बचने के उपायों का प्रयोग करता है। इस विधि के अन्तर्गत निम्न उपाय प्रयोग में लाये जा सकते हैं—

(1) **आत्मीकरण** (Identification)—व्यक्ति समाज अथवा समुदाय एवं संस्था के आदर्शों तथा मान्यताओं के अनुकूल स्वयं को ढालने का प्रयास करता है। आत्मीकरण के द्वारा वह अपने व्यक्तित्व के विकास का लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

(2) **औचित्य स्थापन** (Rationalization)—अपनी विफलताओं का दोष दूसरों पर लादकर अपनी बात का औचित्य स्थापन किया जाता है। जैसे—परीक्षा में असफल विद्यार्थी अध्यापक, परीक्षक, प्रश्न पत्र आदि को

नोट

दोष देता है। औचित्य स्थापन की प्राय: दो स्थितियाँ हो सकती हैं। प्रथम, कोई व्यक्ति किस कार्य में असफल होने पर उस कार्य में ही दोष निकालने लगता है। दूसरे, औचित्य स्थान में व्यक्ति कार्य में फँसकर जब उससे बाहर नहीं निकल पाता, तब वह उसे ही अच्छा बताने लगता है।

20.6 मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम (Prevention of Mental Illness)

अब प्रश्न यह है कि मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम कैसे हो। अनेक व्यक्ति विशेषत: बालक अथवा किशोर प्राय: अपनी कठिनाइयों तथा उलझनों को स्वयं नहीं सुलझा सकते। यह हम देख ही चुके हैं किस प्रकार परिवार, समाज, शिक्षा संस्था मानसिक स्वास्थ्य के प्रभावक प्रतिकारक हैं। अत: इनमें उपस्थित कारणों में यदि सुधार किया जाये तो मानसिक स्वास्थ्य ठीक हो सकता है अथवा मानसिक अस्वस्थ होने से बचाया जा सकता है। उपर्युक्त प्रतिकारक निम्न प्रकार की भूमिका निभा सकते हैं–

(1) परिवार तथा घर (Home and Family)–परिवार तथा घर का मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने में निम्न प्रकार से योगदान हो सकता है–

(क) **आवश्यकताओं की पूर्ति**–बालकों की अपनी आवश्यकतायें होती हैं। माता-पिता अथवा अभिभावक को उन आवश्यकताओं को समझने का प्रयास करना चाहिये और यथोचित ढंग से उन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिये।

(ख) **सद्व्यवहार**–माता-पिता अथवा अभिभावक को चाहिये कि वे अपने बच्चों के साथ सहानुभूति तथा प्रेम का व्यवहार रखें। बच्चों में भेदभावपूर्ण आचरण न करें। लड़के-लड़कियों में अन्तर न रखें। व्यवहार सुसंस्कृत तथा सामाजिक मानदण्डों के अनुकूल होना चाहिये। अनायास बच्चों को आलोचना का पात्र नहीं बनाना चाहिये।

(ग) **अच्छी आदतों का निर्माण**–मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम में माता-पिता की सबसे अधिक जिम्मेदारी है। सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि परिवार में ऐसा स्वस्थ वातावरण बनाया जाये जिसमें बालक के व्यक्तित्व का ठीक विकास हो सके तथा अच्छी आदतों का निर्माण हो सके। बालक के व्यक्तित्व पर माता-पिता के चरित्र, आपस के सम्बन्ध, भाई-बहनों तथा परिवार के अन्य सम्बन्धियों से बालक के सम्बन्ध आदि सभी बातों का प्रभाव पड़ता है। बालक के व्यक्तित्व को उन्मुक्त रूप से विकसित होने का पूर्ण अवसर मिलना चाहिये।

(2) समाज–यद्यपि समाज इस प्रकार की संगठित संस्था नहीं है जो कि उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम करे, किन्तु यह अवश्य ही है कि उसके वातावरण का प्रभाव बालक पर पड़ता है। समाज के स्वस्थ वातावरण में बालक स्वयं अनुशासन तथा अन्य गुण ग्रहण कर लेते हैं। सामाजिक स्वस्थ मानदण्ड व्यवहार की दिशा बोध कराते हैं।

(3) मनोविकृति (Psychosis)–इस प्रकार के रोगी गम्भीर होते हैं। इनकी चिकित्सा मानसिक अस्पतालों में ही सम्भव होती है। इस रोग के रोगियों में भावात्मक तथा बौद्धिक सन्तुलन नहीं रहता। इनमें अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ रहती हैं। ये यथार्थ के धरातल पर नहीं रहते, अपने-आप को सम्राट तथा महान् समझते हैं तथा इनमें भय व्याप्त रहता है कि कोई इन्हें मारेगा। मनोविकृति दो प्रकार से होती है। एक तो जैविक (Organic) मनोविकृति जो मस्तिष्क तथा स्नायुमण्डल में चोट के कारण होती है और दूसरे कार्यात्मक (Functional) विकृति जिसका आधार शारीरिक नहीं होता। इसके अन्तर्गत अनेक प्रकार के मानसिक रोग आते हैं।

20.7 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का महत्व (Importance of Mental Hygiene)

मानसिक आरोग्य का हमारे जीवन में बड़ा महत्व है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि मन से अस्वस्थ रहने वाला व्यक्ति समाज के ही नहीं वरन् अपने लिये भी भारस्वरूप है। उसका जीवन बड़ा दु:खमय हो जाता है। उसे प्रत्येक कार्य में असफलता ही हाथ लगती है। पग-पग पर उसे निराशा होती है। मानसिक आरोग्य का अध्ययन करके तथा

नोट

इसके नियमों का पालन करके व्यक्ति अपने इन दोषों से बच सकता है। मानसिक आरोग्य से हमें अनेकों लाभ हैं। उनमें से कुछ का यहाँ पर उल्लेख किया जा रहा है:–

(1) **मानसिक स्वास्थ्य लाभ**–हम यह पहले ही देख चुके हैं कि हमारे विचारों का हमारे मन पर प्रभाव पड़ता है। कोई भी विचार नष्ट नहीं होता है। हमारी अतृप्त इच्छाएँ कभी-कभी अनेकों मानसिक रोगों का कारण बनती हैं। उन्माद, अनिद्रा, हठीलापन आदि ऐसे ही मानसिक कुरोग हैं। इन मानसिक रोगों को दूर करने में मानसिक चिकित्सा का आश्रय लेना पड़ता है। मानसिक आरोग्य में हम इन कुरोगों से बचने का उपाय ढूँढने का प्रयत्न करते हैं। इसके अतिरिक्त मानसिक स्वास्थ्य अच्छा बनाने के कुछ नियम होते हैं, जिनका उल्लेख आगे किया जायेगा। इन नियमों की जानकारी भी हम मानसिक आरोग्य से प्राप्त करते हैं।

(2) **शारीरिक स्वास्थ्य लाभ**–मनोविज्ञान की आधुनिक खोजों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि अनेकों शारीरिक रोग ऐसे हैं जिनका कारण शारीरिक न होकर मानसिक होता है। लकवा तथा मिरगी रोगों का कारण प्राय: मानसिक ही पाया जाता है। मधु-मेह, दमा, कोष्ठबद्धता आदि का कारण भी कभी-कभी मानसिक पाया गया है। स्वप्नदोष का कारण तो प्राय: मानसिक ही होता है। इन रोगों की शारीरिक चिकित्सा तभी सफल होती है जब कि इनका कारण शारीरिक हो। मानसिक कारण होने पर इनकी मानसिक चिकित्सा करनी पड़ती है। यदि मानसिक आरोग्य के नियमों का पालन किया जाये तो इन कुरोगों से बचा भी जा सकता है।

(3) **अपने आचरण में अन्तर्दृष्टि**–मानसिक आरोग्य के अध्ययन से यह भी लाभ होता है कि व्यक्ति अपने आचरण का विश्लेषण करना सीख जाता है। वह अपने आचरण के औचित्य एवं अनौचित्य पर विचार करना सीख जाता है। वह कार्य करते समय विचार करने लगता है कि इस कार्य का उसके मन पर क्या प्रभाव पड़ेगा? अमुक कार्य करना चाहिये या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर वह प्राय: मानसिक आरोग्य के नियमों के अनुसार देने का प्रयत्न करता है।

(4) **वस्तुनिष्ठ अभिवृत्ति**–किसी भी व्यक्ति के कार्यों को जब हम समझने लगते हैं अथवा अपने ही कार्यों पर जब दृष्टिपात करते हैं तो प्राय: हम व्यक्तिनिष्ठ बन जाते हैं। संसार की सभी वस्तुओं को हम अपनी भावनाओं के अनुसार ही देखने लगते हैं। उन पर अपनी पूर्वधारणाओं का रंग चढ़ा देते हैं। यदि हमसे किसी व्यक्ति का मनमुटाव हो गया तो वह व्यक्ति चाहे हमारे साथ भलाई ही क्यों न करे, हम उसके कार्य को संदेह की दृष्टि से देखने लगते हैं। ऐसा दृष्टिकोण हमारे अपने जीवन के लिये ही हानिप्रद है। जीवन में जिन व्यक्तियों में वस्तुनिष्ठ अभिवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, वे प्राय: सफल होते हैं। मानसिक आरोग्य हमें वस्तुनिष्ठ अभिवृत्ति ग्रहण करने में सहायता देता है।

(5) **जीवन के प्रति आशापूर्ण दृष्टिकोण**–हम अपने दैनिक जीवन में देखते हैं कि कभी-कभी हम जीवन से निराश हो जाते हैं। जरा सी असफलता मिली कि हमारे हाथ-पैर ढीले पड़ जाते हैं। पाठक इस अवस्था से अवश्य परिचित होंगे। कभी घर में झगड़ा हुआ, मित्रों से मारपीट हो गई, स्कूल में जुर्माना हो गया, कक्षा में हमारी बात न मानी गई, किसी परीक्षा में हम असफल हो गये या दस-बारह दिन बहुत कठिन परिश्रम करना पड़ गया तो हम में निराशा छा जाती है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सदैव निराश ही रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों का जीवन और भी दु:खमय होता है। मानसिक आरोग्य के अध्ययन से यह लाभ है कि हम जीवन के प्रति आशापूर्ण दृष्टिकोण बनाने लगते हैं।

(6) **सामाजिक कार्यों में रुचि**–व्यक्ति समाज से बना है और समाज व्यक्ति से। व्यक्ति के बिना समाज की हम कल्पना नहीं कर सकते और न व्यक्ति की समाज के बिना। समाज व्यक्ति को आगे बढ़ने में सहायता प्रदान करता है। यदि हम ध्यान से देखें तो हमारा शरीर भी समाज से ही विकसित हुआ है। हम अनाज खाते हैं। यह अनाज कहाँ से आता है? आप कह सकते हैं कि आप अनाज पैदा करते हैं; किन्तु यदि मजदूर एवं अन्य किसान आपकी सहायता न करें तो क्या आप एक दाना भी पैदा कर सकते हैं? आप कपड़ा पहनते हैं। यह कहाँ से आया है? कैसे बना? किसने बनाया? किस चीज से बना? वह चीज कहाँ से और कैसे आई? आप यदि ध्यान से सोचें तो आपकी एक कमीज सैंकड़ों नहीं हजारों व्यक्तियों के सहयोग एवं परिश्रम के पश्चात् आपके पास पहुँची है।

नोट

(7) व्यवसाय में संतोष (Job Satisfaction)—मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का एक लक्षण यह भी है कि अपने मुख्य कार्य में संतोष का अनुभव करता है। वह कार्य में रुचि रखता है और उससे आनन्द और सन्तोष प्राप्त करता है।

(8) परिपक्वता (Maturity)—बौद्धिक तथा संवेगात्मक परिपक्वता मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति की एक विशेष पहचान है। परिपक्व मस्तिष्क वाला व्यक्ति अपने ज्ञान को बढ़ाता रहता है। उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करता है। विचारों और भावनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है तथा दूसरों के विचारों और भावनाओं का आदर करता है। मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक परिपक्व, सन्तुलित और सुसंस्कृत व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है।

(9) आत्म-मूल्यांकन (Self-Evaluation)—मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति को अपनी सीमाओं का पता रहता है। वह स्वयं अपना सही मूल्यांकन करता है। वह अपने दोषों को सहज ही मान लेता है और उनको दूर करने की कोशिश करता है। वह अपने व्यवहार पर दृष्टि रखता है ताकि अपनी प्रवृत्तियों को जानता रहे और उनको सही दिशा में मोड़ सके। उसमें उलझनों, पूर्व धारणाओं तथा कठिनाइयों आदि का विश्लेषण करने की तथा उसके अनुसार व्यवहार को संशोधित करने की क्षमता होती है।

मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति के उपर्युक्त लक्षणों में सभी बातें नहीं आतीं, परन्तु फिर भी इनसे मानसिक स्वास्थ्य की सही धारणा बनाई जा सकती है। इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य वह मानसिक दशा है, जिसमें व्यक्ति में नियमित जीवन, सामंजस्यशीलता, सामाजिक समंजन, कार्य में संतोष, परिपक्वता तथा आत्म-मूल्यांकन आदि लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य एक आदर्श है। जिस व्यक्ति में उपर्युक्त गुण जितने अधिक होंगे वह उस आदर्श के उतना ही निकट होगा।

टास्क मनोविकृति का क्या अर्थ है?

20.8 मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभावक प्रतिकारक (Influencing Factors on Mental Illness)

मानसिक स्वास्थ्य पर किसी एक ही कारण का प्रभाव नहीं पड़ता, अपितु उस पर अनेक कारणों का प्रभाव पड़ सकता है। ये कारण निम्न हो सकते हैं–

(1) परिवार—परिवार में ही बालक का विकास प्रारम्भ होता है। समाज की बदलती हुई मान्यतायें परिवार को प्रभावित करती रहती हैं। अत: बालक के पोषण पर उनका प्रभाव समस्या के रूप में होता है। परिवार पर प्रभाव डालने वाले निम्न प्रतिकारक हो सकते हैं।

(क) **पारिवारिक विघटन**—औद्योगिक प्रगति ने पुराने संयुक्त परिवार की परम्परा को छिन्न-भिन्न कर दिया है। जहाँ माता, पिता दोनों व्यवसाय में संलग्न हैं, वहाँ पर बच्चों की स्थिति और भी खराब हो जाती है। परिवार में बिखराव बढ़ता जाता है। इस स्थिति का प्रभाव बालक के मस्तिष्क पर पड़ना स्वाभाविक है।

(ख) **आर्थिक स्थिति**—भारत में लगभग 80% मानसिक अस्वस्थता निर्धनता के कारण है। विद्यालय की स्थिति में ऐसे बालकों का अभाव नहीं है जो साधनविहीन हैं।

(ग) **माता-पिता का व्यवहार**—जिन घरों में माता-पिता का व्यवहार बालक के प्रति अच्छा नहीं होता, वहाँ भी बालक असमायोजित हो जाता है। ऐसे परिवारों में बालकों की अवहेलना होती है।

(घ) **परिवार में तनाव**—भारतीय परिवार में विशेषकर संयुक्त परिवार में अनेक सम्बन्धित व्यक्ति जैसे दादा, दादी, चाचा, चाची, भाई, भतीजे आदि होते हैं जिनका बालक के साथ विभिन्न व्यवहार होता है। परिवार के तनाव का बच्चे के मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

(ङ) **परिवार के अनुशासन का आदर्श**—प्राय: माता-पिता बालकों की व्यैक्तिक भिन्नता का विचार किये बिना ही उच्च आदर्शों का निर्माण कर लेते हैं, फिर उनके पूरा करने के साधनों में भी विभिन्नता है। कहीं पूर्ण स्वतन्त्रता है तो कहीं पर अनावश्यक कठोर नियन्त्रण। इनसे मानसिक असमायोजन में वृद्धि होती है।

(2) सामाजिक प्रतिकारक—मानव का जन्म समाज में होता है। समाज के रीति-रिवाज तथा मान्यताओं के अनुकूल उसे आचरण करना पड़ता है। यदि बालक पर समाज का प्रभाव अनुकूल नहीं पड़ता तो वह मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाता है। समाज में बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले तत्व निम्न हो सकते हैं—

(क) **असुरक्षा**—आज के संघर्षमय जीवन में चारों ओर अस्तित्व के लिये संघर्ष व्याप्त है। व्यक्ति प्राय: अपने को असुरक्षित अनुभव करता है। राष्ट्रीय विकास की गति इतनी धीमी है कि व्यक्ति को वर्तमान समय में जीवन व्यतीत करना कठिन हो रहा है। इनसे मानसिक तनाव बढ़ता जाता है।

(ख) **आन्तरिक तनाव**—हमारे देश में अनेक सम्प्रदाय तथा जातियाँ हैं। संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति के लिये ये जातियाँ तथा सम्प्रदाय आपस में लड़ते हैं। राजनैतिक दाँव-पेंच आपसी सम्बन्धों को कटु बना देते हैं। इस प्रकार की परिस्थितियाँ मानसिक तनाव को बढ़ावा देती है।

(3) शिक्षा संस्था का प्रभाव—मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले तत्वों में शिक्षा संस्था तथा उससे सम्बन्धित अनेक तत्व उत्तरदायी हैं जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(क) **विद्यालय का वातावरण**—विद्यालय के वातावरण का बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर भारी प्रभाव पड़ता है। यदि विद्यालय में विद्यार्थी असुरक्षित अनुभव करते हैं तो उनके मस्तिष्क में निरन्तर चिन्ता व भय बना रहता है। साम्प्रदायिकता, भेदभाव, कुप्रबन्ध के कारण विभिन्न प्रकार के झगड़े होते रहते हैं जिनके कारण वातावरण अशांत रहता है जो कि विकास में बाधा उत्पन्न करता है। यह सब विद्यार्थी के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं।

(ख) **अनुपयुक्त पाठ्यक्रम**—शिक्षा के उद्देश्यों तथा निर्धारित पाठ्यक्रम सामंजस्य न होने के कारण विकास की अनेकों समस्यायें उत्पन्न होती हैं जिनका निराकरण आसानी से सम्भव नहीं होता जिनमें मानसिक तनाव उत्पन्न हो सकता है।

(ग) **कक्षा में असमायोजन**—मानसिक अस्वस्थता के लिये कक्षा भी उत्तरदायी हो सकती है। मानसिक रूप से अस्वस्थ बालक शिक्षक की कार्य-प्रणाली को तो प्रभावित करते ही हैं, साथ ही साथ अन्य बालकों पर भी उनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कक्षा में मानसिक अस्वस्थता के अनेकों उदाहरण जैसे—लड़ना-झगड़ना, तुतलाना, नींद न आना, नाखून काटना, हीन व्यवहार, भावनात्मक अपरिपक्वता, समाज विरोधी व्यवहार, गन्दी भाषा का बोलना तथा मनोदैहिक बाधायें देखे जा सकते हैं।

(घ) **परीक्षा प्रणाली**—यदि परीक्षा प्रणाली ऐसी है जिससे विद्यार्थी का मूल्यांकन ठीक प्रकार से नहीं हो सकता तो उसकी योग्यता का सही पता नहीं हो पायेगा और इस प्रकार विद्यार्थी वातावरण से समायोजन नहीं कर पायेगा। कभी-कभी तो कमजोर बालक को कक्षोन्नति दे दी जाती है और वह सदैव अपनी कक्षा में पिछड़ा रहता है। इस प्रकार परीक्षा प्रणाली विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है।

(ङ) **शिक्षक का व्यवहार**—शिक्षक का व्यक्तित्व विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को निरन्तर प्रभावित करता रहता है। कभी शिक्षक का व्यवहार अत्यन्त निरंकुशतापूर्ण होता है तो विद्यार्थी सदैव भयभीत रहते हैं। उन्हें विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता नहीं दी जाती। यह स्थिति मानसिक स्वास्थ्य पर गलत प्रभाव डालती है। इसके विपरीत परिस्थिति में सही दिशा का बोध नहीं हो पाता।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें** (Fill in the blanks)—

   (*i*) .... का मुख्य लक्षण संवेगात्मक अस्थिरता है।

   (*ii*) मनोविकृत व्यवहार व्यक्ति में व्यवहार .... हो जाता है।

नोट

(*iii*) यथार्थ जीवन की असफलताओं से परेशान होकर व्यक्ति .... में जाकर मानसिक तनाव से बचाता है।

(*iv*) .... रोगियों में भावात्मक तथा बौद्धिक संतुलन नहीं रहता।

20.9 सारांश (Summary)

- मानव विकास में मन और मस्तिष्क के विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ मानसिक क्रियाओं से सम्बद्ध रोगहीन स्थिति को लाने वाले विज्ञान से है। क्रो और क्रो, कालसेनिक तथा शेफर द्वारा मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की परिभाषाएँ अधिक उपयोगी हैं।
- मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के निम्नलिखित लक्षण हैं–
  (1) नियमित जीवन (Regular Life);
  (2) सामंजस्यशीलता (Adjustability);
  (3) संतोषजनक सामाजिक सामंजस्यशीलता (Satisfactory Social Adjustment);
  (4) व्यवसाय में सन्तोष (Job Satisfaction);
  (5) परिपक्वता (Maturity);
  (6) आत्ममूल्यांकन (Self-Evaluation);
- मानसिक स्वास्थ्य पर निम्नलिखित का प्रभाव पड़ता है–
  1. परिवार (पारिवारिक विघटन, आर्थिक स्थिति, माता-पिता का व्यवहार, परिवार के अनुशासन का आदर्श);
  2. सामाजिक कारक (असुरक्षा, आन्तरिक तनाव);
  3. शिक्षा संस्था का प्रभाव (विद्यालय का वातावरण, अनुपयुक्त पाठ्यक्रम, कक्षा में असमायोजन, परीक्षा प्रणाली, शिक्षक का व्यवहार)।
- व्यक्ति जब समायोजन में सफलता नहीं प्राप्त कर पाता तो मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। मानसिक तनाव के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं–
  (क) अभिप्रेरक की असफलता; (ख) बाधाएँ;
  (ग) प्राकृतिक प्रकोप; (घ) अन्तर्द्वन्द।
- मानसिक तनाव को कम करने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विधियाँ काम में लाई जाती हैं। प्रत्यक्ष विधियाँ मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं–
  (क) बाधा को नष्ट करना या दूर करना; (ख) कार्यविधि में परिवर्तन;
  (ग) प्रतिस्थापन; (घ) पलायन।
- मुख्यत: अप्रत्यक्ष विधियाँ निम्नलिखित हैं–
  (क) आत्मीकरण; (ख) औचित्य स्थापन;
  (ग) प्रक्षेपण; (घ) क्षतिपूर्ति;
  (ङ) दमन; (च) पलायन
- मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम आवश्यक है। इसके लिये परिवार का वातावरण ठीक होना है। बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिये। उनके साथ व्यवहार अच्छा हो। उनमें अच्छी आदतों का निर्माण हो। समाज का संगठन स्वस्थ हो, शिक्षा-संस्था को मानसिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना चाहिये। वातावरण स्वस्थ हो, पाठ्यक्रम व शिक्षण शैली रुचिकर हो।

नोट

- मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति में कई मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मनस्ताप, मनोविकृति से वह पीड़ित हो सकता है। मानसिक रोगों के कारणों में वंशानुक्रम, शारीरिक विकृति, संवेगात्मक अनुभव व अनुपयुक्त वातावरण मुख्य है। मानसिक रोगों के उपचार के अनेक उपाय हैं। अध्यापक का मानसिक स्वास्थ्य छात्र के मानसिक स्वास्थ्य को अच्छा रखने के लिये बहुत आवश्यक है।

20.10 शब्दकोश (Keywords)

- **प्रक्षेपण**–निश्चित दिशा में भेजना, स्थापित करना।
- **मनस्ताप**–मन का दु:ख, पछतावा।

20.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान क्या है? इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुये इसकी परिभाषा बताइये।
2. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के अन्तर्गत हम किन समस्याओं का अध्ययन करते हैं?
3. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध बताते हुए इसके विषय-विस्तार का वर्णन कीजिए।
4. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के महत्व को स्पष्ट करते हुए इस विषय के अध्ययन के लाभ बताइए।
5. मानसिक स्वास्थ्य किसे कहते हैं? समझाकर लिखिए।
6. मानसिक रोग किसे कहते हैं? उदाहरण देकर समझाइये।
7. मानसिक तनाव को कम करने के उपाय बताइये।
8. मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभावक प्रतिकारक लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	(*i*) (*a*)	(*ii*) (*b*)	(*iii*) (*c*)	(*iv*) (*a*)
2.	(*i*) मनस्ताप	(*ii*) असामान्य	(*iii*) कल्पना	(*iv*) मनोविकृति।

20.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श* (Educational Vocational Guidance and Counseling) – डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–21: मनोचिकित्सा: ज्ञानात्मक उपागम (Psychotherapy—Cognitive Approach)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

21.1 ज्ञानात्मक मनोपचार पद्धति की अवधारणा (Concept of Cognitive Approach)

21.2 ज्ञानात्मक उपचार पद्धति का इतिहास (History of Cognitive Approach)

21.3 ज्ञानात्मक उपचार पद्धति की आवश्यकता (Need of Cognitive Approach)

21.4 ज्ञानात्मक पद्धति की प्रकृति (Nature of Cognitive Approach)

21.5 ज्ञानात्मक पद्धति के लाभ तथा हानियाँ (Advantages and Disadvantages of Cognitive Approach)

21.6 सारांश (Summary)

21.7 शब्दकोश (Keywords)

21.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

21.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- ज्ञानात्मक मनोपचार पद्धति की अवधारणा, इतिहास, आवश्यकता एवं प्रकृति की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मनोचिकित्सा से आशय है किसी व्यक्ति की मन:स्थिति को समझते हुए उसे भावनात्मक उपचार देना। परन्तु वर्तमान समय में किसी भी मनोरोगी को न केवल भावनात्मक पद्धति से चिकित्सकीय परामर्श दिया जा रहा है बल्कि ज्ञानात्मक पद्धति से भी मनोपचार सुलभ करवाया जा रहा है। ज्ञानात्मक पद्धति से पीड़ित व्यक्ति को बहुत कम समय में ही लाभ होने लगता है।

21.1 ज्ञानात्मक मनोपचार पद्धति की अवधारणा (Concept of Cognitive Approach)

ज्ञानात्मक बिहेवियर पद्धति एक अल्पावधि, लक्ष्य निर्धारित, मनोचिकित्सकीय उपचार है जो प्रयोगात्मक रूप से समस्या का समाधान करती है। इस पद्धति में लोगों की कठिनाइयों का कारण जानकर उनकी सोच, भावनाओं तथा संवेगों में परिवर्तन लाया जाता है यह व्यक्ति के जीवन की विभिन्न कठिन स्थितियों जैसे नींद न आना, संबंधों में कड़वाहट, नशे या शराब की बुरी आदतों को दूर करने के तथा तनाव व अवसाद का उपचार करने में सहायता करती है।

नोट

21.2 ज्ञानात्मक उपचार पद्धति का इतिहास (History of Cognitive Approach)

1960 में आरोन. टी. बैक. नामक मनोचिकित्सक ने अपने उपचार काल के दौरान यह विश्लेषण किया कि उसके मरीज़ों के दिमाग में विचारों का आदान-प्रदान होता रहता है। और उनका प्रभाव इतना अधिक होता है, ऐसा लगता है मानो वे मूल शब्दों में अपने आप से बातें कर रहें हों, किन्तु वे इस विषय में उपचार के दौरान कुछ नहीं बताते। बैक ने विश्लेषण किया कि विचार तथा भावनाओं में गहरा संबंध होता है। उसने "स्वत: विचार" शब्द प्रतिपादित किया और यहीं से ज्ञानात्मक बिहेवियर पद्धति का आरंभ हुआ। बैंक ने इसे ज्ञानात्मक पद्धति का नाम दिया। इसे ज्ञानात्मक बिहेवियरल पद्धति भी कहा जाता है।

21.3 ज्ञानात्मक उपचार पद्धति की आवश्यकता (Need of Cognitive Approach)

अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि ज्ञानात्मक पद्धति में अवसाद का प्रभावी उपचार संभव है। ज्ञानात्मक पद्धति तथा अवसाद विरोधी दवाओं के प्रभाव से बड़े से बड़ा तथा गंभीर से गंभीर अवसाद भी ठीक हो सकता है। इन अध्ययनों तथा अनुभवों से पता चलता है कि यह पद्धति अवसाद तथा निराशा से घिरे लोगों के लिए एक वरदान है।

ज्ञानात्मक बिहेवियर पद्धति के विभिन्न चरण

ज्ञानात्मक बिहेवियर पद्धति, दूसरी मनोउपचार पद्धतियों से थोड़ी भिन्न हैं, क्योंकि इसमें उपचार कई सेशन में बंटा होता है, जबकि अन्य विधियों में मरीज़ अपने दिमाग तथा मन में जो भी विचार आता है, उसे वह परामर्शदाता के सामने रख देता है।

उपचार के प्रारंभ में प्रार्थी जब परामर्शदाता से मिलता है वह उसे अपनी समस्या बताता है और परामर्शदाता उपचार संबंधी लक्ष्य निर्धारित कर लेता है। यह समस्या कई प्रकार की हो सकती हैं। जैसे ठीक प्रकार से नींद न आना, मित्रों तथा संबंधियों के साथ ठीक प्रकार व्यवहार न करना, काम में ध्यान न लगना, किशोरावस्था से संबंधित शारीरिक व मानसिक समस्याएँ आदि। इस पद्धति में प्रार्थी जब परामर्शदाता के पास अपनी समस्या लेकर जाता है तो परामर्शदाता समस्या की गंभीरता का विश्लेषण करके उसके उपचार के लिए एक निश्चित समय अन्तराल के सेशन बनाता है। उसके बाद आगे की रणनीति बनाई जाती है। वे पिछले सेशन में हुई बातचीत के आधार पर आगे के उपचार संबंधी विचार विमर्श करते हैं। इस पद्धति के निम्नलिखित चरणों की हम आगे चर्चा करेंगे।

गृहकार्य

जिस प्रकार स्कूल में बच्चों को किसी समस्या को सुलझाने के लिए कोई विशिष्ट कार्य या अभ्यास दिया जाता है उसी प्रकार मनोचिकित्सक भी अपने मरीज़ को अपनी समस्या से संबंधित विषयों से जुड़ी बातों के लिए कोई ऐसा क्रियाकलाप करने के लिए देते हैं जोकि उनके उपचार में प्रभावी होती है। जैसे उपचार के आरंभ में मनोचिकित्सक, प्रार्थी से उन घटनाओं को डायरी में नोट करने के लिए कहता है जो उसकी चिंता तथा अवसाद बढ़ाते हैं। अगले सेशन में क्रियाकलाप का रूप बदल दिया जाता है जैसे समस्या से संबंधित कुछ व्यायाम आदि।

स्ट्रक्चर का महत्व

स्ट्रक्चर इस पद्धति में इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह पद्धति में समय के सही उपयोग में मदद करता है, इससे यह भी पता चलता है कि घर पर किये गए क्रियाकलापों में कोई चीज़ छूटी तो नहीं रह गई, इन सूचनाओं के आधार पर मनोचिकित्सक तथा प्रार्थी सही ढंग से नए सेशन में कार्य करने की रणनीति बनाते हैं। जैसे जैसे यह सेशन बढ़ता है, प्रार्थी आवश्यक तथा प्रभावी सिद्धान्तों को ग्रहण कर लेते हैं, तथा प्रार्थी स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं।

नोट

समूह सेशन

ज्ञानात्मक बिहेवियरल पद्धति कोई चमत्कार नहीं है। इसमें मनोचिकित्सक को पूर्ण कुशलता व योग्यता की आवश्यकता होती है। तथा प्रार्थी को मनोपचार के लिए शरीर, हृदय तथा मस्तिष्क से पूर्ण रूप से तैयार होना चाहिए। कई बार समस्या की प्रकृति को देखते हुए समूह में भी समस्या पर विचार किया जाता है।

21.4 ज्ञानात्मक पद्धति की प्रकृति (Nature of Gognitive Approach)

अधिगम कोपिंग कौशल–CBT छात्रों को अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए कौशल व निपुणता लाने के लिए कार्य करता है। CBT एक ही समय में विभिन्न तरीकों से कार्य करता है। जो व्यक्ति या छात्र चिंता से संबंधी समस्या में ऐसी परिस्थितियों से बचने का प्रयास करता है, जो चिंता को बढ़ती हैं, इसी प्रकार जो व्यक्ति अवसाद का शिकार है, वह अपने विचारों को रिकॉर्ड करना सीखता है, ताकि वह उनके बारें में तथा उनसे बाहर निकलने में सहायता प्राप्त कर सकें। जो व्यक्ति किसी दीर्घ कालिक समस्या से ग्रस्त हैं वे चिंतन मनन द्वारा अपनी समस्या का हल ढूंढ़ने के लिए अपने आप को सक्षम बनाते हैं, इस प्रकार आत्ममंथन द्वारा कई गंभीर मानसिक समस्याओं का हल निकालने की क्षमता व कौशल का विकास होता है।

व्यवहार तथा विश्वास में बदलाव–ज्ञानात्मक बिहेवियरल पद्धति के द्वारा प्रार्थी के मूल व्यवहार तथा समस्या के प्रति संवेदनशीलता में परिवर्तन लाया जाता है। उदाहरण के तौर पर प्रार्थी यह सोचने लगता है कि चिंता इतना बड़ा विषय नहीं हैं, जितना कि इसे समझा जाता है या जो व्यक्ति गंभीर अवसाद से ग्रस्त हैं वे भी अपने आप को हीनभावना से मुक्त करके एक सामान्य व्यक्ति के रूप में जीवन व्यतीत करना सीखते हैं।

संबंध की एक नई अवस्था–ज्ञानात्मक पद्धति के दौरान प्रार्थी तथा मनोचिकित्सक बीच में आपसी विश्वास का एक संबंध बना जाता है। जैसे जैसे उपचार आगे बढ़ता है। मनोचिकित्सक प्रार्थी के विचारों, व्यवहार तथा भावनाओं को सकारात्मकता की ओर ले जाता है। इस आपसी विश्वास को ध्यान में रखते हुए वह अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ उनके समक्ष रखता है। अपनी समस्या को मनोचिकित्सक के समक्ष रखने के बाद प्रार्थी अपने आप को बहुत हल्का महसूस करता है। यह इस उपचार का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है।

जीवन की समस्याओं का समाधान–ज्ञानात्मक बिहेवियरल अवसाद, चिंता, भय तथा अन्य मनोविकारों के समाधान के लिए एक अचूक औषधि का काम करता है। ज्ञानात्मक बिहेवियरल उपचार पद्धति इस सिंद्धात पर कार्य करती है कि व्यक्ति का 'मूड' उसके विचारों से सीधे तौर से जुड़ा होता है। नकारात्मक विचार व्यक्ति के मूड़, व्यवहार तथा शारीरिक अवस्था को भी पूर्णतः प्रभावित करते हैं।

नोट्स ज्ञानात्मक बिहेवियरल पद्धति इसी प्रकार के नकारात्मक मनोभावों को पहचानने, उनकी वैधता का मूल्यांकन करने तथा उन्हें स्वस्थ विचारों से स्थानान्तरित करने में सहायता करती है।

21.5 ज्ञानात्मक पद्धति के लाभ तथा हानियाँ (Advantages and Disadvantages of Cognitive Approach)

ज्ञानात्मक उपचार पद्धति के लाभ

(*i*) **ज्ञानात्मक बिहेवियरल उपचार पद्धति एक आदेशात्मक प्रक्रिया है**–जब प्रार्थी यह भली प्रकार से जान लेते हैं कि वे अपनी समस्याओं को किस प्रकार आत्म निरीक्षण से हल कर सकते हैं, तो वे पूरी लगन तथा समय सारणी के अनुसार मनाचिकित्सक की बताई हुई हर पद्धति का पालन करते हैं। इसलिए मनोचिकित्सक भी प्रार्थी को अच्छी तरह से पद्धति की हर प्रक्रिया समझाते हैं।

नोट

(*ii*) **ज्ञानात्मक बिहेवियरल पद्धति अल्पावधि होती हैं**—CBT पद्धति में 16 सेशन तक हो सकते हैं जिसमें समस्या, वार्तालाप, गृहकार्य तथा उपचार पद्धति से सम्बंधित सभी कार्य होते हैं। कुछ लोग इन सेशनों की संख्या समस्या की गंभीरता को देखते हुए बढ़ा देते हैं किन्तु सामान्यत: यह संख्या 16 ही होती है।

(*iii*) **ज्ञानात्मक पद्धत्ति क्रॉस कल्चरल होती हैं**—यह मानव व्यवहार के सार्वत्रिक नियमों पर निर्भर होता है, यह मनोचिकित्सक से अधिक प्रार्थी के लक्ष्य को निर्धारण पर बल देता है।

क्या आप जानते हैं CBT का मूलभूत सिद्धांत विचार, भावनाओं तथा व्यवहार में संबंधित होता है।

ज्ञानात्मक बिहेवियरल उपचार पद्धति की हानियाँ

(*i*) CBT की स्ट्रक्चर्ड प्रकृति के कारण अधिक गंभीर मानसिक विकारों तथा अधिगम संबंधी कठिनाइयों में यह उपचार पद्धति काम नहीं आ सकती है।

(*ii*) CBT केवल वर्तमान समस्याओं तथा बहुत विशेष समस्याओं को ही महत्व देती है, इसलिए इसमें बचपन में हुई पूर्वानुभवों की समस्या को सुलझाने में मदद नहीं कर सकती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. ज्ञानात्मक उपचार पद्धति को ········· भी कहा जाता है।
2. ········· ने 1905 में ज्ञानात्मक व्यवहार का परीक्षण किया तथा ········· प्रतिपादन किया।
3. मनोचिकित्सा की कॉगनिटिप पद्धति ········· का एक प्रभावी उपचार है।
4. दोषपूर्ण विचारों के पैटर्न को ········· कहा जाता है।

21.6 सारांश (Summary)

- ज्ञानात्मक बिहेवियर पद्धति एक अल्पावधि, लक्ष्य निर्धारित, मनोचिकित्सकीय उपचार है जो प्रयोगात्मक रूप से समस्या का समाधान करती है।
- 1960 में आरोन. टी. बैक. नामक मनोचिकित्सक ने अपने उपचार काल के दौरान यह विश्लेषण किया कि उसके मरीज़ों के दिमाग में कुछ विचार चलते रहते है। और उनका प्रभाव इतना अधिक होता है, ऐसा लगता है मानो वे मूल शब्दों में अपने आप से बातें कर रहें हों, किन्तु वे इस विषय में उपचार के दौरान कुछ नहीं बताते। बैक ने विश्लेषण किया कि विचार तथा भावनाओं में गहरा संबंध होता है। उसने "स्वत: विचार" शब्द प्रतिपादित किया और यहीं से ज्ञानात्मक बिहेवियर पद्धति का आरंभ हुआ।
- अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि ज्ञानात्मक पद्धति में अवसाद का प्रभावी उपचार संभव है। ज्ञानात्मक पद्धति तथा अवसाद विरोधी दवाओं के प्रभाव से बड़े से बड़ा तथा गंभीर से गंभीर अवसाद भी ठीक हो सकता है।
- ज्ञानात्मक बिहेवियर पद्धति, दूसरी मनोउपचार पद्धतियों से थोड़ी भिन्न हैं, क्योंकि इसमें उपचार कई सेशन में बंटा होता है, जबकि अन्य विधियों में मरीज़ अपने दिमाग तथा मन में जो भी विचार आता है, उसे वह परामर्शदाता के सामने रख देता है।
- उपचार के प्रारंभ में प्रार्थी जब परामर्शदाता से मिलता है उसे अपनी समस्या बताता है और उपचार संबंधी लक्ष्य निर्धारित कर लेता है।

नोट

- जिस प्रकार स्कूल में बच्चों का किसी समस्या को सुलझाने के लिए कोई विशिष्ट कार्य या अभ्यास दिया जाता है उसी प्रकार मनोचिकित्सक भी अपने मरीज़ को अपनी समस्या से संबंधित विषयों से जुड़ी बातों के लिए कोई ऐसा क्रियाकलाप करने के लिए देते हैं जोकि उनके उपचार में प्रभावी होती है।
- स्ट्रक्चर इस पद्धति में इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह पद्धति में समय के सही उपयोग में मदद करता है, इससे यह भी पता चलता है कि घर पर किये गए क्रियाकलापों में कोई चीज़ छूटी तो नहीं रह गई, इन सूचनाओं के आधार पर मनोचिकित्सक तथा प्रार्थी सही ढंग से नए सेशन में कार्य करने की रणनीति बनाते हैं।
- ज्ञानात्मक बिहेवियरल पद्धति कोई चमत्कार नहीं है। इसमें मनोचिकित्सक को पूर्ण कुशलता व योग्यता की आवश्यकता होती है। तथा प्रार्थी को मनोपचार के लिए शरीर, हृदय तथा मस्तिष्क से पूर्ण रूप से तैयार होना चाहिए।
- **अधिगम कोपिंग कौशल**–CBT छात्रों को अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए कौशल व निपुणता लाने के लिए कार्य करता है। CBT एक ही समय में विभिन्न तरीकों से कार्य करता है। जो व्यक्ति या छात्र चिंता से संबंधी समस्या में ऐसी परिस्थितियों से बचने का प्रयास करता है, जो चिंता को बढ़ाती हैं, इसी प्रकार जो व्यक्ति अवसाद का शिकार है,
- **व्यवहार तथा विश्वास में बदलाव**–ज्ञानात्मक बिहेवियरल पद्धति के द्वारा प्रार्थी के मूल व्यवहार तथा समस्या के प्रति संवेदनशीलता में परिवर्तन लाया जाता है। उदाहरण के तौर पर प्रार्थी यह सोचने लगता है कि चिंता इतना बड़ा विषय नहीं हैं, जितना कि इसे समझा जाता है या जो व्यक्ति गंभीर अवसाद से ग्रस्त हैं वे भी अपने आप को हीनभावना से मुक्त करके एक सामान्य व्यक्ति के रूप में जीवन व्यतीत करना सीखते हैं।
- **संबंध की एक नई अवस्था**–ज्ञानात्मक पद्धति के दौरान प्रार्थी तथा मनोचिकित्सक बीच में आपसी विश्वास का एक संबंध बना जाता है। जैसे जैसे उपचार आगे बढ़ता है मनोचिकित्सक प्रार्थी के विचारों, व्यवहार तथा भावनाओं को सकारात्मकता की ओर ले जाता है।
- **जीवन की समस्याओं का समाधान**–ज्ञानात्मक बिहेवियरल अवसाद, चिंता, भय तथा अन्य मनोविकारों के समाधान के लिए एक अचूक औषधि का काम करता है। ज्ञानात्मक बिहेवियरल उपचार पद्धति इस सिंद्धात पर कार्य करती है कि व्यक्ति का 'मूड' उसके विचारों से सीधे तौर से जुड़ा होता है।
- **ज्ञानात्मक उपचार पद्धति के लाभ:**

(i) **ज्ञानात्मक बिहेवियरल उपचार पद्धति एक आदेशात्मक प्रक्रिया है**–जब प्रार्थी यह भली प्रकार से जान लेते हैं कि वे अपनी समस्याओं को किस प्रकार आत्म निरीक्षण से हल कर सकते हैं, तो वे पूरी लगन तथा समय सारणी के अनुसार मनोचिकित्सक की बताई हुई हर पद्धति का पालन करते हैं। इसलिए मनोचिकित्सक भी प्रार्थी को अच्छी तरह से पद्धति की हर प्रक्रिया समझाते हैं।

(ii) **ज्ञानात्मक बिहेवियरल पद्धति अल्पावधि होती हैं**–CBT पद्धति में 16 सेशन तक हो सकते हैं जिसमें समस्या, वार्तालाप, गृहकार्य तथा उपचार पद्धति से सम्बंधित सभी कार्य होते हैं। कुछ लोग इन सेशनों की संख्या समस्या की गंभीरता को देखते हुए बढ़ा देते हैं किन्तु सामान्यत: यह संख्या 16 ही होती है।

(iii) **ज्ञानात्मक पद्धत्ति क्रॉस कल्चरल होती है**–यह मानव व्यवहार के सार्वत्रिक नियमों पर निर्भर होता है, यह मनोचिकित्सक से अधिक प्रार्थी के लक्ष्य को निर्धारण पर बल देता है।

21.7 शब्दकोश (Keywords)

- **अवसाद**–दु:ख, तनाव।
- **अधिगम**–प्राप्ति, जानना।

नोट

21.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मनोचिकित्सा की ज्ञानात्मक पद्धति का क्या अर्थ है?
2. ज्ञानात्मक पद्धति में स्ट्रक्चर का क्या महत्व है?
3. ज्ञानात्मक पद्धति की प्रक्रिया के चरण लिखिए।
4. ज्ञानात्मक पद्धति के लाभ तथा हानियाँ लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. कागनेटिव बिहेवियरल पद्धति
2. आरोन टी. बैक, स्वविचार
3. अवसाद
4. मनोविकार।

21.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)* – डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—22: मनोपचार—पर्यावरणीय उपचार उपागम (Psychotherapy—Environmental Approach)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

22.1 पर्यावरणीय उपचार पद्धति की अवधारणा (Concept of Environmental Approach of Pshychotherapy)

22.2 पर्यावरणीय उपचार पद्धति की विशेषताएँ (Characteristics of Environmental Psychotherapy)

22.3 पर्यावरणीय पद्धति की कठिनाइयाँ (Limitations of Environmental Approach)

22.4 सारांश (Summary)

22.5 शब्दकोश (Keywords)

22.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

22.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- पर्यावरणीय उपचार पद्धति की अवधारणा, विशेषता एवं उसकी कठिनाइयों की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

पर्यावरणीय उपचार पद्धति में व्यक्ति के आसपास के वातावरण में होने वाले परिवर्तनों तथा स्थितियों द्वारा उपचार किया जाता है, व्यक्ति जिस परिवेश में रहता है, उसी प्रकार का व्यवहार करता है। कई बार जब व्यक्ति अत्यधिक मानसिक दबाव अनुभव करता है तो वह अपने आस पास के प्राकृतिक वातावरण जैसे पेड़ पौधे फूल, जीव, जन्तु तथा अन्य संसाधनों का आनंद लेकर अपनी मानसिक परेशानियों को दूर कर लेता है। इस इकाई में हम पर्यावरणीय उपचार पद्धति के विभिन्न परिवेशों में अध्ययन करेंगे।

22.1 पर्यावरणीय उपचार पद्धति की अवधारणा (Concept of Environmental Approach of Psychotherapy)

पर्यावरणीय उपचार पद्धति मनोचिकित्सा की एक प्राकृतिक पद्धति है, जो व्यक्ति तथा उसके आसपास के वातावरण के बीच संबंध पर केन्द्रित है। वातावरण का अर्थ केवल प्राकृतिक वातावरण से ही संबंद्ध नहीं है, बल्कि व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार, समाज में उसकी स्थिति, जानकारीपूर्ण वातावरण, अधिगम वातावरण सभी सम्मिलित हैं।

> *नोट्स* आदरणीय पद्धति मानसिक तनाव आदि को दूर करने का एक प्राकृतिक उपाय है। इस इकाई में हम पर्यावरणीय उपचार पद्धति के विभिन्न परिवेशों में अध्ययन करेंगे।

नोट

22.2 पर्यावरणीय उपचार पद्धति की विशेषताएँ (Characteristics of Environmental Psychotherapy)

पर्यावरणीय उपचार पद्धति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. समस्या की पहचान

पर्यावरणीय पद्धति पर्यावरण तथा व्यक्ति पर उसके प्रभाव से होने वाले परिवर्तनों तथा संबंधों का अध्ययन है। समस्या को पहचानकर, उसका हल ढूंढना ही इस पद्धति की मुख्य विशेषता है। सबसे पहले समस्या को पहचान कर उसका विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन किसी प्रयोगशाला में नहीं बल्कि वास्तविक जीवन में किया जाता है। इसके बाद समस्या के स्त्रोत पर ध्यान दिया जाता है। पर्यावरणीय उपचार पद्धति वास्तविक जीवन की वास्तविक घटनाओं पर विशेष बल देती है। दैनिक जीवन में होने वाली घटनाओं के द्वारा चिकित्सा करना तथा उसका समाधान ढूँढना इस उपचार पद्धति का सबसे मुख्य व कठिन कार्य है।

पर्यावरणीय उपचार पद्धति में जनसंख्या घनत्व, भीड़, ध्वनि प्रदूषण, निम्न स्तर का रहन-सहन आदि समस्याओं का निवारण किया जाता है।

उदाहरण के तौर पर कुछ कारक भीड़भाड़ से उत्पन्न हुए अवसाद का निदान करने में सहायक होते हैं–

जैसे–खिड़कियाँ, ऊँची छतें, चौकोर कमरे, आयताकार कमरों से अधिक बड़े होते हैं। स्थान को विभाजित करके अलग-अलग निजी केबिन बनाकर भीड़भाड़ की समस्या से उत्पन्न हुए अवसाद से छुटकारा दिलाया जा सकता है।

2. पर्यावरणीय जागरूकता

पर्यावरणीय उपचार पद्धति में व्यक्ति में पर्यावरणीय जागरूकता बहुत आवश्यक है। हमारे मस्तिष्क के कई भाग प्रकृति तथा वातावरण से संबंधित जानकारी प्राप्त करते रहते हैं, तथा आरबिटोफ्रन्टल कॉर्टेक्स, इन जानकारियों को ग्रहण करता है। ऑरबिटोफ्रन्टल वातावरण से संबंधित जानकारी को प्राप्त करके, वातावरण के संबंध में निर्णय देता है तथा गल्तियों के विश्लेषण द्वारा व्यक्ति की समझ को भी शुद्ध करता है, तथा कई अन्य प्रक्रियाएँ प्रीफ्रन्टल कॉर्टेक्स द्वारा होती है, किन्तु व्यक्ति तथा वातावरण के बीच के संबंध को समझने के लिए कोई विशिष्ट क्षेत्र नहीं है, मस्तिष्क के प्रत्येक क्षेत्र द्वारा इसे ग्रहण किया जाता है। जब व्यक्ति वातावरण तथा पर्यावरण के वृहद क्षेत्रों के विषय में सोचता है तो मस्तिष्क के विभिन्न भागों में (रक्त-ऑक्सीजन स्तर) में बहुत अधिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। वातावरण तथा पर्यावरण के समस्त कार्यों की जानकारी के लिए मस्तिष्क का विकास तथा वृद्धि बहुत आवश्यक है।

पर्यावरणीय पद्धति में वातावरण पर पूरा-पूरा नियन्त्रण रखकर विषय की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। प्राय: बाल-समूह या पाठशाला के विद्यार्थियों को परीक्षण के लिए चुना जाता है। परीक्षण के लिए एक विशिष्ट वस्तु चुन ली जाती है, और उन सभी सम्बन्धित वस्तुओं को उससे अलग रखा जाता है जो मस्तिष्क प्रक्रिया पर प्रभाव डाल सकें। यह विशिष्ट वस्तु कोई मानसिक प्रक्रिया ही होती है। इस प्रकार नियन्त्रित और उपयुक्त वातावरण उत्पन्न कर परीक्षण किये जाते हैं, उनके परिणामों को लिख लिया जाता है, फिर उनसे निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

प्राक्कल्पना

पर्यावरणीय पद्धति, जैसा ऊपर कहा गया है, वैज्ञानिक पद्धति है। एक वैज्ञानिक के सामने जब कोई समस्या आती है तो प्रारम्भ का पद जो वह लेता है, उसके हल का अनुमान बनाना होता है। इस अनुमान को प्राक्कल्पना कहते है। यह प्राक्कल्पना ऐसे तथ्यों की खोज की ओर दिशा प्रदान करती है जो प्राक्कल्पना को या तो स्थापित कर दे या उसको त्याग दे। प्राक्कल्पना एक प्रश्न के ही रूप में होती है और बहुत संकीर्ण क्षेत्र में होती है।

वैज्ञानिक अपने अनुसन्धान की इस प्रकार से रूपरेखा बनाता है कि प्राक्कल्पना की सब मुख्य दशाओं को सीधा विश्लेषण कर सके। मुख्यत: यह अनुसन्धान प्रयोग का रूप ले लेता है जो नियन्त्रित दशाओं में किया जाता है। इन दशाओं में से एक में परिवर्तन लाया जाता है और बाकी सबको कठोर नियन्त्रण में रखा जाता है। ये विशेषताएँ प्रयोग को दोहराना सम्भव बना देती हैं। जब प्रयोग असम्भव होता है, तो अनुसन्धानकर्त्ता दूसरी विधियों का प्रयोग करता है। मनोविज्ञान प्रयोग के ऊपर आधारित तो है परन्तु इससे सीमित नहीं है।

क्या आप जानते हैं ध्वनि, तनाव को बढ़ाती है। यह मानव स्वभाव में चिड़चिड़ापन तथा अन्य प्रकार के परिवर्तन लाती है, इसी प्रकार, जनसंख्या घनत्व तथा भीड़भाड़ के कारण भी व्यक्ति के मूड में तनाव तथा अवसाद आदि कई समस्याओं से घिर जाता है, इस प्रकार की समस्याओं को पहचानकर मनोचिकित्सक उसका उपचार करते हैं।

22.3 पर्यावरणीय पद्धति की कठिनाइयाँ (Limitations of Environmental Approach)

मनोवैज्ञानिक अपने अनुसन्धान की रूपरेखा विज्ञान की विशेषताओं के आधार पर ही बनाता है। एक अनुसन्धान की जो आदर्श विशेषताएँ हैं, वे निम्नलिखित हैं–

(1) **दशाओं का नियन्त्रण**–विज्ञान में दशाओं पर नियन्त्रण रखना सरल होता है। वैज्ञानिक तापक्रम, दबाव, पदार्थ जिनका प्रयोग करता है, इत्यादि पर नियन्त्रण रख सकती है किन्तु मनोविज्ञान के अनुसन्धान में नियन्त्रण रखना सरल नहीं है। मनोविज्ञान मानव-व्यवहर का अध्ययन करता है और मानव-व्यवहार की इतनी चल-राशियाँ होती हैं कि प्रयोग द्वारा उन पर नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं होता। इस कारण हम मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान में इस प्रकार की युक्तियों का प्रयोग करते हैं; जैसे-नियन्त्रण समूह, विषयी अपना स्वयं नियन्त्रण करे तथा चल-राशियों पर सांख्यिकी नियन्त्रण। फिर भी मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान से पर्याप्त नियन्त्रण सदैव समस्या बनी रहती है।

(2) **वस्तुनिष्ठता**–यह भी पर्यावरणीय उपागम के लिए कठिन समस्या है। मनोवैज्ञानिक को वस्तुनिष्ठ इस ढंग से बुद्धि, सीखना, थकान इत्यादि की परिभाषा देने में कठिनाई होती है। जो परिभाषा दी जाती है, वह मनोवैज्ञानिक-विशेष द्वारा ही की जाती है और इस पर सब सहमत नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान जो परीक्षण इत्यादि का प्रयोग करता है, वह भी व्यक्तिगत आधार पर ही होते हैं। वह प्रत्येक दशा में उपयुक्त नहीं होते, न ही उनके फल सर्वमान्य होते हैं।

(3) **परिणामों का सत्यापन**–आदर्श अनुसन्धान ऐसा होना चाहिए कि वह दोहराया जा सके और उसके परिणामों का सत्यापन किया जा सके। मनोविज्ञान के अनुसन्धानों में यह भी कठिनाई है। इसके अनुसन्धानों को उन्हीं दशाओं में दोहराना लगभग असम्भव है क्योंकि जब ये दोहराये जाते हैं तो विषयों में अनुभव इत्यादि के कारण परिवर्तन आ जाता है।

किन्तु यह कहना गलत होगा कि इन कठिनाइयों के कारण मनोविज्ञान का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन नहीं होता। मनोविज्ञान का अनुसन्धानकर्त्ता इन कठिनाइयों को दूर करने में लगा रहता है। वह जानता है कि उसके अनुसन्धान का मूल्य उसी समय है जब वह पूर्ण वैज्ञानिक विधि से अपने परिणाम निकाले।

टास्क पर्यावरणीय जारूकता क्या है?

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. .... मनुष्य और उनके आसपास के बीच परस्पर क्रिया पर केंद्रित है। (पर्यावरण मनोविज्ञान)
2. .... ने सबसे पहले पर्यावरण मनोविज्ञान का उल्लेख किया। (बिली हेल्पेक)
3. .... को पहचानकर उसका निवारण करना ही इस पद्धति मुख्य विशेषता है। (समस्या)
4. .... मस्तिष्क में होने वाली पर्यावरणीय जानकारियों को सुरक्षित करता है।

22.4 सारांश (Summary)

- पर्यावरणीय उपचार पद्धति मनोचिकित्सा की एक प्राकृतिक पद्धति है, जो व्यक्ति तथा उसके आसपास के वातावरण के बीच संबंध पर केन्द्रित है। वातावरण का अर्थ केवल प्राकृतिक वातावरण से ही संबंद्ध नहीं है, बल्कि व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार, समाज में उसकी स्थिति, जानकारीपूर्ण वातावरण अधिगम वातावरण सभी सम्मिलित हैं।
- पर्यावरणीय पद्धति पर्यावरण तथा व्यक्ति पर उसके प्रभाव से होने वाले परिवर्तनों तथा संबंधों का अध्ययन है। समस्या को पहचानकर, उसका हल ढूंढना ही इस पद्धति की मुख्य विशेषता है। सबसे पहले समस्या को पहचान कर उसका विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन किसी प्रयोगशाला में नहीं बल्कि वास्तविक जीवन में किया जाता है।
- पर्यावरणीय उपचार पद्धति में व्यक्ति की पर्यावरणीय जागरूकता बहुत आवश्यक है। हमारे मस्तिष्क के कई भाग प्रकृति तथा वातावरण से संबंधित जानकारी प्राप्त करते रहते हैं, तथा आरबिटोफ्रन्टल कॉर्टेक्स, इन जानकारियों को ग्रहण करता है। ऑरबिटोफ्रन्टल वातावरण से संबंधित जानकारी को प्राप्त करके, वातावरण के संबंध में निर्णय देता है तथा गलतियों के विश्लेषण द्वारा व्यक्ति की समझ को भी शुद्ध करता है, तथा कई अन्य प्रक्रियाएँ प्रीफ्रन्टल कॉर्टेक्स द्वारा होती है, किन्तु व्यक्ति तथा वातावरण के बीच के Interaction को समझने के लिए कोई विशिष्ट क्षेत्र नहीं है,
- पर्यावरणीय पद्धति, जैसा ऊपर कहा गया है, वैज्ञानिक पद्धति है। एक वैज्ञानिक के सामने जब कोई समस्या आती हैं तो प्रारम्भ का पद जो वह लेता है, उसके हल का अनुमान बनाना होता है। इस अनुमान को प्राक्कल्पना कहते है। यह प्राक्कल्पना ऐसे तथ्यों की खोज की ओर दिशा प्रदान करती है जो प्राक्कल्पना को या तो स्थापित कर दे या उसको त्याग दे। प्राक्कल्पना एक प्रश्न के ही रूप में होती है और बहुत संकीर्ण क्षेत्र में होती है।
- **दशाओं का नियन्त्रण**–विज्ञान में दशाओं पर नियन्त्रण रखना सरल होता है। वैज्ञानिक तापक्रम, दबाव, पदार्थ जिनका प्रयोग करता है, इत्यादि पर नियन्त्रण रख सकती है किन्तु मनोविज्ञान के अनुसन्धान में नियन्त्रण रखना सरल नहीं है। मनोविज्ञान मानव-व्यवहर का अध्ययन करता है और मानव-व्यवहार की इतनी चल-राशियाँ होती हैं कि प्रयोग द्वारा उन पर नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं होता।
- **वस्तुनिष्ठता**–यह भी मनोविज्ञान के लिए कठिन समस्या है। मनोवैज्ञानिक को वस्तुनिष्ठ इस ढंग से बुद्धि, सीखना, थकान इत्यादि की परिभाषा देने में कठिनाई होती है।
- **परिणामों का सत्यापन**–आदर्श अनुसन्धान ऐसा होना चाहिए कि वह दोहराया जा सके और उसके परिणामों का सत्यापन किया जा सके।

22.5 शब्दकोश (Keywords)

- **पर्यावरणीय**–पर्यावरण के अनुसार।
- **उपचार**–इलाज, चिकित्सा।

नोट

22.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. पर्यावरणीय मनोपचार क्या है?
2. पर्यावरणीय मनोपचार की क्या विशेषताएँ हैं? उदाहरण दीजिए
3. पर्यावरणीय मनोपचार के विभिन्न चरण लिखिए।
4. पर्यावरणीय मनोपचार की उपयोगिता व सीमाएँ लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. पर्यावरणीय मनोविज्ञान 2. विली हेलपेक 3. समस्या 4. ऑरबिटोफ्रन्टल कॉटेक्स।

22.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।
3. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Coundeling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–23: परामर्शदाता (Counselor)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
23.1 परामर्शदाता की भूमिका (Role of Counselor)
23.2 परामर्शदाता के गुण (Qualities of Counselor)
23.3 परामर्शदाता के कार्य (Functions of Counselor)
23.4 सारांश (Summary)
23.5 शब्दकोश (Keywords)
23.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
23.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- परामर्शदाता की भूमिका, गुण एवं उसके कार्यों की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

विशिष्ट एवं सुनिश्चित परिस्थितियों में ही परामर्श प्रदान किया जाता है तथा इसके लिए परामर्श देने वाले व्यक्ति में विभिन्न प्रकार की योग्यताओं एवं कौशलों का होना आवश्यक होता है। पूर्णतया प्रशिक्षित, व्यवसाय के प्रति निष्ठावान व्यक्ति ही इस प्रक्रिया को सम्पन्न कर सकता है उपबोध्य में अपना विश्वास उत्पन्न करके उसे सहज और निःसंकोच रूप में अपनी बात कह देने के लिए प्रेरित कर देना ही स्वयं में एक ऐसी योग्यता है जिसका विकास सहज ही सम्भव नहीं है। इसी से परामर्शदाता की भूमिका एवं योग्यता का अनुमान लगाया जा सकता है।

23.1 परामर्शदाता की भूमिका (Role of Counselor)

19वीं शताब्दी के तीसरे-चौथे दशक से पूर्व, परामर्शदाता के स्थान पर 'निर्देशन विशेषज्ञ, (Guidance Specialist) शब्द का प्रयोग किया जाता था *लीफिवर* इत्यादि विद्वानों ने निर्देशन विशेषज्ञों हेतु 'उपबोधक' शब्द के प्रयोग का सुझाव देते हुए, परामर्शदाता तथा शिक्षक-उपबोधक में अन्तर के सम्बन्ध में लिखा–"विशेषज्ञों हेतु अदल-बदल के आधार पर उपबोधक और शिक्षक-उपबोधक शब्द को प्रयुक्त किया जायेगा, लेकिन कुछ अन्तर के साथ एक उपबोधक वह व्यक्ति है जो अपने आधे या उससे अधिक समय का उपयोग निर्देशन कार्य हेतु करता है। एक शिक्षक-परामर्शदाता वह है जिसे निर्देशन कार्य के लिए कम से कम एक कक्षा में कार्य से मुक्त किया जाये, लेकिन जो अपने पूरे समय के आधे समय का उपयोग सेवार्थी के लिए न करे।"

"The term counselor or teacher counselor will be used interchangeably with specialists, but with this distinction; a counsellor will be who devotes half or more of his time to guidance a teacher

नोट

counselor, one who had been relieved atleast one class for guidance work, but will not denote as much as half time to counselee." —*Leefever*

इस शताब्दी के चौथे दशक में, परामर्शदाताओं एवं निर्देशन विशेषज्ञ का कार्य एक समान माना जाता था पर शनैः शनैः उपबोधकों के कार्यों तथा प्रकृति को स्पष्ट किया गया। इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विचार निम्नलिखित हैं।

(1) ब्लूम एवं वैलिन्सकी के विचार,

(2) स्टीफ्लेर एवं स्टीवर्ट के विचार, तथा

(3) रोजर्स एवं वैलेन के विचार।

इन बिन्दुओं का वर्णन यहाँ किया गया है—

(1) ब्लूम एवं वैलिन्सकी के विचार (The View-point of Blum and Balinsky)

उपरोक्त दोनों विद्वानों ने अपनी सुविख्यात पुस्तक 'Counselling and Psychology' के 'The Counsellor' नामक अध्याय में यह बताया है कि एक उपबोधक हेतु गहन-प्रशिक्षण (Intensive Training) नितान्त आवश्यक है, क्योंकि उपबोधन का क्षेत्र वृत्तिकरण (Professionalization) की प्रक्रिया में निहित है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के 'नेशनल वोकेशनल गाइडैन्स ब्यूरो' द्वारा उपबोधक हेतु योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं। ब्लूम एवं वैलिन्सकी का यह कहना है कि नेशनल वोकेशनल गाइडैन्स द्वारा उठाये गये इस कदम से उपबोधकों को तैयार करने में सहायता प्राप्त हुई है। ब्लूम वैलिन्स्की ने 'शार्टले' के कार्यों का वर्गीकरण कर उद्धृत करते हुए, उपबोधन के विभिन्न व्यवसायों (Occupations) यथा कॉलेज उपबोधक, रोजगार साक्षात्कारकर्त्ता (Employment Interviewer), व्यावसायिक उपबोधक (Vocational Counsellor), विकलांगों हेतु मनोवैज्ञानिक (Psychologist for Physically Handicapped) इत्यादि प्रकार के रोजगार (व्यवसायों) हेतु योग्यताओं, कर्त्तव्यों एवं भावी प्रगति की सम्भावनाओं का उल्लेख किया है। व्यावसायिक उपबोधक के निम्नलिखित कर्त्तव्यों का उल्लेख *शोर्टले* ने किया है—

(1) व्यावसायिक उपबोधक अभ्यर्थियों हेतु उपयुक्त परीक्षणों का चयन करता है एवं परीक्षणों की व्यवस्था भी करता है।

(2) अन्य उपबोधकों के साथ एकल सम्मेलनों (Case-Conferences) में भाग लेकर, उनसे प्राप्त निष्कर्षों की व्याख्या करता है। इसके अतिरिक्त साक्षात्कारों, एकल सम्मेलनों एवं परीक्षण परिणामों के आधार पर परामर्श देता है।

(3) उपबोधक कार्य के इच्छुक अभ्यर्थियों हेतु अभिकरण की सीमाओं के अन्तर्गत ही रोजगार की भी व्यवस्था करता है। यह सेवार्थी को अन्य स्थानापन अभिकरणों (Placement Agencies) से सम्पर्क स्थापित करने को कहता है।

(4) उपलब्ध अभिकरण की सेवा-सुविधा की अपेक्षा और उत्तम उपायों से सेवार्थी को सहायता प्रदान करने हेतु अन्य सामाजिक या कल्याण या रोजगार अभिकरणों के पास अभ्यर्थियों को भेजता है। उपबोधक सेवार्थी को आर्थिक, चिकित्सा, एवं कानून सम्बन्धी अन्य प्रकार की सहायता हेतु अभिकरणों की भी संस्तुतियों अथवा सलाह प्रदान कर सकता है।

(5) किसी समुदाय में समर्थन प्राप्त अभिकरण (Community Supported Agency) या सामाजिक केन्द्र पर अभ्यर्थियों को बिना किसी शुल्क के शैक्षिक तथा व्यावसायिक परामर्श प्रदान करता है।

(6) उपयुक्त सामुदायिक अभिकरणों के व्यक्तियों को संदर्भित करना तथा भावी कार्यक्रमों हेतु योजना बनाना भी उपबोधक का कर्त्तव्य है।

(7) उपबोधक अन्य कार्यकर्त्ताओं के सहयोग परामर्श सेवाओं में सुधार एवं उसके विस्तार हेतु कार्यक्रमों की व्यवस्था करता है।

नोट

(8) शोध योजनाओं एवं संगठन ऐजेन्सियों (Organisational Agencies) के कार्यों में सहयोग प्रदान करना भी उपबोधक का कर्त्तव्य है।

(9) वह युवकों हेतु व्यावसायिक मिलान से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में, सामूहिक निर्देशन का कार्य करता है।

शार्टले द्वारा बताये गये उपरोक्त कर्त्तव्यों को, व्यावसायिक उपबोधक तभी पूर्ण कर सकेगा जब उसने आवश्यक योग्यताएँ तथा प्रशिक्षण प्राप्त किया हो। यही कारण है कि *ब्लूम* पर *वैलिन्स्की* द्वारा उपबोधकों के व्यापक एवं गहन प्रशिक्षण प्राप्त करने पर अत्यधिक बल दिया गया है।

(2) स्टीफ्लेयर एवं स्टीवर्ट के विचार (The View of Steffler and Stewart)

उपबोधक के दृष्टिकोण एवं प्रवीणता के समय, *स्टीफ्लेर एवं स्टीवर्ट* ने, उसमें निम्नलिखित विशिष्टताओं का होना आवश्यक माना है–

1. **नैतिक व्यवहार** (Ethical Behaviour)–उपबोधक का नैतिक गुणों से परिपूर्ण होना नितान्त आवश्यक है जब एक सेवार्थी को, उपबोधन पर पूरा विश्वास नहीं होगा, तब तक वह उपबोधक से स्वतन्त्र रूप से वार्तालाप नहीं कर सकेगा तथा न ही उससे सहयोगी सम्बन्ध बना पायेगा। अत: उपबोधक में नैतिक व्यवहार का होना, उपबोधन को प्रभावी बनाने हेतु एक अनिवार्य एवं आवश्यक दशा है।
2. **बौद्धिक योग्यता** (Intellectual Competence)–परामर्शदाता का बौद्धिक रूप से बुद्धिमान होना भी नितान्त आवश्यक है। परामर्शदाता को व्यक्ति के व्यवहार एवं वर्तमान घटनाओं को स्वयं के प्रशिक्षण तथा पूर्वानुभवों से संयुक्त या सम्बद्ध करने का भी समुचित ज्ञान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उपबोधक में तर्कयुक्त एवं व्यवस्थित चिन्तन की योग्यता भी विद्यमान होनी चाहिए। जिससे वह सेवार्थी के समक्ष उद्देश्यों को प्रस्तुत करने में सफल हो सके।
3. **संवेदनशीलता** (Sensitivity)–परामर्श की प्रक्रिया के अन्तर्गत, उपबोधक की भूमिका तभी निष्पक्ष होगी जब वह अपने कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति सजग होगा तथा उन्हें पूर्ण करने हेतु ईमानदारी से प्रयास करेगा। प्रार्थी की समस्याओं के प्रति उसे संवेदनशील होना चाहिए।
4. **बोधगम्यता** (Understanding)–परामर्शदाता को प्रार्थी के बारे में दो स्तरों पर समझ होनी चाहिए–(1) संवेगात्मक स्तर पर तथा (2) चिन्तन स्तर पर। कहने का आशय यह है कि उपबोधक का सेवार्थी के साथ सम्बन्ध इस प्रकार का होना चाहिए। जिससे कि वह चिन्तन एवं संवेगात्मक स्तर पर सेवार्थी को स्वयं के साथ सम्बद्ध कर सके।
5. **स्वीकृति** (Acceptance)–उपबोधक के पास सेवार्थी कुछ सहायता प्राप्त करने हेतु अथवा कुछ जानने के लिए आता है प्रार्थी में आशा, संशय, चिन्ता, भय इत्यादि सभी व्याप्त या विद्यमान रहती है। अत: ऐसी स्थिति में उपबोधक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह प्रार्थी की बातों की स्वीकृति प्रदान करे, उसे स्वयं के जीवन हेतु उत्तरदायी समझे तथा यह मानकर चले कि प्रार्थी को अपने जीवन में निर्णय लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। अर्थात् प्रार्थी के व्यक्तित्व को महत्व दे, उपबोधन को प्रभावी एवं सफल नहीं बनाया जा सकता है।
6. **नमनीयता या लचीलापन** (Flexibility)–परामर्शदाता को रुढ़िवादी होने के स्थान पर नमनीय होना चाहिए। उसे सेवार्थी से परामर्श के अन्तर्गत सहयोगी सम्बन्ध स्थापित करने हेतु सेवार्थी के दृष्टिकोण में होने वाले परिवतर्नों एवं प्रत्याशाओं के प्रति सजग रहना चाहिए तथा उसी के अनुसार ही अपने व्यवहार को निर्देशित करना चाहिए।

नोट्स परामर्शदाता का एक अन्य आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण गुण उसका ईमानदार एवं कर्तव्यों के प्रति सजग होना है।

(3) रोजर्स एवं वैलेन का विचार (View-point of Rogers and Wallen)

परामर्शदाता की अभिवृत्ति पर विचार करते हुए, *राजर्स एवं वैलेन* ने सेवार्थी पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखा है। *रोजर्स एवं वैलेन* का यह कहना है कि उपबोधक का दृष्टिकोण, उपबोधक के द्वारा सेवार्थी के व्यक्तित्व का समुचित आदर एवं सम्मान करने पर निर्भर करता है। *रोजर्स एवं वैलेन* का यह कहना है कि एक सफल उपबोधक निम्नलिखित दृष्टिकोण को अपनाता है।

1. **व्यक्ति की समायोजन क्षमता में विश्वास** (Belief in the Person's Capacity for Adjustment)—परामर्शदाता की समायोजन क्षमता पर ही, वर्तमान मनो–उपचार परामर्शदाता (Therapeautic Counseling) विश्वास करता है। परामर्श के क्षेत्र में, उपबोधक की आन्तरिक शक्ति का इतना महत्व नहीं है। उपबोधक इस बात को जानता है कि बहुधा व्यक्तियों में पुनः समायोजन (Readjustment) एवं अनुकूलन (Adaptation) की क्षमता निहित होती है। अतः उपबोधक को इसी क्षमता का उपयोग करने हेतु प्रयासरत रहना चाहिए।
2. **समग्र व्यक्ति हेतु आदर** (Respect for the Whole Person)—उपबोधक मात्र व्यावसायिकता की स्थापना तक ही स्वयं को सीमित नहीं करता तथा न ही मात्र आर्थिक सुरक्षा एवं समंजन पर ही अपने ध्यान को केन्द्रित रखता है वरन् उपबोधक का ध्यान व्यक्ति के समग्र प्रयासों (सकारात्मक व नकारात्मक) भावनाओं, चिन्ताओं आदि संक्षेप में सेवार्थी की पूर्णता पर रहता है। यही कारण है कि वह सेवार्थी के किसी भी कथन की उपेक्षा नहीं करता वरन् उस पर सहानुभूति के साथ विचार करता है।
3. **स्वयं को समझने तथा स्वीकार करने में प्रार्थी की सहायता करने की इच्छा** (Desire to Help the Client Understand and Accept Himself)—व्यक्ति वही सब कुछ अधिगम करता है जिससे वह अधिगम करना चाहता है तथा यही अधिगम की गई बातें, उसके जीवन का अंग बन जाती हैं। जब सेवार्थी यह अनुभव करने लगे कि उपबोधक उसके व्यक्तित्व का आदर कर रहा है तथा उसके विचारों के प्रति सहिष्णुता एवं गहनता का दृष्टिकोण अपना रहा है तभी वह अपनी गहन व गुप्त भावों तथा दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति का आदर कर रहा है तथा उसके विचारों के प्रति सहिष्णुता एवं गहनता का दृष्टिकोण अपना रहा है तभी वह अपने गहन गुप्त भावों तथा दृष्टिकोणों को अभिव्यक्त करने में सक्षम हो जाता है। सेवार्थी के समायोजन हेतु आधार इन्हीं के माध्यम से उपबोधक, सेवार्थी की, स्वयं को समझने तथा स्वीकार करने में सहायता प्रदान कर सकता है। *कार्ल आर. रोजर्स* एवं *जे. एल. वैलेन* के अनुसार–"उपबोधक का समग्र व्यवहार इस जानकारी को प्राप्त करने में सहायता देने का लक्ष्य बनाकर चलता है, अपने किसी निदान पर पहुँचने को नहीं, जो सही होते हुए भी प्रार्थी की सहायता नहीं करता है।"

   "The Counselor's behaviour is all aimed at helping the client him-self gain these under-standings-never at arriving at a diagnosis of his own which although it may be correct, does not help the client."
4. **प्रार्थी के मतभेदों के प्रति सहिष्णुता तथा स्वीकृति दृष्टिकोण** (Tolerance and Acceptance of the Clients' Difference)—परामर्शदाता को यह अनुभव करना चाहिए कि वह एक चिकित्सक के समान, सेवार्थी की समस्या का निदान तथा उपचार का वर्णन (Prescription) नहीं कर सकता। उपबोधक जो भी राय अथवा सुझाव देता है वह सेवार्थी के मूल्यों व विश्वासों पर अधिकार नहीं होता वरन् उपबोधक के अपने मूल्यों पर ही आधारित होता है। लेकिन समस्या का हल सेवार्थी को स्वयं ही ढूंढना चाहिए तथा उपबोधक को इस कार्य में सहायता प्रदान करनी चाहिए। उपबोधक को सेवार्थी के कल्याण में ही अपनी रुचि प्रदर्शित करनी चाहिए। जब उपबोधक मतभेदों के प्रति सहिष्णु होगा तभी वह सेवार्थी के विश्वास व व्यवहार के सम्बन्ध में अस्वीकृति अतिशय स्वीकृति तथा आश्चर्य नहीं करेगा। उपबोधक सेवार्थी को अपने मानदण्डों के अनुरूप नहीं माने वरन् यह स्वयं वास्तविकता के अनुरूप समझने एवं स्वीकार करने में सहायता प्रदान करने हेतु प्रयासरत रहता है।

नोट

5. **प्रार्थी की व्यक्तिगत स्वायत्ता के प्रति आदर की भावना** (Respect for the Personal Autonomy of the Client)—उपबोधक को एक मानकर कार्य करना होता है कि प्रार्थी को स्वयं के सम्बन्ध में अपने आप निर्णय लेने की स्वतन्त्रता एवं अधिकार प्राप्त है या वह अपने बारे में स्वयं ही निर्णय ले सकता है। वह उपबोधक से सहायता प्राप्त करने से मना भी कर सकता है या उपबोधक द्वारा दिये गए सुझावों का उपयोग वह अपनी बुद्धि के अनुरूप कर सकता है। वह अपने जीवन के प्रति स्वयं ही उत्तरदायी है। उसके उत्तरदायी की अनुभूतियों में परामर्शदाता के निरन्तर वृद्धि ही होनी चाहिए।

जोन्स का विचार (View Point of Jones)—*जोन्स* महोदय के विचारानुसार उपबोधक वह है, जो उपबोधन का कार्य करता है। इस कथन का आशय यह है कि उपबोधक को अन्य कार्य एवं उत्तरदायित्व नहीं सौंपे जाने चाहिए। उसका कार्य है—मात्र उपबोधन तथा इसी को केन्द्र मानकर ही उसे 'उपबोधक' कहा गया है।

जोन्स ने अपनी सुविख्यात पुस्तक प्रिन्सीपिल ऑफ गाइडैन्स (Principles of Guidance) में उपबोधक कार्यों का उल्लेख किया है। जोन्स के मतानुसार परामर्श के निरन्तर, उपबोधक निम्नलिखित आवश्यकताओं को पूर्ण करता है—

1. एक व्यक्ति की समस्या से सम्बन्धित सूचना प्राप्त कर उद्देश्ययुक्त अर्थापन करने की आवश्यकता।
2. निश्चित गहन असमंजनों में सहायता की आवश्यकता।
3. जब विद्यार्थी किसी समस्या का समाधान खोजने में सहायता की आवश्यकता चाह रहा हो तब रचनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता।
4. स्वीकार की गई लेकिन समझी न जा सकने वाली समस्याओं की परिभाषा करने की आवश्यकता।
5. उन समस्याओं की जानकारी उत्पन्न करने की आवश्यकता जो वर्तमान तो, लेकिन जिन्हें अभी स्वीकार नहीं किया गया है।
6. ध्यानपूर्वक श्रवण करने, जाँच करने तथा सलाह प्रक्रिया की आवश्यकता।
7. जिन समस्याओं के निराकरण तक विद्यार्थी अथवा व्यक्ति सहजता से न पहुँच सके, उसमें सहायक उपकरणों को गतिशील बनाना है।

केलर का विचार (Keller's View Point)—उपबोधक की प्रकृति पर विचार करते *केलर* ने उपबोधक को शिक्षक के समान माना है। इनके अनुसार उपबोधकों तथा शिक्षकों में काफी समानता होती है। इस समानता का स्पष्ट करते हुए *फ्रेंकलिन जे. केलर* ने लिखा है—"शिक्षक वह सिखाता है जो वह (अध्यापक) स्वयं है। शिक्षक को कार्य के महत्व में विश्वास करना चाहिए...ऐसा विश्वास उसके व्यक्तित्व का अंग बन जाता है, वह स्वयं के विश्वास के अनुरूप ढल जाता है तथा दूसरों को वैसा ही बनाने में सक्षम हो सकता है, जैसा वह स्वयं है...।"

"The teacher teachers what he is. The teacher ...... must himself believe in the importance of work ... Such belief becomes part of his personality, he becomes what he believes and he can get other to be only what he is." —*Franklin K. Keller*

केलर के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावी होना चाहिए। उसे यह अनुभव करना चाहिए कि उसे अपने कार्यों के अनुसार ही अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह भी तत्परता से करना है। शिक्षक में आवश्यक है कि वह स्वयं में स्वस्थ व सन्तुलित विश्वासों का निर्माण करे तथा अपने व्यक्तित्व को उन्हीं विश्वासों के अनुरूप ढालने का प्रयास करे। इस प्रकार *केलर* महोदय ने शिक्षक के व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण माना है और उसके विवेकयुक्त प्रजातंत्रवादी तथा सद्चरित्र होने पर बल दिया है।

केलर ने शिक्षक को परामर्शदाता के समान मानते हुए यह बताया है कि उपबोधक के कार्यों एवं व्यक्तित्व पर, संस्था के अध्यक्ष, प्रधानाध्यापक तथा उपबोधन में सहयोगी अन्य व्यक्तियों की सापेक्षता में ही विचार-विमर्श करना चाहिए। इस प्रकार *केलर* ने उन जटिलताओं का भी उल्लेख किया है जो उपबोधक के स्वभाव एवं कार्य से सम्बन्धित होती हैं। केलर ने एक अच्छे उपबोधक में निम्नलिखित विशेषताओं एवं गुणों का होना आवश्यक बताया है—

नोट

क्या आप जानते हैं उपबोधन का सर्वोत्तम स्वरूप वह है, जिसमें सेवार्थी अपनी समस्या के समाधान हेतु स्वयं ही चिन्तित हो तथा अपनी समस्याओं को ठीक प्रकार समझ कर, उपबोधन की सहायता से समस्या का निराकरण करने की दिशा में प्रयासरत हो।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' तथा 'असत्य' लिखिए** (State whether following the statements are 'True' or 'False')–
   1. 19वीं शताब्दी के तीसरे चौथे दशक से पूर्व परामर्शदाता के स्थान पर निर्देशन विशेषज्ञ शब्द का प्रयोग किया जाता था।
   2. उपबोधन की प्रक्रिया के अंतर्गत उपबोधक को प्रार्थी संबंधित गुप्त सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।
   3. परामर्श की प्रक्रिया में उपबोधन की भूमिका निष्पक्ष नहीं होती है।
   4. उपबोधक को बौद्धिक रूप से जागृत रहना आवश्यक नहीं होता।

23.2 परामर्शदाता के गुण (Qualities of Counselor)

एक कुशल परामर्शदाता में निम्नांकित गुणों का होना आवश्यक है–

(1) **पारस्परिक सम्बन्ध** (Inter Personal Relationship)–परामर्शदाता में अच्छे पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित करने का गुण होना आवश्यक है–दूसरों की आवश्यकताओं का ध्यान रखना, अपनी विचारधारा की अपेक्षा दूसरों के दृष्टिकोण के प्रति सहिष्णुता रखना, व्यक्तियों के अपने पर ध्यान रखना, व्यक्तियों को समझना एवं स्वीकार करना, सामाजिक संवेदनशीलता, ईमानदारी, निष्ठा, व्यक्तियों से मिलने-जुलने की योग्यता व्यक्तियों में रूचि रखना, धैर्य, पारस्परिक सम्बन्धों में सौहार्द्र इत्यादि।

(2) **नेतृत्व** (Leadership)–दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करने तथा नेतृत्व करने की योग्यता। अन्य व्यक्तियों की सहायता करना तथा सहयोग देना।

(3) **जीवन-दर्शन** (Philosophy of life)–स्वास्थ्य जीवन-दर्शन नागरिकता का भाव समावेश तथा मान्य मूल्य व्यवस्था, उत्तम आचरण, रूचियाँ एवं सौन्दर्य बोध, तथा मानव प्रकृति में आस्था होनी चाहिए।

(4) **स्वास्थ्य द्वारा बाह्य व्यक्तित्व** (Health and Personal Appearance)–स्वास्थ्य, मृदुभाषी, बाह्य आकर्षक रूपरेखा, स्वच्छता, इसके अलावा, उपबोध का ऐसा व्यवहार नहीं हो जिसका अन्य व्यक्ति हँसी उड़ाये।

(5) **शैक्षिक पृष्ठभूमि तथा शैक्षिक योग्यता** (Educational Background and Scholastic Potentialities)–उच्च परिष्कृत सामाजिक अभिरूचियाँ, बुद्धि, कार्यक्षमता, अभिक्षमताओं के प्रति झुकाव, तथ्यों का आदर, सामाजिक संस्कृति, व्यावहारिक निर्णय, सामान्य बुद्धि गुण का उपबोधक में होना आवश्यक है।

(6) **वैयक्तिक (व्यक्तिगत) समायोजन** (Personal Adjustment)–स्वयं की न्यूनताओं की जानकारी, नमनीयता, अनुकूलन क्षमता के महत्व का भाव, आमोद-प्रमोद पूर्वानुभवों से लाभ उठाने की योग्यता, आत्म-विश्वास, स्वयं की समस्याओं के निराकरण हेतु विवेकयुक्त दर्शन, स्वयं के बारे में ज्ञान। यदि कोई सेवार्थी उपबोधक की बात का अन्य अर्थ लगा ले तो उसे सहिष्णुता के साथ स्पष्ट कर सकने की योग्यता, वैयक्तिक समायोजन के अन्तर्गत सम्मिलित की जाती है।

(7) **वृत्तिक के प्रति समर्पित होना** (Professional Dedication)–वृत्तिक दृष्टिकोण, प्रेरणा-भाव शिक्षा के कार्य हेतु निष्ठा व उत्साह, वृत्तिक नैतिकता के प्रति गहन भावना, वृत्तिक विकास, कर्त्तव्य के निर्धारित समय के अलावा भी कार्य करने की इच्छा, निर्देशन कार्य में रूचि लेना, तथा उपबोधन को सहायता प्रदान करने वाले सम्बन्ध के रूप में कार्य करना।

नोट

8. **अच्छी आधारभूत बुद्धि** (Good Basic Intelligence)—उपबोधक में इतना कौशल होना चाहिए कि वह अनुभव या औपचारिक शिक्षण द्वारा अर्जित ज्ञान का उपयोग कर सकने में समर्थ हो सके। इसलिए उपबोधक को बौद्धिक रूप से जाग्रत रहना आवश्यक है।
9. **गहन विशिष्ट जानकारी** (Intensive Special Information)—उपबोधक का व्यवसाय का क्षेत्र विशिष्ट क्षेत्र होता है। अत: उपबोधक को इस विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्धित विशेष जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रयत्न करने चाहिए। उपबोधक को भविष्य में पैदा होने वाली रोजगारों की सम्भावनाओं की जानकारी के साथ-साथ यह भी ज्ञात होना चाहिए कि उन विभिन्न व्यवसायों हेतु कौन-कौन सी योग्यताएँ एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त परामर्शदाता को व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक न्यूनताओं उनके संस्कारों एवं स्वभाव के बारे में भी गहन जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।
10. **विशिष्ट कौशल** (Special Skills)—परामर्शदाता को विशिष्ट तकनीकों को प्रयुक्त करने में कुशल होना चाहिए जैसे—साक्षात्कार की तकनीक, नियोजन या स्थानापन की तकनीक। इन तकनीकों के अलावा उपबोधक को व्यावसायिक सूचनायें संग्रहीत करने तथा उनके विवरण व मापन परीक्षण की जानकारी होनी भी आवश्यक है।
11. **विशिष्ट वैयक्तिक गुण** (Special Personal Qualities)—उपबोध में सामान्य गुणों के अतिरिक्त, विशिष्ट गुणों को होना भी आवश्यक है जैसे—सन्तुलित व्यक्तित्व व्यवसाय के प्रति निष्ठा, सहानुभूति, सहयोग, सहिष्णुता, वस्तुनिष्ठता इत्यादि। इसके अतिरिक्त, उपबोधक को विवेकशील, दूसरे व्यक्तियों के प्रति संवेदनशील एवं उत्साही भी होना चाहिए।
12. **व्यापक सामान्य सूचनाएँ** (Comprehensive General Informations)—परामर्शदाता को अपने निकटस्थ के आर्थिक एवं सांस्कृतिक जगत को सामान्य जानकारी होनी चाहिए। विशेषत: व्यावसायिक जगत की विस्तृत जानकारी भी उसे होनी चाहिए। सारांश में उपबोध का सामान्य ज्ञान जीवन की विधि क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा समृद्ध होना चाहिए।

रोयवबर के अनुसार—"एक आदर्श उपबोधन की विशेषताओं का यह विस्तार उस व्यक्ति को प्रोत्साहित कर सकता है जो शोध कार्यों हेतु चयनित क्षेत्र का विचार रखता है।

परामर्शदाता की योग्यताएं तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम (Qualification and Training Programme of Counselor)

अमेरिका के निर्देशन एवं परामर्श में कार्यरत संगठनों द्वारा उपबोधकों हेतु आवश्यक बातों की रूपरेखा बनाने का प्रयास किया गया है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की निर्देशन सेवाओं के राज्य निरीक्षकों तथा प्रशिक्षण अर्जित कर रहे उपबोधकों के, आठवें राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा विद्यालयों में कार्य करने वाले उपबोधकों के कार्यों, योग्यताओं तथा मानदण्डों के बारे में प्रतिवेदन तैयार करने हेतु एक समिति का गठन किया गया। इस सम्मेलन में, उपबोधकों की योग्यताओं एवं प्रशिक्षण के बारे में जो विचार किया गया उसका कुछ अंश निम्नलिखित है।

शिक्षा परामर्शदाताओं की शिक्षा के अन्तर्गत दो प्रकार की शिक्षा को सम्मिलित किया गया—

(क) सामान्य शिक्षा तथा

(ख) व्यावसायिक शिक्षा।

(क) सामान्य शिक्षा (General Education)—उपबोधक को सामान्य शिक्षा में, किसी विख्यात या विश्वसनीय संस्था में स्नातक की उपाधि अर्जित करनी चाहिए। स्नातक की उपाधि के अतिरिक्त जिस स्तर के विद्यार्थियों हेतु उसे परामर्श प्रदान करना है, उसी स्तर हेतु राज्य द्वारा निर्धारित वांछनीय एक वैध शिक्षक को भी प्रमाण-पत्र उसके लिए अर्जित करना आवश्यक है।

(ख) व्यावसायिक शिक्षा (Professional Education)—उपबोधक को व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत, निर्देशन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर व्यापक अध्ययन से कोई उपाधि प्राप्त करनी चाहिए। यह उपाधि मास्टर उपाधि में समकक्ष अवश्य होनी चाहिए। यह उपाधि प्राप्त करने से पूर्व उसके लिए यह भी नितान्त आवश्यक है कि वह 'निर्देशन कार्य के सिद्धान्त

नोट

एवं व्यवहार' से सम्बद्ध पाठ्यक्रम का अध्ययन अवश्य करे। निर्देशन कार्य के सिद्धान्त एवं व्यवहार से सम्बद्ध अध्ययन तथा प्रशिक्षण के प्रमुख क्षेत्र अधोलिखित हैं–

प्रशिक्षण के मुख्य क्षेत्र (Core Areas of Training)

प्रशिक्षण हेतु मुख्य क्षेत्र इस प्रकार हैं–

(1) उपबोधकों हेतु शोध तथा मूल्यांकन प्रक्रियाएँ,

(2) निर्देशन कार्यक्रम के प्रशासनिक सम्बन्ध,

(3) शैक्षिक तथा व्यावसायिक सूचनाएँ,

(4) परामर्श की प्रक्रिया।

प्रमुख क्षेत्रों हेतु सहायक प्रशिक्षण—प्रशिक्षण के उपरोक्त क्षेत्रों के अलावा, निम्नलिखित क्षेत्रों में भी प्रशिक्षण प्राप्त करना परामर्शदाता के लिए नितान्त आवश्यक है।

(1) **मानव विकास**—मानव विकास के प्रशिक्षण के द्वारा उपबोधक को मानव का विकास प्रशिक्षण के द्वारा उपबोधक को मानव व्यवहार का विकास, व्यक्ति की समस्याओं को विकास, अधिगम का भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है, जो कि एक परामर्शदाता के लिए नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार के प्रशिक्षण के अन्तर्गत उपबोधक को अधिगम, अभिप्रेरणा, रूचि, व्यक्तिगत भिन्नतायें, अभिरूचि, विकास, विचार एवं व्यवहार की पूर्ण जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

(2) **निर्देशन उपकरण** (Tools of Guidance)—विभिन्न निर्देशन उपकरणों का ज्ञान तथा उन उपकरणों को प्रयुक्त करने का प्रशिक्षण भी पूर्ण रूप से, उपबोधक को प्राप्त कर लेना चाहिए। तथा विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का उपयोग करना, उनका विश्लेषण तथा अर्थापन करना आना चाहिए।

(3) **अनुभव** (Experience)—उचित परामर्श प्रदान करने हेतु यह आवश्यक है कि उपबोधक को शिक्षा का गहन अनुभव हो। कार्य क्षमता का शिक्षण-अनुभव होने पर ही विकास सम्भव है। परामर्शदाता को कम से कम दो वर्ष का शिक्षण या परामर्श अनुभव होना आवश्यक है। परामर्शदाता को, विद्यालयी कार्य के अतिरिक्त, क्षेत्रों में एक वर्ष का संचयी कार्यानुभव भी प्राप्त करना चाहिए। तथा 3 अथवा 6 माह तक उसे किसी के परिवेक्षण में परामर्श कार्य का भी अनुभव होना चाहिए।

(4) **व्यक्तिगत क्षमता** (Personal Fitness)—परामर्शदाता की वैयक्तिक योग्यता के बारे में सूची दी गई है। *विली* तथा *एण्ड्रू* ने इस सूची का उल्लेख किया है। इस सूची के अनुसार एक उपबोधक में निम्नलिखित वैयक्तिक विशिष्टताएँ होनी नितान्त आवश्यक हैं–

1. आत्म विश्वास एवं आत्मनिर्भरता।
2. महत्वपूर्ण धार्मिक तथा नैतिक विचारधाराएँ।
3. उत्तम व्यक्तित्व एवं रूचिपूर्ण व्यवहार।
4. मन्त्रीभाव तथा अपने सहयोगियों के साथ मिलकर कार्य को पूर्ण कराने की क्षमता।
5. नेतृत्व करने की योग्यता तथा निर्णय लेने की क्षमता।
6. सामाजिक व्यावहारिकता, रूचि, दूसरे व्यक्तियों की आवश्यकताओं को सम्मान एवं सामान्य जानकारी। व्यक्तिगत घटकों, अभिरूचियाँ, प्रवणता।

योग्यताओं के समन्वित रूप से व्यक्तियों के अन्तर्गत कार्य करने की क्षमता तथा रूचि को ज्ञात करना चाहिए।

फ्रायलिच (Frochilich) के अनुसार—"उपबोधकों द्वारा अध्ययन किए जाने वाले मनोविज्ञान के पाठ्यक्रमों का उल्लेख किया गया है। उस रिपोर्ट का कुछ अंश यहाँ दिया गया है।

नोट

एक परामर्शदाता को किस प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता है? उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों के आधार पर ही इसका निर्धारण किया जाना चाहिए, तथा समस्त प्रकार के उपबोधक-प्रशिक्षण कार्यक्रम की योजनाओं का निर्माण इसी आधार पर किया जाना चाहिए। उपबोधक के अधिकांश कार्यों को उसके द्वारा विशेष क्षेत्र या रोजगार के स्थान के आधार पर निर्धारित किया जाता है, लेकिन जिस विशिष्ट परिस्थिति में उपबोधक कार्य करता है, वहाँ समस्त कार्य उसके लिए नवीन नहीं होते। वे कार्य जो उपबोधन से समस्त क्षेत्रों में सामान्य अथवा एक समान होते हैं, उन कार्यों हेतु उपबोधकों को विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रशिक्षण ही, इन समस्त मूल बातों में है।

इस बात को सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाता है कि समस्त उपबोधकों को मनोविज्ञान की सामान्य जानकारी होनी आवश्यक है, लेकिन प्रशिक्षण के विस्तार के प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ के निर्देशन एवं परामर्श मनोवैज्ञानिक के विभाग की उपबोधकों की प्रशिक्षण समिति द्वारा इस प्रश्न पर विचार-विमर्श किया गया है कि समस्त उपबोधकों हेतु औचित्यपूर्ण ढंग से कितने प्रशिक्षण की अपेक्षा की जानी चाहिए? इस समिति द्वारा यह सिफारिश की गई की समस्त उपबोधकों को मनोविज्ञान के अधोलिखित क्षेत्रों में, प्रत्येक का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए।

1. व्यक्तित्व विकास तथा मानसिक स्वास्थ्य।
2. उपबोधन के सिद्धान्त एवं प्रक्रियायें।
3. निदान तथा उपबोधन को किसी के निरीक्षण में अभ्यास।
4. अभिवृद्धि एवं विकास, मनोविज्ञान का अध्ययन विशिष्ट रूप से उस आय वर्ग के व्यक्तियों का, जिनके मध्य उपबोधक को कार्य करना है।
5. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की प्रकृति एवं उपबोधन के क्षेत्र में वैयक्तिक भिन्नताओं का निहितार्थ।
6. व्यक्तिगत अध्ययन के मनोवैज्ञानिक उपकरण एवं प्रविधियाँ तथा उन हेतु उपबोधन प्रक्रिया का निदान।
7. मनोविज्ञान की मूल बातें जिनमें मनोवैज्ञानिक अध्ययन के अनेक क्षेत्रों का विस्तृत निरीक्षण किया गया हो।
8. अधिगम के सिद्धान्त तथा उनका शिक्षा व अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों में प्रयोग।
9. मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में प्रयोग में लाई जाने वाली वह सांख्यिकी तथा शोध प्रणालियाँ, जिनका प्रयोग सामान्यत: समस्त उपबोध को करना पड़ता है।

फ्रॉयलिच के उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि मानव-मनोविज्ञान तथा मनो-उपचार (Psycho-Therapy) की जानकारी, प्रत्येक उपबोधक के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं उपयोगी है।

> *टास्क* जोन्स ने अपनी किस पुस्तक में उपबोधक कार्यों का उल्लेख किया है?

परामर्शदाता के नैतिक आचरण (Moral Principles of Counselors)

प्रत्येक निर्देशन अथवा उपबोधक के लिए, नैतिक आचरण का अनुपालन करना नितान्त आवश्यक होता है। ये नैतिक सिद्धान्त, उपबोधक द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में उठाये जाने वाले प्रयासों को निर्देशन प्रदान करते हैं तथा सेवार्थी के साथ सम्बन्ध बनाने में भी मार्ग दर्शन या पथ-प्रदर्शन करते हैं। *ई. सी. रोयबर* द्वारा उपबोधक के नैतिक अनुशासन के अघोषित आचरणों का उल्लेख किया गया है–

(1) परामर्श की निष्ठा का क्रम अग्रसर होता है–उपबोध प्राथमिक रूप से अपने सेवार्थी के प्रति उत्तरदायी होता है तदोपरान्त वह अपने विद्यालय तथा समान्य समाज के प्रति उत्तरदायी होता है उपबोधक सामाजिक संस्था

नोट

के रूप में अन्य संस्थाओं की अपेक्षा, विद्यालय को प्रमुखता देता है। उपबोधक की निष्ठा का यह क्रम उस समय तक चलता रहता है जब तक उपबोधक, छोटे छात्र समूहों के मध्य कार्य करता है।

(2) जब उत्तरदायित्व के उपरोक्त क्रम में अपवाद की स्थिति उत्पन्न हो तो, उपबोधन से पहले या उस समय तक सेवार्थी को सामान्य प्रक्रिया से पृथक करना हो तो सेवार्थी को स्थिति से परिचित करा देना चाहिए।

(3) उपबोधक, सेवार्थी द्वारा प्राप्त जानकारी को किसी अन्य एजेन्सी अथवा व्यक्ति के समक्ष, सेवार्थी की पूर्व अनुमति प्राप्त न होने तक प्रकट नहीं करेगा।

(4) जब उपबोधक की स्थिति ऐसी हो कि समस्या से उसे एवं अन्य व्यक्तियों को स्पष्ट एवं तुरन्त संकट की सम्भावना हो तब उपबोधक से यह उपेक्षा की जाती है कि वह इस तथ्य की सूचना तत्काल ही किसी उचित अधिकारी को दे या ऐसे आपात अथवा संकटकालीन उपाय करे जो उन परिस्थितियों में आवश्यक हों।

(5) जब कभी उपबोधक को, उपबोधन सम्पर्क के माध्यम से ऐसी स्थिति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है, जो उसके विद्यालय के दायित्व में आने वाले अन्य व्यक्तियों को हानि पहुँचा सकती है तो उन स्थितियों के बारे में उपयुक्त जिम्मेदार अधिकारी को सेवार्थी का परिचय गुप्त रखते हुए सूचित करना है।

(6) उपबोधक मनोवैज्ञानिक सूचनाओं का अर्थापन इस प्रकार से करता है जो सेवार्थी तथा उसके अभिभावक, दोनों हेतु रचनात्मक हो सके।

(7) उपबोधक अपने इस अधिकार को सुरक्षित रखता है कि वह अपने सेवार्थी के बारे में योग्य व्यक्ति से विचार-विमर्श वृत्तिक वातावरण में करे।

(8) उपबोधन साक्षात्कारों के अभिलेख तथा टिप्पणी, उपबोध के व्यक्तित्व उपयोग हेतु व्यक्तिगत स्मृति की वस्तुएँ हैं, न कि विद्यार्थी के विद्यालयी अभिलेखों के अंग।

(9) आवश्यकता होने पर, उपबोधन सेवार्थी को, पूर्णरूप से योग्य व्यक्ति अथवा अभिकरणों का उल्लेख करता है। यह उपबोध सही माध्यम से या अभिभावकों की स्वीकृति प्राप्त होने पर ही करता है।

(10) वैयक्तिक न्यूनताओं या वांछनीय योग्यताओं के कारण यदि उपबोधक, सेवार्थी को रोजगार की सहायता नहीं दे सकता है तो वह उपबोधन के कार्य को प्रारम्भ करने में ही मना करता है या चल रहे उपबोधन कार्य को समाप्त कर सकता है।

(11) सेवार्थी के साथ उपबोधन में जब प्रथम उपबोधक का स्थान द्वितीय उपबोधक ग्रहण कर लेता है तो दोनों में से किसी भी उपबोधक को एक दूसरे की आलोचना व निन्दा नहीं करनी चाहिए तथा न ही परस्पर एक दूसरे के कार्य तथा कार्यक्षमता पर आरोप ही लगाना चाहिए।

इस नैतिक आचरणों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि, उपबोधक को एक निष्ठायुक्त व्यक्ति होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उपबोधक को, जिस विद्यालय या संस्था में यह कार्य कर रहा है, उसकी प्रतिष्ठा को चोट पहुँचाने वाला कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। उपबोधक को अपनी व्यावसायिक उन्नति हेतु सतत् रूप से प्रयास करते रहना चाहिए, जिससे उसकी कार्य करने की क्षमता व योग्यता का विकास हो सके।

व्यावसायिक या वृत्तिक अभिवृद्धि (Professional Growth)

परामर्शदाता को अपने कार्यों के माध्यम से समाज सेवा के साथ-साथ स्वयं की वृत्तिक उन्नति की ओर भी ध्यान देना चाहिए। व्यावसायिक उन्नति हेतु *रोयबर* द्वारा बताये गये अधोलिखित सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं—

(1) अपने वृत्तिक के विकास में सुधार की गति को तीव्र करने हेतु परामर्शदाता अपने प्रभाव का शक्ति के अनुरूप प्रयोग करता है।

(2) अपने समग्र जीवन में, जिसके अन्तर्गत उपबोधक का वृत्तिक व स्वास्थ्य अध्ययन समाविष्ट है और स्थानीय, प्रादेशिक व राष्ट्रीय स्तर पर निर्मित उपबोधक संघों में सक्रिय रूप से भाग लेकर तथा स्वयं को उनसे सम्बद्ध रखकर उपबोधक स्वयं के वृत्तिक विकास की सतत् रूप से वृद्धि करता रहता है।

नोट

(3) परामर्शदाता द्वारा किसी विद्यालय में कार्य करने हेतु तैयार होने का आशय यह है कि वह विद्यालय की सामान्य नीतियों से सहमति है। इसलिए उपबोधक के वृत्तिक सम्बन्धी क्रिया-कलाप भी विद्यालय के लक्ष्यों के अनुरूप ही होने चाहिए। उपबोधक, यदि किसी कारणवश, प्रयास करने के उपरान्त, भी विद्यालय की नीति सम्बन्धी समझौते का पालन करने में कठिनाई अनुभव करता है तो उसे उस विद्यालय में उपबोधक के पद से स्वयं को पृथक कर लेना चाहिए।

(4) परामर्शदाता को, अन्य वृत्तिक कार्यकर्त्ताओं पर झूठे आरोप लगाकर, उनके चरित्र का हनन कर स्वयं को उच्च बनाने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

(5) परामर्शदाता का समस्त वृत्तिक कर्मचारियों, शिक्षकों, उपबोधक प्रशासकों एवं अन्य छात्र कार्यकर्त्ताओं से सम्बन्ध होता है। यदि उपबोधक की जानकारी में इस समस्त व्यक्तियों के नैतिक व्यवहार से सम्बन्ध कोई सन्देहास्पद बात आती है तो उसे ऐसी स्थिति में सुधार लाने हेतु प्रयास करना चाहिए।

(6) परामर्शदाता को अपनी वास्तविक योग्यताओं तथा व्यावसायिक योग्यताओं से उच्च योग्यता का दावा नहीं करना चाहिए तथा न ही अपनी क्षमता से अधिक किसी भी कार्य को प्रदर्शित नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, उसकी योग्यता एवं क्षमता के बारे में व्यक्तियों को कोई भ्रम हो गया हो तो उसे दूर करने का प्रयास भी करना चाहिए।

(7) परामर्शदाता को ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए, जहाँ उसकी वैयक्तिक न्यूनताओं, पूर्वाग्रहों एवं पूर्व-धारणाओं के कारण उसकी वृत्तिक सेवाओं पर दुष्प्रभाव पड़े।

(8) परामर्शदाता ऐसे शोध कार्यों में व्यस्त रहता है कि जिनसे उसकी वृत्तिक उन्नति एवं विकास में सहायता प्राप्त होती है। उसे इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि उसके प्रत्येक कार्य में नवीनता हो। यदि उपबोधक यह अनुभव करता है कि उसका शोध कार्य कोई वैज्ञानिक या वृत्तिक महत्व रखता है तो उसे अपने शोध कार्य को स्वीकार्य आख्या मानदण्डों के अनुसार, अपनी ही वृत्ति के अन्य कार्यकर्त्ताओं के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए।

(9) परामर्शदाता के पास, सहायतार्थ जो भी व्यक्ति आते हैं उन्हें वह निष्पक्ष रूप से अपनी सेवाएँ प्रदान करता है, लेकिन इस समय भी वह अपनी सेवाओं के उच्च मानदण्डों को बनाये रखने का प्रयास करता है। यदि उस पर अत्यधिक कार्यभार हो जाये, जिससे वह सम्भालने में सक्षम न हो तो इसकी सूचना तत्काल ही उच्च अधिकारी को देनी चाहिए तथा जब तक अन्य सेवाओं की व्यवस्था नहीं हो जाती तब तक उपबोधक को अपनी सेवाओं में प्राथमिकताओं के क्रम को बनाये रखना चाहिए।

(10) परामर्श-साक्षात्कारों का आलेख तथा उनका अन्य व्यक्तियों के समक्ष उपयोग केवल सेवार्थी की अनुमति से ही परामर्शदाता को करना चाहिए। यदि आलेख का उपयोग शोध कार्य हेतु किया जाए तो उस पर से पहिचान के समस्त चिह्नों को मिटा दिया जाना चाहिए।

(11) यदि उपबोध, जनसामान्य, शिक्षकों या प्रशासकों को अपनी सेवाओं के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्रदान करना चाहता है तो उसकी सूचना की मात्रा तथा प्रस्तुत करने की विधि सही एवं स्थिति के अनुकूल होनी चाहिए।

(12) परामर्शदाता को, जिस क्षेत्र, विद्यालय अथवा जिले में कार्यरत हैं, वहाँ व्यक्तियों से उसे किसी भी प्रकार की भेंट या निजी शुल्क नहीं लेना चाहिए।

23.3 परामर्शदाता के कार्य (Functions of the Counselor)

उपबोधक को क्रियात्मक विचारों को भी ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है–

1. परामर्शदाता को अपने क्षेत्र अथवा सीमा से बाहर नहीं जाना चाहिए।
2. उसे सेवार्थी पर कोई समस्या थोपनी नहीं चाहिए।
3. परामर्शदाता का लक्ष्य सेवार्थी को समस्या से परिचित कराना है।

नोट

4. परामर्शदाता को किसी वस्तु को सही करने वाले के रूप में कार्य करना चाहिए।
5. परामर्शदाता को सेवार्थी के समक्ष समस्त सम्भावनाओं को प्रस्तुत कर देना चाहिए।
6. अन्तिम निर्णय सेवार्थी को ही लेना है।
7. परामर्शदाता को सेवार्थी की समस्या पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करना चाहिए।
8. परामर्शदाता को शिक्षा व व्यवसाय के मार्ग बन्द करने से पहले अन्य मार्ग खोल देना चाहिए।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर ही उपबोधक को निम्नलिखित कार्यों को करना चाहिए—

1. सेवार्थी के बारे में आँकड़े संकलित करना।
2. विभिन्न व्यवसायों से सम्बद्ध सूचनाओं को एकत्रित करना।
3. अनेक प्रकार की शिक्षा, शैक्षिक संस्था तथा प्रशिक्षण सुविधाओं से सम्बन्धित विभिन्न सूचनायें संकलित करना।
4. साक्षात्कारों की समुचित व्यवस्था करना।
5. सामाजिक सम्बन्ध बनाना।
6. अनुगामी कार्य करना।
7. समुचित भौतिक परिस्थितियाँ तथा सेवाएँ उपलब्ध कराना।
8. उचित अनुमोदन तथा प्रक्रिया का अनुसरण करना।

अध्यापक एवं परामर्शदाता (Teacher and Counsellor)—यह प्रश्न विवादास्पद है कि उपबोधन का कार्य कौन करे—अध्यापक या विशेषज्ञ, जिन व्यक्तियों का यह मानना है कि उपबोधन का कार्य अध्यापक को करना चाहिए, उनका यह कहना है कि अध्यापक का छात्र से निकट का सम्बन्ध होता है तथा वह विद्यार्थियों को भली प्रकार जानता है तथा छात्रों की क्षमताओं तथा वातावरण एवं उपलब्धियों के बारे में अपेक्षाकृत अधिक जानता है लेकिन जो व्यक्ति उपबोधन कार्य हेतु विशेषज्ञों की नियुक्ति को उपयुक्त मानते हैं, उनका यह तर्क है कि उपबोधन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल एवं व्यापक है। अत: शिक्षक के लिए, शिक्षण के साथ-साथ उपबोध का कार्य कर पाना अत्यन्त कठिन है। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण के अभाव में यह कार्य निपुणता के साथ नहीं किया जा सकता है तथा शिक्षक के पास उपबोध के कार्य हेतु पर्याप्त समय भी नहीं होता है।

इन दोनों पक्षों के तर्कों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि द्वितीय पक्ष के तर्कों में बल है, क्योंकि परामर्श का कार्य करने हेतु विशेषज्ञ की ही आवश्यकता है, लेकिन अध्यापक एवं उपबोधक के कार्यों में कोई गहन अन्तर नहीं है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के अभाव में दूसरा अपना कार्य सुचारू रूप से नहीं रुक सकता।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. परामर्शदाता का प्रयास होता है प्रार्थी में .... का विकास करना।
2. रोजर्स ने परामर्शदाता के गुण में .... को महत्व दिया है।
3. परामर्शदाता को शैक्षिक योग्यता के साथ .... भी आवश्यक है।
4. परामर्शदाता को शैक्षिक समस्याओं तथा .... समस्याओं में भी छात्र की सहायता करनी होती है।
5. परामर्शदाता को .... के उपयोग में दक्ष होना चाहिए।

23.4 सारांश (Summary)

- 19वीं शताब्दी के तीसरे-चौथे दशक से पूर्व, परामर्शदाता के स्थान पर 'निर्देशन विशेषज्ञ, (Guidance Specialist) शब्द का प्रयोग किया जाता था *लीफिवर* इत्यादि विद्वानों ने निर्देशन विशेषज्ञों हेतु 'उपबोधक' शब्द के प्रयोग का सुझाव देते हुए, परामर्शदाता तथा शिक्षक-उपबोधक में अन्तर के सम्बन्ध में लिखा—"विशेषज्ञों हेतु अदल-बदल

नोट

के आधार पर उपबोधक और शिक्षक-उपबोधक शब्द को प्रयुक्त किया जायेगा, लेकिन कुछ अन्तर के साथ एक उपबोधक वह व्यक्ति है जो अपने आधे या उससे अधिक समय का उपयोग निर्देशन कार्य हेतु करता है।

- संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के 'नेशनल वोकेशनल गाइडैन्स ब्यूरो' द्वारा उपबोधक हेतु योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं। ब्लूम एवं वैलिन्सकी का यह कहना है कि नेशनल वोकेशनल गाइडैन्स द्वारा उठाये गये इस कदम से उपबोधकों को तैयार करने में सहायता प्राप्त हुई है।
- उपबोधक का नैतिक गुणों से परिपूर्ण होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि उपबोधन की प्रक्रिया के निरन्तर उसे अधिकांशत गुप्त सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। जब एक सेवार्थी को, उपबोधन पर पूरा विश्वास नहीं होगा, तब तक वह उपबोधक से स्वतन्त्र रूप से वार्तालाप नहीं कर सकेगा तथा न ही उससे सहयोगी सम्बन्ध बना पायेगा।
- परामर्शदाता का बौद्धिक रूप से बुद्धिमान होना भी नितान्त आवश्यक है। परामर्शदाता को व्यक्ति के व्यवहार एवं वर्तमान घटनाओं को स्वयं के प्रशिक्षण तथा पूर्वानुभवों से संयुक्त या सम्बद्ध करने का भी समुचित ज्ञान होना चाहिए।
- परामर्शदाता को रुढ़िवादी होने के स्थान पर नमनीय होना चाहिए। उसे सेवार्थी से परामर्श के अन्तर्गत सहयोगी सम्बन्ध स्थापित करने हेतु सेवार्थी के दृष्टिकोण में होने वाले परिवतर्नों एवं प्रत्याशाओं के प्रति सजग रहना चाहिए तथा उसी के अनुसार ही अपने व्यवहार को निर्देशित करना चाहिए।
- परामर्शदाता की समायोजन क्षमता पर ही, वर्तमान मनो-उपचार परामर्श (Therapeutic Counselling) विश्वास करता है।
- उपबोध मात्र व्यावसायिक का स्थापन तक ही स्वयं को सीमित नहीं करता तथा न ही मात्र आर्थिक सुरक्षा एवं समंजन पर ही अपने ध्यान को केन्द्रित रखता है वरन् उपबोधक का ध्यान व्यक्ति के समग्र प्रयासों (सकारात्मक व नकारात्मक) भावनाओं, चिन्ताओं आदि संक्षेप में सेवार्थी की पूर्णता पर रहता है।
- व्यक्ति वहीं सब कुछ अधिगम करता है जिससे वह अधिगम करना चाहता है तथा यही अधिगम की गई बातें, उसके जीवन का अंग बन जाती हैं। जब सेवार्थी यह अनुभव करने लगे कि उपबोधक उसके व्यक्तित्व का आदर कर रहा है तथा उसके विचारों के प्रति सहिष्णुता एवं गहनता का दृष्टिकोण अपना रहा है तभी वह अपनी गहन व गुप्त भावों तथा दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति का आदर कर रहा है तथा उसके विचारों के प्रति सहिष्णुता एवं गहनता का दृष्टिकोण अपना रहा है तभी वह अपने गहन गुप्त भावों तथा दृष्टिकोणों को अभिव्यक्त करने में सक्षम हो जाता है।
- *केलर* ने शिक्षक को परामर्श के समान मानते हुए यह बताया है कि उपबोधक के कार्यों एवं व्यक्तित्व पर, संस्था के अध्यक्ष, प्रधानाध्यापक तथा उपबोधन में सहयोगी अन्य व्यक्तियों की सापेक्षता में ही विचार-विमर्श करना चाहिए। इस प्रकार *केलर* ने उन जटिलताओं का भी उल्लेख किया है जो उपबोधक के स्वभाव एवं कार्य से सम्बन्धित होती हैं।
- परामर्शदाता में अच्छे पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित करने हेतु निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है—दूसरों की आवश्यकताओं का ध्यान रखना, अपनी विचारधारा की अपेक्षा दूसरों के दृष्टिकोण के प्रति सहिष्णुता रखना, व्यक्तियों के अपने पर ध्यान रखना, व्यक्तियों को समझना एवं स्वीकार करना, सामाजिक संवेदनशीलता, ईमानदारी, निष्ठा, व्यक्तियों से मिलने-जुलने की योग्यता व्यक्तियों में रूचि रखना, धैर्य, पारस्परिक सम्बन्धों में सौहार्द्र इत्यादि।
- प्रत्येक निर्देशन अथवा उपबोधक के लिए, नैतिक आचरण के अनुपालन करना नितान्त आवश्यक होता है। ये नैतिक सिद्धान्त, उपबोधक द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में उठाये जाने वाले प्रयासों को निर्देशन प्रदान करते हैं तथा सेवार्थी के साथ सम्बन्ध बनाने में भी मार्ग दर्शन या पथ-प्रदर्शन करते हैं। *ई. सी. रोयबर* द्वारा उपबोधक के नैतिक अनुशासन के अघोषित आचरणों का उल्लेख किया गया है—

नोट

(1) परामर्श की निष्ठा का क्रम अग्रसर होता है—उपबोध प्राथमिक रूप से अपने सेवार्थी के प्रति उत्तरदायी होता है तदोपरान्त वह अपने विद्यालय तथा समान्य समाज के प्रति उत्तरदायी होता है उपबोधक सामाजिक संस्था के रूप में अन्य संस्थाओं की अपेक्षा, विद्यालय को प्रमुखता देता है।

(6) उपबोधक मनोवैज्ञानिक सूचनाओं का अर्थापन इस प्रकार से करता है जो सेवार्थी तथा उसके अभिभावक, दोनों हेतु रचनात्मक हो सके।

(7) उपबोध अपने इस अधिकार को सुरक्षित रखता है कि वह अपने सेवार्थी के बारे में योग्य व्यक्ति से विचार-विमर्श वृत्तिक वातावरण में करे।

(11) सेवार्थी के साथ उपबोधन में जब प्रथम उपबोधक का स्थान द्वितीय उपबोधक ग्रहण कर लेता है तो दोनों में से किसी भी उपबोध को एक दूसरे की आलोचना व निन्दा नहीं करनी चाहिए तथा न ही परस्पर एक दूसरे के कार्य तथा कार्यक्षमता पर आरोप ही लगाना चाहिए।

- परामर्शदाता को अपने कार्यों के माध्यम से समाज सेवा के साथ-साथ स्वयं की वृत्तिक उन्नति की ओर भी ध्यान देना चाहिए। व्यावसायिक उन्नति हेतु *रोयबर* द्वारा बताये गये अधोलिखित सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं—

(1) अपने वृत्तिक के विकास में सुधार की गति को तीव्र करने हेतु परामर्शदाता अपने प्रभाव का शक्ति के अनुरूप प्रयोग करता है।

(2) परामर्शदाता को, अन्य वृत्तिक कार्यकर्त्ताओं पर झूठे आरोप लगाकर, उनके चरित्र का हनन कर स्वयं को उच्च बनाने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

- उपबोधक को क्रियात्मक विचारों को भी ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है—

1. परामर्शदाता को अपने क्षेत्र अथवा सीमा से बाहर नहीं जाना चाहिए।
2. उसे सेवार्थी पर कोई समस्या थोपनी नहीं चाहिए।
3. परामर्शदाता का लक्ष्य सेवार्थी को समस्या से परिचित कराना है।
5. परामर्शदाता को सेवार्थी के समक्ष समस्त सम्भावनाओं को प्रस्तुत कर देना चाहिए।
6. अन्तिम निर्णय सेवार्थी को ही लेना है।

- उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर ही उपबोधक को निम्नलिखित कार्यों को करना चाहिए—

1. सेवार्थी के बारे में आँकड़े संकलित करना।
2. विभिन्न व्यवसायों से सम्बद्ध सूचनाओं को एकत्रित करना।
4. साक्षात्कारों की समुचित व्यवस्था करना।
5. सामाजिक सम्बन्ध बनाना।
6. अनुगामी कार्य करना।

- यह प्रश्न विवादास्पद है कि उपबोधन का कार्य कौन करे—अध्यापक या विशेषज्ञ, जिन व्यक्तियों का यह मानना है कि उपबोधन का कार्य अध्यापक को करना चाहिए, उनका यह कहना है कि अध्यापक का छात्र से निकट का सम्बन्ध होता है तथा वह विद्यार्थियों को भली प्रकार जानता है तथा छात्रों की क्षमताओं तथा वातावरण एवं उपलब्धियों के बारे में अपेक्षाकृत अधिक जानता है लेकिन जो व्यक्ति उपबोधन कार्य हेतु विशेषज्ञों की नियुक्ति को उपयुक्त मानते हैं, उनका यह तर्क है कि उपबोधन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल एवं व्यापक है। अत: शिक्षक के लिए, शिक्षण के साथ-साथ उपबोध का कार्य कर पाना अत्यन्त कठिन है।

- इन दोनों पक्षों के तर्कों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि द्वितीय पक्ष के तर्कों में बल है, क्योंकि परामर्श का कार्य करने हेतु विशेषज्ञ की ही आवश्यकता है, लेकिन अध्यापक एवं उपबोधक के कार्यों में कोई गहन अन्तर नहीं है।

नोट

23.5 शब्दकोश (Keywords)

- **नमनीयता**—विनम्रता।
- **बोधगम्यता**—सुलभ जानकारी।

23.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. परामर्शदाता की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. परामर्शदाता की प्रकृति एवं कार्यों से सम्बन्धित विद्वानों के मतों का उल्लेख कीजिए।
3. परामर्शदाता की भूमिका स्पष्ट करते हुए उसे गुणों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. सत्य	2. सत्य	3. असत्य	4. असत्य
2.	1. आत्म-ज्ञान	2. समायोजन	3. प्रशिक्षण	4. व्यावसायिक
	5. साक्षात्कार।			

23.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*— डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*— डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।
3. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*— डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—24: परीक्षणात्मक तथा अपरीक्षणात्मक तकनीकें: मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Testing and Non-testing Techniques: Psychological Tests)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
24.1 निष्पत्ति परीक्षण (Achievement Test)
24.2 निष्पत्ति परीक्षण का मापन (Measures of Achievement Test)
24.3 निष्पत्ति परीक्षणों का उपयोग (Applications of Achievement Test)
24.4 निष्पत्ति परीक्षण के प्रकार (Types of Achievement Test)
24.5 निदानात्मक परीक्षण की अवधारणा (Concept of Diagnostic Test)
24.6 निदानात्मक परीक्षण के प्रकार्य (Functions of Diagnostic Test)
24.7 निदानात्मक परीक्षण की विधियाँ (Methods of Diagnostic Test)
24.8 निदानात्मक परीक्षण के प्रकार (Types of Diagnostic Test)
24.9 निदानात्मक परीक्षणों का महत्त्व (Importance of Diagnostic Test)
24.10 निदानात्मक तथा निष्पत्ति परीक्षणों में अंतर (Difference between Diagnostic and Achievement Test)
24.11 सारांश (Summary)
24.12 शब्दकोश (Keywords)
24.13 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
24.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- निष्पत्ति एवं निदानात्मक परीक्षण का मापन, उपयोग, प्रकार, अवधारणा और महत्त्व की व्याख्या एवं विश्लेषण करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा निर्देशन में निष्पत्ति एवं निदानात्मक परीक्षण का विशेष महत्व है। निष्पत्ति परीक्षणों के आधार पर छात्र की परिलब्धियों के सम्बन्ध में जानकारी होती है कि वह किन विषयों में कमजोर, जिनमें सुधारात्मक शिक्षण की आवश्यकता है। विषय में छात्रों की कमजोरियों का कारण निदानात्मक परीक्षणों से विदित होता है। दोनों परीक्षणों के कार्य पृथक हैं—निष्पत्ति परीक्षण द्वारा छात्र की परिलब्धियों के स्तर का बोध होता है और कमजोर छात्रों को निदानात्मक परीक्षण

नोट

देकर उनकी कमजोरियों के कारण का पता लगाया जाता है। इन कमजोरियों के उपचार हेतु सुधारात्मक अनुदेशन तथा शिक्षण की व्यवस्था की जाती है।

छात्रों की परिलब्धियों द्वारा अगली कक्षा में किन विषयों को लिया जाए इसके लिए निर्देशन दिया जाता है। शैक्षिक परिलब्धियाँ, छात्र के बौद्धिक स्तर, अभिरुचियों तथा अभिवृतियों पर निर्भर करती है, परन्तु विशिष्ट निर्देशन में छात्रों की निष्पत्तियों का विशेष महत्व है। शिक्षा मापन के अन्तर्गत दो प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है–

(1) निष्पत्ति परीक्षण (Achievement Test), तथा

(2) निदानात्मक परीक्षण (Diagnostic Test)।

इन परीक्षणों का विवरण यहाँ दिया गया है–

24.1 निष्पत्ति परीक्षण (Achievement Test)

शैक्षिक मापन में निष्पत्ति परीक्षणों का विशेष महत्व है, निष्पत्ति परीक्षणों का प्रयोग सभी प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं में किया जाता है। निष्पत्ति परीक्षणों के द्वारा यह मापन किया जाता है कि छात्रों ने कक्षा में पढ़ाये गये विषयों की पाठ्यवस्तु के सम्बन्ध में कितना सीखा है। इस प्रकार के परीक्षणों में सम्पूर्ण पाठ्यवस्तु पर प्रश्न पूछे जाते हैं। और सही उत्तरों के लिए अंक देकर उनका योग कर लिया जाता है, जिसे प्राप्तांक कहते हैं। इस प्रकार निष्पत्ति परीक्षण में पाठ्यवस्तु के सीखने को विशेष महत्व दिया जाता है।

आधुनिक युग में निष्पत्ति परीक्षण में पाठ्यवस्तु का स्थान गौण हो गया है, क्योंकि शिक्षण के द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति करते हैं। अतः पाठ्यवस्तु उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक साधन है, साध्य नहीं, इस प्रकार निष्पत्ति परीक्षणों को अब मानदण्ड परीक्षण (Criterion Test) कहते हैं। परीक्षण उद्देश्य केन्द्रित हो गया है।

निष्पत्ति परीक्षण से मानदण्ड परीक्षण अधिक उपयोगी होते हैं। क्योंकि मानदण्ड परीक्षा से छात्रों के मानसिक विकास के स्तर का बोध होता है। जैसे–दो छात्रों ने समान अंक प्राप्त किए, एक ने पाठ्यवस्तु को रटकर के और दूसरे ने पाठ्यवस्तु को बोधगम्य करके। दोनों के समान अंक होने पर भी दूसरा छात्र पहले से उत्तम है, या अच्छा है। क्योंकि उसका मानसिक स्तर बोधगम्य तक है।

इस तथ्य को एक अन्य उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं। तुलसी और कबीर के वही दोहे प्राथमिक स्तर पर एवं उच्च स्तर पर पढ़ाये जाते हैं, इस प्रकार दोनों स्तरों पर पाठ्यवस्तु समान है, परन्तु प्राथमिक स्तर पर मानसिक कार्य रटने तक सीमित है, एवं उच्च स्तर पर बोधगम्य एवं सौन्दर्यानुभूति तक होता है।

शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति, छात्रों के व्यवहार परिवर्तनों के रूप में की जाती है, छात्रों के व्यवहार परिवर्तन से उनके मानसिक स्तर का बोध होता है। इस अध्याय में निष्पत्ति परीक्षण अथवा मानदण्ड परीक्षण का विवेचन एक साथ किया गया है, क्योंकि दोनों का आधार शिक्षण की पाठ्यवस्तु है।

24.2 निष्पत्ति परीक्षण का मापन (Achievement Test Measures)

बालक की मानसिक क्षमताओं एवं अभिप्रेरणा के गुणनफल को निष्पत्ति कहते हैं। निष्पत्ति परीक्षणों द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति की पुष्टि करते हैं, निष्पत्ति परीक्षणों की सहायता से सीखे हुए ज्ञान अथवा शैक्षिक उपलब्धियों का बोध होता है। इनको साधारणतया दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(1) ज्ञानात्मक शैक्षिक उपलब्धि (Cognitive Outcomes of Education) तथा

(2) अज्ञानात्मक शैक्षिक उपलब्धि (Non-Cognitive Outcomes of Education)।

(1) ज्ञानात्मक शैक्षिक उपलब्धि (Cognitive Outcomes of Education)–शिक्षा में शोधकार्यों के द्वारा इन

नोट

उपलब्धियों के बारे में ज्ञात किया गया है, जिन्हें बी० एस० ब्लूम ने छ: वर्गों में विभाजित किया है—अभिज्ञान, बोध, प्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण एवं मूल्यांकन।

वैबस्टर ने ज्ञान के प्रत्यय की परिभाषा की है, वह इस प्रकार है—

(अ) वास्तविक अनुभवों की प्राप्ति,

(ब) तथ्यों एवं सिद्धान्तों का परिभाषीकरण,

(स) ज्ञानात्मक पक्ष में समझने की क्रिया तथा स्थिति,

(द) समाज एवं सभ्यता द्वारा संचित सूचनाएँ।

सभी दर्शनों की ज्ञानमीमांसा में इसी का विवचेन किया गया है कि ज्ञान क्या है और कैसे प्राप्त किया जा सकता है? शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य ज्ञान को प्राप्त करना है शिक्षा संस्थाओं में जो ज्ञान दिया जाता है वो सूचना स्तर तक ही होता है, इन सभी को ज्ञानात्मक शैक्षिक उपलब्धि माना जाता है।

(2) अज्ञानात्मक शैक्षिक उपलब्धि (Non-Cognitive Outcomes of Education)—अन्य शैक्षिक उपलब्धियों का सम्बन्ध भावात्मक एवं क्रियात्मक उद्देश्यों से होता है। भावात्मक उद्देश्यों का सम्बन्ध रुचियों, अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं सौन्दर्यानुभूति के विकास से होता है। भावात्मक उद्देश्यों को छ: वर्गों में विभाजित किया गया है—आग्रहण, प्रतिक्रिया, अनुमूल्यन, विचारण, व्यवस्थापन्न तथा चारित्रीकरण। बालक के चारित्रिक गुणों का विकास भावात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति पर आधारित होता है।

क्रियात्मक उद्देश्यों का सम्बन्ध बालक के लिखने, पढ़ने, बोलने तथा ज्ञान के प्रयोग के कौशलों से होता है। क्रियात्मक उद्देश्यों को भी छ: वर्गों में बाँटा गया है—उत्तेजना, कार्यान्वयन, समायोजन, स्वाभावीकरण और स्वभाव का निर्माण बालकों में अच्छी आदतों का निर्माण या विकास क्रियात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति पर निर्भर होता है। इन दोनों पक्षों की शैक्षिक उपलब्धियों को अन्य शैक्षिक उपलब्धि कहा जाता है, जिसमें बालक के निम्नलिखित गुण सम्मिलित किए जाते हैं।

(अ) चिन्तन में लचीलापन,

(ब) निर्णय में सन्तुलन,

(स) आलोचनात्मक निरीक्षण,

(द) संश्लेषण तथा विश्लेषण की क्षमताएं अथवा सर्जनात्मक क्षमताएँ,

(स) सांस्कृतिक बोध एवं चयन की क्षमताएं, तथा

(द) शैक्षिक क्षमताएं।

इस प्रकार के गुणों के विकास को अन्य शैक्षिक उपलब्धियाँ माना जाता है, परीक्षण के निर्माण के समय यह आवश्यक होता है कि इस प्रकार के परीक्षणों का निर्माण किया जाए, जिससे अन्य शैक्षिक उपलब्धियों का मापन किया जा सके, जिससे बालकों की अभिप्रेरणा, मौलिकता, सर्जनात्मक, चारित्रिक गुणों के विकास का मापन हो सके, मूल्यांकन में ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक तीनों प्रकार के उद्देश्यों की जाँच की जाती है। मूल्यांकन में परीक्षण के अतिरिक्त अन्य प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

नोट्स ज्ञान का व्यवहार शिक्षा संस्थाओं का कार्य है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का सम्पूर्ण विकास करना और ज्ञानात्मक पक्ष पर स्वामित्व प्राप्त करना है।

नोट

24.3 निष्पत्ति परीक्षणों का उपयोग (Use of Achievement Test)

निष्पत्ति परीक्षण का उपयोग साधारणत: शिक्षा, उद्योग, सार्वजनिक सेवाओं, सेना, निर्देशन तथा परामर्श आदि क्षेत्रों में किया जाता है। इन परीक्षणों का उपयोग प्रमुख रूप से अधोलिखित कार्यों में किया जाता है–

(1) अनुस्थितियाँ अथवा श्रेणी प्रदान करना,

(2) अगली कक्षा में पदोन्नति,

(3) विभिन्न सेवाओं में चयन,

(4) सेवाओं में पदोन्नति के लिए,

(5) छात्रों का वर्गीकरण,

(6) शिक्षा निर्देशन,

(7) शिक्षण अधिगम की प्रभावशीलता, तथा

(8) व्यावसायिक निर्देशन।

इनका विवरण इस प्रकार है:

(1) **अनुस्थितियाँ अथवा श्रेणी प्रदान करना** (Assigning Grades or Division)—निष्पत्ति परीक्षण का प्रमुख कार्य यह है कि छात्रों को पास और फेल दो वर्गों में विभाजित करना, और पास हुए छात्रों को श्रेणी प्रदान करना। छात्रों को प्राप्तांकों या प्रतिशत के आधार पर उन्हें श्रेणियाँ प्रदान करना। संयुक्त राज्य अमेरिका में श्रेणी के स्थान पर अनुस्थितियाँ प्रदान की जाती है। अनुस्थतियों के लिए प्रमाणिक परीक्षणों को प्रयोग किया जाता है। इन अनुस्थतियों के लिए परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। इन अनुस्थितियों एवं श्रेणी के आधार पर छात्रों की शैक्षिक योग्यता का बोध होता है।

(2) **अगली कक्षा में पदोन्नति** (Promotion to Next Class)—जो छात्र परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं, वो अगली कक्षा के लिए अर्ह समझे जाते हैं, और अगली कक्षा में प्रवेश शैक्षिक वरीयता के आधार पर दिया जाता है और जो अनुत्तीर्ण होते हैं उन्हें अगली कक्षा में प्रवेश नहीं दिया जाता है।

(3) **विभिन्न सेवाओं में चयन** (Selection for Different Services)—विभिन्न सेवाओं के चयन में इन्हीं शैक्षिक योग्यताओं को महत्व दिया जाता है और अच्छी योग्यता वाले अभ्यर्थियों को साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है। अनेक संस्थाओं ने चयन परीक्षण का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। चयन परीक्षण में जो अधिक अंक प्राप्त करते हैं, उन्हीं का चयन साक्षात्कार के लिए किया जाता है।

(4) **सेवाओं में पदोन्नति के लिए** (Promotion in Services)—अनेक संस्थाओं में पदोन्नति के लिए निष्पत्ति परीक्षाओं का प्रयोग करते हैं, जो अभ्यर्थी इन परीक्षणों में अधिक अंक प्राप्त करते हैं, उनकी पदोन्नति की जाती है, विशेषकर बैंक की सेवाओं में इस प्रकार के परीक्षणों का अधिक उपयोग किया जाता है।

(5) **छात्रों का वर्गीकरण** (Classification of Students)—निष्पत्ति परीक्षणों का प्रयोग विभिन्न पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए वर्गीकरण किया जाता है जैसे–विज्ञान के पाठ्यक्रम, वाणिज्य के पाठ्यक्रम, कृषि के पाठ्यक्रम एवं कला आदि के पाठ्यक्रम। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में भी निष्पत्ति परीक्षण के आधार पर ही वर्गीकरण करके विभिन्न पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिया जाता है।

(6) **शिक्षा निर्देशन** (Education Guidance)—निष्पत्ति परीक्षणों के आधार पर यह बोध होता है किन-किन पाठ्यक्रमों में छात्र कमजोर, उन पाठ्यक्रमों में ऐसे छात्रों के लिए विशेष शिक्षण की व्यवस्था की जाए। सुधारात्मक शिक्षण व्यक्ति अधिक होता है, प्रत्येक छात्र के लिए अलग-अलग सीखने की परिस्थितियों की व्यवस्था करनी होती है। छात्रों की निष्पत्ति से विद्यालय की प्रगति का भी बोध होता है कि विद्यालय का

वातावरण, शिक्षा का वातावरण सीखने के लिए कितना उपयोगी है। इसके अतिरिक्त बहुत अच्छे अंक प्राप्त करने वाले छात्रों को विशेष अधिगम परिस्थितियों की व्यवस्था करनी चाहिए।

(7) **शिक्षण अधिगम की प्रभावशीलता (Effectiveness of Teaching Learning)**—किसी पाठ्यक्रम के निष्पत्ति परीक्षण पर अधिकांश छात्र अच्छे अंक प्राप्त करते हैं, तो इससे यह भी विदित होता है कि शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया प्रभावशाली, अर्थात् शिक्षक का शिक्षण उत्तम कोटि का है। इसके विपरीत यदि किसी पाठ्यक्रम के परीक्षण पर अधिकांश छात्र असफल रहते हैं या कम अंक आते हैं, तो शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया प्रभावशाली नहीं है, अर्थात् शिक्षक को पढ़ाना नहीं आता है विद्यालयों में अध्यापकों की जो नियुक्तियाँ की जाती हैं, उन्हें एक साल के बाद, उनके पाठ्यक्रम के परीक्षणों पर प्राप्तांकों के आधार पर स्थाई किया जाता है।

(8) **व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance)**—निष्पत्ति परीक्षणों के आधार पर छात्रों को व्यावसायिक निर्देशन भी दिया जाता है, विभिन्न पाठ्यक्रमों के प्राप्तांकों के आधार पर यह भी अनुमान लगाया जाता है कि वह छात्र किन सेवाओं में अधिक सफल हो सकता है। व्यवसाय के चुनने के लिए निर्देशन दिया जाता है। क्योंकि पाठ्यक्रमों का सम्बन्ध विभिन्न व्यवसायों से होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)—

1. बी.एस. ब्लूम ने ज्ञानात्मक उपलब्धियों को .... वर्गों में विभाजित किया है—

   (*a*) 4 (*b*) 5 (*c*) 6 (*d*) 7

2. क्रियात्मक उद्देश्यों को .... वर्गों में बाँटा गया है—

   (*a*) 6 (*b*) 7 (*c*) 8 (*d*) 9

3. शिक्षा मापन के अंतर्गत .... प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

   (*a*) 1 (*b*) 2 (*c*) 3 (*d*) 7

24.4 निष्पत्ति परीक्षण के प्रकार (Types of Achievement Tests)

निष्पत्ति परीक्षण तीन प्रकार के होते हैं। इनका विवरण यहाँ दिया गया है:—

1. लिखित परीक्षण (Writeen Test),
2. मौखिक परीक्षण (Oral Test),
3. प्रयोगात्मक परीक्षण (Practical Test)।

1. लिखित परीक्षण (Written Test)

निष्पत्ति परीक्षणों में लिखित परीक्षणों का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इनका प्रयोग सभी प्रकार के पाठ्यक्रमों के निष्पत्ति परीक्षणों में किया जाता है। जिन पाठ्यक्रमों में प्रयोगात्मक परीक्षण प्रयोग किया जाता है, उनमें लिखित परीक्षण भी दिया जाता है और दोनों के आधार पर छात्र की उपलब्धि या प्राप्तांक का बोध होता है। लिखित परीक्षण तीन प्रकार का होता है—

(1) निबन्धात्मक परीक्षण (Essay Type Tests)

(2) वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Objective Type Tests) तथा

(3) सूक्ष्म उत्तर परीक्षण (Short Answer Type Tests)

यह तीनों प्रकार के परीक्षण शैक्षिक निष्पत्तियों के लिए प्रयुक्त किए जाते है, परन्तु इस प्रकार के परीक्षण दोषपूर्ण होने

नोट

के साथ-साथ ऐसे व्यवहार परिवर्तन का मापन करते हैं, जिन्हें किसी अन्य परीक्षण द्वारा मापन नहीं किया जा सकता है जैसे-अभ्यर्थी का लेख, पाठ्यवस्तु की व्यवस्था, विषय की गहनता एवं बोधगम्यता के साथ-साथ सौन्दर्यानुभूति एवं आलोचनात्मक क्षमताओं का मापन किया जाता है, इससे स्पष्ट है कि शिक्षा के उच्च उद्देश्यों का मापन निबन्धात्मक परीक्षणों द्वारा ही सम्भव है। अन्य दोष इनका यह है कि निबन्धात्मक को प्रमाणिक परीक्षण नहीं बनाया जा सकता है, अपितु उनमें सुधार किया जा सकता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं की कई विशेषताएँ हैं, और इन्हें प्रामाणिक भी बनाया जा सकता है, परन्तु शिक्षा में उच्च उद्देश्यों का मापन नहीं किया जा सकता है वस्तुनिष्ठ परीक्षा में प्रश्नों को अनुमान से सही करने का भी अवसर होता है इसलिए सूक्ष्म उत्तर परीक्षणों को प्रयोग में लाते हैं। निबन्धात्मक परीक्षाओं को विस्तार में विवेचन अधोलिखित पंक्तियों में किया गया है–

निबन्धात्मक परीक्षाएँ (Essay Type Examination)

आधुनिक प्रचलित परीक्षण प्रणाली में निबन्धात्मक परीक्षाएँ अधिक प्रयुक्त की जाती हैं। परन्तु इस विधि के द्वारा परीक्षण की अविश्वसनीयता तथा अवैधता भी प्रमाणित कर दी गई है। इस परीक्षा पद्धति की मुख्य सीमाएं निम्नलिखित हैं–

सीमाएं (Limitations)– (1) निबन्धात्मक परीक्षाओं में ज्ञान स्तर पर ज्ञान की परीक्षा पर अधिक बल दिया जाता है। शिक्षण के अन्य उद्देश्यों के परीक्षणों की अवहेलना की जाती है। (2) शिक्षण उद्देश्यों को प्रश्न पत्रों में पदों के चयन में ध्यान नहीं दिया जाता है। पाठ्य-वस्तु का न्यादर्श शुद्ध नहीं होता है। (3) उत्तर पुस्तकों के अंकन में परीक्षक की आत्मनिष्ठता का समावेश रहता है। (4) शिक्षण उद्देश्य केन्द्रित न होकर परीक्षा केन्द्रित होता है। बालक के गुणों के विकास आदि का ध्यान नहीं दिया जाता है, परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए अनावश्यक बातों को रटना होता है। इसमें पाठ्यवस्तु को रटने पर अधिक बल दिया जाता है। (5) निबन्धात्मक परीक्षाओं की सहायता से छात्रों की विशेषताओं तथा न्यूनताओं (Strengths and Weaknesses) का पता नहीं लगाया जाता है। इसको निदानात्मक परीक्षा के रूप में प्रयोग नहीं कर सकते हैं। (6) इनमें बालक के सुलेख तथा लिखने की गति का मूल्यांकन होता है। बालकों की क्षमताओं का मापन शुद्ध रूप में नहीं होता है। (7) यह परीक्षाएँ विश्वसनीय तथा वैध नहीं होती हैं।

विशेषताएँ (Characteristics)– अधोलिखित विशेषताएँ हैं–

1. निबन्धात्मक परीक्षाओं से उच्चस्तरीय बौद्धिक कुशलताओं जैसे-ज्ञान-प्रयोग, सौन्दर्यानुभूति, क्षमताओं की परीक्षा की जाती है।
2. इनसे बालकों के मौलिक चिन्तन एवं सूझ तथा सर्जनात्मक क्षमताओं की जाँच की जाती है।
3. बालकों की भाषा, शैली आदि की इन्हीं परीक्षाओं द्वारा जाँच की जाती है।
4. निबन्धात्मक परीक्षाओं को उद्देश्य केन्द्रित बनाया जाता है।

उदाहरण–(शिक्षण उद्देश्य व्यवहार रूप में)

(क) ज्ञान-उद्देश्य (Knowledge Objectives)

(1) **व्यवहार**–तथ्यों की स्मृति की क्षमता हैं।

प्रश्न–एशिया महाद्वीप में ऊन उत्पादन के प्रमुख देश कौन-कौन हैं?

प्रश्न–मध्य-एशिया में किन-किन देशों को तेल का उत्पादन होता है?

(2) **व्यवहार**–कारण एवं प्रभाव का सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता हैं।

प्रश्न–सूरत तथा नागपुर लगभग एक ही अक्षांशों में स्थित है, परन्तु नागपुर की अपेक्षा सूरत में ऊनी वस्त्रों का उपयोग कम होता है, क्यों?

प्रश्न–अहमदाबाद में सूती कपड़े के कारखाने क्यों स्थापित किए गए हैं?

(3) **व्यवहार**–दो प्रकार के तथ्यों में तुलनात्मक अध्ययन की क्षमता।

नोट

प्रश्न—दक्षिणी अमेरिका और आस्ट्रेलिया के ऊन उत्पादन की भौगोलिक दशाओं की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

प्रश्न—संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी तटीय प्रदेश तथा जापान के जलवायु के तथ्यों का तुलनात्मक उल्लेख कीजिए।

(4) **व्यवहार**—विवरण की क्षमता या अभिव्यक्ति है।

प्रश्न—उत्तरी भारत का मैदान सतलज गंगा नदियों की देन है। इसकी संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

(ख) ज्ञान प्रयोग उद्देश्य (Application of Knowledge)

(1) **व्यवहार**—भौगोलिक तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालने की क्षमता है।

प्रश्न—भारत के तीन नगरों की स्थिति अक्षांश और देशान्तर में दी गयी है। इनमें से सबसे कम ऊनी वस्त्रों की आवश्यकता किस नगर में होती है, क्यों?

नगर	अक्षांश	देशान्तर
1. इलाहाबाद	25.5° उ॰	81.5° पू॰
2. हैदराबाद	16.5° उ॰	78.5° पू॰
3. दिल्ली	29.0° उ॰	77.0° पू॰

(2) **व्यवहार**—भविष्यवाणी करने की क्षमता है—

प्रश्न—भारत की सिंचाई योजना के अन्तर्गत राजस्थान नहर का ऊन उत्पादन पर क्या प्रभाव होगा?

प्रश्न—भारत में रसायन-खादों के उत्पादन के फलस्वरूप कृषि का प्रसार अथवा गहरी कृषि का विकास अधिक होगा। अपने उत्तर की कारण सहित व्याख्या करो।

(3) **व्यवहार**—भौगोलिक सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण की क्षमता है—

प्रश्न—समुद्री धाराओं का स्केन्डीनेविया की जलवायु पर क्या प्रभाव पड़ता है?

क्या आप जानते हैं विश्वविद्यालय परीक्षण तथा बोर्ड की परीक्षाओं में आज भी निबन्धात्मक परीक्षाएँ ही प्रयुक्त की जाती हैं, जबकि यह परम्परागत एवं दोषपूर्ण परीक्षण माने जाते हैं।

24.5 निदानात्मक परीक्षण की अवधारणा (Concept of Diagnostic Test)

निष्पत्ति परीक्षणों द्वारा बालक की शैक्षिक योग्यताओं का मापन किया जाता है, सरल शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि छात्र ने किसी विषय से सम्बन्धित पाठ्यवस्तु को कितना सीख लिया है। उसे निष्पत्ति (उपलब्धि) कहते हैं। इस प्रकार निष्पत्ति परीक्षणों द्वारा यह विदित होता है कि छात्र ने कितना सीखा है। इन परीक्षणों से यह ज्ञात नहीं किया जा सकता कि जो नहीं सीख सके उसका क्या कारण रहा है? इसके लिए निदानात्मक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक निष्पत्ति मापन की दृष्टि से निष्पत्ति परीक्षण एवं निदानात्मक परीक्षण एक दूसरे की पूरक हैं। शैक्षिक मापन के प्रत्यय को एक सरल उदाहरण से समझ सकते हैं।

उदाहरण—एक गिलास में 60% पानी से भरा हुआ है, यह उसकी निष्पत्ति है और 40% खाली है, खाली होने के कारण निदान करने से विदित होता है।

नोट

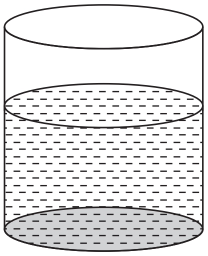

शैक्षिक मापन के लिए *निष्पत्ति परीक्षण* और *निदानात्मक परीक्षण* दोनों ही आवश्यक है। इस अध्याय में निदानात्मक परीक्षण का भी विवेचन किया गया है।

इस प्रत्यय को निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है–

(1) दो समान योग्यताओं वाले छात्रों की निष्पत्तियों में अन्तर हो सकता है। जिस छात्र को अधिक प्रेरणा दी गई है, उसके अंक या प्राप्तांक अधिक हो सकते हैं, और जिसकों प्रेरणा नहीं मिली है उसके अंक कम हो सकते हैं। यह कारण निदान से ही ज्ञात किया जा सकता है।

(अ) किस प्रकार की अभिप्रेरणा दी गई है यह भी महात्त्वपूर्ण होता है क्योंकि एक ही प्रकार की प्रेरणा दो प्रकार के छात्रों के लिए प्रभावी नहीं हो सकती है, अन्तर्मुखी छात्रों के लिए निरन्तर प्रेरणा की आवश्यकता होती है, जबकि बहिर्मुखी छात्रों के लिए कभी-कभी प्रेरणा देना पर्याप्त होता है।

(ब) अभिप्रेरणा के अतिरिक्त छात्र की परिस्थितियाँ जिनमें वह रहकर अध्ययन कर रहा है। वह भी उसकी निष्पत्ति को प्रभावित करती है। जबकि विद्यालय में सभी को समान परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती है।

(द) तृतीय कारण परीक्षा और परीक्षक की परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं। परीक्षण में छात्र की पाठ्यवस्तु एवं उसकी लेखन विधि अच्छे अंकों के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

निदान के अन्तर्गत कम अंक प्राप्त करने के कारणों का सही पता लगाया जाता है। आधुनिक निदान की प्रक्रिया के अन्तर्गत केवल निदानात्मक परीक्षाओं तक ही सीमित नहीं रहते हैं। छात्र की समस्त परिस्थितियों का अवलोकन करके विशिष्ट प्रभावों का ज्ञान किया जाता है, निदान के अन्तर्गत वस्तुनिष्ठ विधियों एवं प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

(2) आधुनिक निदान के अन्तर्गत छात्र के व्यवहार के सभी क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है, उसे एक क्षेत्र तक संकुचित रूप में सीमित नहीं रखते हैं। इस निदान के प्रारूप में सामान्य क्षेत्रों की अयोग्यताएं उद्देश्यों एवं विधियों का विभिन्न व्यक्तियों पर प्रभाव का अध्ययन किया जाता है, इसके अन्तर्गत सामूहिक निदान किया जाता है। इसे केवल एक व्यक्ति के निदान तक सीमित नहीं रखा जाता है।

(3) आधुनिक निदान की प्रक्रिया के अन्तर्गत संचयी आलेखों या सतत् परीक्षणों का प्रयोग होता है। इस प्रकट के निदान अधिक शुद्ध एवं विश्वसनीय होते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. निम्नलिखित कथनों में से 'सत्य' तथा 'असत्य' छांटिए–

1. निष्पत्ति परीक्षण में सही उत्तरों को महत्व दिया जाता है।
2. निदानात्मक परीक्षण में गलत उत्तरों का महत्व दिया जाता है।
3. संचयी आलेख से बालक की प्रगति की जानकारी होती है।
4. निष्पत्ति परीक्षण और निदानात्मक परीक्षण एक दूसरे के पूरक होते हैं।
5. निबन्धात्मक एवं वस्तुनिष्ठ परीक्षायें एक दूसरे की विरोधी होती हैं।

नोट

24.6 निदानात्मक परीक्षण के कार्य (Functions of Diagnotic Test)

निदान की प्रक्रिया व्यक्तिगत अधिक होती है, इसके अधोलिखित कार्य हैं—

1. वर्गीकरण (Classification)—निदान की प्रक्रिया का वर्गीकरण प्राथमिक सोपान या लक्ष्य माना जाता है। निदान की प्रक्रिया को आरम्भ करने के लिए यह आवश्यक है कि सभी छात्रों को सजातीय समूहों में विभाजित किया जाए। यह विभाजन अधोलिखित सामान्य गुणों पर आधारित होता है—

(अ) मानसिक स्तर (Intellectual Level)

(ब) व्यावसायिक स्तर (Vocational Level), तथा

(स) संगीत की प्रवणता (Musical Level)।

इन स्तरों का प्रयोग प्रशासनिक अथवा निर्देशन की दृष्टि से किया जाता है।

2. विशिष्ट योग्यताओं का मापन (Assessment of Specific Abilities)—निदान का दूसरा सोपान छात्रों की विशिष्ट योग्यताओं का मापन करना होता है, इसके अन्तर्गत अधोलिखित निम्नांकित योग्यताओं का स्तर ज्ञात किया जाता है—

(अ) समायोजन का स्तर (Level of Adjustment)

(ब) असमायोजन का स्तर (Level of Abnormality)

(स) उत्सुकता का स्तर (Level of Anxiety)

(द) हताशा का स्तर (Level of Depression)

(स) वैमनस्यता का स्तर (Level of Hostility)।

3. निदान सम्बन्धी कारण (Etiology)—यह कार्य सबसे जटिल और कठिन होता है। इसके अन्तर्गत यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि उसके सीखने की कमजोरियाँ उसकी सामान्य योग्यताओं एवं विशिष्ट योग्यताओं से किस प्रकार सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत छात्रों के न सीखने के कारणों का पता लगाया जाता है।

4. सुधारात्मक (Remediation)—निदान का अन्तिम कार्य यह होता है कि छात्रों की कमजोरियों को दूर किया जाए। जब उसकी कमजोरियों का कारण ज्ञात कर लेते हैं तो उन कारणों का दूर करने की विधियों का चयन करके उनका प्रयोग करते हैं जिससे उनकी कमजोरियों को दूर किया जा सके। इस प्रकार निदान के अन्तर्गत पूर्वकथन (Prediction) कार्य भी निहित होता है। छात्रों की कमजोरियों को दूर करके ही उनमें सुधार लाया जा सकता है। सुधार के छात्रों की निष्पत्तियों के स्तर को उठाया जाता है। इस प्रकार निदान का कार्य साफल्यता भी है और निदान की क्रिया-गतिशील भी होती है। सुधारात्मक प्रक्रिया व्यक्तिगत (Highly Individualized) अधिक होती है।

24.7 निदानात्मक परीक्षण की विधियाँ (Methods of Diagnostic Test)

निदान की प्रक्रिया में प्रमुख रूप से दो प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है—(1) दार्शिनिक विधि तथा (2) निदानात्मक परीक्षण।

1. **दार्शनिक विधि (Philosophical Method)**—निदान एक पारस्परिक प्रक्रिया अधिक है। निदानात्मक परीक्षणों के आधार पर छात्रों का शुद्ध रूप में निदान किया जा सकता है, जब तक शिक्षक का छात्रों से पारस्परिक सम्बन्ध न हो। निदानात्मक परीक्षणों से यह विदित होता है कि छात्र किस प्रकार की त्रुटि करते हैं परन्तु त्रुटि करने का क्या कारण है? इसके कारण का पता शिक्षक ही लगा सकता है, जिसका छात्रों से सम्बन्ध रहा है। क्योंकि त्रुटि के कारण अनेक हो सकते हैं, जो छात्र के व्यक्तिगत गुणों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार निदानात्मक परीक्षण विश्वसनीय एवं वैध तभी हो सकता है जब परीक्षक का परीक्षार्थियों से पारस्परिक सम्बन्ध रहा हो अन्यथा उसका अर्थापन करना शुद्ध एवं वैध नहीं होगा।

नोट

2. **निदानात्मक परीक्षण (Diagnostic Tests)**—निदान की दूसरी विधि निदानात्मक परीक्षण है। साधारणतया इसी विधि का प्रयोग निदान की प्रक्रिया में किया जाता है। निदानात्मक परीक्षण का प्रयोग मुख्य रूप से निर्देशन एवं सुधार के लिए किया जाता है। निदानात्मक परीक्षण से यह विदित होता है कि एक छात्र की निष्पत्ति पर्याप्त क्यों नहीं है, इसका कारण बताता है।

24.8 निदानात्मक परीक्षण के प्रकार (Types of Diagnostic Test)

निदान की परीक्षण विधि भी दो प्रकार की होती है–

(1) निरीक्षण विधि (Observational Technique) तथा

(2) निदानात्मक परीक्षण (Diagnostic Test)।

(1) निरीक्षण विधि (Observational Method)—सामान्य अर्थों में यह परीक्षण नहीं है अपितु निरीक्षण विधि है, जिसमें साक्षात्कार भी किया जाता है। छात्रों से व्यक्तिगत सम्पर्क करके उनकी परिस्थितियों के बारे में जानकारी की जाती है, अनौपचारिक ढंग से भी निरीक्षण करते हैं। इस प्रकार के निरीक्षणों के द्वारा उनकी कमजोरियों को जानने का प्रयास करते हैं, जिसके लिए शैक्षिक निर्देशन तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार सहायता दी जाती है। यह विधि अधिक विश्वसनीय नहीं है, इसलिए इसका प्रयोग नहीं होता है। इसमें व्यक्तिगत पक्षों का समावेश अधिक होता है।

(2) निदानात्मक परीक्षण (Diagnostic Test)—निदानात्मक परीक्षणों का प्रयोग अधिक किया जाता है। इसमें वस्तुनिष्ठ प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण शाब्दिक तथा अशाब्दिक होते हैं। इनके प्रयोग से छात्रों के विभिन्न पक्षों के व्यवहारों का मापन किया जाता है, जैसे–शैक्षिक योग्यता, बुद्धि अभिरूचि, अभिवृत्ति, प्रवणता, व्यक्तित्व के गुणों तथा विशिष्ट व्यावसायिक कौशलों का मापन किया जाता है।

पिछले कुछ दशकों से प्रक्षेपित परीक्षण (*Projective Tests*) का प्रयोग निदान के लिए किया जाने लगा है।

व्यक्तित्व मापन में इसका प्रयोग अधिक किया जाने लगा है। व्यक्ति के अवांछित एवं असामान्य व्यवहारों का पता इसी प्रकार के परीक्षणों से किया जाता है। छात्रों के उत्तरों का विश्लेषण तीन पक्षों-प्रकरण, प्रक्रिया एवं परिणाम में किया जाता है।

निदानात्मक परीक्षणों की रचना के सोपान (Steps for Diagnostic Test Construction)—निदानात्मक परीक्षणों की रचना के लिए अधोलिखित सोपानों का अनुसरण किया जाता है–

(1) उद्देश्यों का निर्धारण तथा पाठ्यवस्तु के प्रकरणों की रूप रेखा

(2) पाठ्यवस्तु विश्लेषण तार्किक क्रम में,

  (अ) पाठ्यवस्तु के प्रकरणों का क्रम,

  (ब) सीखने के सोपानों का क्रम,

(3) पाठ्यवस्तु के कठिनाई क्रम का निर्धारण,

(4) परीक्षण के पदों के प्रकार का निर्धारण,

(5) परीक्षण के पदों का सुधार,

(6) पाठ्यवस्तु के तार्किक क्रम का विश्लेषण, तथा

(7) परीक्षण के अन्तिम प्रारूप की तैयारी।

निदानात्मक परीक्षण के पदों के सुधार के लिए पद विश्लेषण भी किया जाता है। पद विश्लेषण के लिए गलत पदों को महत्व दिया जाता है और इसमें *स्टेनले* (Stanley) विधि का प्रयोग करते हैं। छात्रों की गलतियों के अनेक कारण

नोट

हो सकते हैं, जैसे—कम सुनना एवं कम देखना, घर की परिस्थिति का अच्छा न होना, मानसिक योग्यता का अभाव तथा साथियों के अच्छे सम्बन्ध न होना आदि।

इस प्रकार ऐसे भी कारण होते हैं जो अध्यापक की पहुँच में नहीं होते, जिसमें माता-पिता तथा अन्य लोगों की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है।

पढ़ने का निदानात्मक परीक्षण (Diagnostic Test of Reading)

निदानात्मक परीक्षणों में यह माना जाता है कि पढ़ने के कौशलों का मापन में सबसे महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि शैक्षिक निष्पत्ति में पढ़ने की क्षमताओं या पढ़ने के कौशल की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पढ़ने का निदानात्मक परीक्षण आयोवा साइलेन्ट रीडिंग टेस्ट (Iowa Silent Reading Test) एक विशेष प्रकार का परीक्षण है। जिसमें कई उप-परीक्षणों को सम्मिलित किया गया है। वे इस प्रकार हैं—

(1) गद्य की बोधगम्यता तथा अध्ययन की गति (Rate of Reading and Comprehensiveness of Prose)

(2) पद्य की बोधगम्यता तथा सौन्दर्यानुभूति (Poetry Comprehension and Appreciation)

(3) विभिन्न प्रकार के पाठ्यवस्तु की शब्दावली (Vocabulary in Different Content Areas)

(4) वाक्यों का अर्थ (Meanning of Sentences) तथा

(5) परिच्छेद की बोधगम्यता (Paragraph Comprehension)।

इन पाँच उप-परीक्षणों को पढ़ने के निदानात्मक परीक्षण में सम्मिलित किया गया है। छात्रों को यह परीक्षण दिया जाता है, और परीक्षक उनकी त्रुटियों को देखता है, और अधोलिखित त्रुटियाँ ज्ञात करता है। शब्दों के गलत उच्चारण, शब्दों की गलत वर्तनी, शब्दों का लोप, पुनरावृत्ति, शब्दों का स्थानापन्न, शब्दों को जोड़ना तथा विपरीत पढ़ना आदि त्रुटियाँ पायी जाती है।

इन त्रुटियों के आधार पर पढ़ने की कठिनाई के कारणों के सम्बन्ध में संकेत मिलता है। जैसे-गलत उच्चारण में तुतलाना या शर्माना तथा गलत वर्तनी में दृष्टि का दोष आदि कारणों का बोध होता है। शिक्षक इन कारणों को ज्ञात करके छात्रों को समुचित निर्देशन तथा सुधारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करता है।

गणित कौशलों हेतु निदानात्मक परीक्षण (Diagnostic Test of Mathematical Skills)—पढ़ने के निदानात्मक परीक्षणों के बाद दूसरा स्थान गणित के निदानात्मक परीक्षण का है, जो छात्रों की दृष्टि से बहुत ही आवश्यक है। गणित अपेक्षाकृत एक कठिन विषय है, इसलिए इसमें निदानात्मक परीक्षणों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। गणित में कम्पास डाइग्नोस्टिक टेस्ट इन अर्थमेटिक (Compass Diagnostic Tests in Arithmetic) का प्रयोग अधिक किया गया है। इसमें कक्षा दो से आठ तक के लिए, प्रश्नों को सम्मिलित किया गया है। इसमें प्रमुख रूप से चार प्रकार के उप-परीक्षणों को सम्मिलित किया गया है। यह गणित मूल क्रियायें मानी जाती हैं—

1. जोड़ना (Addition)
2. घटाना (Subtraction)
3. गुणा करना (Multiplication)
4. भाग करना (Division)

इन चारों को उप-परीक्षणों में निहित कौशलों में विभाजित किया गया है और उनमें से प्रत्येक के परीक्षण के लिए अलग-अलग परीक्षणों की रचना की गयी है।

इन परीक्षणों को छात्रों का निदान करने के लिए दिया जाता है, परीक्षक गलतियों की प्रकृति पहचानने का प्रयास करता है। इसमें साधारणतया अधोलिखित कठिनाइयाँ (त्रुटियाँ) पायी जाती हैं:—

(1) जोड़ में हासिल लगाना नहीं आता,

(2) घटाने में उधार लेना नहीं आता,

(3) उधार लेकर अगले अंक में एक कम करना नहीं आता,

नोट

(4) दशमलव लगाना नहीं आता,

(5) गुणा में तालिका का याद न होना।

(6) गुणा में हासिल लगाना नहीं आता,

(7) गुणा में दशमलव लगाना नहीं आता,

(8) भाग में तालिका याद न होना,

(9) अंकों में तालिका याद न होना,

(10) दशमलव अंक लगाना-आदि।

इन त्रुटियों से छात्रों की कठिनाइयों के बारे में पता चलता है और त्रुटियों के कारणों का भी बोध होता है। शिक्षक को छात्रों की कठिनाइयों के लिए समुचित सुधारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करनी होती है।

24.9 निदानात्मक परीक्षणों का महत्व (Importance of Diagnostic Tests)

शैक्षिक मापन में निष्पत्ति परीक्षण एवं निदानात्मक परीक्षण दोनों के महत्वपूर्ण कार्य हैं। छात्रों की कमजोरियों की दृष्टि से निदानात्मक परीक्षणों का विशेष महत्व है। निदानात्मक परीक्षण के गुण तथा दोष निम्नलिखित हैं–

1. छात्रों की कमजोरियों की दृष्टि से निदानात्मक परीक्षण की सबसे अधिक आवश्यकता होती है।
2. निदानात्मक परीक्षणों के आधार पर सुधारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जाती है। उपचारी शिक्षण को विकसित किया जाता है।
3. इनके आधार पर छात्र की उपलब्धियों के सम्बन्ध में विश्वसनीय कारण ज्ञात किए जाते हैं।
4. निदानात्मक उप-परीक्षणों की वैधता एवं विश्वसनीयता कम होती है। परन्तु आपस में सह-सम्बन्ध अधिक होता है।
5. निदानात्मक परीक्षण में अधिक समय लगता है और उनकी रचना करना भी कठिन होता है।

26.11 निदानात्मक परीक्षण एवं निष्पत्ति परीक्षण में अन्तर (Difference Between Diagnostic Test and Achivement Test)

(1) निष्पत्ति परीक्षणों के द्वारा यह मापन किया जाता है कि एक विषय के सम्बन्ध में छात्र ने कितना ज्ञान अर्जित किया है। यह मापन प्राप्तांक के रूप में होता है परन्तु किसी छात्र के अधिक या कम अंक होने का कारण नहीं बताता है।

एक निदानात्मक परीक्षण के द्वारा एक छात्र के कम अंक प्राप्त करने के कारणों का पता लगाता है। परन्तु इसके द्वारा छात्रों की निष्पत्ति का मापन अंकों में (प्राप्ताकों में) नहीं होता है। अपितु प्रश्न को गलत करने के कारण का पता चलता है।

निदानात्मक में सही प्रश्न के लिए अंक नहीं दिए जाते है अपितु गलत प्रश्न पर कारणों का विचार किया जाता है।

(2) निष्पत्ति परीक्षण में प्रश्नों को कठिनाई स्तर के क्रम में रखा जाता है अर्थात् सबसे सरल सबसे पहले और सबसे कठिन सबसे अन्त में रखा जाता है जबकि निदानात्मक में प्रश्नों को सीखने के मनोवैज्ञानिक क्रम अथवा सीखने के तार्किक (Locical Sequences) क्रम में व्यवस्थित किया जाता है।

(3) निष्पत्ति परीक्षण की रचनाओं में साधारणतया सम्पूर्ण पाठ्यवस्तु पर प्रश्न देने का प्रयास किया जाता है। जबकि निदानात्मक परीक्षण में पाठ्यवस्तु के साथ सीखने के क्रम को भी महत्त्व दिया जाता है।

निदानात्मक परीक्षण की रचना में पद विश्लेषण के लिए सही उत्तरों को महत्व नहीं दिया जाता है। अपितु निदानात्मक परीक्षण के पद विश्लेषण गलत उत्तरों को महत्व देते हैं।

(4) निष्पत्ति परीक्षणों का प्रयोग शैक्षिक प्रशासन में अधिक होता है। जैसे—छात्रों का वर्गीकरण करना, चयन करना, अगली कक्षा में प्रवेश देना, छात्रों को श्रेणीबद्ध करना आदि। जबकि निदानात्मक परीक्षणों का प्रयोग शैक्षिक निर्देशन तथा सुधारात्मक शिक्षण में होता है। सुधारात्मक शिक्षण में शिक्षक को बड़े सूझ-बूझ से कार्य करना होता है क्योंकि सुधारात्मक शिक्षण व्यक्तिगत होता है।

(5) निष्पत्ति परीक्षणों की तरह निदानात्मक परीक्षणों को अधिक विश्वसनीय एवं वैध नहीं बनाया जा सकता, निदानात्मक परीक्षण के मानक का विकास करना सम्भव नहीं होता है। क्योंकि इसमें व्यक्तिगत विशेषताओं को ध्यान में रखा जाता है।

(6) कुछ परीक्षण ऐसे होते हैं, जो निदान एवं मूल्यांकन दोनों के लिए प्रयोग किए जा सकते हैं। परन्तु ऐसे परीक्षण प्रभावी नहीं होते हैं।

(7) निष्पत्ति परीक्षण परिमाणात्मक होते हैं। जबकि निदानात्मक परीक्षण गुणात्मक होते हैं। शैक्षिक मापन की दृष्टि से दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. निष्पत्ति परीक्षण में .... उत्तरों का महत्व दिया जाता है।
2. निदानात्मक परीक्षण से .... अनुदेशन का निर्माण किया जाता है।
3. निदानात्मक परीक्षण में .... उत्तरों को महत्व दिया जाता है।
4. संचयी आलेख से बालकों की .... प्रगति की जानकारी होती है।
5. संचयी आलेख का उपयोग .... निर्देशन में किया जाता है।

21.11 सारांश (Summary)

- निष्पत्ति परीक्षण द्वारा छात्र की परिलब्धियों के स्तर का बोध होता है और कमजोर छात्रों को निदानात्मक परीक्षण देकर उनकी कमजोरियों के कारण का पता लगाया जाता है। इन कमजोरियों के उपचार हेतु सुधारात्मक अनुदेशन तथा शिक्षण की व्यवस्था की जाती है।
- छात्रों की परिलब्धियों द्वारा छात्रों की निष्पत्तियों का विशेष महत्व है। शिक्षा मापन के अन्तर्गत दो प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है—

(1) निष्पत्ति परीक्षण (Achievement Test), तथा

(2) निदानात्मक परीक्षण (Diagnostic Test)।

- शैक्षिक मापन में निष्पत्ति परीक्षणों का विशेष महत्व है, निष्पत्ति परीक्षणों का प्रयोग सभी प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं में किया जाता है। निष्पत्ति परीक्षणों के द्वारा यह मापन किया जाता है कि छात्रों ने कक्षा में पढ़ाये गये विषयों की पाठ्यवस्तु के सम्बन्ध में कितना सीखा है। इस प्रकार के परीक्षणों में सम्पूर्ण पाठ्यवस्तु पर प्रश्न पूछे जाते हैं।
- पाठ्यवस्तु उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक साधन है, साध्य नहीं, इस प्रकार निष्पत्ति परीक्षणों को अब मानदण्ड परीक्षण (Criterion Test) कहते हैं। परीक्षण उद्देश्य केन्द्रित हो गया है।
- निष्पत्ति परीक्षण से मानदण्ड परीक्षण अधिक उपयोगी होते हैं। क्योंकि मानदण्ड परीक्षण से छात्रों के मानसिक विकास के स्तर का बोध होता है। जैसे—दो छात्रों ने समान अंक प्राप्त किए, एक ने पाठ्यवस्तु को रटकर और दूसरे ने पाठ्यवस्तु को बोधगम्य करके। दोनों के समान अंक होने पर भी दूसरा छात्र पहले से उत्तम है, या अच्छा है। क्योंकि उसका मानसिक स्तर बोधगम्य तक है।

नोट

- बालक की मानसिक क्षमताओं एवं अभिप्रेरणा के गुणनफल को निष्पत्ति कहते हैं। निष्पत्ति परीक्षणों द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति की पुष्टि करते हैं, निष्पत्ति परीक्षणों की सहायता से सीखे हुए ज्ञान अथवा शैक्षिक उपलब्धियों का बोध होता है। इनकों साधारणतया दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(1) ज्ञानात्मक शैक्षिक उपलब्धि (Cognitive Outcomes of Education) तथा

(2) अज्ञानात्मक शैक्षिक उपलब्धि (Non-Cognitive Outcomes of Education)।

- **ज्ञानात्मक शैक्षिक उपलब्धि (Cognitive Outcomes of Education)**—शिक्षा में शोधकार्यों के द्वारा इन उपलब्धियों के बारे में ज्ञात किया गया है,
- निष्पत्ति परीक्षण का उपयोग साधारणत: शिक्षा, उद्योग, सार्वजनिक सेवाओं, सेना, निर्देशन तथा परामर्श आदि क्षेत्रों में किया जाता है। इन परीक्षणों का उपयोग प्रमुख रूप से अधोलिखित कार्यो में किया जाता है—(1) अनुस्थितियाँ अथवा श्रेणी प्रदान करना, (2) अगली कक्षा में पदोन्नति, (3) विभिन्न सेवाओं में चयन, (4) सेवाओं में पदोन्नति के लिए, (5) छात्रों का वर्गीकरण, (6)शिक्षा निर्देशन, (7) शिक्षण अधिगम की प्रभावशीलता, तथा (8) व्यावसायिक निर्देशन।
- निष्पत्ति परीक्षण तीन प्रकार के होते हैं। इनका विवरण यहाँ दिया गया है—1. लिखित परीक्षण (Writeen Test), 2. मौखिक परीक्षण (Oral Test), 3.प्रयोगात्मक परीक्षण (Practical Test)।
- निष्पत्ति परीक्षणों में लिखित परीक्षणों का विशेष महत्व है क्योंकि इनका प्रयोग सभी प्रकार के पाठ्यक्रमों के निष्पत्ति परीक्षणों में किया जाता है। लिखित परीक्षण तीन प्रकार का होता है—

(1) निबन्धात्मक परीक्षण (Essay Type Tests) (2)वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Objective Type Tests) (3) सूक्ष्म उत्तर परीक्षण (Short Answer Type Tests)।

- **निबन्धात्मक परीक्षाएँ—** आधुनिक प्रचलित परीक्षण प्रणाली में निबन्धात्मक परीक्षाएँ अधिक प्रयुक्त की जाती हैं।

  विशेषताएँ—अधोलिखित विशेषताएँ होती हैं— 1. निबन्धात्मक परीक्षाओं से उच्चस्तरीय बौद्धिक कुशलताओं जैसे—ज्ञान-प्रयोग, सौन्दर्यानुभूति, क्षमताओं की परीक्षा की जाती है। 2. इनसे बालकों के मौलिक चिन्तन एवं सूझ तथा सर्जनात्मक क्षमताओं की जाँच की जाती है।
- इस प्रत्यय को निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है—

(1) दो समान योग्यताओं वाले छात्रों की निष्पत्तियों में अन्तर हो सकता है। जिस छात्र को अधिक प्रेरणा दी गई है, उसके अंक या प्राप्तांक अधिक हो सकते हैं, और जिसको प्रेरणा नहीं मिली है उसके अंक कम हो सकते हैं। यह कारण निदान से ही ज्ञात किया जा सकता है।

- निदान की प्रक्रिया व्यक्तिगत अधिक होती है, इसके अधोलिखित कार्य हैं— **वर्गीकरण (Classification)—** निदान की प्रक्रिया का वर्गीकरण प्राथमिक सोपान या लक्ष्य माना जाता है। यह विभाजन अधोलिखित सामान्य गुणों पर आधारित होता है— (अ) मानसिक स्तर (Intellectual Level), (ब) व्यावसायिक स्तर (Vocational Level), तथा (स) संगीत की प्रवणता (Musical Level)।
- **विशिष्ट योग्यताओं का मापन (Assessment of Specific Abilities)—**निदान का दूसरा सोपान छात्रों की विशिष्ट योग्यताओं का मापन करना होता है, इसके अन्तर्गत अधोलिखित निम्नांकित योग्यताओं का स्तर ज्ञात किया जाता है—

(अ) समायोजन का स्तर (Level of Adjustment); (ब) असमायोजन का स्तर (Level of Abnormality); (स) उत्सुकता का स्तर (Level of Anxiety); (द) हताशा का स्तर (Level of Depression); (स) वैमनस्यता का स्तर (Level of Hostility)।

नोट

- **निदान सम्बन्धी कारण** (Etiology)—इसके अन्तर्गत छात्रों के न सीखने के कारणों का पता लगाया जाता है।
- **सुधारात्मक** (Remediation)—निदान का अन्तिम कार्य यह होता है कि छात्रों की कमजोरियों को दूर किया जाए। जब उसकी कमजोरियों का कारण ज्ञात कर लेते हैं तो उन कारणों का दूर करने की विधियों का चयन करके उनका प्रयोग करते हैं।
- निदान की प्रक्रिया में प्रमुख रूप से दो प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है—(1) दार्शनिक विधि तथा (2) निदानात्मक परीक्षण।

  दार्शनिक विधि (Philosophical Method)—निदान एक पारस्परिक प्रक्रिया अधिक है। निदानात्मक परीक्षणों के आधार पर छात्रों का शुद्ध रूप में निदान किया जा सकता है, **निदानात्मक परीक्षण** (Diagnostic Tests)—निदान की दूसरी विधि निदानात्मक परीक्षण है। साधारणतया इसी विधि का प्रयोग निदान की प्रक्रिया में किया जाता है।
- **निरीक्षण विधि** (Observational Method)—सामान्य अर्थों में यह परीक्षण नहीं है अपितु निरीक्षण विधि है, जिसमें साक्षात्कार भी किया जाता है। छात्रों से व्यक्तिगत सम्पर्क करके उनकी परिस्थितियों के बारे में जानकारी की जाती है, अनौपचारिक ढंग से भी निरीक्षण करते हैं।
- **निदानात्मक परीक्षण** (Diagnostic Test)—निदानात्मक परीक्षणों का प्रयोग अधिक किया जाता है। इसमें वस्तुनिष्ठ प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण शाब्दिक तथा अशाब्दिक होते हैं।
- **निदानात्मक परीक्षणों की रचना के सोपान** (Steps for Diagnostic Test Construction)—निदानात्मक परीक्षणों की रचना के लिए अधोलिखित सोपानों का अनुसरण किया जाता है— (1) उद्देश्यों का निर्धारण तथा पाठ्यवस्तु के प्रकरणों की रूप रेखा, (2) पाठ्यवस्तु विश्लेषण तार्किक क्रम में, (3) पाठ्यवस्तु के कठिनाई क्रम का निर्धारण, (4) परीक्षण के पदों के प्रकार का निर्धारण।
- **पढ़ने का निदानात्मक परीक्षण** (Diagnostic Tests of Reading): निदानात्मक परीक्षणों में यह माना जाता है कि पढ़ने के कौशलों का मापन में सबसे महत्वपूर्ण स्थान होता है। पढ़ने का निदानात्मक परीक्षण आयोवा साइलेन्ट रीडिंग टेस्ट (Iowa Silent Reading Test) एक विशेष प्रकार का परीक्षण है। (1) गद्य की बोधगम्यता तथा अध्ययन की गति (Rate of Reading and Comprehension of Prose), (2) पद्य की बोधगम्यता तथा सौन्दर्यानुभूति (Poetry Comprehension and Appreciation), (3) विभिन्न प्रकार की पाठ्यवस्तु की शब्दावली (Vocabulary in Different Content Areas), (4) वाक्यों का अर्थ (Mearning of Sentences) तथा (5) परिच्छेद की बोधगम्यता (Paragraph Comprehension)।
- शैक्षिक मापन में निष्पत्ति परीक्षण एवं निदानात्मक परीक्षण दोनों के महत्वपूर्ण कार्य हैं। छात्रों की कमजोरियों की दृष्टि से निदानात्मक परीक्षणों का विशेष महत्व है। निदानात्मक परीक्षण के गुण तथा दोष निम्नलिखित हैं—
  1. छात्रों की कमजोरियों की दृष्टि से निदानात्मक परीक्षण की सबसे अधिक आवश्यकता होती है।
  2. निदानात्मक परीक्षणों के आधार पर सुधारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जाती है। उपचारी शिक्षण को विकसित किया जाता है।
- निष्पत्ति परीक्षणों के द्वारा यह मापन किया जाता है कि एक विषय के सम्बन्ध में छात्र ने कितना ज्ञान अर्जित किया है। यह मापन प्राप्तांक के रूप में होता है परन्तु किसी छात्र के अधिक या कम अंक होने का कारण नहीं बताता है।
- निष्पत्ति परीक्षण में प्रश्नों को कठिनाई स्तर के क्रम में रखा जाता है अर्थात् सबसे सरल सबसे पहले और सबसे कठिन सबसे अन्त में रखा जाता है जबकि निदानात्मक में प्रश्नों को सीखने के मनोवैज्ञानिक क्रम अथवा सीखने के तार्किक (Logical Sequences) क्रम में व्यवस्थित किया जाता है।

नोट

24.12 शब्दकोश (Keywords)

- **निष्पत्ति**–उत्पत्ति।
- **निदान**–हल निकालना।
- **ज्ञानात्मक**–ज्ञानवर्धक।

24.13 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निष्पत्ति परीक्षण की उपयोगिता बताइए। एक अच्छे परीक्षण की विशेषता का उल्लेख कीजिए।
2. 'निष्पत्ति परीक्षण एवं निदानात्मक परीक्षण शैक्षिक दृष्टि से एक दूसरे के पूरक हैं।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
3. निबन्धात्मक और वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की तुलना कीजिए।
4. निदानात्मक परीक्षण का अर्थ एवं उपयोग बताइए। निदान की विधियों को भी बताइए।
5. निष्पत्ति परीक्षण और निदानात्मक परीक्षण में अन्तर बताइए।
6. निबन्धात्मक परीक्षा की विशेषताओं को बताइए।
7. वस्तुनिष्ठ परीक्षा की मुख्य विशेषताओं को बताइए।
8. निदानात्मक परीक्षा का उपयोग बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. 1. (*c*) 2. (*a*) 3. (*b*)

2. 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य।

3. 1. सही 2. सुधारात्मक 3. गलत 4. शैक्षिक 5. शैक्षिक।

24.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।
3. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counse ling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—25: एकल अध्ययन (Case Study)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
25.1 एकल अध्ययन का अर्थ, परिभाषा और उद्देश्य (Meaning, Definition and Aims of Case study)
25.2 एकल अध्ययन के प्रकार एवं विशेषताएँ (Type and Characteristics of Case study)
25.3 एकल अध्ययन के सोपान एवं उपयोग (Steps and Application of Case study)
25.4 सारांश (Summary)
25.5 शब्दकोश (Keywords)
25.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
25.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- एकल अध्ययन के अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य का विवेचन करने में;
- एकल अध्ययन के सोपान एवं उपयोग की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

यदि हमारा अध्ययन विशिष्ट सन्दर्भ क्रिया है तो हमारी जानकारी किसी आदर्श का प्रतिरूप होता है। एकल अध्ययन क्रमवार कालानुक्रमिक अध्ययन नहीं है बल्कि यह निर्भर करता है कि व्यक्ति किस प्रकार सूचनाएं प्राप्त करता है। इसे गहन अध्ययन के लिए भी प्रयुक्त करते हैं।

एकल अध्ययन किन्हीं विशिष्ट स्थितियों में उपयोग होता है। इसमें वस्तुनिष्ठ विधि अथवा व्यक्तिगत निरीक्षण की आवश्यकता होती है। वास्तव में इकाई-अध्ययन का अर्थ है—गहराई तक अध्ययन करना। इकाई-अध्ययन किसी तथ्य का विस्तृत अध्ययन है परन्तु यह वस्तुनिष्ठ सूचनाओं के स्थान पर सैद्धान्तिक सूचनायें देती है। यह उस सन्दर्भ में विस्तृत ज्ञान तो देता है परन्तु उस ज्ञान से हटकर सामान्यीकरण नहीं करता है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं व आन्तरिक व्यक्तिगत भिन्नताओं के कारण पूर्व कथन केवल ज्ञान के आधार पर नहीं कर सकते हैं।

25.1 एकल अध्ययन का अर्थ, परिभाषा और उद्देश्य (Meaning, Definition and Aims of Case study)

एकल (बेंम) का अर्थ किसी व्यक्ति विशेष से ही नहीं बल्कि 'एकल' का अर्थ एक संस्था, राष्ट्र, धर्म, एक व्यक्ति या समूह भी हो सकता है। इस प्रकार की स्थिति (एकल) को संकेत करती है एकल का अर्थ किसी भी इकाई से होता है—

नोट

- एकल एक निकट अध्ययन (Close study of a Case),
- एकल गहन अध्ययन (Deep Study)
- संचयी अध्ययन (Cummulative Study) तथा
- उपचारात्मक अध्ययन (Clinical Study)।

एकल-अध्ययन (Case Study) अधिकतर पुलिस में घटना की पूछताछ में जाँच के लिए किया जाता है। इसका उद्देश्य उन तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने में होता है जो अपराधी को दण्ड दिलाये। परन्तु निर्देशन में एकल अध्ययन पूर्णतया इससे भिन्न हैं। एकल अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उन स्थितियों की उन्नति से है, पूर्व सूचनाओं के आधार पर निदान में सहायता मिलती है और उपचार करते हैं।

एकल अध्ययन की परिभाषा (Definition of Case-Study)

एकल-अध्ययन या ऐतिहासिक विधि कोई नई बात नहीं है वरन् यह सामाजिक रीतियों की परम्पराओं के अध्ययन का वर्णन या सामान्यीकरण है। उदाहरण के लिए कहानी या 'उपन्यास' या रूपक और कहावत आदि।

एकल-अध्ययन कुछ व्यक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन के गहन अध्ययन पर आधारित है। कभी-कभी यह कुछ व्यक्तिगत अध्ययन तक भी सीमित होता है।

पी. सी. यंग के अनुसार–"किसी व्यक्ति अथवा समूह का गहन अध्ययन ही जीवन का ऐतिहासिक अध्ययन कहलाता है।"

"A fairly exhaustive study of a person or a group is called a life of case history.

–P.V. Young

इस प्रकार एकल-अध्ययन प्रकृति से अधिक प्रभाव डालने वाली होती है। इसका अध्ययन क्षेत्र तुलनात्मक रूप से ही सीमित है। परन्तु इसमें गहनता अधिक होती है। यहाँ पर अध्ययन की इकाई असीमित होती है।

पी. वी. यंग के अनुसार–"एकल-अध्ययन एक ऐसी प्रक्रिया है जो सामाजिक जीवन की इकाई का विभाजन व खोज करती है। चाहे वह व्यक्तिगत परिवार, संस्था, सांस्कृतिक समूह हो अथवा सार्वभौमिक समुदाय।"

गुड व स्केट्स के अनुसार–एकल अध्ययन की एक तुलनात्मक रूप में परिभाषा की है–

"स्थिति अवलोकन इकाई–अध्ययन प्रक्रिया की आवश्यक विधि उस प्रकार की भावनाओं से सम्बन्ध रखती है जिसमें व्यक्तिगत जीवन का अध्ययन या समुदाय या किसी समूह आदि को माना गया हो। इकाई का सम्बन्ध उन प्रदत्तों से है जो जीवन काल के ऐतिहासिक पक्ष के उस इकाई से सम्बन्धित जो पूर्ण जीवन दर्शन प्रदर्शित हो चाहे वह व्यक्तिगत इकाई हो अथवा पारिवारिक या सामाजिक समूह। व्यवहार से सम्बन्धित मिश्रित परिस्थितियाँ अथवा सामूहिक तथ्यों का परीक्षण किया जाता है, उन तथ्यों का संकलन जोकि सम्बन्धित बातों से जुड़ा है, यह जानने के लिए उन वर्तमान स्थितियों व तथ्यों को प्रकट करते हैं।"

उपरोक्त स्थिति अवलोकन की परिभाषा वास्तविक अर्थों में उपयोगी है। चुने हुए कार्यों के शीर्षक को जाने के लिए जोकि एक सम्प्रेषण का कार्य करती है उसके उपयोग की अर्थापन अध्ययन के सन्दर्भ में व्यक्ति, सामाजिक संस्था या सांस्कृतिक समुदाय के लिए करता है।

कुछ विद्वानों ने एकल-अध्ययन, एकल कार्य, एकल विधि तीनों में अन्तर का उल्लेख किया है परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि एकल अध्ययन का अर्थ किसी विशिष्ट इकाई के प्रभावशाली अध्ययन से है। इकाई कार्य विशिष्ट रूप से उन विकासात्मक, समायोजनात्मक, उपचारात्मक या सुधारात्मक क्रियाओं को इंगित करता है जो सम्भावित रूप से असमायोजित होने के कारणों या अनुकूल विकास की दिशा में किए गए अध्ययन से सम्बन्धित है।

नोट

एकल अध्ययन का योगदान (Contribution of Case Study)

एकल अध्ययन के महत्वपूर्ण योगदान को *ओसलोन* ने छ: रूपों में विभाजित किया गया है—

(1) एकल का वर्गीकरण विशिष्ट वर्गों ने सम्प्रेषण के समाधान में व्यावसायिक कार्यकत्ताओं हेतु समस्याओं की प्रवृत्ति से सम्बन्धित होता है।

(2) सम्बन्धित व्यक्तियों के ऐतिहासिक तथ्यों के कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना। उदाहरणार्थ-उन दस साल की उम्र तक के अपराधी मनोवृत्ति के बालकों के स्वभाव का अध्ययन करना जो उनके माता-पिता, अध्यापक, चिकित्सालय, संस्था आदि के द्वारा लाये गये सुधारों के अध्ययन का चिकित्सालय, संस्था आदि के द्वारा लाये गये सुधारों के अध्ययन का परिणाम होता है। एकल की पिछली जीवनी पिछली बातों के उन अध्ययनों से सम्बन्धित है जोकि स्थिति जानने के लिए उपयोगी होती है।

(3) सामाजिक संस्थागत् समूहों व परिवारों, कक्षाओं, विद्यालय या समाज के अध्ययन के द्वारा किया जाए।

(4) व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में स्थित सामग्री को संस्थाओं में उपलब्ध करा कर।

(5) सांख्यिकीय परिणामों की अर्थापन और प्रामाणिकता हो जैसा कि दो समरूप स्थितियों के ऐतिहासिक विवरणों के तथ्यों को जाना जाता है।

(6) सामान्यीकरण के सूत्रों के प्रतिपादन उन तथ्यों के परिणामों के द्वारा की जाती है जो मुद्रित विज्ञप्ति के समय से प्राप्त होते हैं। जैसा कि चिकित्सा या कुछ सामाजिक, मनोवैज्ञानिक या शैक्षिक क्षेत्रों में किया जाता है।

एकल अध्ययन के उद्देश्य (Objective of Case Study)

एकल अध्ययन के प्रमुख चार उद्देश्य हैं—

(1) उपचारात्मक उद्देश्य (बीमारी से सम्बन्धित वार्ता),

(2) निदानात्मक उद्देश्य (कमजोर विद्यार्थियों को शिक्षण से सम्बन्धित परिस्थितियों में उपचारात्मक निर्देशन देना),

(3) शैक्षिक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन करना, तथा

(4) अन्य सूचनाओं को एकत्रित करना, यह एक अनुकरणीय कार्य भी हो सकता है।

एकल अध्ययन की अवस्थाएँ (Phases of Case History)

किसी एकल अध्ययन का तीन अवस्थाओं में अध्ययन किया जा सकता है—

(1) पिछली बातों का वह अवलोकन, जो अतीत के जीवन से सम्बन्धित है और उन लिखित तथ्यों के आधार पर स्थिति को जानने में उपयोगी होते हैं।

(2) एकल के वर्तमान स्तर से सम्बन्धित दूरदर्शिता रखना जोकि स्थिति की जानकारी हेतु सहायक होती है। सुझाव व सुधार इकाई के सम्बन्ध में किए जा सकते हैं।

(3) समान अवस्थायें जो भावी प्रगति व सुधार के लिए परीक्षण के रूप में लाई जाती हैं तथा इकाई उपचार के लिए प्रस्तुत की जाती है।

नोट्स एकल का वर्गीकरण, प्रारम्भिक अध्ययन संस्थान कार्यालय में प्रेषित जाति, आयु, लिंग, समस्याओं, बुद्धि स्तर, विद्यालय, आर्थिक स्तर एवं अन्य सम्बन्धित प्रदत्तों पर आधारित है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. निम्नलिखित कथनों में से 'सत्य' तथा 'असत्य' लिखिए–

1. एकल अध्ययन में वस्तुनिष्ठ विधि अथवा व्यक्तिगत निरीक्षण की आवश्कता होती है।
2. एकल अध्ययन कुछ व्यक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन के गहन अध्ययन पर आधारित है।
3. एकल अध्ययन के महत्त्वपूर्ण योगदान को ओसलोन ने चार रूपों में विभाजित किया है।

25.2 एकल अध्ययन के प्रकार एवं विशेषताएँ (Types and Characteristics of Case Study)

एकल अध्ययन छः प्रकार से किया जाता है–

(1) सामाजिक या सामूहिक एकल अध्ययन (Community Study)
(2) कारण का तुलनात्मक अध्ययन (Causal Comparative Study),
(3) क्रियात्मक विश्लेषण (Activity Analysis),
(4) विषय वस्तु का विश्लेषण (Content Analysis),
(5) अनुगामी कार्यक्रम (Follow-up Programme), तथा
(6) अध्ययनों की प्रकृति (Trends of Studies)

(1) सामाजिक या सामूहिक इकाई-अध्ययन (Community Study)–सामाजिक अध्ययन किसी समाज या समुदाय का सावधानीपूर्वक किया गया विश्लेषणात्मक वर्णन है जो किसी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति में एक साथ रह रहे हैं। कुछ सामाजिक तत्वों का अध्ययन सामुदायिक अध्ययन में किया जाता है जैसे स्थिति, आकार, आर्थिक क्रियाओं की गतिविधियाँ, सामयिकता, जलवायु और अन्य प्राकृतिक स्रोत, ऐतिहासिक प्रजाति, सदस्यों का रहन-सहन, सामाजिक स्वरूप जीवन का उद्देश्य व मूल्य, समाज में निहित उन सामाजिक संस्थाओं का मूल्यांकन जो व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार के इकाई-अध्ययन होते हैं, जिनमें समुदाय एक स्थिति (इकाई) को प्रदर्शित करता है।

राबर्ट, हैलेन, लारलन और उसने सहयोगियों द्वारा किए गए अध्ययन से सब परिचित हैं। इससे सम्बन्धित प्रथम विज्ञप्ति (1921) में 'मध्य नगर' के नाम से, (1937) 'मध्य नगर में परिवर्तन' के नाम से प्रकाशित हुई।

(2) कारण तुलनात्मक अध्ययन (Causal Comparative Study)–दूसरे प्रकार का अध्ययन कारण प्रभाव सम्बन्ध के विश्लेषण द्वारा समस्याओं के हल खोजने का कार्य करता है। वे कौन-से कारण हैं जो व्यक्ति की घटनाओं को व्यावहारिक रूप से प्रकट करते हैं। वर्णनात्मक अनुसन्धान की विधियों के द्वारा इन कारणों के पारंस्परिक महत्व को भी प्रकट किया जा सकता है।

उदाहरण–बाल्यावस्था के अपराधों का अध्ययन तुलना में अपराधी व निरपराधी बालकों के सामाजिक व शैक्षिक पृष्ठिभूमि में अन्तर कर सकता है। कौन-कौन से तथ्य अपराधी समूह में सामान्य हैं और कौन-कौन निरपराधी समूह में यह भी अन्तर कर सकता है। एक तथ्य एक समूह के लिए सामान्य है व दूसरे के लिए नहीं। परन्तु यह तथ्य अपराध के कारणों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण तथ्य दे सकता है।

(3) क्रियात्मक विश्लेषण (Activity Analysis)–क्रिया-विश्लेषण या क्रियाओं का विश्लेषण, या वे प्रक्रियायें जो उद्योगों या विभिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाओं में व्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है। समस्त जिम्मेदारी के स्तर पर अथवा किसी भी कार्य क्षेत्र में प्रक्रियाओं का विश्लेषण उचित है। सामाजिक पद्धति में अध्यक्ष, प्रधानाचार्य, अध्यापक और प्रबन्धकर्त्ताओं के कार्यों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया गया हो, यह जानने के लिए कि वह व्यक्ति क्या करते हैं? और उन्हें क्या करने में सक्षम होना चाहिए? दि कामनवेल्थ ऑफ टीचर ट्रेनिंग स्टडी (W.W Charlers Wapeles, Chicago) ने कई हजार अध्यापक के कार्यों का विश्लेषण और प्राचीन लेखकों के उन विचारों का भी अध्ययन किया,

नोट

जो अध्यापक की अतिरिक्त क्रियाओं से सम्बन्धित थीं कि अध्ययन *कार्टर व वेपल्स* के निर्देशन में हुई उन हजारों अध्यापकों की उन क्रियाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करती है।

(4) विषय वस्तु या अभिलेख विश्लेषण (Content Analysis)—पाठ्यवस्तु विश्लेषण को कभी-कभी विश्लेषण भी कहा जाता है। यह वर्तमान प्रमाण या लेख के आंकड़ों के स्रोत हैं—विभागीय प्रमाण व वृत्तांत, छपे हुए फार्म, पाठ्य-पुस्तकें, सन्दर्भ पुस्तक, पत्र आत्म-कथा, डायरी, तस्वीरें फिल्में यह कार्टून इत्यादि। लेकिन लिखित प्रमाण स्रोतों का प्रयोग करते समय इन तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है कि छपे हुए आंकड़ों का विश्वसनीय होना आवश्यक नहीं है। लिखित-प्रमाणों का मूल्यांकन जो व्याख्यात्मक अनुसन्धान में प्रयुक्त हुए हैं। आलोचना उसी प्रकार की होनी चाहिए जोकि लेखकों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं।

यह विषय-वस्तु या लेख प्रमाण विश्लेषण का अनुसन्धान में महत्वपूर्ण योगदान है। किसी अध्ययन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण ज्ञान का योगदान अथवा सामाजिक व शैक्षिक परिस्थितियों के सुधार व मूल्यांकन के सन्दर्भ में सूचनाएं प्राप्त करने में सहायक होती हैं।

(5) अनुगामी कार्यक्रम (Follow-up Programme)—अनुगामी अध्ययन उन व्यक्तियों के विषय में अध्ययन करती है जो विद्यालय में है अथवा अपना अध्ययन पूर्ण करने के बाद विद्यालय छोड़ चुके हैं, उनके पाठ्यक्रमों की सफलता के विषय में जानने का प्रयास करती है कि उन पाठ्यक्रमों का उन पर क्या प्रभाव है? उनके स्तर इस प्रकार के अध्ययन से किसी संस्था की क्षमता का अनुमान उसके वास्तविक परिणामों के प्रचार में किया जा सकता है।

डिलन, सीगों, टरमैन और ओडन, हानमैन व वेस्ट ने इस प्रकार के अनुगामी सेवाओं का अध्ययन किया है।

(6) अध्ययनों की प्रवृत्ति (Trends of Studies)—व्याख्या विधि का यह एक रोचक प्रयोग है। संक्षिप्त में यह प्रामाणिक आँकड़ों के कालानुक्रमिक निर्धारण पर आधारित है। यह संकेत करते हुए कि अतीत में क्या हो रहा था? तथा वर्तमान परिस्थितियाँ किस ओर इंगित करती है? और इन आंकड़ों से आगे का भविष्य क्या होगा?

प्रवृत्ति अध्ययन के विकास का उदाहरण (An Economic Portrait of Indian in 1970) में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार का अध्ययन किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित महत्वपूर्ण आँकड़े तैयार करती है।

यह प्रवृत्ति कालेजों के अधिकारियों के लिए अधिक महत्वपूर्ण तथा उपयोगी है, जोकि विद्यालय में भवन व सामग्री उपलब्ध कराने अध्यापकों या वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने तथा विद्यालय में अग्रिम उच्च शिक्षा के विस्तार के लिए आवश्यक हैं। उच्च शिक्षा संस्थान में बोर्ड ने यह भविष्यवाणी की कि आने वाले समय में विश्वविद्यालय व महाविद्यालयों में युवकों की भीड़ बढ़ जायेगी।

उत्तम एकल अध्ययन विधि की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Case Study)

इकाई अध्ययन के सन्तोषजनक परिणामों के लिए सतत्, प्रदत्तों का पूर्ण होना, वैध होना व विश्वसनीय चयन और वैज्ञानिक संगठन होना अत्यन्त आवश्यक है।

(1) **निरन्तरता** (Continuity)—किन्हीं दो क्रमबद्ध किए गए मनोवैज्ञानिक सफल परीक्षणों से सम्बन्धित सूचनाओं के बीच सतत् किसी ऐच्छिक अन्तराल में ली गई हो और किसी प्रामाणिक प्राथमिक विद्यालय के स्तर का प्रमाण हाई-स्कूल के सन्दर्भ में लिया गया हो।

(2) **प्रदत्तों की पूर्णता** (Completeness of Data)—आँकड़ों के प्रभावी विस्तार उसके 'आधार' में सम्मलित हैं। लक्षणों से परीक्षण, परिणाम, (मनोभौतिकी, स्वस्थ शैक्षिक मानसिकता) और इतिहास स्वास्थ्य, विद्यालय, परिवार, पर।

(3) **प्रदत्तों की वैधता** (Validity of Data)—एक संदेहास्पद जन्म तिथि की सत्यता की जांच ब्यूरो ऑफ बाइटल स्टेटिस्टिक्स और व्यवसाय सम्बन्धी प्रमाणों द्वारा नियुक्ति करने वालों के सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

नोट

(4) आलेख की गोपनीयता (Confidential Recording)–शैक्षिक कार्यकर्त्ताओं के गोपनीय व्यावसायिक प्रमाणों के बारे में शैक्षिक कार्यकर्त्ता ओषधियों से सीख सकते हैं। अध्यापक की व्यक्तिगत कठिनाइयों और छात्र अनुशासन से सम्बन्धित असफलता, उपलब्धि या मानसिकता आदि समस्याओं को गोपनीय रूप में अंकित करना चाहिए।

(5) वैज्ञानिक विश्लेषण (Scientific Analysis)–यह उन प्रमाणों की व्याख्या है जो एकत्रित प्रमाणित आंकड़ों से सम्बन्धित है। यह आकस्मिक घटक की पहचान में निदान को स्वीकार करता है एवं उपचार को देखते हुए तथा प्रगति की प्रक्रिया को देखते हुए रोगों के लक्षणों का निदान बताता है।

यदि किसी एकल अध्ययन में यह सब गणना है तो वह सबसे उत्तम एकल अध्ययन विधि कहलाती है।

इकाई के प्रदत्तों के स्रोत (Sources of Case Data)

निम्नांकित स्रोतों को प्रयुक्त करते हैं–

(1) व्यक्तिगत लेख (Personal Documents)–डायरी, आत्मकथाएं, स्मृतियाँ, पत्र व स्वीकारोक्तियाँ आदि।

(2) जीवन वृत लेख (Life History)–यह व्यक्ति के जीवन की उन घटनाओं के विषय से सम्बन्धित है जो व्यक्ति से सम्बन्धित रहते हैं।

(3) सम्बन्धित व्यक्ति (Related Person)–माता-पिता, पड़ोसी मित्र, अध्यापक आदि।

(4) राजकीय आलेख (Official Records)–बाल पुस्तकें, विद्यालय प्रमाण, पुलिस कोर्ट संगठित, सैन्य संगठन, क्लब संस्था आदि।

(5) विषयी स्वंय (Subject Himself)–व्यक्ति स्वयं के बारे में सूचनाएँ प्रस्तुत करता है।

इन स्रोतों का अधोलिखित विवरण दिया गया है–

(1) व्यक्तिगत लेख–इसके अन्तर्गत जीवन की घटनाओं व उसकी प्रतिक्रियाओं व समुदायों के अनुभवों को जो लेखक को व्यक्तित्व के सामाजिक सम्बन्ध व जीवन के दर्शन से प्रभावित करता है।

(2) जीवन इतिहास–यह तथ्य व घटनाओं का मिश्रण है। विषयी स्वयं तथा उसमें सम्बन्धित क्रियायें हैं। ये अनुभवों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो लेखकों के जीवन को प्रेरित करती हैं और जीवन दर्शन से सम्बन्धित हैं।

(3) सम्बन्धित व्यक्ति–विषयी के जीवन में विभिन्न तथ्यों पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के विचारों द्वारा विचार किया जाता है। यहाँ 'कार्य दक्षता' पर पक्षपात तथा गलत व्याख्या की सम्भावना अधिक होती है और यहाँ यह अनुसन्धानकर्त्ता की विभेदीकरण क्षमता ही सत्य तथ्यों व पक्षपात् में अन्तर कर सकती है।

(4) व्यावसायिक आलेख–अधिकतर सामाजिक तथा विद्यालय जीवन के व्यावसायिक प्रमाण से प्राप्त किए जा सकते हैं। सेवा-पुस्तिका तैयार की जाती है।

(5) व्यक्ति स्वयं–कई बार रोगी या विषयी स्वयं ही प्रदत्तों का मुख्य स्रोत होता है। फिर भी यहाँ पर सूचनाओं की विश्वसनीयता कम होती है।

एकल अध्ययन के आधार (Rationale of Case Studies)

उदाहरण के लिए किसी समाज विरोधी व्यवहार वाले बालक के निर्देशन में, मनोवैज्ञानिक अध्यापकों का समुदाय, निर्देशन कार्यकत्ता, समाज सेवी और अन्य इच्छुक व्यक्ति उसकी समस्त सूचनायें एकत्रित करते हैं। उसके एकल के अध्ययन के लिए घटना के अनुकूल समस्या का निदान करने के बाद उसके उपचार के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। बाद में समस्या समाधान की वैधता ज्ञात की जाती है। यदि वह उपचार लक्षणों का निदान कर देती है तो समझ लिया जाता कि कि समस्या को उचित रूप में पहचान लिया गया है और इसका समाधान भी हो सकता है। यदि लक्षण इसके विरूद्ध हैं तो यह समझा जाता है कि समस्या की पहचान उचित रूप से नहीं की गई है तथा समस्या का उपचार भी ठीक से नहीं किया गया है।

नोट

सामाजिक विज्ञान में, समस्या के निदान की प्रक्रियायें तथा उनके समाधान की आपूर्ति अपेक्षाकृत कठिन है। घर का सहयोग देने में असफल होना किसी उपचार में बाधक होता है। किसी प्रकार जब उपचार प्रभावी नहीं होता है तो यह कठिन हो जाता है कि इसका दोष किसे दिया जाए? वह असफलता से सम्बन्धित है या नहीं। सुधार की गति बहुधा धीमी होती है और अत्यन्त उचित तकनीक इसकी गति को तीव्र कर देती है। जब समस्या पहचान ली जाती है तो यह उपचार करने का कारण बन जाती है तथा सुधार होना शुरू हो जाता है। सफलता का श्रेय किसी एक कारण को भी देना कठिन है। उदाहरणार्थ, पढ़ने की क्षमता का विकास करने का श्रेय बच्चे में यह श्रेय उपचार विधियों को दिया जाता है जबकि यह इस पर भी निर्भर करता है कि बालक उसे कितना ध्यान से ग्रहण करता है।

क्या आप जानते हैं एकल अध्ययन वास्तव में कई अध्ययन कर्त्ताओं के, अपने स्रोतों को एकत्र करके समस्या को पहचानने में और समाधान करने में किया गया सम्मिलित प्रयासों का परिणाम है।

25.3 एकल अध्ययन के सोपान (Steps of Case Study)

अन्य अध्ययन की विधियों की भाँति एकल अध्ययन को एक वैज्ञानिक विधि के रूप में स्वीकार किया जाता है, तथा इसमें उन्हीं मानदण्डों को प्राप्त करने के लिए सामान्यत: उन्हीं सोपानों का अनुसरण किया जाता है। इसी प्रकार यह उन समस्याओं को लेती है जो अपनी प्रकार के अलग ही हैं। निम्न सोपानों के आधार पर अध्ययन सम्पादित किया जाता है—

प्रथम सोपान	–	स्थिति का स्तर या अध्ययन का केन्द्र।
द्वितीय सोपान	–	आंकड़ों का संकलन, परीक्षण तथा इतिहास।
तृतीय सोपान	–	कारण प्रभाव के लक्षणों की पहचान।
चतुर्थ सोपान	–	सामंजस्य तथा उपचार।
पंचम् सोपान	–	अनुगामी सेवा कार्यक्रम का आयोजन।

उपरोक्त सोपानों का संक्षिप्त विवरण यहाँ इस प्रकार दिया गया है—

(1) स्थिति का स्तर या अध्ययन का केन्द्र (Status of Situation or Unit of Attention)

एक एकल के रूप में आवश्यक स्थिति को पहचानना, व्यवहार के तथ्य या जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन होता है। उदहारण के लिए—पठन-अयोग्यता, आलस्य से कार्य करने की अभ्यस्तता, संगीत में विशिष्ट योग्यता व उच्चतम मानसिक स्तर व एक परिवार का पोषणकर्त्ता जो बिना कार्य के हैं। विशिष्ट रूप से-एकल की स्थिति पर ध्यान केन्द्रित करने की इकाई बन चुकी है यद्यपि अनिर्देशन में विषयी केन्द्रित (सांत्वना) अथवा अनिर्देशिता सांत्वना में विषय केन्द्रित होने पर नई-दिशा प्रदान की है। जैसे ही अनुसन्धानकर्त्ताओं के उपकरणों में अधिक शुद्ध तकनीकी और स्पष्ट ज्ञान का समावेश हुआ है, अधिक विभेदीकरण निर्णय प्रकाश में आये हैं, तभी से इकाई का उचित विस्तार करके पहचानने में काम आये। उदाहरणत: यह प्राकृतिक या किंचित स्पष्ट कुसमायोजित और अपंग व्यक्ति एकल अध्ययन में ध्यान आकर्षित करते हैं। मन्द बुद्धि तथा उच्च मानसिकता व विद्यालय विषयों में जो इनसे सम्बन्धित अध्ययन किया जाता था।

(2) आँकड़ों का संकलन (Collection of Data)

यह एकल अध्ययन का द्वितीय सोपान है परन्तु इसमें उन तथ्यों की खोज पर बल दिया जाता है जो बाद में समस्या को ढूँढ़ने, उसे पहचानने व उसके निदान में सहायक होते हैं।

नोट

(अ) परीक्षण व इतिहास की रूपरेखा (Examination and History Outline)—आँकड़ों का प्रसार उपयुक्त होता है उन विशेष परिस्थितियों से जुड़े इकाई अध्ययन में जोकि उसकी ऐतिहासिक रूपरेखा आकर्षित करते हैं—

अधोलिखित परीक्षण किए जाते हैं।

(1) मनोभौतिक परीक्षण (2) स्वास्थ्य परीक्षण

(3) शैक्षिक परीक्षण तथा (4) मानसिक परीक्षण

उपरोक्त परीक्षणों के अतिरिक्त अन्य सूचनायें एकत्रित की जाती है—

(1) स्वास्थ्य का इतिहास,

(2) विद्यालय का ऐतिहासिक विवरण

(3) परिवार का इतिहास व घर की परिस्थितियाँ, तथा

(4) सामाजिक सम्पर्क तथा इतिहास।

(ब) व्यक्तिगत आलेख (Personal Documents)—इस प्रकार के आलेख जैसे जीवन इतिहास, स्वयं लेख, आत्म कथायें, डायरी या जीवन वृत, पत्र या स्वप्न लेख व साक्षात्कार महत्वपूर्ण हैं। *ऐन्गल* ने स्वप्न आलेखों का विश्लेषण किया है जो व्यक्तिगत आलेख योगदान। सामाजिक विज्ञान की रीति को छः भागों में विभाजित किया गया है—

(1) प्रथम अध्ययन के विशेष कारण को ध्यान में रखकर व्यक्तिगत आलेख एकत्रित किए जाते हैं। ये आंकड़ें उन प्रश्नों पर केन्द्रित होते हैं जिनका उत्तर देना होता है।

(2) दूसरे प्रकार के विशेषतया प्रकृति व सांख्यिकी आंकड़ें भाव को व्यक्तिगत आलेखों से एक साथ सम्बन्धित करते हैं और सम्मिलित रूप से यह परीक्षण की विश्वसनीयता प्राकृतिक व सांख्यिकीय आँकड़ों का व्यक्तिगत आलेखों के साथ सम्मिलित करके एक स्पष्ट स्वरूप प्रदान करती है तथा जो आलेखनीय सामग्री की विश्वसनीयता प्रगट करती है।

(3) तथ्यों का विश्लेषण चाहे पहले हो या बाद में इसके व्यक्तिगत आलेखों की शुद्धता बढ़ती है।

(4) मानव व्यवहार के पूर्व कथन के लिए कई अध्ययन एकल अध्ययन का प्रयोग करके किए गए। जैसा कि किसी भी घटना का प्रभाव पारिवारिक संगठन पर अवश्य पड़ता है।

(5) परिकल्पनायें और विधियाँ इस प्रकार से व्यवस्थित तथा रेखांकित किया जाता है कि इनसे कुछ स्थितियों की आगे की खोज से परख की जा सके।

(6) कुछ इस प्रकार की तार्किक व मनोवैज्ञानिक विधियाँ बन गयी हैं जिनसे इन्हें अधिक उद्देश्यपूर्ण बनाया जा सके। व्यक्तिगत आलेखों की अशुद्धता के प्रभाव से इन्हें पृथक किया जा सके।

(स) जीवन इतिहास (Life History)—जीवन का इतिहास व्यक्ति की आत्म-कथा से भिन्न है। यह व्यक्ति के स्वाभाविक इतिहास पर बल देता है और उसकी प्रतिक्रियायें उसे सामाजिक उद्दीपक के मूल्यों को बनाती हैं। जीवन के दर्शन का मूल्यांकन व्यक्तिगत अनुभव, मानसिक व सामाजिक प्रतिद्वन्द्व, संकट से सामंजस्य और दूसरे शब्दों में तनाव से मुक्ति तथा किसी व्यक्ति की व्याख्या का प्रयास सांस्कृतिक रूप से और इसका सैद्धान्तिक तथ्यों में ज्ञान की व्याख्या की जाती है। इस प्रकार की परिभाषाओं में जीवन इतिहास के विचार सामाजिक तथ्य प्रदर्शित करते हैं। कालानुक्रमिक-अध्ययन (Longitudinal study) के अतिरिक्त अन्तःविभागीय (Cross-sectional) का अध्ययन करते हैं। एक मानदण्ड के निश्चित विश्लेषण को **डॉलार्ड** ने महत्वपूर्ण रूप से इस प्रकार से वर्णित किया है—

(1) विषयी को सांस्कृतिक क्रम को ध्यान में रखकर अध्ययन करना चाहिए।

(2) व्यक्ति सामाजिक रूप से स्वीकृत है या नहीं यह जानना आवश्यक है।

(3) विषयी के परिवार का संस्कृति के विस्तार में क्या योगदान है? यह जानना आवश्यक होता है।

(4) किसी विशेष प्रविधि से जीव के सामाजिक व्यवहार का विस्तार कैसे होगा?

(5) एक सम्बन्धित व्यक्ति के अनुभवों का बाल्यावस्था से युवास्था तक का उसके व्यवहार का अध्ययन होना चाहिए।

(6) किसी भी सामाजिक स्थिति को ध्यानपूर्वक एक विशिष्ट तथ्य को लेकर अध्ययन करना चाहिए।

(7) जीवन-इतिहास की समस्त सामग्री को तथ्यात्मक आधार पर व्यवस्थित करना चाहिए।

(द) आत्मकथा, आत्मलेख तथा डायरियाँ (Autobiography, Biography and Diaries)—आत्मकथा जो ऐतिहासिक औपचारिक तथ्यात्मक रूप से लिखी गयी तथा जनता के निर्णय को ध्यान में रखकर लिखी जाती है तथा इस आशा से लिखी जाती है कि वह जल्दी ही प्रकाशित होगी। आत्मकथा तथा आत्मलेख अतीत संस्मरणों पर आधारित होता है जबकि डायरियाँ तात्कालिक घटनाओं का आलेख प्रकट करती है।

(3) आकस्मिक घटकों की पहचान तथा उपचार (Diagnosis and Identification of Causal factors)

उपचार के ढाँचे पर उस सिद्धान्त को बनाना या उसके ऊपर की परिकल्पना क्या है? कारण जानने के बाद निदान आगे बढ़ता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व सामाजिक स्वरूप से व शैक्षिक समस्याओं के समाधान के लिए इस समूह के अन्तर्गत मानसिक व भौतिक रूप से अपंग व्यक्ति आते हैं जो सामाजिक व भावात्मक रूप से कुसमायोजित हैं तथा अपनी अधिगम क्षमता से कम सीखते हैं। वे छुपी हुई प्रतिभायें जिन्हें उचित प्रेरणा न मिल पाने के कारण उभरने का अवसर नहीं मिलता है।

इस दृष्टि से निदान व उपचार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। उपचार व निदान की प्रक्रिया न केवल साथ-साथ चलती है बल्कि वांछित रूप से व्यवस्थित व तार्किक क्रम से समायोजन आगे बढ़ता है।

(अ) सफल निदान का मानदण्ड (Criteria of Successful Diagnosis)—सफल निदान के मानदण्ड निम्न प्रकार से हैं—

(1) लक्ष्यों से सम्बन्धित वैधानिक प्रमाण उसकी दृढ़ता तथा कमजोरी को प्रदर्शित करने वाला हो।

(2) तर्कपूर्ण उद्देश्यों तक उसी निर्णय तक पहुँचने के लिए योग्य अनुसन्धान कर्ताओं को उन्हीं निदानात्मक प्रविधियाँ प्रयोग करनी चाहिए।

(3) निदान जो दोबारा अन्य न्यादर्शों पर भी वही परिणाम दे उसे इस प्रकार से विश्वसनीय होना चाहिए।

(4) विशिष्टताओं के स्तर को संतोष प्रदान करता हो।

(5) तुलनात्मक आंकड़ों को प्रस्तुत करता हो।

(6) समुचित रूप से सही आंकड़ें देता हो जो निदान के उद्देश्यों के लिए मापन यन्त्र अधिक विभेदनशील होने चाहिए जो सप्ताह तथा महीने को एकल का संकेत करते हों न कि सत्र वर्ष का हो।

(7) किसी विषय के तथ्यों के स्मरण में आने वाले क्षेत्रों का विश्लेषण सम्पूर्ण व व्यापक रूप में करना चाहिए। बिना योग्यता को जाने इन तथ्यों का प्रयोग चिन्तन, समस्या के समाधान में करना चाहिए।

(ब) निदान की प्रविधियाँ (Techniques of Diagnosis)—अधिकतर आँकड़े एकत्र करने वाले यन्त्र और प्रविधियाँ ताकि एकल अध्ययन के अन्तर्गत परिणामात्मक व्याख्या हुई है निदान में सहायता करते है। वे तकनीकियाँ जिनका प्रयोग निदान करना होता है, इस प्रकार है—

(4) समायोजन तथा उपचार (Adjustment and Remediation)

कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध के साथ विवरणात्मक अध्ययन प्रयोगात्मक तथा ऐतिहासिक अनुसन्धान का एक संक्षिप्त कथन बनाना चाहिए जो कारण-प्रभाव के अध्ययन के पहचान व निदान के अनुसार कारण एवं प्रभाव तथ्यों के सम्बन्धों के अर्थापन के साथ दूसरे अध्ययन जैसे कि विवरणात्मक अध्ययन, प्रयोगात्मक ऐतिहासिक-अध्ययन आदि से सम्बन्धित हैं इनसे संबंधित एक संक्षिप्त कथन बनाना चाहिए। जिसमें कारण एवं प्रभाव तथ्यों की पहचान को ध्यान में रखा जाये। मुख्य तथ्य जो अधिगम की कठिनाइयों से सम्बन्धित हैं तथा शारीरिक, बौद्धिक, शिक्षक के रूप में, संवेगात्मक

नोट

सामाजिक तथा वातावरण गत हैं। उदाहरणार्थ–'पढ़ने की कठिनाई की समस्या' को लेकर उसकी क्षीण प्रगति के कारणों का पता लगाने से पहले यह आवश्यक है कि अधिकतर तथ्यों का अध्ययन किया जाए। जैसे कि प्रत्यक्षीकरण, बौद्धिक, बहुभाषा सम्बन्धी, भावात्मक कारण, प्राथमिक माध्यमिक तथा योगदानात्मक हो सकता है।

रोजर ने इस विधि में आठ आन्तरिक तथा बाह्य शक्तियों व तत्वों को चाहे बालक के भीतर हों या बाहर के वंशानुगत व्यवहार से विश्लेषण किया जाता है। इनका निर्धारण व्यवहार के विश्लेषण भौतिक तथ्य मानसिकता, पारिवारिक वातावरण, अर्थ सम्बन्धी, सांस्कृतिक शक्तियाँ सामाजिक तथ्य, शिक्षा व घर-बाहर की प्रक्रिया तथा बालक के आन्तरिक सूझ-बूझ उसके वर्तमान परिस्थितियों में, द्वारा होता है।

रोजर की उपचार की विधियों का विश्लेषण अनिर्देशित या छात्र केन्द्रित अवधारणा के पदों में कुछ धारणायें निहित हैं जोकि बढ़ते हुए नए अनुभवों पर आधारित हैं। परिवर्तन या गतिशीलता विषयी के मौखिक विचारों द्वारा प्रकट की जाती हैं। उदाहरण के लिए, उसकी समस्या तथा लक्षणों के बारे में बातचीत उसके आन्तरिक विचार तथा व्यवहार यह प्रकट करते हैं कि व्यक्ति की बुद्धि में उसके वर्तमान तथा पूर्व व्यवहार में क्या परिवर्तन हुआ परिस्थितियों को समझने में नयी क्रियाओं की व्याख्या द्वारा यह जाना जा सकता है।

कलांइट के प्रत्यक्षीकरण व मनोवृत्ति में परिवर्तन–

(अ) स्वयं पूर्ण व्यक्ति में देखना कि वह अधिक क्षमता के माध्यम से पहले अच्छी तरह से जीवन का सम्मान कर सकता है।

(ब) अधिक प्रयोगात्मक आँकड़ों को इस प्रकार प्राप्त करना कि वह स्वयं के वातावरण में अपने का मूल्यांकन कर सकें।

(स) स्तर व मानदण्डों का आधार बनाने में स्वयं का आधार बना सके।

(5) अनुगामी कार्यक्रम अथवा सेवा (Follow-up Programme or Services)

एकल अध्ययन के कार्य चक्र पूर्ण करने के लिए यह आवश्यक है कि उपचार के निदान की वैधता की परख करना आवश्यक है। उपचार के पश्चात् शल्य-चिकित्सा के बाद चिकित्सक बीमारी में हो रहे स्वास्थ्य लाभ को देखता है। सुधारात्मक प्रगति के असफल होने में नये, निदान व उपचार की आवश्यकता होती है।

परिवर्तन सम्बन्धी अवलोकन को जानने के लिए सावधानीपूर्वक किया गया विश्लेषण ही आवश्यक है। एक बीमार अपने शारीरिक गठन से अधिक ठीक होता है। इसके अतिरिक्त दी गयी दवाइयों के परिणामों से भी ठीक होता है।

विद्यालय में अध्ययन समाप्त करने वाले सामान्य बालकों और विशेष रूप से उनका जो विद्यालय छोड़ चुके हैं, विद्यालय के शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रभाव का मूल्यांकन व नागरिकता के सन्दर्भ में व्यावसायिक समायोजन तथा कुछ इस प्रकार की खोजों मे सर्वेक्षण तकनीक का प्रयोग एकल अध्ययन के स्थान पर हुआ है।

वृहद स्तर पर किए गए शोध कार्यो के एक क्रम प्रतिभाशाली बालकों के संदर्भ में एकल अध्ययन को एक यन्त्र के रूप में प्रयोग किया गया है। कई वर्षों में विद्यालयों के माध्यम से परिकल्पना निम्न विषयों पर की गयी है फिर भी विद्यालय के बाद के जीवन का अनुसरण करके विकलांग व्यक्तियों, कुसमायोजित तथा विशेष प्रतिभाशाली बालकों, क्षमता से कम सीखने वालों के समुचित समायोजन, निर्देशन तथा उपचार कार्यक्रमों के सम्बन्ध में अभी काफी कुछ करना शेष है।

व्यक्ति की एकल अध्ययन की प्रक्रिया (The Case Study of an Individual)

एक से अधिक सूचनाओं के आधार पर एक व्यक्ति का एकल अध्ययन किया जा सकता है। ये व्यक्ति के जीवन चक्र की वह महत्वपूर्ण घटनायें होती हैं जिनका विश्लेषण तथा अध्ययन, उस व्यक्ति से सम्बन्धित तथ्यों के विस्तार के अवलोकन से किया जा सकता है। एक व्यक्ति की एकल का अध्ययन निम्न स्रोतों के आधार पर किया जा सकता है–

नोट

(1) परिवार का इतिहास तैयार करके,
(2) संचयी आलेख, व्यक्ति के व्यक्तिगत साक्षात्कार से,
(3) व्यक्तिगत आदतों के अध्ययन से,
(4) उसके साथियों व मित्रों के साक्षात्कार द्वारा,
(5) व्यक्ति के विद्यालय आलेख द्वारा
   (अ) कक्षा में उपस्थिति से,
   (ब) उपलब्धियों के आधार पर,
   (स) महत्वाकांक्षा स्तर का स्वरूप तथा
   (द) उसके प्रति अध्यापक का दृष्टिकोण
(6) व्यक्तिगत योगदान, खेल के मैदान व अन्य स्थानों पर कार्य कौशल,
(7) कक्षा व सामाजिक समूहों में व्यक्तिगत तथा भावनात्मक समायोजन द्वारा
(8) इसके आधार पर एकल का जीवन-वृत (Profile) बन जाता है। यह विवरण अध्ययनकर्ता को निदान, उपचार तथा सुझाव देने में सहायता करता है।
(9) इकाई का इतिहास भी तैयार किया जा सकता है।

समूह एकल अध्ययन की प्रक्रिया (Case Study of A Group)

समस्त समूह को समस्या के सन्दर्भ में विशेष ध्यान दिया जाता है। समस्याओं के सापेक्ष में समूहों की सम्भावनाओं की निष्पत्ति में ये सावधानियाँ ली जाती हैं। समूह की गति के विश्लेषण के लिए अधिकतर सामाजिक मापनी का प्रयोग किया जाता है।

निम्नलिखित पाँच मुख्य पदों का प्रयोग एकल अध्ययन के लिए किया जाता है—

(1) स्थिति का स्तर ज्ञात करना,
(2) आँकड़ों का संकलन करना,
(3) कारण-प्रभाव तथ्यों का निदान तथा पहचान करना,
(4) अगला समायोजन उपचार तथा सान्त्वना देना, तथा
(5) समायोजन के कार्यक्रमों का अनुसरण या कार्यक्रम की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

एकल अध्ययन की सीमायें (Limitations of Case Study)

एक इकाई अध्ययन सामान्यत: अधोलिखित सीमाओं से प्रभावित होता है—

(1) वस्तुनिष्ठता से अध्ययन करना कठिन है।
(2) अवधारणाओं का सूत्रपात करना कठिन हो जाता है।
(3) आँकड़े तथा सूचनायें क्रमबद्ध रूप से प्राप्त नहीं हो पाती हैं।
(4) सांख्यिकीय निष्कर्ष सही नहीं निकाले जा सकते हैं।
(5) अभिभावक तथा सम्बन्धीगण एकल या व्यक्ति से सम्बन्धित कमजोरियाँ बताना पसन्द नहीं करते हैं।
(6) इसमें समय तथा धन का अपव्यय अधिक होता है।
(7) यह किसी भी क्षेत्र में सम्बन्धित ज्ञान को कोई भी नया योगदान नहीं देती है इससे सुधार ही किया जा सकता है।

एकल अध्ययन के उपयोग (Application of Case Study)

एकल अध्ययन विधि व्यापक रूप से अधोलिखित क्षेत्रों में प्रयोग किया जाता है—कानून में बाल-अपराधी के लिए,

नोट

दवा के लिए, मनोविज्ञान, शिक्षा, परामर्श तथा निर्देशन में, सामाजिक विज्ञान में, सामाजिक कार्यो में, अर्थशास्त्र में, व्यापारिक प्रशासन में, राजनीति शास्त्र एवं सम्पादकीय में।

आरम्भ में यह केवल असमायोजन की समस्याओं तक ही सीमित थी। जैसे-विद्यालय में सफल या असफल होना, टूटा हुआ गरीब परिवार पिछड़े हुए या विकृत समुदाय आदि। परन्तु अब इसकी पहुँच का विस्तार बहुत सामान्य तथा प्रतिभाशाली बालकों की खोज, सफल संस्थाएं व सुसंगठित समुदाय की खोज तक बढ़ गया है।

बालकों की उपयोगिता की दृष्टि से अध्ययन इकाई को व्यवस्थित किया जा सकता है—उपचारात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में साधारण रूप से परामर्श-निर्देशन मनोविज्ञान के द्वारा विशिष्ट रूप से व्यक्ति के अध्ययन। उपचारात्मक मनोवैज्ञानिक कई प्रकार की सेवाओं का विभिन्न स्थितियों से करते हैं जो मनुष्य की व्यापक समस्याओं से जुड़ी हुई है। मनोवैज्ञानिक सर्वप्रथम यह समझने का प्रयत्न ज्ञान की धारणाओं तथा व्यावसायिक तकनीकी क्षेत्र पर आधारित होता है। वे इस ज्ञान को तब प्रयोग में लाते हैं जब व्यक्तियों की सहायता करके वे अपनी भी सहायता करने में समर्थ होते हैं।

कई घटनाओं में इकाई-अध्ययन दूसरे अनुसन्धान विषयों से सम्बन्धित रहता है। किसी व्यक्ति या संस्था का जीवन-इतिहास या समुदाय का जीवन इतिहास ऐतिहासिक अनुसन्धान, स्रोतों एवं प्रविधियों से मेल खाता है। एकल अनुसन्धान में अनेकों यन्त्रों का प्रयोग आँकड़ों के संकलन में करता है जो विवरणात्मक 'अध्ययन' में प्रयोग किए जाते हैं। एक व्यक्ति का अध्ययन सामान्य रूप से विकास की गति अतीत के अध्ययन पर आधारित होती है जबकि प्रयोगात्मक अनुसन्धान में प्रगति की दिशा आगे की ओर होती है।

एक अध्ययन में विषयी का निकट से अध्ययन किया जाता है। इस में अतीत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों अवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। इसे विकासात्मक अध्ययन भी कहते हैं।

टास्क एकल अध्ययन तकनीक में अनुगामी कार्यक्रम से आप क्या समझते हैं।?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. एकल प्रविधि का उपयोग छात्र के ········· निर्देशन हेतु किया जाता है।
2. एकल अध्ययन व्यक्ति के ········· से जानकारी की जाती है।
3. एकल प्रविधि का सम्बन्ध विषयी के अतीत, वर्तमान तथा ········· से होता है।
4. एकल प्रविधि का उपयोग व्यक्ति की ········· सूचनाओं के लिए किया जाता है।
5. एकल प्रविधि को प्रभावशीलता का आकलन ········· प्रविधि से किया जाता है।

25.4 सारांश (Summary)

- एकल (Case) का अर्थ किसी व्यक्ति विशेष से ही नहीं बल्कि 'एकल' का अर्थ एक संस्था, राष्ट्र, धर्म, एक व्यक्ति या समूह भी हो सकता है। इस प्रकार की स्थिति (एकल) को संकेत करती है एकल का अर्थ किसी भी इकाई से होता है।
- एकल-अध्ययन (Case Study) अधिकतर पुलिस में घटना की पूछताछ में जाँच के लिए किया जाता है। इसका उद्देश्य उन तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने में होता है जो उपराधी को दण्ड दिलाये। परन्तु निर्देशन में एकल अध्ययन पूर्णतया इससे भिन्न हैं। एकल अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उन स्थितियों की उन्नति से है, जो पूर्व सूचनाओं के आधार पर निदान में सहायता दिलाती है।
- एकल-अध्ययन या ऐतिहासिक विधि कोई नई बात नहीं हैं वरन् यह सामाजिक रीतियों की परम्पराओं के

नोट

अध्ययन का वर्णन या सामान्यीकरण है।

- एकल-अध्ययन कुछ व्यक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन के गहन अध्ययन पर आधारित है।
- "एकल-अध्ययन एक ऐसी प्रक्रिया है जो सामाजिक जीवन की इकाई का विभाजन व खोज करती है। चाहे वह व्यक्तिगत परिवार, संस्था, सांस्कृतिक समूह हो अथवा सार्वभौमिक समुदाय।"
- कुछ विद्वानों ने एकल-अध्ययन, एकल कार्य, एकल विधि तीनों में अन्तर का उल्लेख किया है परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि एकल अध्ययन का अर्थ किसी विशिष्ट इकाई के प्रभावशाली अध्ययन से है।
- सामाजिक अध्ययन किसी समाज या समुदाय का सावधानीपूर्वक किया गया विश्लेषणात्मक वर्णन है जो किसी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति में एक साथ रह रहे हैं। कुछ सामाजिक तत्वों का अध्ययन सामुदायिक अध्ययन में किया जाता है जैसे स्थिति, आकार, आर्थिक क्रियाओं की गतिविधियाँ, सामयिकता, जलवायु और अन्य प्राकृतिक स्रोत, ऐतिहासिक प्रजाति, सदस्यों का रहन-सहन, सामाजिक स्वरूप जीवन का उद्देश्य व मूल्य, समाज में निहित उन सामाजिक संस्थाओं का मूल्यांकन जो व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।
- क्रिया-विश्लेषण या क्रियाओं का विश्लेषण, या वे प्रक्रियायें जो उद्योगों या विभिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाओं में व्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है। समस्त जिम्मेदारी के स्तर पर अथवा किसी भी कार्य क्षेत्र में प्रक्रियाओं का विश्लेषण उचित है।
- पाठ्यवस्तु विश्लेषण को कभी-कभी विश्लेषण भी कहा जाता है। यह वर्तमान प्रमाण या लेख के आंकड़ों के स्रोत हैं-विभागीय प्रमाण व वृत्तांत, छपे हुए फार्म, पाठ्य-पुस्तकें, सन्दर्भ पुस्तक, पत्र आत्म-कथा, डायरी, तस्वीरें, फिल्में तथा कार्टून इत्यादि। लेकिन लिखित प्रमाण स्रोतों का प्रयोग करते समय इन तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है कि छपे हुए आंकड़ों का विश्वसनीय होना आवश्यक नहीं है।
- अनुगामी अध्ययन उन व्यक्तियों के विषय में अध्ययन करती है जो विद्यालय में है अथवा अपना अध्ययन पूर्ण करने के बाद विद्यालय छोड़ चुके हैं।
- सामाजिक विज्ञान में, समस्या के निदान की प्रक्रियायें तथा उनके समाधान की आपूर्ति अपेक्षाकृत कठिन है। घर का सहयोग देने में असफल होना किसी उपचार में बाधक होता है। किसी प्रकार जब उपचार प्रभावी नहीं होता है तो यह कठिन हो जाता है कि इसका दोष किसे दिया जाए? वह असफलता से सम्बन्धित है या नहीं। सुधार की गति बहुधा धीमी होती है और अत्यन्त उचित तकनीक इसकी गति को तीव्र कर देती है। जब समस्या पहचान ली जाती है तो यह उपचार करने का कारण बन जाती है तथा सुधार होना शुरू हो जाता है।
- अन्य अध्ययन की विधियों की भाँति एकल अध्ययन को एक वैज्ञानिक विधि के रूप में स्वीकार किया जाता है, तथा इसमें उन्हीं मानदण्डों को प्राप्त करने के लिए सामान्यत: उन्हीं सोपानों का अनुसरण किया जाता है। इसी प्रकार यह उन समस्याओं को लेती है जो अपनी प्रकार के अलग ही हैं।
- एक एकल के रूप में आवश्यक स्थिति को पहचानना, व्यवहार के तथ्य या जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन होता है। उदाहरण के लिए—पठन-अयोग्यता, आलस्य से कार्य करने की अभ्यस्तता, संगीत में विशिष्ट योग्यता व उच्चतम मानसिक स्तर व एक परिवार का पोषणकर्त्ता जो बिना कार्य के हैं।
- यह एकल अध्ययन का द्वितीय सोपान है परन्तु इसमें उन तथ्यों की खोज पर बल दिया जाता है जो बंद में समस्या को ढूँढने, उसे पहचानने व उसके निदान में सहायक होते हैं।
- कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध के साथ विवरणात्मक अध्ययन प्रयोगात्मक तथा ऐतिहासिक अनुसन्धान का एक संक्षिप्त कथन बनाना चाहिए जो कारण-प्रभाव के अध्ययन की पहचान व निदान के अनुसार कारण एवं प्रभाव तथ्यों के सम्बन्धों के अर्थापन के साथ दूसरे अध्ययन जैसे कि विवरणात्मक अध्ययन, प्रयोगात्मक ऐतिहासिक-अध्ययन आदि से सम्बन्धित एक संक्षिप्त कथन बनाना चाहिए। जिसमें कारण एवं प्रभाव तथ्यों की पहचान को ध्यान में रखा जाये। मुख्य तथ्य जो अधिगम की कठिनाइयों से सम्बन्धित हैं तथा शारीरिक, बौद्धिक, शिक्षक के रूप में, संवेगात्मक सामाजिक तथा वातावरण गत हैं।

नोट

- एकल अध्ययन के कार्य चक्र पूर्ण करने के लिए यह आवश्यक है कि उपचार के निदान की वैधता की परख करना आवश्यक है। उपचार के पश्चात् शल्य-चिकित्सा के बाद चिकित्सक बीमारी में हो रहे स्वास्थ्य लाभ को देखता है। सुधारात्मक प्रगति के असफल होने में नये, निदान व उपचार की आवश्यकता होती है।
- परिवर्तन सम्बन्धी अवलोकन को जानने के लिए सावधानीपूर्वक किया गया विश्लेषण ही आवश्यक है। एक बीमार अपने शारीरिक गठन से अधिक ठीक होता है। इसके अतिरिक्त दी गयी दवाइयों के परिणामों से भी ठीक होता है।
- वृहद स्तर पर किए गए शोध कार्यों के एक क्रम प्रतिभाशाली बालकों के संदर्भ में एकल अध्ययन को एक यन्त्र के रूप में प्रयोग किया गया है। कई वर्षो में विद्यालयों के माध्यम से परिकल्पना निम्न विषयों पर की गयी है फिर भी विद्यालय के बाद के जीवन का अनुसरण करके विकलांग व्यक्तियों, कुसमायोजित तथा विशेष प्रतिभाशाली बालकों, क्षमता से कम सीखने वालों के समुचित समायोजन, निर्देशन तथा उपचार कार्यक्रमों के सम्बन्ध में अभी काफी कुछ करना शेष है।
- समस्त समूह को समस्या के सन्दर्भ में विशेष ध्यान दिया जाता है। समस्याओं के सापेक्ष में समूहों की सम्भावनाओं की निष्पत्ति में ये सावधानियाँ ली जाती हैं। समूह की गति के विश्लेषण के लिए अधिकतर सामाजिक मापनी का प्रयोग किया जाता है।
- एकल अध्ययन विधि व्यापक रूप से अधोलिखित क्षेत्रों में प्रयोग किया जाता है—कानून में बाल-अपराधी के लिए, दवा के लिए, मनोविज्ञान, शिक्षा, परामर्श तथा निर्देशन में, सामाजिक विज्ञान में, सामाजिक कार्यो में, अर्थशास्त्र में, व्यापारिक प्रशासन में, राजनीति शास्त्र एवं सम्पादकीय में।
- बालकों की उपयोगिता की दृष्टि से इकाई की पहुँच को व्यवस्थित किया जा सकता है—उपचारात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में साधारण रूप से परामर्श-निर्देशन मनोविज्ञान के द्वारा विशिष्ट रूप से व्यक्ति के अध्ययन। उपचारात्मक मनोवैज्ञानिक कई प्रकार की सेवाओं का विभिन्न स्थितियों से करते हैं जो मनुष्य की व्यापक समस्याओं से जुड़ी हुई है।
- कई घटनाओं में इकाई-अध्ययन दूसरे अनुसन्धान विषयों से सम्बन्धित रहता है। किसी व्यक्ति या संस्था का जीवन-इतिहास या समुदाय का जीवन इतिहास ऐतिहासिक अनुसन्धान, स्रोतों एवं प्रविधियों से मेल खाता है। एकल अनुसन्धान में अनेकों यन्त्रों का प्रयोग आँकड़ों के संकलन में करता है जो विवरणात्मक 'अध्ययन' में प्रयोग किए जाते हैं।

25.5 शब्दकोश (Keywords)

- **अभिलेख**—महत्त्वपूर्ण लेख दस्तावेज।
- **तुलनात्मक**—तुलना करने योग्य।
- **प्रदत्त**—दिया गया।

25.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'एकल अध्ययन' की परिभाषा लिखिए एवं निर्देशन में इस तकनीक के योगदान का विवेचन कीजिए।
2. एकल अध्ययन के सोपानों तथा विभिन्न स्तरों का वर्णन कीजिए।
3. एकल अध्ययन के उद्देश्य तथा विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. 1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

2. 1. व्यावसायिक 2. निकट 3. भविष्य 4. व्यापक/गहन
5. अनुगामी।

25.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*— डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षा मनोविज्ञान*— डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*— डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–26: अनुस्थिति मापनी (Rating Scale)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
26.1 अनुस्थिति मापनी का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Rating Scale)
26.2 अनुस्थिति मापनी के प्रकार (Types of Rating Scale)
26.3 सारांश (Summary)
26.4 शब्दकोश (Keywords)
26.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
26.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अनुस्थिति मापनी के अर्थ, प्रकार और परिभाषा की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अनुस्थिति मापनी द्वारा अनुमति तथा स्थिति मापन के लिये प्रयुक्त की जाती है। अनुमति तथा निर्णय किसी परिस्थिति, संस्था, वस्तु तथा व्यक्ति के सम्बन्ध में ज्ञात किया जाता है। अनुमति की अभिव्यक्ति मापनी पर की जाती है। यह मापनी द्वि-ध्रुवी (Bi-polar) होती है। जिसमें गुणात्मक रूप ज्ञात किया जाता है, परन्तु छात्रों को अंक या अनुस्थिति देने के लिए उनकी क्षमताओं के मापन हेतु अनुस्थिति मापनी का उपयोग करता है। छात्रों की उपलब्धियों के लिए विभिन्न पक्षों की रेटिंग की जाती है और अनुस्थिति को महत्व देकर अंकों में बदल दिया जाता है। अनुस्थिति मापनी का उपयोग साधारण विशेषताओं तथा गुणों के मापन के लिए किया जाता है। अनुस्थिति मापनी द्वारा गुणात्मक रूप में विभिन्न पक्षों का मापन किया जाता है।

26.1 अनुस्थिति मापनी का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Rating Scale)

शिक्षा शास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने अनुस्थिति मापनी की परिभाषा अनेक प्रकार से की है उनमें से प्रमुख तथा महत्वपूर्ण परिभाषाएँ अधोलिखित हैं–

रथ तथा स्ट्रेज के अनुसार–"अनुस्थिति निरीक्षण का सार होता है।"

"Rating is an essance of direct observation." – *Ruth and Strang*

"अनुस्थिति के आधार पर किसी गुण विशेष की गहराई को निर्धारित करती है।

"A rating scale ascertain the degree, intensity or frequency of a variable or trait."

नोट

रेटिंग के आधार पर व्यक्ति भाव एवं विचारों तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति, वस्तु या संस्था के प्रति करता है। रेटिंग मापनी पर विचारों को व्यक्त किया जाता है।

अनुस्थिति मापनी की प्रमुख विशेषताएँ होती हैं—

1. जिस गुण विशेष का मापन करना होता है उसका वर्णन व्यावहारिक रूप में किया जाता है।
2. अनुस्थिति मापनी की सहायता से व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।

अनुस्थिति मापनी की विशेषताएँ (Characteristics of Rating Scale)

अनुस्थिति मापनी के अधोलिखित गुण होते हैं—

1. विद्यालयों में अभिभावकों के लिए आलेख तैयार करने में सहायक होती है।
2. विद्यालयों में छात्रों के प्रवेश में सहायक होती है।
3. छात्रों की आवश्यकताओं एवं कठिनाइयों को ज्ञात करने में सहायक होती है।
4. शोध कार्य में किस अन्य स्रोत से प्रदत्तों की वैधता ज्ञात करने में सहायक होता है।
5. कर्मचारी के लिए संस्तुति देने में सहायक होता है।
6. जिन व्यक्तियों का रेटिंग किया जाता है उन्हें प्रेरित करने में भी सहायक होता है।

नोट्स अनुस्थिति मापनी एक विधि तथा प्रविधि भी है। जिसके द्वारा विचारों तथा अभिव्यक्तियों का क्रमबद्ध रूप में मापन किया जाता है। साधारणत: इस मापनी का उपयोग शिक्षक अभिभावक तथा प्रशासकों द्वारा किया जाता है। यह द्वि-ध्रुवी (Bi-polar) मापनी होती है।

अनुस्थिति मापनी की सीमाएँ (Limitations of Rating Scale)

अनुस्थिति मापनी की अधोलिखित सीमाएँ होती हैं—

1. एक ही वस्तु या व्यक्ति के गुण विशेष के रेटिंग में मापन-कर्ताओं की अनुस्थितियों में अधिक विषमता होती है। यह व्यक्तिनिष्ठ मापनी है।
2. रेटिंग की विश्वसनीयता में अधिक अन्तर पाया जाता है क्योंकि मापनकर्ता स्वभाव से नरम तथा कुछ कठोर होते हैं।
3. व्यक्तिनिष्ठ रूप ने व्यक्ति विशेष के गुणों का मापन किया जाता है। मापन-कर्ता उस व्यक्ति विशेष के सम्बन्धों से प्रभावित रहता है। इसी प्रकार विद्यालयों में शिक्षक भी छात्रों के व्यवहार तथा सम्बन्धों से प्रभावित रहता है। छात्रों का सही मापन नहीं हो पाता है। अध्यापक शिक्षा में छात्राध्यापकों की रेटिंग इन पक्षों से प्रभावित होती है।
4. अधिकांश मापन-कर्ता अनुस्थिति बिन्दुओं में भेद नहीं कर पाते हैं। उत्तम तथा अत्युउत्तम, हीन तथा अतिहीन में भेद करना कठिन होता है। इसलिए अनुस्थिति मापनी में अधिक बिन्दु होने पर इसकी जटिलता बढ़ जाती है और सही निर्णय नहीं होता है।
5. मापन-कर्ता के तात्कालिक प्रतिक्रियाओं और परिस्थितियों का प्रभाव रहता है।
6. जब अनुस्थिति मापनी का व्यक्ति स्वयं अपने लिए उपयोग करता है, तब उपेक्षित से अधिक अनुस्थितियों को अंकित करता है। हीन पक्ष पर चिह्न नहीं लगाते हैं।
7. प्रत्येक व्यक्ति अपने लिंग को विरोधी लिंग की अपेक्षा ऊँचा समझता है, उसी के अनुरूप अनुस्थिति मापनी का प्रयोग किया जाता है।

नोट

8. जिन व्यक्तियों से अधिक सम्पर्क रहता है, उनके सम्बन्ध में सही सूचना दी जा सकती है परन्तु जिनसे कभी-कभी भेंट होती है उनके सम्बन्ध में सही सूचना नहीं दी जा सकती है। अधिक निकट सम्बन्धियों का रेटिंग भी ऊँचा किया जाता है।
9. सामान्य गुणों तथा मूल्यों का मापन विश्वसनीय रूप में किया जा सकता है परन्तु विशिष्ट गुणों एवं मूल्यों का मापन कठिन होता है क्योंकि मापन-कर्ता अनुमान से अनुस्थिति बिन्दु को अंकित करता है।

अनुस्थिति प्रविधि की रचना में कठिनाई होती है। एक उत्तम रेटिंग की रचना शोधकर्ता के लिए चुनौती होती है तथा मूल्यांकन भी उतना ही जटिल होता है जिस गुण विशेष का मापन किया जाए उसके पक्षों का क्रमबद्ध में व्यावहारिक कथनों में लिखा जाए। कथनों की व्यवस्था तार्किक ढंग से करनी चाहिए।

क्या आप जानते हैं अनुस्थिति मापनी में मापन-कर्ता अनुस्थिति बिन्दु को अंकित करने का औचित्य नहीं दे पाता है तथा उनका उत्तर तार्किक नहीं होता है।

अनुस्थिति मापनी प्रक्रिया के सम्बन्ध में ट्रैवर्स के सुझाव (Suggestions for Rating Process According to Traverse)

ट्रैवर्स ने अनुस्थिति मापनी प्रक्रिया के लिए अधोलिखित नियमों का उल्लेख किया है–

1. अनुस्थिति मापनी की परिभाषा शुद्ध रूप में करनी चाहिए।
2. मापनी के प्रत्येक कथन का विस्तार सीमित होना चाहिए जिससे उसकी परिभाषा भी की जा सके।
3. कथनों के क्रम को बदलते रहना चाहिए कभी आरम्भ में कभी अन्त में रखना चाहिए।
4. अनुस्थिति बिन्दुओं का नाम भी विशिष्ट होना चाहिए जैसे औसत, मध्य आदि का उपयोग कम-से-कम करना चाहिए।
5. निर्देशों में यह स्पष्ट लिखना चाहिए कि अनुस्थितियाँ बिन्दुओं पर सच्चाई एवं ईमानदारी से अंकित करना चाहिए।
6. शोधकर्ता को यह निश्चित कर लेना चाहिए कि मापन कर्ता की स्पष्टता से प्रभावित नहीं है। इस पथ के लिए अधिक सावधानी रखनी चाहिए।

अनुस्थिति मापनी को नियन्त्रित करने वाले अधिनियम (Principles Governing Rating Scales)

अनुस्थिति मापनी अधोलिखित अधिनियमों से नियन्त्रित रहती है–

1. विशिष्ट गुण या व्यवहार की समुचित रूप में परिभाषा की जानी चाहिए।
2. मापनी तथा उसे बिन्दुओं की स्पष्ट रूप से अर्थापन करना चाहिए।
3. जिस गुण विशेष का मापन किया जायेगा उसका निरीक्षण करना सम्भव हो।
4. एक समान स्तर का उपयोग निरीक्षण में होना चाहिए।
5. मापन-कर्ता को जिन व्यक्तियों के गुणों का मापन करना हो, उनका निरीक्षण विभिन्न परिस्थितियों में करना चाहिए।
6. एक मापनी से सीमित गुणों का मापन करना चाहिए।
7. मापनी पर अपने उत्तर को अंकित करने के लिए निश्चित स्थान होना चाहिए।
8. अनुस्थिति मापनी को प्रयोग करने सम्बन्धी स्पष्ट निर्देशन भी देने चाहिए।
9. मापनी के मूल्यांकन के लिए अधिक निर्णायकों को सम्मिलित करना चाहिए जिससे उसे अधिक विश्वसनीय बनाया जा सके।

नोट

10. मापनी के लिए ऐसे व्यक्तियों का चयन करना चाहिए जो मापनी व्यक्तियों तथा गुणों से भली-भाँति परिचित हो।

अनुस्थिति मापनी की त्रुटियाँ (Errors in Rating Scale)

इस मापनी में साधारणत: अधोलिखित त्रुटियाँ रहती हैं–

(अ) **उदारता की त्रुटि** (Generosity Error)—कभी-कभी मापन-कर्ता उदारता में अपने व्यक्तियों का मापन निम्न स्तर में करते हैं और अन्य व्यक्ति का उच्च स्तर में करते हैं।

(ब) **पक्षपात की त्रुटि** (Stringency Error)—उपरोक्त त्रुटि के विपरीत अपने व्यक्तियों का उच्च स्तर तथा अन्य व्यक्तियों को निम्न स्तर में अंकित करते हैं।

(स) **व्यक्तिनिष्ठ की त्रुटि** (Halo Error)—मापन-कर्ता मापने में उसके सामान्य प्रभाव के आधार पर स्तरीकरण करता है।

(द) **केन्द्रवर्ती मान की त्रुटि** (Error of Central Tendency)—मापन-कर्ता साधारणत: व्यक्तियों के मापन में केन्द्रवर्ती प्रवृति रहती है औसत पर अधिकांश व्यक्तियों को अंकित करते हैं।

(य) **तार्किक त्रुटि** (Logical Errors)—इस प्रकार की त्रुटि होती है जब मापन-कर्ता अपने तर्क के आधार पर स्तरीकरण करता है।

26.2 अनुस्थिति मापनी के प्रकार (Types of Rating Scale)

अनुस्थिति मापनी के कई प्रकार हैं उनमें से प्रमुख मापनी अधोलिखित हैं–

(1) वर्णनात्मक अनुस्थिति मापनी (Descriptive Rating Scale),

(2) अंकीय मापनी या सांख्यिकी मापनी (Numerical Scale),

(3) ग्राफीय मापनी (Graphic Scale), तथा

(4) व्यक्ति से व्यक्ति की मापनी (Man to Man Scale)।

इन मापनियों के आधार पर अभिवृति, अभिव्यक्ति तथा विचारों का मापन किया जाता है। इसके अतिरिक्त व्यक्तित्व का भी मापन किया जाता है। इस मापनी के सन्दर्भ में *थर्स्टन* तथा *लिकर्ट* का अधिक योगदान रहा है। इनके अनुसार मापनियों का वर्णन यहाँ किया गया है।

(1) थर्स्टन मापनी (Thurstone's Rating Scale)

इस प्रकार की अनुस्थिति मापनी में जिस वस्तु या गुण-विशेष का स्तरीकरण करना होता है। उसके सम्बन्ध में अनेक कथनों को रचना की जाती है। इन कथनों के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए निर्णायक नियुक्त किए जाते हैं। प्रत्येक कथन को ग्यारह बिन्दुओं में से अंकित करना होता है। निर्णायकों के आधार पर प्रत्येक कथन के महत्व का औसत निकाल लिया जाता है वह उस कथन का प्रामाणिक मान समझा जाता है। जब किसी शोध-कार्य में इस मापनी को प्रयुक्त करते हैं। तब न्यादर्श के सदस्यों में मापनी के कथनों को अंकित कराया जाता है तथा उन कथनों के प्रामाणिक मानों का योग कर लिया जाता है, जो उस सदस्य के प्रदत्त होते हैं।

यह मापनी अधिक प्रामाणिक एवं शुद्ध मानी जाती है परन्तु इसकी रचना करना अधिक कठिन होता है, अधिक समय भी लगता है। इसका अंकन अधिक सरल होता है। इसलिए इसका उपयोग कम किया जाता है।

(2) लिकर्ट अनुस्थिति मापनी (Likert Method of Summated Rating)

इस प्रकार की अनुस्थिति मापनी में वस्तु, संस्था या गुण विशेष के सम्बन्ध में कथनों को रचना की जाती है। इन कथनों को व्यावहारिक शब्दों में लिखा जाता है। कथनों को पाँच बिन्दुओं पर अंकित किया जाता है। इस मापनी की रचना में निर्णायकों को नियुक्त नहीं किया जाता है अपितु न्यादर्श के सदस्यों को प्रत्यक्ष रूप में अंकित करने को दिया जाता

नोट

है उनके उत्तरों पर अंकों को बिन्दुओं के आधार पर दिया जाता है, तथा उनका योग करके प्रदत्त प्राप्त किए जाते हैं। अंकन प्रक्रिया इस प्रकार की जाती है।

बिन्दु	बिन्दु का मान
(1) पूर्ण सहमत	5 अथवा 4
(2) सहमत	4 अथवा 3
(3) अनिश्चित	3 अथवा 2
(4) असहमत	2 अथवा 1
(5) पूर्ण असहमत	1 अथवा 0

थर्स्टन मापनी तथा लिकर्ट मापनी की तुलना

(Relative Merits of Thurston and Likert Scales)

प्रत्येक मापनी की विशेषतायें तथा उसकी अपनी सीमायें हैं–

1. *लिकर्ट* मापनी रचना करना सरल है तथा समय, धन व शक्ति की दृष्टि से मितव्ययी है।
2. *थर्स्टन* मापनी को प्रामाणिक माना जाता है और इसका प्रशासन एवं अंकन अपेक्षाकृत सरल होता है।
3. *लिकर्ट* मापनी का स्तरीकरण पाँच बिन्दुओं में न्यादर्श के सदस्यों द्वारा किया जाता है जबकि *थर्स्टन* मापनी का स्तरीकरण ग्यारह बिन्दुओं पर निर्णायकों द्वारा किया जाता है।
4. *थर्स्टन* मापनी के प्रदत्तों में सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय रूप में किया जाता है।
5. *लिकर्ट* मापनी का उपयोग शोध तथा निर्देशन कार्यों में अधिक किया जाता है। अपेक्षाकृत इसकी व्यावहारिकता अधिक होती है।

टास्क थर्स्टन मापनी की कार्यविधि समझाइये।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–

1. विद्यालयों में अभिभावकों के लिए .... तैयार करने में सहायक होती है।
2. विद्यालयों में छात्रों के .... में सहायक होती है।
3. शोधकार्य में .... की वैधता ज्ञात करने में सहायक होती है।
4. रेटिंग की विश्वसनीयता में अधिक अन्तर पाया जाता है क्योंकि मापनकर्ता स्वभाव से .... होते हैं।

26.3 सारांश (Summary)

- *रेटिंग* के आधार पर व्यक्ति भाव एवं विचारों तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति, वस्तु या संस्था के प्रति करता है। रेटिंग मापनी पर विचारों को व्यक्त किया जाता है।
- अनुस्थिति मापनी की प्रमुख विशेषताएँ होती हैं–
  1. जिस गुण विशेष का मापन करना होता है उसका वर्णन व्यावहारिक रूप में किया जाता है।
  2. अनुस्थिति मापनी की सहायता से व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।

नोट

- **अनुस्थिति मापनी की विशेषताएँ (Characteristics of Rating Scale):** अनुस्थिति मापनी के अधोलिखित गुण होते हैं–
  1. विद्यालयों में अभिभावकों के लिए आलेख तैयार करने में सहायक होती है।
  2. विद्यालयों में छात्रों के प्रवेश में सहायक होती है।
  3. छात्रों की आवश्यकताओं एवं कठिनाइयों को ज्ञात करने में सहायक होती है।
  4. शोध कार्य में किस अन्य स्रोत से प्रदत्तों की वैधता ज्ञात करने में सहायक होता है।
- अनुस्थिति मापनी की अधोलिखित सीमाएँ होती हैं–
  1. एक ही वस्तु या व्यक्ति के गुण विशेष के रेटिंग में मापन-कर्ताओं की अनुस्थितियों में अधिक विषमता होती है। यह व्यक्तिनिष्ठ मापनी है।
  2. रेटिंग की विश्वसनीयता में अधिक अन्तर पाया जाता है क्योंकि मापनकर्ता स्वभाव से नरम तथा कुछ कठोर होते हैं।
  3. व्यक्तिनिष्ठ रूप से व्यक्ति विशेष के गुणों का मापन किया जाता है। मापन-कर्ता उस व्यक्ति विशेष के सम्बन्धों से प्रभावित रहता है।
- *ट्रैवर्स* ने अनुस्थिति मापनी प्रक्रिया के लिए अधोलिखित नियमों का उल्लेख किया है:–
  1. अनुस्थिति मापनी की परिभाषा शुद्ध रूप में करनी चाहिए।
  2. मापनी के प्रत्येक कथन का विस्तार सीमित होना चाहिए जिससे उसकी परिभाषा भी की जा सके।
  3. कथनों के क्रम को बदलते रहना चाहिए कभी आरम्भ में कभी अन्त में रखना चाहिए।
- **अनुस्थिति मापनी को नियन्त्रित करने वाले अधिनियम**–अनुस्थिति मापनी अधोलिखित अधिनियमों से नियन्त्रित रहती है–
  1. विशिष्ट गुण या व्यवहार की समुचित रूप में परिभाषा की जानी चाहिए।
  2. मापनी तथा उसे बिन्दुओं की स्पष्ट रूप से अर्थापन करना चाहिए।
  3. जिस गुण विशेष का मापन किया जायेगा उसका निरीक्षण करना सम्भव हो।
  4. एक समान स्तर का उपयोग निरीक्षण में होना चाहिए।
- **अनुस्थिति मापनी की त्रुटियाँ (Errors in Rating Scale):** इस मापनी में साधारणत: अधोलिखित त्रुटियाँ रहती हैं– (अ) उदारता की त्रुटि; (ब) पक्षपात की त्रुटि; (स) व्यक्तिनिष्ठ की त्रुटि; (द) केन्द्रवर्ती मान की त्रुटि; (य) तार्किक त्रुटि।
- अनुस्थिति मापनी के कई प्रकार हैं उनमें से प्रमुख मापनी अधोलिखित हैं–

  (1) वर्णनात्मक अनुस्थिति मापनी; (2) अंकीय मापनी या सांख्यिकी मापनी; (3) ग्राफीय मापनी तथा (4) व्यक्ति से व्यक्ति की मापनी।

26.4 शब्दकोश (Keywords)

- **मापनी**–मापक।
- **वर्णनात्मक**–निबंध प्रकार के।

नोट

26.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अनुस्थिति मापनी का उपयोग किन गुणों के आकलन के लिए किया जाता है। इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. अनुस्थिति मापनी विधि कितने प्रकार की होती है? वर्णन कीजिए।
3. अनुस्थिति मापनी का क्या अर्थ है? और इसकी सीमाएँ क्या हैं? विश्लेषण कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. आलेख 2. प्रवेश 3. प्रदत्तों 4. नरम और कुछ कठोर

26.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई–27: निरीक्षण (Observation)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 निरीक्षण का अर्थ (Meaning of Observation)

27.2 निरीक्षण के प्रकार (Types of Observation)

27.3 निरीक्षण की विशेषताएँ (Characteristics of Observation)

27.4 निरीक्षण विधि की परिसीमाएँ (Limitations of Observation Method)

27.5 निरीक्षण विधि के लिए सुझाव (Suggestions for Observation Method)

27.6 सारांश (Summary)

27.7 शब्दकोश (Keywords)

27.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

27.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- निरीक्षण के अर्थ, प्रकार एवं विशेषताओं की व्याख्या करने में;
- निरीक्षण विधि की परिसीमाओं को समझने और निरीक्षण विधि के लिए दिये गये सुझावों का विश्लेषण करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

निरीक्षण विधि बहुत ही पुरातन विधि है। यद्यपि व्यक्ति-आकलन के दृष्टिकोण से यह वस्तुनिष्ठ नहीं मानी जाती किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में प्रयोगात्मक कार्य इसी प्रविधि का उपयोग करके आरंभ किया जाता है। और वहाँ इस यथेष्ट रूप से वस्तुनिष्ठ भी बनाया जा चुका है। निरीक्षण विधि अन्वेषकों के लिए डाटा एकत्रित करने की एक वैज्ञानिक विधि है। इस इकाई में हम निरीक्षण विधि के विषय में अध्ययन करेंगे।

27.1 निरीक्षण का अर्थ (Meaning of observation)

निरीक्षण बहुत प्रचलित विधि है। इस विधि में मानवीय व्यवहार का अवलोकन किया जाता है तथा उसी के आधार पर आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं। यह विभिन्न प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के मापन का सीधा तरीका है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस प्रविधि का उपयोग मुख्यत: नियन्त्रित प्रयोगों (Controlled experiments) में किया जाता है। बिना अवलोकन किये हम कुछ भी अध्ययन नहीं कर सकते।

नोट

निरीक्षण का सामान्य अर्थ किसी वस्तु को पूर्णरूप से देखना है। अधिकतर परीक्षण का विशेष उद्देश्य नहीं होता, पर निरीक्षण विधि से व्यक्ति या वस्तु विशेष के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है, जो कि मनोपचार के लिए बहुत आवश्यक है।

परिभाषा–लैन्जली के अनुसार "निरीक्षण" का अर्थ ध्यानपूर्वक सुनना तथा देखना है। हम बहुत से लोगों को देखते हैं, किन्तु केवल इस प्रकार देखने, किसी के व्यवहार, आदतों तथा अन्य बातों की जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती। केवल परीक्षण विधि के द्वारा ही इन बातों को ठीक प्रकार से समझा जा सकता है।

गॉर्मन तथा क्लेटन के अनुसार "प्राकृतिक रूप से किसी परीक्षित प्रक्रिया और व्यवहार की प्रणालीगत मापन को परीक्षण कहते हैं।

व्यक्तित्व एवं वृद्धि के अनेक पक्षों का ज्ञान इसके द्वारा ही सम्भव होता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मानव द्वारा प्रयुक्त मापन विधियां अवलोकन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उस काल का खानाबदोश शिकारी जानवरों की चीखें सुनता था, बहने वाली ठंडी हवा का अनुभव करता था, ऋतु आगमन आदि का ज्ञान अवलोकन विधि से ही करता था। जिस प्रकार ज्योतिषी नक्षत्रों का अवलोकन करता है, चिकित्सक रोगी का निरीक्षण उसे छूकर, नाड़ी की गति का हाथ से अनुमान लगाकर उपचार की सलाह देता है, उसी प्रकार, शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी इस विधि का प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों में छात्रों के व्यवहार का निरीक्षण करने में किया जाता है। व्यक्ति एकान्त में, समूह में, विशिष्ट परिस्थितियों में, जो कुछ भी क्रियाएं करता है उनको निरर्थक नहीं समझा जा सकता। प्राय: देखा जाता है कि व्यक्ति बैठे-बैठे या चलते-फिरते अनेक प्रकार की अनावश्यक क्रियाएं करता रहता है–जैसे, उंगलियों का चटकाना, हाथों का झटकना, अपने आपसे बात करना आदि। इन अनावश्यक क्रियाओं का व्यक्तित्व के मापन में अत्यधिक महत्व है। व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन किये बिना उसके सम्बन्ध में कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। शुद्ध अवलोकन के लिए यह आवश्यक है कि अध्ययन की जाने वाली वस्तु की ओर ही ध्यान लगाया जाये और जो कुछ भी अवलोकन किया गया है उसे तत्काल लिख लिया जाये क्योंकि, स्मृति के क्षीण होने पर अवलोकन के समय की बातें धूमिल हो जाती हैं। साथ ही, अवलोकन करने वाले में यह क्षमता भी होनी चाहिए कि वह किसी भी प्रकार के संवेगात्मक सन्तुलन का पता लगा सके। यह दुर्भाग्य की बात है कि अध्यापक केवल बालकों के शैक्षिक समायोजन का ही अवलोकन करते हैं, तथा जीवन से सम्बन्धित दूसरी परिस्थितियों में छात्र किस प्रकार समायोजन करते हैं, इस ओर ध्यान नहीं देते। इसके अतिरिक्त, केवल समस्यात्मक बालकों के व्यवहार का ही निरीक्षण नहीं करना चाहिये बल्कि, सभी छात्रों का अवलोकन करना चाहिये। यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है कि मात्र किसी के कहने पर उसे विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि, इसमें निर्णय अवलोकनकर्ता पर ही निर्भर करता है। अत: अवलोकन के परिणामों को अधिक सन्तोषजनक बनाने के लिए किसी प्रकार के आग्रह, पक्षपात या भावुकता से उत्प्ररित नहीं होना चाहिये।

नोट्स अध्यापक को अपने अवलोकन के प्रति विश्वस्त होना चाहिये। साथ ही, जिन व्यवहारों का वस्तुओं अथवा दृश्यों का, वह अवलोकन करना चाहता है, उसमें उनका निष्पक्ष होना एक मुख्य शर्त है।

27.2 अवलोकन के प्रकार (Types of Observation)

निरीक्षण मुख्यत: दो प्रकार का होता है–

1. बाह्य निरीक्षण (External of Observation)
2. स्वयं निरीक्षण (Self-Observation)

नोट

हमारे सामने कभी ऐसी भी स्थितियाँ आती हैं, जिनमें हम स्वयं व्यक्ति विशेष से ही पूछते हैं कि ऐसा आपने कितनी बार किया, कब किया और क्यूँ किया। वह आत्म निरीक्षण (Self-observation) है। इसके अतिरिक्त, जब कोई अध्यापक बालक के व्यवहार का निरीक्षण करता है, तब यह बाह्य निरीक्षण कहलाता है। इस प्रकार के अवलोकन में किसी बाहरी व्यक्ति पर निर्भर रहना पड़ता है। इस विधि में एक मुख्य दोष यह रह जाता है कि अवलोकन-कर्ता व्यवहार के केवल एक ही पक्ष का अवलोकन कर पाता है, क्योंकि वह उन व्यक्तियों से पूर्ण परिचित नहीं होता है। स्वयं निरीक्षण में व्यक्ति से स्वयं अपना विवरण देने को कहा जाता है लेकिन, इस प्रकार के निरीक्षण में व्यक्ति बहुत सी बातों को छिपा जाता है। तीसरी विधि में, उपर्युक्त दोनों विधियों को सम्मिलित कर लिया जाता है। ऐसा परिस्थितिजन्य परीक्षणों (Situational tests) में किया जाता है। परिस्थितिजन्य परीक्षणों में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं, जो जीवन की परिस्थितियों से मिलती जुलती हों, जैसे—ईमानदारी परीक्षण (Test of Honesty), नकल करने की प्रवृत्ति (Test of cheating) आदि। इसके पश्चात् व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है।

अवलोकन का दो अन्य प्रकार से भी वर्गीकरण किया जा सकता है—

(क) प्रत्यक्ष अवलोकन (Direct Observation)

(ख) अप्रत्यक्ष अवलोकन (Indirect Observation)

प्रत्यक्ष अवलोकन (Direct Observation)—प्रत्यक्ष अवलोकन में व्यक्ति का यथार्थ स्थिति में निरीक्षण किया जाता है। इस विधि में परीक्षण कर्ता बालक के व्यवहार का अवलोकन प्रत्यक्ष रूप से करता है। बालक अपने नित्यप्रति के कार्य में व्यस्त रहता है और निरीक्षण कर्ता अपने अवलोकन को नियमित रूप से लिखता जाता है। स्वाभाविक है कि निरीक्षणकर्ता की उपस्थिति में बालक का स्वभाव कुछ सीमा तक अस्वाभाविक हो जाता है। फलतः हमारा अवलोकन परम शुद्ध नहीं कहा जा सकता, फिर भी, प्रत्यक्ष अवलोकन प्रविधि के द्वारा बालकों के व्यवहार सम्बन्धी विभिन्न पक्षों के बारे में हमें सही, जानकारी प्राप्त हो जाती है। अबोध बालक के व्यवहार के मूल्यांकन के सन्दर्भ में इस विधि की प्रमुखता दो कारणों से है—

1. अबोध बालक अपने व्यवहार को कृत्रिम बनाने की चेष्टा नहीं कर पाता है। अतः किसी अजनबी की उपस्थिति उसके व्यवहार को बहुत अधिक देर तक प्रभावित नहीं कर पाती है।
2. बालकों में भाषा का विकास सीमित रहने के कारण प्रत्यक्ष अवलोकन ही अधिक सार्थक प्रतीत होता है।

अप्रत्यक्ष अवलोकन (Indirect Observation)—अप्रत्यक्ष अवलोकन में प्राप्त तथ्यों के आधार पर व्यक्ति को समझने का प्रयास किया जाता है। यह प्रविधि प्रत्यक्ष अवलोकन का ही परिष्कृत रूप है। यह प्रविधि समाजशास्त्र के क्षेत्र में शोध कार्य के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। समाजशास्त्र के शोध कर्ताओं ने आदिवासियों की जीवन शैली का विश्वसनीय परिचय इसी प्रविधि के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इस प्रविधि को प्रभावशाली बनाने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये—

1. व्यवहार प्रारूप (Behaviour Pattern) निश्चित कर लेना चाहिये।
2. चयन किये गये व्यावहारिक पक्षों का विशिष्टीकरण (Specification) कर देना चाहिये।
3. व्यवहार अवलोकन को लिपिबद्ध करने (recording) की उचित व्यवस्था की जाये।
4. निरीक्षण कार्य का परिमाणन (Quantification) कर लेना चाहिये।
5. इस विधि का प्रयोग करने वाले अध्यापक को उचित प्रशिक्षण दिया जाये।

मानव-गतिविधि के विषय में सूचनायें कई प्रकार से प्राप्त की जा सकती हैं, जैसे—स्वयं देखकर, उस व्यक्ति से पूछकर अथवा किसी तीसरे व्यक्ति से उसके बारे में पूछकर। इन प्रत्यक्ष एवं परोक्ष विधियों के आधार पर व्यक्तित्व मापन प्रविधि के स्वरूप में भी अन्तर आ जाता है। इस प्रकार रूपान्तरित प्रविधियों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है।

निरीक्षण-प्रविधि के द्वारा किसी मनुष्य के विषय में निरीक्षक स्वयं देकर धारणा बनाता है। इस प्रविधि को अधोलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया गया है—

(1) परिस्थिति-परीक्षण (Situational Tests),

(2) औपचारिक-निरीक्षण (Formal Observation),

(3) अनौपचारिक-निरीक्षण (Informal Observation)

(4) विविध-आलेख (Anecdotal Records)।

(1) परिस्थिति-परीक्षण (Situational Test)—इस प्रकार के निरीक्षण को सम्पन्न करने के लिए व्यक्ति को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करने वाली परिस्थिति में रखा जाता है। ये परिस्थितियाँ कृत्रिम होती हैं। और इनसे अन्त:क्रिया करके व्यक्ति व्यवहार का प्रदर्शन करता है। इस व्यवहार का प्रेक्षपण ही व्यक्तित्व के मापन का आधार बनता है। सेना के अफसरों के चुनाव के समय सर्विसेज सलेक्शन बोर्ड में 'समूह कार्य' परिस्थिति परीक्षण का एक उदाहरण है। **मेय** और **हार्टशोर्न** (1925) ने इसी प्रकार के अनेक परीक्षणों का निर्माण किया है। इन परीक्षणों की विशेषताएं अधोलिखित है—

(1) यह व्यक्तित्व मापन की एक रोचक प्रविधि है।

(2) क्योंकि ये जीवन परिस्थिति (Life-Situation) नहीं हैं अतएव इन परिस्थितियों में व्यवहार का वास्तविक स्वरूप नहीं देखा जा सकता है। तब भी इस प्रविधि के द्वारा नेतृत्व कठिनाइयों से जूझने की क्षमता कर्मठता आदि गुणों का मापन सन्तोषप्रद रूप से हो सकता है।

(3) इस प्रकार के परीक्षण की विश्वसनीयता एवं वैधता के विषय में सन्तोषजनक आँकड़े अभी तक उपलब्ध नहीं हैं।

(4) यह अभी तक मूल प्रविधि के रूप में शोध क्षेत्र में मान्यता प्राप्त नहीं कर सकी है।

(5) इसके द्वारा दो व्यक्तियों के व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन सही-सही किया जा सकता है।

(2) औपचारिक-निरीक्षण (Formal Observation)—इस प्रविधि में निरीक्षणकर्त्ता बालक के व्यवहार का अवलोकन औपचारिक रूप से करता है। बालक अपनी दिनचर्या में व्यस्त रहता है और निरीक्षक अपने निरीक्षणों की लिपिबद्ध करता जाता है। स्पष्ट है कि नवागंतुक की उपस्थिति में बालक का व्यवहार-अस्वाभाविक हो जाता है। परिणाम स्वरूप व्यवहार निरीक्षण शुद्ध नहीं रह पाते। उपरोक्त कमी के होने पर भी औपचारिक-निरीक्षण प्रविधि के द्वारा शिशुओं (Young Children) के व्यवहारों के विषय में आसानी से सही-सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(1) बालक अपने व्यवहार को कृत्रिम बनाने की चेष्ठा नहीं करते हैं, अतएव किसी अजनबी की उपस्थिति में अधिक देर तक अपनी प्रकृति को नहीं छिपाते हैं।

(2) शिशुओं में भाषा का विकास बहुत सीमित होता है, अतएव जो प्रविधियाँ—मौखिक अथवा लिखित सम्प्रेषण पर आधारित हैं उनका उपयोग नहीं किया जा सका है। ऐसी दशा में औपचारिक निरीक्षण-प्रविधि ही उपयोगी सिद्ध होती है। यदि इस निरीक्षण-प्रविधि में आवश्यक परिवर्तन कर लिए जायें तब इसका उपयोग किशोरों एवं प्रोढ़ों के अवलोकन में भी किया जा सकता है।

(3) अनौपचारिक-निरीक्षण (Informal Observation)—यह प्रविधि औपचारिक निरीक्षण-प्रविधि का ही संशोधित रूप है। इस प्रविधि को समाजशास्त्र के क्षेत्र में शोध कार्य के लिए बहुत उपयोगी पाया गया है। आदिवासियों की जीवनशैली का विश्वसनीय परिचय इसी प्रकार की निरीक्षण-प्रविधि के माध्यम से समाजशास्त्र से शोधकर्ताओं ने प्रस्तुत किया है। इस निरीक्षण-प्रविधि को सुचारू रूप से सम्पन्न करने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) सर्वप्रथम, व्यवहार-प्रारूप (Behaviour Pattern) के विषय में निर्णय ले लेना चाहिए। अर्थात् यह भली भाँति सोच लिया जाये कि व्यवहार का कौन से पक्ष का अवलोकन करना है। इस प्रकार व्यवहार-निरीक्षण, की परिसीमायें निर्धारित की जाती हैं।

(2) तत्पश्चात्, चयन किए गये व्यवहार के पक्षों को इस प्रकार परिभाषित करना चाहिए कि वह बालक की उस प्रक्रिया के बारे में सूचना दे सके जो प्रकट रूप से देखी जा सके। इस प्रकार के निरीक्षक अपने कार्य के लिए संक्रियात्मक परिभाषाओं का निर्माण करता है।

नोट

(3) व्यवहार-अवलोकन के अभिलेखन के लिए सहायक विधियों का चयन किया जाता है जैसे—अल्पकालिक-लिपि, टेप, रिकार्ड, कैमरा आदि।

(4) यथा सम्भव, निरीक्षण को अंकों में बदल लेना चाहिए। इस कार्य में पंच बिन्दुमापक (Five Point Scale) अधिक उपयुक्त रहता है।

(5) निरीक्षण प्रविधि का उपयोग करने वाले निरीक्षकों को उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इस प्रशिक्षण के दौरान उल्लेखित कौशलों के अतिरिक्त उसे इस प्रकार की कला में भी दक्षता प्राप्त कराने का प्रावधान हो जिसके द्वारा वह अपनी उपस्थिति के वास्तविक उद्देश्य को प्रकट किए बिना ही व्यक्ति के स्वाभाविक व्यवहार का अध्ययन कर सके। निरीक्षण को वैध एवं विश्वसनीय बनाने के लिए इस प्रकार का प्रशिक्षण नितांत आवश्यक है। आदिवासियों के जीवन-यापन के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ मापनकर्त्ताओं ने कबीले के सदस्य के रूप में उन्हीं लोगों के साथ ही रहना आरम्भ कर दिया था। इसी प्रकार वे कबीलों की गतिविधियों के बारे में वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं।

अनौपचारिक निरीक्षण के निम्नलिखित लाभ हैं—

(1) इसका उपयोग बालकों एवं प्रौढ़ों दोनों के अवलोकन के लिए किया जा सकता है।

(2) इसका उपयोग गूंगे, बहरे एवं अन्य अपंगों के व्यवहार-आकलन के लिए भी किया जा सकता है।

(3) इस प्रकार के निरीक्षण के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार का प्राकृतिक परिस्थितियों में अध्ययन किया जाता है। यह व्यवहार वास्तविकता के निकट होता है अतएव इन निरीक्षणों के आधार पर व्यक्तित्व मापन अधिक विश्वसनीय एवं वैध होता है।

अनौपचारिक निरीक्षण में कुछ सीमायें भी हैं—

(1) यह प्रविधि समय और मानव-श्रम के दृष्टिकोण से महंगी है।

(2) व्यक्ति के सहज व्यवहार पर निरीक्षक की उपस्थिति का प्रभाव पड़ता है, अतएव भरसक चेष्टा करने पर भी बालक के मनोवैज्ञानिक वातावरण को सामान्य नहीं बनाया जा सकता है।

(3) एक अप्रशिक्षित निरीक्षक के द्वारा यह प्रविधि आत्मनिष्ठता (Subjectivity) एवं पक्षपात से परिपूर्ण होती है, जिसके कारण व्यक्तित्व-मूल्यांकन की विश्वसनीयता एवं वैधता पर प्रभाव पड़ता है।

(4) इस प्रविधि में परिवेश प्रभाव (Holo-effect) की सम्भावनायें भी अधिक है।

(5) इस प्रविधि का उपयोग करते समय इस बात का निर्णय करना कठिन हो जाता है कि किस व्यवहार पक्ष का अवलोकन किया जाये और किसका नहीं किया जाय?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' तथा 'असत्य' लिखिए (State whether following the statements are 'True' or 'False')—

1. परिस्थिति निरीक्षण को सम्पन्न करने के लिए व्यक्ति को जीवन की वास्तविक परिस्थियों का प्रतिनिधित्व करने वाली परिस्थिति में रखा जाता है।
2. अप्रत्यक्ष अवलोकन में व्यक्ति का यथार्थ स्थिति में निरीक्षण किया जाता है।
3. आदिवासियों की जीवनशैली का विश्वसनीय परिचय अनौपचारिक प्रविधि के माध्यम से समाजशास्त्र के शोधकर्ताओं ने प्रस्तुत किया है।

टास्क सुव्यवस्थित निरीक्षण क्या हैं?

नोट

27.3 निरीक्षण विधि की विशेषताएँ (Characterstics of Observation)

शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस प्रविधि का उपयोग मुख्यत: सर्वेक्षण और नियन्त्रित प्रयोगों में किया जाता है। इसकी उपयोगिता को देखते हुए अब इसे यथाशक्ति वस्तुनिष्ठ बनाने की चेष्टा की जा रही है। अतएव प्रेक्षण को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करने के लिए विशेषज्ञों ने इस प्रविधि में निम्नलिखित गुणों का समावेश करने का सुझाव दिया है–

1. **सुव्यवस्थति निरीक्षण** (Systematic)–निरीक्षण अवसरवादिता एवं जटिल व्यवस्था से मुक्त होने चाहिए। अर्थात् प्रेक्षण पूर्व-योजना के अनुसार किसी व्यक्ति अथवा घटना के सही एवं महत्वपूर्ण पक्ष के सन्दर्भ में किए जायें, एक स्पष्ट रूप से लक्ष्य-आधारित हों।
2. **वस्तुनिष्ठ एवं पक्षपात रहित निरीक्षण** (Objective and Unbiased)–निरीक्षण कुछ परिकल्पनाओं (Hypotheses) पर आधारित होने चाहिए। तभी इनके द्वारा परिकल्पनाओं की परख पक्षपात रहित ढंग से की जा सकेगी।
3. **परिमाणत्मक निरीक्षण** (Quantiative)–यथा सम्भव निरीक्षण अंकों में प्राप्त होने चाहिए। ये अंक अथवा इनसे सम्बन्धित तकनीकी शब्द किसी घटना अथवा व्यक्ति के विषय में स्पष्ट परिमाणात्मक सूचना देने में सक्षम होने चाहिए।
4. **विश्वसनीयता, वैधता एवं उपयोगिता** (Reliability, Validity and Usability)–निरीक्षण का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि किसी घटना अथवा व्यक्ति के विषय में इनकी पुनर्रावृत्ति कई बार हो सके। इस प्रकार प्रेक्षपणों के माध्यम से प्राप्त परिणाम अधिक विश्वसनीय होगा।
5. **मौलिकता, नमनीयता एवं कल्पनाशीलता** (Originality, Flexibility and Imagination)–वस्तुत: यह गुण परीक्षण से कम अपितु निरीक्षक से अधिक सम्बन्धित है। मनोविज्ञान एवं शिक्षा के क्षेत्र में निरीक्षण मानव प्रकृति से सम्बन्धित होता है। मानव-व्यवहार और उससे जुड़ी हुई घटनायें बिना चेतावनी दिए ही परिवर्तनशील, अतएव निरीक्षण प्रविधि का उपयोग करते समय परिस्थितिनुसार निरीक्षक को अपनी कार्य विधि को तत्परता के साथ नियोजित करना पड़ता है। ऐसा तभी सम्भव है जब वह मौलिक, नमनीय एवं कल्पनशील हो।

27.4 निरीक्षण विधि की परिसीमाएँ (Limitations of observation)

1. यह प्रविधि आत्मनिष्ठा (Subjectivity) एवं पक्षपात (bias) से पूर्ण होती है।
2. विभिन्न अवलोकनकर्त्ताओं द्वारा किया गया विवरण समान नहीं होता।
3. अवलोकन करने में समय अधिक लगता है।
4. अवलोकनकर्त्ता के स्वयं के भाव, उसकी मनोवृत्ति, शारीरिक एवं मानसिक स्थिति, थकान आदि का भी अवलोकन पर प्रभाव पड़ता है।
5. व्यक्ति के सहज व्यवहार पर प्रेक्षक की उपस्थिति का प्रभाव पड़ता है, अत: पूरे प्रयास करने पर भी बालक के मनोवैज्ञानिक पर्यावरण (Psychological-Environment) को सामान्य नहीं बनाया जा सकता है।
6. व्यक्ति दिल में कुछ चाहता है और बाह्य व्यवहार कुछ और प्रदर्शित करता है, ऐसी परिस्थिति में निरीक्षण लाभदायक नहीं होता।

क्या आप जानते हैं निरीक्षण विश्लेषण पूर्व-धारणाओं से प्रभावित होता है। मनोवैज्ञानिक इसे 'व्याप्त प्रभाव' (Halo effect) के नाम से पुकारते हैं।

27.5 निरीक्षण विधि के लिए सुझाव (Suggestions for observation Method)

नोट

अवलोकन विधि को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये:—

1. अवलोकन विधि का प्रयोग तभी किया जाना चाहिये जब परीक्षण विधि उपयुक्त प्रतीत न हो।
2. निरीक्षण का उद्देश्य स्पष्ट रूप से परिभाषित कर लेना चाहिये।
3. निरीक्षित घटना का रिकार्ड तथा उसकी आख्या (report) वास्तविक एवं शुद्ध हो।
4. निरीक्षण की व्याख्या वस्तुनिष्ठ ढंग से होनी चाहिये।
5. निरीक्षण सम्बन्धी उपकरणों का निश्चय पहले से ही कर लेना चाहिये।
6. व्यवहार का मूल्याँकन अनेक अवलोकनों के आधार पर करना चाहिये, क्योंकि इससे विश्वसनीयता बढ़ जाती है।
7. जहाँ तक हो सके अवलोकक यह प्रयास करे कि उसका अवलोकन पक्षपात रहित हो। यदि व्यक्ति विशेष में उसकी रुचि नहीं है, तो अच्छा होगा वह निरीक्षण ही न करे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए** (Fill in the blanks)—

1. शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में निरीक्षण प्रविधि का उपयोग मुख्यत: ………… में किया जाता है।
2. जब कोई अध्यापक बालक के व्यवहार का निरीक्षण करता है, तब यह ………… कहलाता है।
3. ………… में प्राप्त तथ्यों के आधार पर व्यक्ति को समझने का प्रयास किया जाता है।
4. ………… को सम्पन्न करने के लिए व्यक्ति को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करने वाली परिस्थिति में रखा जाता है।

27.6 सारांश (Summary)

- निरीक्षण बहुत प्रचलित विधि है। इस विधि में मानवीय व्यवहार का अवलोकन किया जाता है तथा उसी के आधार पर आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं। यह विभिन्न प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के मापन का सीधा तरीका है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस प्रविधि का उपयोग मुख्यत: नियन्त्रित प्रयोगों (Controlled experiments) में किया जाता है।
- शुद्ध अवलोकन के लिए यह आवश्यक है कि अध्ययन की जाने वाली वस्तु की ओर ही ध्यान लगाया जाये और जो कुछ भी अवलोकन किया गया है उसे तत्काल लिख लिया जाये क्योंकि, स्मृति के क्षीण होने पर अवलोकन के समय की बातें धूमिल हो जाती हैं। साथ ही, अवलोकन करने वाले में यह क्षमता भी होनी चाहिए कि वह किसी भी प्रकार के संवगोत्मक सन्तुलन का पता लगा सके।
- निरीक्षण मुख्यत: दो प्रकार का होता है—

  1. बाह्य निरीक्षण (Types of Observation)
  2. स्वयं निरीक्षण (Self-Observation)
- हमारे सामने कभी ऐसी भी स्थितियाँ आती हैं, जिनमें हम स्वयं व्यक्ति विशेष से ही पूछते हैं कि ऐसा आपने कितनी बार किया, कब किया और क्यूँ किया। वह आत्म निरीक्षण (Self-observation) है। इसके अतिरिक्त, जब कोई अध्यापक बालक के व्यवहार का निरीक्षण करता है, तब यह बाह्य निरीक्षण कहलाता है। इस प्रकार के अवलोकन में किसी बाहरी व्यक्ति पर निर्भर रहना पड़ता है।
- तीसरी विधि में, उपर्युक्त दोनों विधियों को सम्मिलित कर लिया जाता है। ऐसा परिस्थितिजन्य परीक्षणों (Situational tests) में किया जाता है। परिस्थितिजन्य परीक्षणों में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं, जो

नोट

जीवन की परिस्थितियों से मिलती जुलती हों, जैसे–ईमानदारी परीक्षण (Test of Honesty), नकल करने की प्रवृत्ति (Test of cheating) आदि।

- **प्रत्यक्ष अवलोकन** (Direct Observation)–प्रत्यक्ष अवलोकन में व्यक्ति का यथार्थ स्थिति में निरीक्षण किया जाता है। इस विधि में परीक्षण कर्ता बालक के व्यवहार का अवलोकन प्रत्यक्ष रूप से करता है। बालक अपने नित्यप्रति के कार्य में व्यस्त रहता है और निरीक्षण कर्ता अपने अवलोकन को नियमित रूप से लिखता जाता है।
- **अप्रत्यक्ष अवलोकन** (Indirect Observation)–अप्रत्यक्ष अवलोकन में प्राप्त तथ्यों के आधार पर व्यक्ति को समझने का प्रयास किया जाता है। यह प्रविधि प्रत्यक्ष अवलोकन का ही परिष्कृत रूप है। यह प्रविधि समाजशास्त्र के क्षेत्र में शोध कार्य के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।
- इस प्रकार रूपान्तरित प्रविधियों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है।
- निरीक्षण-प्रविधि के द्वारा किसी मनुष्य के विषय में निरीक्षक स्वयं देकर धारणा बनाता है। इस प्रविधि को अधोलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया गया है–

  (1) परिस्थिति-परीक्षण (Situational Tests),

  (2) औपचारिक-निरीक्षण (Formal Observation),

  (3) अनौपचारिक-निरीक्षण (Informal Observation)

  (4) विविध-आलेख (Anecdotal Records)।
- **परिस्थिति-परीक्षण** (Situational Test)–इस प्रकार के निरीक्षण को सम्पन्न करने के लिए व्यक्ति को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करने वाली परिस्थिति में रखा जाता है। ये परिस्थितियाँ कृत्रिम होती हैं। और इनसे अन्त:क्रिया करके व्यक्ति व्यवहार प्रदर्शन करता है।
- यह प्रविधि औपचारिक निरीक्षण-प्रविधि का ही संशोधित रूप है। इस प्रविधि को समाजशास्त्र के क्षेत्र में शोध कार्य के लिए बहुत उपयोगी पाया गया है। आदिवासियों की जीवनशैली का विश्वसनीय परिचय इसी प्रकार की निरीक्षण-प्रविधि के माध्यम से समाजशास्त्र में शोधकर्ताओं ने प्रस्तुत किया है।
- सर्वप्रथम, व्यवहार-प्रारूप (Behaviour Pattern) के विषय में निर्णय ले लेना चाहिए। अर्थात् यह भली भाँति सोच लिया जाये कि व्यवहार का कौन से पक्ष का अवलोकन करना है। इस प्रकार व्यवहार-निरीक्षण, की परिसीमायें निर्धारित की जाती हैं।
- तत्पश्चात्, चयन किए गये व्यवहार के पक्षों को इस प्रकार परिभाषित करना चाहिए कि वह बालक की उस प्रक्रिया के बारे में सूचना दे सकें जो प्रकट रूप से देखी जा सके। इस प्रकार के निरीक्षक अपने कार्य के लिए संक्रियात्मक परिभाषाओं का निर्माण करता है।
- इसका उपयोग बालकों एवं प्रौढ़ों दोनों के अवलोकन के लिए किया जा सकता है।
- इसका उपयोग गूंगे, बहरे एवं अन्य अपंगों के व्यवहार-आकलन के लिए भी किया जा सकता है।
- इस प्रकार के निरीक्षण के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार का प्राकृतिक परिस्थितियों में अध्ययन किया जाता है।
- विभिन्न अवलोकनकर्त्ताओं को अवलोकन द्वारा किया गया विवरण समान नहीं होता।
- अवलोकनकर्त्ताओं को अवलोकन करने में समय अधिक लगता है।
- अवलोकन के स्वयं के भाव, उसकी मनोवृत्ति, शारीरिक एवं मानसिक स्थिति, थकान आदि का भी अवलोकन पर प्रभाव पड़ता है।
- अवलोकन विधि को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये।
- निरीक्षण का उद्देश्य स्पष्ट रूप से परिभाषित कर लेना चाहिये।

नोट

- निरीक्षित घटना का रिकार्ड तथा उसकी आख्या (report) वास्तविक एवं शुद्ध हो।
- निरीक्षण की व्याख्या वस्तुनिष्ठ ढंग से होनी चाहिये।

27.7 शब्दकोश (Keywords)

- **निरीक्षण**—किसी वस्तु की पूर्ण रूप से देखरेख तथा निगरानी करना।
- **प्रणालीगत**—किसी बने हुए कार्यक्रम के अनुरूप कार्य करना।

27.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निरीक्षण का क्या अर्थ है?
2. निरीक्षण अथवा अवलोकन कितने प्रकार के हैं? इनका संक्षिप्त विवरण दीजिए।
3. निरीक्षण विधि की क्या विशेषताएँ हैं?
4. निरीक्षण विधि की परिसीमाओं का उल्लेख कीजिए।
5. निरीक्षण विधि को और अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए क्या सुझाव हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	
2.	1. नियंत्रित प्रयोगों	2. बाह्य निरीक्षण	3. अप्रत्यक्ष निरीक्षण	4. परिस्थिति परीक्षण।

27.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।
3. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—28: साक्षात्कार (Interview)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
28.1 साक्षात्कार का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Interview)
28.2 साक्षात्कार तकनीकी के प्रकार (Kinds of Interview Technique)
28.3 साक्षात्कार तकनीक की प्रक्रिया (Process of Interview Technique)
28.4 सारांश (Summary)
28.5 शब्दकोश (Keywords)
28.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
28.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् सक्षम होंगे—

- साक्षात्कार के अर्थ पर एवं परिभाषा की व्याख्या करने में।
- साक्षात्कार तकनीक की प्रक्रिया और प्रकारों का विश्लेषण करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्ति के आमने-सामने बैठकर प्रत्यक्ष, निरीक्षण, प्रश्न आदि के माध्यम से उसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना तथा उस जानकारी के मूल्यांकन के आधार पर निर्णय लेना, मूल्यांकन सम्बन्धित परिणामों को विश्वसनीय बनाने में सहायक होता है। इस दृष्टि से प्रयुक्त की जाने वाली मूल्यांकन प्रविधियों के अन्तर्गत, साक्षात्कार प्रविधि का विशेष महत्त्व है।

28.1 साक्षात्कार का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Interview)

साक्षात्कार, एक व्यक्तिनिष्ठ अथवा आत्मनिष्ठ विधि है, जिसके आधार पर, व्यक्ति की योग्यताओं, गुणों, समस्याओं आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है। विद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के सक्षम अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती हैं, जिनके फलस्वरूप, उनके विकास की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार की समस्याओं को समझने व उनका निरीक्षण करने की दृष्टि से, साक्षात्कार विशेष सहायक होता है। छात्रों को निर्देशन प्रदान करने की दृष्टि से भी, साक्षात्कार का महत्व कम नहीं है। साक्षात्कार के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु विभिन्न विद्वानों ने प्रयास किए हैं। इनमें से कुछ विद्वानों के विचारों को परिभाषाओं के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है—

गुड तथा हॉट के अनुसार—"किसी उद्देश्य हेतु किया गया गहन वार्तालाप ही साक्षात्कार है।"

जॉन जी. डार्ले के अनुसार—"साक्षात्कार, एक उद्देश्ययुक्त वार्तालाप है।"

पी. वी यंग के अनुसार—"साक्षात्कार को एक क्रमबद्ध प्रणाली माना जा सकता है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के आन्तरिक जीवन में, अधिक या कम कल्पनात्मक रूप से प्रवेश करता है, जो उसके लिए सामान्यत: तुलनात्मक रूप से अपरिचित है।"

बी.एम.पामर के अनुसार—"साक्षात्कार, दो व्यक्तियों के बीच, एक सामाजिक स्थिति की रचना करता है। इसमें प्रयुक्त मनौवैज्ञानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत, दोनों व्यक्तियों को परस्पर, प्रति उत्तर देने पड़ते हैं।"

सी.ए.मोजर के अनुसार—"औपचारिक साक्षात्कार, जिसमें पूर्व निर्धारित प्रश्नों को पूछा जाता है तथा उत्तरों को प्रमापीकृत रूप में संकलित किया जाता है, बड़े सर्वेक्षणों में निश्चित रूप से उपयोगी है।"

सिन पाओं यंग के अनुसार—"साक्षात्कार, क्षेत्रीय कार्य की पद्धति है जो एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों के व्यवहार को देखने, कथनों को लिखने और सामाजिक अथवा समूह अन्त:क्रिया के निश्चित परिणामों का निरीक्षण करने हेतु उपयोग की जाती है। अतएव यह एक सामाजिक प्रक्रिया है। यह दो व्यक्तियों के बीच, अन्त:क्रिया से सम्बन्धित होती है।

गुड तथा हाट—"साक्षात्कार, मूल रूप में एक सामाजिक प्रक्रिया है।"

एम.एन.बसु के अनुसार—"साक्षात्कार व्यक्तियों के आमने-सामने के कुछ बातों पर मिलना या एकत्र होना कहा जा सकता है।

साक्षात्कार तकनीक की विशेषताएँ

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर, साक्षात्कार की कुछ विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं, जिनका उल्लेख निम्नलिखित है—

1. साक्षात्कार, पारस्परिक विचारों के आदान-प्रदान का सर्वश्रेष्ठ साधन है।
2. साक्षात्कार की प्रक्रिया के अन्तर्गत, दो या दो से अधिक व्यक्तियों का वार्तालाप अथवा निकट सम्पर्क होता है।
3. साक्षात्कार, पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित अन्त:क्रिया की प्रविधि है।
4. साक्षात्कार, उद्देश्य केन्द्रित होता है।
5. इसके आधार पर व्यक्ति के सम्बन्ध में तथ्यपूर्ण सामग्री का संकलन किया जाता है।
6. यह प्राथमिक सम्बन्धों पर आधारित होती है।

गुड तथा *हॉट* ने साक्षात्कार की जिन विशेषताओं का निर्धारण किया है, उनका उल्लेख, निम्नलिखित प्रकार है—

1. इसका, समाज के किसी भी वर्ग पर प्रयोग किया जा सकता है।
2. इसमें सहयोग करने को लोग सरलता से तैयार हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें लिखित रूप में कुछ भी नहीं देना होता है।
3. इस विधि का लचीलापन, इसकी प्रमुख विशेषता है।
4. इस विधि द्वारा, केवल यही ज्ञान नहीं है कि विषयी किस-किस विषय के बारे में क्या उत्तर देता है? वरन् उसकी भाव-भंगिमा इससे कुछ अधिक ही बता देती है।
5. इस विधि द्वारा, व्यवहार के उन आयामों का अध्ययन भी किया जा सकता है। जिसे प्राय: सभ्य समाज में प्रकट करने से लोग हिचकिचाते हैं।

साक्षात्कार तकनीकी के उद्देश्य (Objectives of Interview Technique)

साक्षात्कार तकनीकी के कई उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों को निरन्तर ध्यान में रखकर ही साक्षात्कार की प्रक्रिया को सम्पन्न किया जाता है। साक्षात्कार के प्रमुख उद्देश्य हैं—

नोट

1. प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके सूचना संकलन करना।
2. परिकल्पनाओं हेतु साक्षियों का प्रमुख स्रोत।
3. गुप्त एवं व्यक्तिगत सूचना प्राप्त करना।
4. निरीक्षण द्वारा अन्य उपयोगी सूचना प्राप्त करना।

1. **प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके सूचना संकलन करना**–साक्षात्कार, प्रत्यक्ष सम्पर्क पर आधारित होता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत, जो भी सूचनायें प्राप्त की जाती हैं, प्रत्यक्ष सम्पर्क के आधार पर प्राप्त की जाती है। इसमें, वास्तविक साक्षात्कार के समय, साक्षात्कार देने वाला और साक्षात्कार लेने वाला, एक-दूसरे के आमने-सामने बैठते हैं। साक्षात्कारकर्त्ता, निर्धारित उद्देश्यों से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्न, साक्षात्कारकर्ता से पूछता है। इनके आधार पर ही उसे, विषयों की रूचियों, योग्यताओं कौशलों, इच्छाओं, अभिवृत्तियों आदि से सम्बन्धित सूचनायें प्राप्त होती हैं। इस प्रकार, प्रत्यक्ष सम्पर्क के आधार पर तथ्यागत सूचनायें प्राप्त करने की दृष्टि से, साक्षात्कार का विशेष महत्त्व है।
2. **परिकल्पनाओं हेतु साक्षियों का प्रमुख स्रोत**–परिकल्पनाओं के लिए, अप्रत्यक्ष रूप में सामग्री का संकलन करना भी साक्षात्कार का एक प्रमुख उद्देश्य है। इस दृष्टि से यह बहुत उपयोगी है। यही नहीं, साक्षात्कार को, परिकल्पना के निर्माण में सहायक होने की दृष्टि से, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अथवा सर्वश्रेष्ठ प्रविधि के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसका कारण यह है कि साक्षात्कार के आधार पर, अनेक नवीन तथ्यों को बोध होता है। ये तथ्य, साक्षात्कारदाता की रूची, मनोवृत्ति, अभिवृत्ति, योग्यताओं, कौशलों, विभिन्न समस्याओं आदि के आधार पर प्राप्त होते हैं।
3. **गुप्त एवं व्यक्तिगत सूचना प्राप्त करना**–साक्षात्कार के माध्यम से व्यक्ति के सम्बन्ध में ऐसी अनेक जानकारियाँ प्राप्त हो जाती हैं जो किसी अन्य प्रविधि के माध्यम से प्राप्त की जानी सम्भव नहीं हैं। इस प्रकार की जानकारियों का उपयोग, अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है। न केवल साक्षात्कारदाता, वरन् अन्य व्यक्तियों की समस्याओं का समाधान करने में भी, ये सूचनायें, महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। जहाँ तक साक्षात्कारकर्त्ता का प्रश्न है, उसे निर्देशित करने या उसके सम्बन्ध में भावी-कथन हेतु, अथवा उसकी किसी अन्य समस्या का समाधान करने की दृष्टि से इस प्रकार की गोपनीय सूचनाओं का ही सर्वाधिक महत्त्व होता है।
4. **निरीक्षण द्वारा, अन्य उपयोगी सूचना प्राप्त करना**–यह भी साक्षात्कार का एक प्रमुख उद्देश्य है। गुड, बार तथा स्केट के अनुसार–"साक्षात्काकर्त्ता को किसी व्यक्ति के साक्षात्कार के लिए अवसर ही नहीं मिलता है, बल्कि उसे, उसके घर के वातावरण, परिस्थितियों, पास-पड़ोस का वातावरण, सम्बन्धियों के व्यवहार, मित्रों की आदतों इत्यादि, सभी का अध्ययन करने का सही अवसर मिल जाता है। साक्षात्कार के बहाने से वह कई नई बातों की जानकारी प्राप्त कर सकता है, अन्यथा शायद उसे भी अनायास, निरीक्षण करने में संकोच व लज्जा आ सकती है। इस प्रकार, साक्षात्कारकर्त्ता को निरीक्षण व साक्षात्कार दोनों को करने का अवसर मिल जाता है।"

28.2 साक्षात्कार तकनीकी के प्रकार (Types of Interview Technique)

साक्षात्कार तकनीकी के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. परामर्श साक्षात्कार (Counseling Interview)
2. उपचारात्मक साक्षात्कार (Remedial Interview)
3. निदानात्मक साक्षात्कार (Diagnostic Interview)
4. तथ्य संकलन साक्षात्कार (Interview for Data Collection)
5. अनुसन्धान साक्षात्कार (Research Interview)
6. नियुक्ति साक्षात्कार (Selection Interview)
7. सूचनात्मक साक्षात्कार (Information Interview)।

नोट

कार्यों के आधार पर इन्हें चार खण्डों में वर्गीकृत किया गया है—

(क) कार्यों के आधार पर वर्गीकरण।

(ख) औपचारिकता के आधार पर वर्गीकरण।

(ग) सूचनादाताओं की संख्या के आधार पर वर्गीकरण।

(घ) अध्ययन पद्धति के आधार पर वर्गीकरण।

उनमें से प्रत्येक वर्गीकरण के अन्तर्गत आने वाले प्रकारों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित हैं—

(क) कार्यों के आधार पर वर्गीकरण

कार्यों के आधार पर वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया गया है—

(1) **कारण-प्रभाव साक्षात्कार**—इस प्रकार साक्षात्कार का प्रयोग, अधिकांश: निर्देशन-परामर्श व अनुसन्धान के अन्तर्गत किया जाता है। जब किसी समस्या से सम्बन्धित कारणों की खोज करनी होती है। प्राय: तभी इस प्रकार के साक्षात्कार को सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार, समस्या से सम्बन्धित कारणों की खोज करना, इस प्रकार के साक्षात्कार का उद्देश्य होता है।

(2) **उपचार साक्षात्कार**—जैसे कि इस साक्षात्कार के नाम से ही स्पष्ट है, इस साक्षात्कार का उद्देश्य, समस्या के कारणों को ज्ञात करने के उपरान्त, समस्या का उपचार करना होता है। इसके लिए, उन सभी से साक्षात्कार किया जाता है जो समस्या के उपचारार्थ, किसी भी दृष्टि से सहायक होते हैं।

(3) **अनुसंधान साक्षात्कार**—यह साक्षात्कार, अनुसन्धानकर्त्ताओं के द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं तथा इस साक्षात्कार का उद्देश्य, किसी प्रकार की मौलिक जानकारी प्राप्त करना होता है। गुड तथा हॉट के अनुसार—"गहन तथ्यों का पता लगाने के लिए जो साक्षात्कार कहा जाता है। इसके अन्तर्गत, व्यक्ति के मनोभावों, मनोवृत्तियों और अभिरुचियों व इच्छाओं का पता लगाकर, नये सामाजिक तथ्यों की खोज करनी होती है।"

(ख) औपचारिकता के आधार पर वर्गीकरण

औपचारिकता के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार है—

(1) **औपचारिक साक्षात्कार**—इस प्रकार के साक्षात्कार को नियोजित साक्षात्कार भी कहा जाता है। *गुड* तथा *हॉट* ने इस साक्षात्कार के बारे में लिखा है—

"इस प्रकार के साक्षात्कार में विशिष्ट, समस्याओं, सम्भावनाओं व उनके समाधान की ओर ध्यान दिया जाता है। वस्तुत: साक्षात्कार, एक सुनिश्चित योजना के अनुसार होता है। इसी सुनिश्चित योजना के अनुसार, परामर्श लेने वाला, अपनी भावनाओं, साक्षात्कारकर्त्ता ही करता है, क्योंकि वह इसमें अधिक सक्षम है। परामर्श लेने वाला साक्षात्कार की योजना एवं उसके निर्देशों के अनुसार ही, किसी निष्कर्ष या निर्णय पर पहुँचता है।"

(2) **अनौपचारिक साक्षात्कार**—यह साक्षात्कार, अनिर्देशित साक्षात्कार के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। *गुड* तथा *हॉट* के अनुसार—

"इसमें परामर्श लेने वाला, स्वयं वाद-विवाद का नेतृत्व ग्रहण करता है। साक्षात्कार तो केवल, मित्रता के वातावरण में, रूचि प्रकट करके, साक्षात्कार देने वाले को, उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिए प्रोत्साहन देता है। वह परिस्थिति में अपने मूल्यांकन, निर्वाचन या निर्णय का आरोपण नहीं करता है। उन्मुक्त अभिव्यक्ति के पश्चात्, अन्तर्दृष्टि का विकास होता है। साक्षात्कार देने वाला स्वयं अपनी शक्ति एवं कमजोरियों का आभास पा लेता है। वह जान लेता है कि उसकी वास्तविक अभिवृत्तियाँ एवं इच्छाएँ क्या हैं? अत: इसमें क्रमश: विकास या प्रगति का वातावरण रहता है। इसमें बौद्धिक पक्ष की अपेक्षा, संवेगात्मक तत्वों पर अधिक बल दिया जाता है।"

(ग) सूचनादाताओं के आधार पर वर्गीकरण

सूचनादाताओं के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार है:

(1) **व्यक्तिगत साक्षात्कार**—इस प्रकार का साक्षात्कार एक अवसर पर, एक ही व्यक्ति से किया जाता है। इस

नोट

प्रकार के साक्षात्कारदाता और साक्षात्कार लेने वाले के मध्य, अन्त:क्रिया अधिक होती है, क्योंकि वहाँ, आमने-सामने, कुल मिलाकर दो ही व्यक्ति होते हैं। इस स्थिति में, साक्षात्कार देने वाले को, अपने उत्तर देने में, अधिक कठिनाई नहीं होती है। वह, साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर नि:संकोच देता चला जाता है। *स्कैट* ने, इस प्रकार के साक्षात्कार के कुछ गुणों एवं सीमाओं को उल्लेख किया है। उन्हीं के शब्दों में, ये गुण एवं सीमाएँ, निम्नलिखित हैं–

(अ) व्यक्तिगत साक्षात्कार के गुण–

1. वास्तविक एवं विश्वसनीय सूचना प्राप्त होती है।
2. इसमें किसी सन्देह का स्पष्टीकरण तुरन्त कर दिया जाता है।
3. अनावश्यक प्रश्नों को छोड़कर उपयोगी एवं आवश्यक प्रश्न पूछे जाते हैं। जिनसे अभीष्ट उत्तरों की प्राप्ति होती है।
4. व्यक्तिगत एवं संवेदनशील प्रश्नों के उत्तर पाने की सम्भावना होती है।

(ब) व्यक्तिगत साक्षात्कार की सीमाएँ–

1. एक व्यक्ति से एक ही समय में साक्षात्कार करने में अधिक समय लगता है।
2. व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की सम्भावना बढ़ जाती है।
3. इस पद्धति में आर्थिक व्यय भी अधिक है।

(2) **सामूहिक साक्षात्कार**–इस प्रकार के साक्षात्कार के अन्तर्गत, एक समय में एक से अधिक साक्षात्कारदाताओं का साक्षात्कार लिया जा सकता है। साक्षात्कारकर्त्ता के द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि सभी साक्षात्कारदाता, उत्तर देने के लिए प्रेरित हों। *गुड* तथा *हॉट* ने, सामूहिक साक्षात्कार के लाभ और दोषों का उल्लेख भी किया है। उन्हीं के अनुसार–

(अ) सामूहिक साक्षात्कार के लाभ–

इसके प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं–

1. अधिक जनसंख्या में सामग्री संकलन का अच्छा साधन है।
2. चूंकि अधिक लोगों से साक्षात्कार किया जाता है, अत: प्राप्त सूचना अधिक विश्वसनीय होती है।
3. समय व धन दोनों की बचत, व्यक्तिगत साक्षात्कार की अपेक्षा अधिक होती है।
4. व्यक्तिगत पक्षपात की कम सम्भावना रहती है।

(ब) सामूहिक साक्षात्कार के दोष–

इसके मुख्य दोष निम्नलिखित हैं–

1. सभी प्रश्नों के उत्तर, एक साथ नहीं दिये जा सकते हैं।
2. समूहों के सदस्यों में आपसी मतभेद के कारण, सही जानकारी नहीं मिल पाती है तथा कभी-कभी, छोटा विवाद, बड़े संघर्ष का रूप धारण कर सकता है।
3. इसमें गोपनीयता का अभाव रहता है।

(घ) अध्ययन पद्धति के आधार पर वर्गीकरण

1. **अनिर्देशित साक्षात्कार**–इस प्रकार के साक्षात्कार को अव्यवस्थिति, असंचालित या अनियोजित साक्षात्कार के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। *गुड* तथा *हॉट* ने, इस प्रकार के साक्षात्कार के सम्बन्ध में लिखा है– "इस प्रकार के साक्षात्कार का उपयोग, प्राय: व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण, अभिवृत्ति, प्रेरणा आदि के अध्ययनों के लिए किया जाता है।" इस प्रकार का साक्षात्कार लचीली प्रवृत्ति का होता है, अत: इसमें साक्षात्कारकर्त्ता को अधिक सावधानी रखनी होती है। इसमें प्रश्नों की भाषा, क्रम आदि, पूर्व निश्चित नहीं होते हैं। साथ ही

नोट

प्रश्नों का उत्तर देने के लिए, साक्षात्कार देने वाले पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता है। अत: इस प्रविधि से प्राय: साक्षी द्वारा प्राकृतिक उत्तर प्राप्त होते हैं। उसके उत्तरों में स्वयं की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है तथा वे सामान्य को अपेक्षा विशेष होते हैं। इस विधि की उक्त स्वतंत्रता, इसकी एक सीमा भी है, क्योंकि इसके द्वारा प्रदत्तों से तुलनात्मक अध्ययन, सम्भव नहीं होता है। इसके प्रदत्तों का विश्लेषण भी कठिन होता है।"

(2) **उद्देश्य केन्द्रित साक्षात्कार**—*राबर्ट मर्टन* के द्वारा, इस प्रकार के साक्षात्कार का उपयोग, सबसे पहले किया गया था। इसका उद्देश्य, रेडियों, चलचित्र आदि की प्रभावशीलता का पता लगाना था। इस प्रकार के साक्षात्कार के अन्तर्गत, यह नितान्त आवश्यक है कि जिस व्यक्ति से साक्षात्कार लिया जाए, वह साक्षात्कार के प्रकारण के पूर्व परिचित हो तथा उस विषय में सम्बन्धित अनुभव भी, उस व्यक्ति को प्राप्त हो। इन अनुभवों की जानकारी के द्वारा ही, साक्षात्कारकर्त्ता को अपने उद्देश्य से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होती है, जिसका विश्लेषण करके, वह सार्थक निर्णयों पर पहुँचता है।

(3) **पुनर्रावृत्ति साक्षात्कार**—लैजार्सफील्ड के द्वारा, इस साक्षात्कार का सर्वप्रथम उपयोग किया गया। समाज में होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से इस प्रकार के साक्षात्कार का आयोजन किया जाता है। स्वाभाविक रूप से इस प्रकार के परिवर्तनों के सम्बन्ध में एक ही बार किए गए साक्षात्कार के आधार पर जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती है अत: साक्षात्कार का आयोजन कई बार किया जाता है। यही कारण है कि इस प्रकार के साक्षात्कार को पुनर्रावृत्ति साक्षात्कार के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

साक्षात्कार के उपरोक्त प्रकारों के अतिरिक्त गुड तथा हॉट ने साक्षात्कार के निम्नलिखित प्रकारों को उल्लेख किया है—

1. संरचित साक्षात्कार (Structured Interview)
2. असंरचित साक्षात्कार (Unstructured Interview)
   (क) अनियोजित साक्षात्कार (Unplanned)
   (ख) गहन साक्षात्कार (Internsive), तथा
   (ग) नैदानिक साक्षात्कार (Diagnostic)।
3. उद्देश्य केन्द्रित साक्षात्कार (Focussed Interview)

क्या आप जानते हैं सामूहिक साक्षात्कार, कभी-कभी, एक वाद-विवाद सभा का रूप धारण कर लेता है। साक्षात्कार देने वाले, विभिन्न प्रकार से अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते हैं। कुछ शाब्दिक रूप में अपना उत्तर देते हैं तो कुछ अपने हाव-भाव के माध्यम से। कुछ, किसी विचार का विरोध करते दिखाई देते हैं तो कुछ उनका समर्थन।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **निम्नलिखित कथनों में 'सत्य' तथा 'असत्य' लिखिए** (State whether following the statements are 'True' or 'False')—
   1. साक्षात्कार, पारस्परिक विचारों के आदान-प्रदान का सर्वश्रेष्ठ साधन है।
   2. साक्षात्कार उद्देश्य केन्द्रित होता है।
   3. कारण प्रभाव साक्षात्कार में समस्या के कारणों को ज्ञात करने के उपरान्त, समस्या का उपचार करना होता है।
   4. उद्देश्य साक्षात्कार को अव्यवस्थित, असंचालित या अनियोचित साक्षात्कार के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

नोट

28.3 साक्षात्कार तकनीक की प्रक्रिया (Process of Interview Technique)

साक्षात्कार की मुख्य रूप से तीन अवस्थायें होती हैं–

(क) साक्षात्कार का प्रारम्भ (Opening),

(ख) साक्षात्कार का मुख्य रूप (The Main Body), तथा

(ग) साक्षात्कार का अन्तिम चरण (The Closing)।

(क) साक्षात्कार का प्रारंभ (Opening of Interview)

यह साक्षात्कार का प्रथम भाग है जिसके अन्तर्गत, साक्षात्कार लेने वाले और साक्षात्कारदाता के मध्य, मधुर सम्बंधों की स्थापना पर महत्त्व दिया जाता है। साक्षात्कार को सफल बनाने की दृष्टि से, दोनों के मध्य, मधुर सम्बन्धों की स्थापना, नितान्त आवश्यक होती है। साक्षात्कार प्रारम्भ करने से पूर्व अथवा साक्षात्कार की प्रक्रिया के अन्तर्गत, इसी उद्देश्य से, निम्न सुझावों पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

(1) **आत्मीयता की स्थापना**–साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार लेने वाले के साथ आत्मीयतापूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के सम्बन्धों के अभाव में, साक्षात्कारदाता को वांछित उत्तर देने हेतु प्रेरित कर पाना कठिन होता है। अत: जो व्यक्ति अपने सामने बैठे व्यक्ति से मधुर अथवा आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने में दक्ष होता है, वही साक्षात्कार लेने की दृष्टि से उपयुक्त व्यक्ति हो सकता है। प्रत्येक साक्षात्कारकर्त्ता के लिए, यह एक अनिवार्य गुण है, जिनका अधिकार विकास, उसमें होना चाहिए। इस सन्दर्भ में *डेविस* एवं *रॉबिन्स* के द्वारा दिए गए कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं–

1. साक्षात्कारकर्त्ता को, जहाँ भी आवश्यक हो, साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के साथ सहानुभूति प्रकट करना आना चाहिए। यह सहानुभूति, शब्दों अथवा हाव-भाव के माध्यम से प्रकट की जा सकती है।
2. साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति में यह योग्यता होनी चाहिए कि वह साक्षात्कारदाता को यह विश्वास दिला सके कि उसकी समस्या का निराकरण करने में वह सफल होगा तथा उसके द्वारा की गई समस्त सूचनाओं को, प्रत्येक दृष्टि से गोपनीय रखा जाएगा। इस प्रकार का विश्वास उत्पन्न करने की योग्यता के अभाव में आत्मीयता की स्थापना कर पाना पूर्णतया असम्भव है।
3. स्वीकृत-साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के कुछ विचारों अथवा कार्यों के साथ अपनी सहमति प्रकट करना अथवा उन्हें स्वीकार करना आवश्यक होता है। इस स्वीकृति का बोध होने पर ही, साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट करता है। एक प्रकार से, यह व्यवहार, साक्षात्कार देने वाले को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह अपनी भावनाओं को नि:संकोच अभिव्यक्त करे।
4. साक्षात्कार के मध्य, समुचित स्थान पर, साक्षात्कारकर्त्ता को स्थान ग्रहण करना चाहिए।
5. अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए, व्यक्तिगत सन्दर्भ अथवा व्यक्तिगत अनुभवों का उपयोग करने की कला से भी, प्रत्येक साक्षात्कारकर्त्ता को परिचित होना चाहिए।
6. साक्षात्कार को, साक्षात्कारदाता से, अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक विचारों की अभिव्यक्ति करने की प्रेरणा देने के लिए कुछ प्रश्न भी पूछने चाहिए।
7. साक्षात्कार के अन्तराल, अत्यन्त कुशलता एवं सावधानी के साथ, साक्षात्कार होने वाले को, यदा-कदा, यह भय भी प्रदर्शित करना चाहिए कि यदि साक्षात्कार, सही सूचनाएँ नहीं देता तो इसके परिणाम, साक्षात्कारदाता के लिए, उपयोगी नहीं होंगे।

नोट

नोट्स साक्षात्कारकर्त्ता को, साक्षात्कारदाता के अनपेक्षित अथवा असंगत कथनों के प्रति आश्चर्य का भाव भी प्रकट करना चाहिए। इस प्रकार के भाव प्रकट करने का परिणाम यह होता है कि साक्षात्कार देने वाला, बिना कहे ही, अपने व्यवहार में सुधार कर लेता है।

(2) **प्रारम्भ में व्यवस्थित रचना पर कम ध्यान**—प्रारम्भ में, साक्षात्कार स्वतन्त्र होना चाहिए। साक्षात्कार देने वाले के प्रवेश करते ही, उद्देश्य केन्द्रित साक्षात्कार की प्रक्रिया को प्रारम्भ नहीं किया जाना चाहिए।

(3) **अनुमोदन**—अनुमोदन का आशय, साक्षात्कार लेने वाले के द्वारा, साक्षात्कार देने वाले को वार्तालाप हेतु स्वतन्त्रता प्रदान करना है। इसके अन्तर्गत, साक्षात्कारदाता के द्वारा यह विश्वास भी उत्पन्न किया जाता है कि साक्षात्कार देने वाला जो कुछ भी कहेगा, उसे ध्यान से सुना जाएगा, स्वीकार किया जाएगा। साक्षात्कार करने वाले के द्वारा, साक्षात्कारदाता के किसी भी कथन के सम्बन्ध में, निर्णयात्मक रूख नहीं अपनाया जाता है।

(4) **बातचीत का समान समय**—साक्षात्कार की प्रक्रिया में निरन्तर यह भी आवश्यक है कि साक्षात्कार लेने और देने वाले को, वार्तालाप का समान समय दिया जाए। यदि केवल साक्षात्कारकर्त्ता ही, अपने विचारों को प्रकट करता रहेगा तो साक्षात्कार देने वाले को अपनी वैचारिक व भावनात्मक अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त नहीं हो पाएगा। इसी प्रकार यदि केवल, साक्षात्कार देने वाला ही, सारे समय बोलता रहेगा, तो साक्षात्कार लेने वाला, अपने उद्देश्य की प्राप्ति से वंचित हो जाएगा।

साक्षात्कार के इस प्रारम्भिक भाग के सम्बन्ध में *गुड* तथा *हॉट* के द्वारा भी कुछ सोपानों का निर्धारण किया गया है। इन सोपानों का संक्षिप्त उल्लेख निम्नलिखित है।

1. **समस्या से पूर्ण परिचित**—साक्षात्कार का प्रारम्भ करने से पूर्व, यह नितान्त आवश्यक है कि समस्या के विविधि पहलुओं के सम्बन्ध में पूर्व-ज्ञान प्राप्त कर लिया जाए। अतः इस दृष्टि से, साक्षात्कार लेने वाले को पूर्ण तत्पर होना चाहिए। साक्षात्कार देने वाले की प्रत्येक शंका का समाधान करने की योग्यता, उसमें होनी चाहिए। प्रायः साक्षात्कार के समय, साक्षात्कार देने वाले के द्वारा भी, किसी न किसी प्रकार की जिज्ञासा प्रकट कर दी जाती है। इस स्थिति में यह परम आवश्यक हो जाता है कि साक्षात्कारकर्त्ता के द्वारा, उसकी सभी जिज्ञासाओं की, समुचित रूप से, पूर्ति की जाए। ऐसा न हो पाने की स्थिति में, साक्षात्कार देने वाले के मन में, साक्षात्कार लेने वाले की योग्यता के प्रति शंका का भाव, उत्पन्न हो जाता है, और प्रायः स्थिति अत्यन्त हास्यास्पद भी हो जाती है। कई बार ऐसा भी होता है कि साक्षात्कारदाता, साक्षात्कार लेने वाले की अयोग्यता के बारे में ही प्रश्न कर देते हैं, अथवा स्वयं भी सन्तोषप्रद उत्तर देने में, असक्षमता प्रदर्शित करने लगते हैं। अतः साक्षात्कार का प्रारम्भ करने से पूर्व, समस्या से पूर्णतया परिचित होना आवश्यक है।
2. **साक्षात्कार निर्देशिका**—यह साक्षात्कार योजना का दूसरा चरण है; जिसके अन्तर्गत, समस्या से परिचित होने के उपरान्त, साक्षात्कार निर्देशिका को तैयार किया जाता है। समस्या के विभिन्न आयामों से सम्बन्धित निर्देशनों का संकलन; इस निर्देशिका के अन्तर्गत किया जाता है। यह निर्देशिका, एक प्रकार से, सम्पूर्ण साक्षात्कार योजना की रूपरेखाओं को प्रस्तुत करने में सहायक होती है। समस्या से सम्बन्धित, प्रत्येक इकाई की परिभाषा, निर्देशिका में दी जाती है, जो साक्षात्कारकर्त्ता के लिए, अनेक दृष्टियों से सहायक होती है।

गुड तथा *हॉट* ने साक्षात्कार निर्देशिका के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत, स्पष्ट किया है। उन्हीं के अनुसार—

1. इसको तैयार करने से, अध्ययन में एकरूपता आ जाती है। इस निर्देशिका का उपयोग, अलग-अलग व्यक्ति भी कर सकते हैं क्योंकि इसमें स्पष्ट निर्देश रहते हैं जो सभी साक्षात्कारकर्ताओं के लिए सामान्य होते हैं।
2. समस्या के समस्त पक्षों का समावेश होने के कारण, कोई महत्त्वपूर्ण पक्ष, छूट नहीं सकता है।

नोट

3. साक्षात्कार निर्देशिका में प्रश्नों को क्रमबद्ध तरीके से लिखा जाता है, जिससे सूचनादाता, सही, सूचना देने में घबराते नहीं हैं। क्रमबद्धता के अभाव में, कई छोटी-मोटी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिसे साक्षात्कारकर्त्ता को तो कठिनाई होती है, परन्तु उत्तरदाता, अपने को एक विचित्र स्थिति में पाता है।
4. साक्षात्कार निर्देशिका होने से, अनुसंधानकर्त्ता को व्यर्थ में, स्मरण-शक्ति पर अनावश्यक दबाव डालने की आवश्यकता नहीं हैं।

(3) **साक्षात्कारदाताओं का चयन**–इस सोपान की आवश्यकता, वहाँ होती है जहाँ किसी शोधपरक समस्या का अध्ययन किया जाता है। यहाँ, समस्या के कारणों, प्रभावों आदि की जानकारी के लिए यह आवश्यक होता है कि उपयुक्त साक्षात्कारदाताओं का चयन किया जाता है। साक्षात्कार को देने वालों का चयन करने के लिए, निर्देशन पद्धति हेतु न्यादर्श विधि का प्रयोग किया जाता है। साक्षात्कार हेतु, यही प्रयास किया जाना चाहिए कि इसी प्रकार के साक्षात्कारदाताओं का चयन किया जाए जो समस्या से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित हो तथा निर्भीकता एवं स्पष्टता के साथ, प्रश्नों का उत्तर दे सके। यदि ऐसे व्यक्ति, अनुसन्धान कार्यों में रूचि रखते हों तो और भी अच्छा है। *गुड* तथा *हॉट* के अनुसार–इस प्रकार के साक्षात्कार देने वालों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। (1) उच्चाधिकारी (2) विशेष तथा (3) सामान्य व्यक्ति।

(4) **समय एवं स्थान का निर्धारण**–सन्तोषप्रद उत्तर प्राप्त करने की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि साक्षात्कार देने वालों से समय एवं स्थान का निर्धारण पहले से ही कर लिया जाये।

(ख) साक्षात्कार का मुख्य पक्ष (The Main Body of Interview)

यह साक्षात्कार का महत्त्वपूर्ण भाग होता है, क्योंकि इसी भाग के अन्तर्गत, वांछित सूचनाओं का संकलन किया जाता है। इस भाग को अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिए, निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है–

1. साक्षात्कार के अन्तर्गत पूछे जाने वाले प्रश्न, इस प्रकार के होने चाहिए कि साक्षात्कार, प्रश्नों का उत्तर देने हेतु, स्वयं को प्रेरित अनुभव करें।
2. यदि साक्षात्कार, देने वाला प्रश्नों का उत्तर देते-देते, बीच में ही रुक जाए तो यह समझना चाहिए कि उसके मस्तिष्क में कोई वैचारिक द्वन्द्व चल रहा है। इस प्रकार की निस्तब्धता का रचनात्मक उपयोग किया जाना चाहिए।
3. एक ही बार के साक्षात्कार के अन्तर्गत, समस्त सूचनाओं को प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार की स्थिति में, साक्षात्कारदाता, स्वयं को तनावग्रस्त अनुभव करने लगते हैं और उत्तर देने में अरुचि प्रदर्शित करने लगते हैं। अत: विशेषकर, उस स्थिति में, जब काफी सूचनायें प्राप्त की जानी हों, केवल सीमित उत्तर प्राप्त करने के प्रयास किए जाने चाहिए।
4. यह भी आवश्यक है कि साक्षात्कारकर्त्ता के द्वारा, साक्षात्कार देने वाले की भावनाओं, दृष्टिकोणों आदि को समझा जाये। अपनी अभिवृत्तियों, भावनाओं आदि से सम्बन्धित विचारों, व्यवहारों को प्रकट करते समय, प्रत्येक साक्षात्कारदाता, साक्षात्कार लेने वाले से यह अपेक्षा करता है कि साक्षात्कारकर्त्ता, उसकी भावनाओं, विचारों, दृष्टिकोणों का आदर करें तथा उन्हें समझने का प्रयास करें। अत: अपने शब्दों, भाव-भंगिमाओं आदि के माध्यम से, साक्षात्कारदाता को यह विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि उसकी भावनाओं एवं अभिवृत्तियों को महत्त्व दिया जा रहा है।
5. साक्षात्कारदाता को अभिव्यक्ति का अवसर देने का आशय यह भी नहीं है कि उसे निरन्तर, उद्देश्यहीन बोलने दिया जाए। केवल नाम की स्वतन्त्रता ही उसे प्रदान की जानी चाहिए तथा जब भी वह विषय से पृथक की बात करने लगे, उसे, प्रश्नों के माध्यम से, विषय पर लाया जाना चाहिए। अभ्यर्थी से विषयान्तर चर्चा नहीं करनी चाहिए।

साक्षात्कार के मध्य भाग अथवा साक्षात्कार के वास्तविक रूप से संचालन की प्रक्रिया के सम्बन्ध में गुड तथा हॉट ने भी कुछ सोपानों का निर्धारण किया है ये सोपान हैं–

नोट

1. साक्षात्कारदाताओं से सम्पर्क स्थापित करना।
2. सहयोग की याचना।
3. प्रश्न पूछना।
4. धैर्य एवं सहानुभूति के साथ सुनना।
5. साक्षात्कार का नियन्त्रण एवं प्रमाणीकरण।

(ग) साक्षात्कार का अन्तिम सोपान (Closing of Interview)

साक्षात्कार को किस प्रकार समाप्त किया जाये, वह एक जटिल कार्य है। प्राय: दो प्रकार से, इसकी समाप्ति की जाती है—

1. साक्षात्कार की समाप्ति, इस प्रकार करना, जिससे छात्रों को सन्तोष प्राप्त हो।
2. साक्षात्कार को, इस प्रकार समाप्त करना, जिससे दूसरे साक्षात्कार को आरम्भ करने में कम समय लगे।

प्राय: ऐसा देखने में आता है कि साक्षात्कार लेने वाला व्यक्ति, साक्षात्कार की अवधि इतनी अधिक कर देता है कि उसको समाप्त करना, उसके लिए ही कठिन हो जाता है। अत: यह आवश्यक है कि साक्षात्कार को उद्देश्य केन्द्रित बनाए रखते हुए, अधिक देर तक सम्पन्न करना है, जिसके साथ, पहले किया गया है तो साक्षात्कार को इस प्रकार भी, सम्पन्न किया जा सकता है—

साक्षात्कार की समाप्ति के सम्बन्ध में के *गुड* तथा *हॉट* ने लिखा है—"साक्षात्कार की समाप्ति, प्राकृतिक, मधुर और सौम्य वातावरण में होनी आवश्यक है। यह, साक्षात्कारकर्त्ता की कुशलता एवं चतुरता पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार, साक्षात्कार की समाप्ति करे, जिससे सामने वाला यह अनुभव न करे कि उसका समय व्यर्थ गया, उसे परेशान किया गया या उससे गुप्त बातों की जानकारी प्राप्त की गई। यदि उत्तरदाता, थकान अनुभव कर रहा हो या साक्षात्कार को आगे जारी करने में अनिच्छुक हो तो साक्षात्कार को तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। यदि कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न रह गए हो तो उसे वह दूसरी बार साक्षात्कार करके उत्तर प्राप्त कर सकता है। साक्षात्कार की समाप्ति पर, उसे सूचनादाता के प्रति बड़ा आभार प्रदर्शित करना चाहिए तथा यह आश्वासन बड़ी विनम्रता के साथ देना चाहिए कि उसकी प्रत्येक बात को पूर्णरूपेण गुप्त रखा जायेगा।"

साक्षात्कार की समाप्ति के बाद, एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य, साक्षात्कार की रिपोर्ट या प्रतिवेदन तैयार करना होता है। *गुड* तथा *हॉट* के अनुसार—"साक्षात्कार करने के बाद, साक्षात्कारकर्त्ता को अपने घर या कार्यालय में आकर, उसकी रिपोर्ट, तुरन्त तैयार कर लेनी चाहिए। इस कार्य में उसे आलस्य या उदासीनता नहीं दिखानी चाहिए, क्योंकि उसके समस्त निष्कर्ष, रिपोर्ट पर ही निर्भर करते हैं, यदि ऐसा नहीं किया गया तो कई बातों को वह भूल जायेगा, कई सन्दर्भ याद नहीं रहेंगे व कई नई जानकारियों को स्मरण करने में कठिनाई रहेगी। रिपोर्ट लिखते वक्त उसे पक्षपात व वैयक्तिकता से बचना चाहिए। निष्पक्ष व प्रमाणिकता रिपोर्ट ही अनुसंन्धान को महत्त्वपूर्ण व विश्वसनीय बनाती हैं।"

साक्षात्कार की प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए, कुछ बातों का ध्यान भी रखना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में कुछ उल्लेखनीय सुझाव हैं—

1. साक्षात्कारकर्त्ता को, साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति की भावनाओं को समझना तथा आदर करना चाहिए।
2. साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति को, उसकी बातों अथवा उसके द्वारा दी गई जानकारी को गुप्त रखने का आश्वासन देना चाहिए।
3. साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति को समय-समय पर, साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति को, साक्षात्कार के उद्देश्य से परिचित कराते रहना चाहिए।
4. साक्षात्कार लेने वाला व्यक्ति मित्र बनाने में निपुण होना चाहिए।

नोट

5. साक्षात्कारकर्त्ता को, साक्षात्कार प्रदाता की समस्त बातों को धैर्य एवं शान्तिपूर्वक सुनना चाहिए। उसे एक अच्छा श्रोता होना चाहिए।
6. साक्षात्कार को सफलता हेतु साक्षात्कार के लिए अधिक समय देना चाहिए।
7. साक्षात्कारकर्त्ता को प्राप्त विश्वास को साक्षात्कार की समाप्ति तक बनाये रखना चाहिए।
8. साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति को अपनी वास्तविक सेवायें प्रदान करनी चाहिए।
9. साक्षात्कार लेने से पूर्व साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति को सबसे पहले साक्षात्कार प्रदाता को वार्तालाप के लिए तैयार करना चाहिए।
10. साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति को, साक्षात्कार पर पूर्ण नियन्त्रण रखना चाहिए।
11. साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति में सहयोग एवं सहानुभूति की भावना का होना नितान्त आवश्यक है।
12. साक्षात्कार लेते समय, साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि साक्षात्कार प्रदाता को किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

बिंघम महोदय ने भी सफल साक्षात्कार को सम्पन्न करने हेतु कुछ सुझावों का उल्लेख किया है। यह सुझाव इस प्रकार हैं–

1. साक्षात्कारकर्त्ता को, साक्षात्कार प्रारम्भ करने से पहले यह निश्चित कर लेना चाहिए कि, साक्षात्कार का उद्देश्य क्या है? इसके अतिरिक्त साक्षात्कारकर्त्ता को, साक्षात्कार से प्राप्त करने वाले तथ्यों की सूची का निर्माण भी पहले ही कर लेना चाहिए।
2. साक्षात्कारकर्त्ता को, साक्षात्कार प्रदाता के बारे में जानकारी होनी चाहिए।
3. साक्षात्कारकर्त्ता को, साक्षात्कार लेने के पूर्व, साक्षात्कार प्रदाता से मिलकर, साक्षात्कार का दिन तथा समय निश्चित कर लेना चाहिए। जो समय और तिथि दोनों के अनुकूल हो।
4. सफल साक्षात्कार के लिए गोपनीयता का होना नितान्त आवश्यक है। साक्षात्कारकर्त्ता को, साक्षात्कार के बीच में प्रदाता को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि उसके द्वारा दी गई बातों को गोपनीय रखा जायेगा। यह विश्वास दिलाने पर ही वह अपने विचारों का स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्त कर सकेगा।
5. साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति को दृष्टिकोण निष्पक्ष होना नितान्त आवश्यक है। अत: साक्षात्कार लेते समय साक्षात्कारकर्त्ता को अपना दृष्टिकोण निष्पक्ष रखना चाहिए।

> *टास्क* साक्षात्कार के अंतिम सोपान से आप क्या समझते हैं?

साक्षात्कारकर्त्ता के गुण (The Qualities of Interviewer)

साक्षात्कारकर्त्ता के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

1. साक्षात्कारकर्त्ता को, साक्षात्कार प्रदाता द्वारा व्यक्त विश्वास को साक्षात्कार समाप्त होने तक यथावत बनाये रखना चाहिए।
2. साक्षात्कारकर्त्ता को पूर्व निर्धारित सूचनाओं को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।
3. साक्षात्कारकर्त्ता को स्पष्ट बोलने वाला होना चाहिए। दूसरे शब्दों में साक्षात्कारकर्त्ता को अपनी बात सहजतापूर्वक स्पष्ट रूप से कहनी चाहिए।
4. साक्षात्कारकर्त्ता का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए।
5. सद्भाव व विशुद्धता का गुण भी साक्षात्कारकर्ता में होना चाहिए।

नोट

6. साक्षात्कार प्रदाता की भावनाओं का सम्मान करना चाहिए, जिससे साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति अपने विचारों को स्वतन्त्रता पूर्वक व्यक्त कर सके।
7. साक्षात्कारकर्ता को, साक्षात्कार प्रदाता को वार्तालाप में समान समय प्रदान करना चाहिए। उसे सम्पूर्ण वातावरण पर केवल अपना ही अधिकार नहीं रखना चाहिए।
8. साक्षात्कारकर्ता हँसमुख होना चाहिए। साक्षात्कार के मध्य आने वाली गहन स्थिति को समाप्त करने के लिए, साक्षात्कारकर्ता में हास्य-विनोद का गुण होना नितान्त आवश्यक है।
9. साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति को अपनी अभिवृत्ति तथा कथन के द्वारा यह अभिव्यक्त करना चाहिए, कि उसकी साक्षात्कारप्रदाता में गहरी रुचि है।
10. साक्षात्कारप्रदाता की बुरी एवं अच्छी बातों पर साक्षात्कारकर्ता को आश्चर्य नहीं करना चाहिए।
11. *रूथ स्ट्रेंग* के अनुसार–"साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कारकर्ता के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है।"

साक्षात्कारकर्ता के गुणों का विवरण इस प्रकार है–

"साक्षात्कारकर्ता का साक्षात्कार में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। साक्षात्कार की सफलता या विफलता उसके व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है। एक अच्छे साक्षात्कारकर्ता में सहनशीलता, धैर्य, निष्पक्षता, बुद्धि, ईमानदारी व कुशलता एवं दक्षता भरी होनी चाहिए। साक्षात्कारकर्ता को कई प्रकार के सूचनादाताओं से मिलना होता है। कोई साक्षात्कारदाता बड़ा उदार व सौम्य स्वभाव का होता है तो और कोई उसके विपरीत। कोई सूचनादाता चालाक या धूर्त होते हैं व उनमें किसी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहने की प्रवृत्ति होती है। कोई साक्षात्कारदाता अपने अहम् को सन्तुष्ट करने के लिए बड़ी-बड़ी डींग हाँकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन सब प्रकार के लोगों से साक्षात्कारकर्ता का पाला पड़ता है। अत: उनके साथ व्यवहार बड़ी कुशलता, समझदारी व आत्म-विश्वास के साथ करना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण गुण उसमें पक्षपातहीनता, निष्पक्षता व बौद्धिक ईमानदारी का होना चाहिए क्योंकि अनुसन्धान की ये प्रमुख आवश्यकतायें हैं।"

साक्षात्कार तकनीक के लाभ (Uses of Interview Technique)

साक्षात्कार विधि के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

1. साक्षात्कार तकनीक द्वारा बालकों में अन्तर्दृष्टि का विकास होता है।
2. साक्षात्कार तकनीक के माध्यम से व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
3. यह अत्यन्त सरल तकनीक है।
4. किसी समस्या के कारणों को इस विधि के द्वारा जाना जा सकता है।
5. इस प्रविधि द्वारा व्यक्ति के विचार, संवेग इत्यादि सभी का अध्ययन किया जा सकता है।
6. साक्षात्कार विधि के अन्तर्गत व्यक्ति को अपनी निषेधात्मक भावनाओं को स्वीकार करने एवं उन्हें स्पष्ट करने का अवसर उपलब्ध होता है।
7. साक्षात्कार को लचीला बनाकर उसका उपयोग विभिन्न परिस्थितियों में किया जाता है।
8. छात्रों की समस्याओं के कारणों को इस तकनीक के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।
9. इस प्रविधि द्वारा प्रतिपादित उद्देश्यों को सहजता से प्राप्त किया जा सकता है।

साक्षात्कार तकनीकी के गुण (Merits of Interview Technique)

साक्षात्कार तकनीकी के प्रमुख गुणों का उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में किया गया है–

1. साक्षात्कार विधि के द्वारा शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों से वांछनीय सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं तथा अशिक्षित व्यक्तियों के विभिन्न पक्षों को भी अध्ययन किया जा सकता है।
2. ऐसी घटनायें जिनका प्रत्यक्ष निरीक्षण नहीं किया जा सकता, उन घटनाओं का अध्ययन साक्षात्कार प्रविधि द्वारा किया जा सकता है।

नोट

3. व्यक्तियों की भावनाओं, संवेगों, अभिवृत्तियों आदि का अध्ययन करने हेतु साक्षात्कार एक प्रभावशाली प्रविधि है।
4. इस प्रविधि द्वारा प्रकरण से सम्बन्धित सभी प्रकार की सामग्री को एकत्रित किया जा सकता है।
5. साक्षात्कार विधि द्वारा मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी सहजता से किया जा सकता है।
6. साक्षात्कार के समय, वार्तालाप से अनेक ऐसे तथ्य सामने आते हैं। जिन्हें अन्य विधियों द्वारा उजागर या व्यक्त नहीं किया जा सकता है।
7. साक्षात्कार द्वारा विश्व में घटित घटनाओं के प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है।
8. अनेक घटनायें ऐसी होती हैं, जिसकी पुनरावृत्ति असम्भव है, लेकिन उन घटनाओं का ज्ञान अनुसंधान हेतु नितान्त आवश्यक है। ऐसी स्थिति में एकमात्र उपयोगी एवं महत्वपूर्ण प्रविधि साक्षात्कार ही है।
9. इस प्रविधि द्वारा प्राप्त सूचनाओं की परख की जा सकती है।
10. समस्याओं की खोजबीन तथा उनका गहन अध्ययन करने हेतु साक्षात्कार एक अत्यन्त विश्वसनीय प्रविधि है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. साक्षात्कारकर्ता को, साक्षात्कार प्रदाता द्वारा व्यक्त .... को साक्षात्कार समाप्त होने तक यथावत बनाये रखना चाहिए।
2. .... का गुण भी साक्षात्कारकर्ता में होना चाहिए।
3. साक्षात्कार तकनीक द्वारा बालकों में .... का विकास होता है।
4. साक्षात्कार विधि द्वारा .... अध्ययन भी सहजता से किया जा सकता है।
5. साक्षात्कार विधि द्वारा विश्व में घटित घटनाओं के .... का अध्ययन किया जा सकता है।

28.4 सारांश (Summary)

- साक्षात्कार, एक व्यक्तिनिष्ठ अथवा आत्मनिष्ठ विधि है, जिसके आधार पर, व्यक्ति की योग्यताओं, गुणों, समस्याओं आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है। विद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के सक्षम अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती हैं, जिनके फलस्वरूप, उनके विकास की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।
- साक्षात्कार तकनीकी के कई उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों को निरन्तर ध्यान में रखकर ही साक्षात्कार की प्रक्रिया को सम्पन्न किया जाता है।
  1. प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके, सूचना संकलित करना।
  2. परिकल्पनाओं हेतु साक्षियों का प्रमुख स्रोत।
  3. गुप्त एवं व्यक्तिगत सूचना प्राप्त करना।
  4. निरीक्षण द्वारा अन्य उपयोगी सूचना प्राप्त करना।
- साक्षात्कार, प्रत्यक्ष सम्पर्क पर आधारित होता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत, जो भी सूचनायें प्राप्त की जाती है, प्रत्यक्ष सम्पर्क के आधार पर प्राप्त की जाती है। इसमें, वास्तविक साक्षात्कार के समय, साक्षात्कार देने वाला और साक्षात्कार लेने वाला, एक-दूसरे के आमने-सामने बैठते हैं। साक्षात्कारकर्त्ता, निर्धारित उद्देश्यों से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्न, साक्षात्कारकर्ता से पूछता है। इनके आधार पर ही उसे, विषयों की रुचियों, योग्यताओं कौशलों, इच्छाओं, अभिवृत्तियों आदि से सम्बन्धित सूचनायें प्राप्त होती हैं।

- परिकल्पनाओं के लिए, अप्रत्यक्ष रूप में सामग्री का संकलन करना भी साक्षात्कार का एक प्रमुख उद्देश्य है। इस दृष्टि से यह बहुत उपयोगी है। यही नहीं, साक्षात्कार को, परिकल्पना के निर्माण में सहायक होने की दृष्टि से, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अथवा सर्वश्रेष्ठ प्रविधि के रूप में स्वीकार किया जाता है।
- अनुसंधान साक्षात्कार—यह साक्षात्कार, अनुसन्धानकर्त्ताओं के द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं तथा इस साक्षात्कार का उद्देश्य, किसी प्रकार की मौलिक जानकारी प्राप्त करना होता है। गुड तथा हॉट के अनुसार—"गहन तथ्यों का पता लगाने के लिए जो साक्षात्कार कहा जाता है। इसके अन्तर्गत, व्यक्ति के मनोभावों, मनोवृत्तियों और अभिरुचियों व इच्छाओं का पता लगाकर, नये सामाजिक तथ्यों की खोज करनी होती है।"
- सामूहिक साक्षात्कार—इस प्रकार के साक्षात्कार के अन्तर्गत, एक समय में एक से अधिक साक्षात्कारदाताओं का साक्षात्कार लिया जा सकता है। साक्षात्कारकर्त्ता के द्वारा यह प्रयास किया जाता है, कि सभी साक्षात्कारदाता, उत्तर देने के लिए प्रेरित हों।
- साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार लेने वाले के साथ आत्मीयतापूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के सम्बन्धों के अभाव में, साक्षात्कारदाता को वांछित उत्तर देने हेतु प्रेरित कर पाना कठिन होता है। अतः जो व्यक्ति अपने सामने बैठे व्यक्ति से मधुर अथवा आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने में दक्ष होता है, वही साक्षात्कार लेने की दृष्टि से उपयुक्त व्यक्ति हो सकता है। प्रत्येक साक्षात्कारकर्त्ता के लिए, यह एक अनिवार्य गुण है, जो उसमें होना चाहिए।
- अनुमोदन का आशय, साक्षात्कार लेने वाले के द्वारा, साक्षात्कार देने वाले को वार्तालाप हेतु स्वतन्त्रता प्रदान करना है। इसके अन्तर्गत, साक्षात्कारदाता के द्वारा यह विश्वास भी उत्पन्न किया जाता है कि साक्षात्कार देने वाला जो कुछ भी कहेगा, उसे ध्यान से सुना जाएगा।
- यदि साक्षात्कार, देने वाला प्रश्नों का उत्तर देते-देते, बीच में ही रुक जाए तो यह समझना चाहिए कि उसके मस्तिष्क में कोई वैचारिक द्वन्द्व चल रहा है।
- एक ही बार के साक्षात्कार के अन्तर्गत, समस्त सूचनाओं को प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार की स्थिति में, साक्षात्कारदाता, स्वयं को तनावग्रस्त अनुभव करने लगते हैं और उत्तर देने में अरुचि प्रदर्शित करने लगते हैं।
- साक्षात्कार को किस प्रकार समाप्त किया जाये, वह एक जटिल कार्य है। प्रायः दो प्रकार से, इसकी समाप्ति की जाती है—

  1. साक्षात्कार की समाप्ति, इस प्रकार करना, जिससे छात्रों को सन्तोष प्राप्त हो।
  2. साक्षात्कार को, इस प्रकार समाप्त करना, जिससे दूसरे साक्षात्कार को आरम्भ करने में कम समय लगे।

  प्रायः ऐसा देखने में आता है कि साक्षात्कार लेने वाला व्यक्ति, साक्षात्कार की अवधि इतनी अधिक कर देता है कि उसको समाप्त करना, उसके लिए ही कठिन हो जाता है। अतः यह आवश्यक है कि साक्षात्कार को उद्देश्य केन्द्रित बनाए रखते हुए, कम अंतराल में सम्पन्न करना है।

28.5 शब्दकोश (Keywords)

- **संकलन—** इकट्ठा करना।
- **अन्तर्दृष्टि—** आत्म चेतना।

नोट

28.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. साक्षात्कार का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।
2. साक्षात्कार तकनीकि के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. साक्षात्कार तकनीकि के प्रकारों का वर्णन करते हुए इससे होने वाले लाभों का विश्लेषण कीजिए।
4. साक्षात्कार तकनीकि की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. सत्य	2. सत्य	3. असत्य
	4. असत्य		
2.	1. विश्वास	2. सद्भाव व विशुद्धता	3. अन्तर्दृष्टि
	4. मनोवैज्ञानिक	5. प्रभावों।	

28.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—29: रुचि परीक्षण (Inventories)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
29.1 रुचि परीक्षण—ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Interest Inventories—Historical Perspectives)
29.2 रुचि परीक्षणों के प्रारूप (Forms of Interest Inventories)
29.3 सारांश (Summary)
29.4 शब्दकोश (Keywords)
29.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
29.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- रुचि परीक्षणों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं प्रारूपों की विवेचना करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्राय: हम अपने दैनिक जीवन में देखते हैं कि एक व्यक्ति यदि प्रोफेसर बनना चाहता है तो दूसरा डॉक्टर, इंजीनियर अथवा वकील बनना पसंद करता है। इसी प्रकार, विद्यालय में जहाँ प्रतीक को गणित, अनुभा को गृह विज्ञान, सोनल को संगीत, फराह को राजनीतिशास्त्र पढ़ना अच्छा लगता है, वहीं सुशान्त हर समय पिक्चर की ही बातें करता है, मेघा उपन्यास व कहानियों में ही खोई रहती है, बाला को गप्पें मारना हँसने-हँसाने से ही फुरसत नहीं मिलती है। इस दृष्टि से हम अनुभव करते हैं कि व्यक्ति में रुचि नाम की कोई वस्तु अवश्य होती है तथा जिसमें व्यक्तिगत विभिन्नताएँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। यदि व्यक्ति किसी कार्य के प्रति रुचि रखता है, तो वह उस कार्य को अधिक सफलतापूर्वक एवं सरलता से पूरा कर लेगा, इसके विपरीत यदि उसकी कार्य में अरुचि है तो वह उस कार्य से शीघ्र ही ऊब जायेगा और बीच में ही छोड़ देगा। स्पष्ट है कि रुचि एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है, जो व्यवहार के समस्त क्षेत्रों को प्रभावित करती है।

29.1 रुचि परीक्षण—ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Interest Inventories—Historical Perspective)

जहाँ तक रुचि परीक्षणों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का प्रश्न है, व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता ने विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्ति की रुचि जानने हेतु इन परीक्षणों को जन्म दिया। शिक्षा एवं उद्योग के क्षेत्र में इन्हें एक

नोट

आवश्यक प्रेरक एवं मनोवैज्ञानिक तत्व के रूप में समझा जाने लगा। रुचि एक मनोवैज्ञानिक तत्व होने के कारण सुगमता से नहीं मापी जा सकती। इसके मापन की दो विधियाँ हैं–आत्मनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ। प्रथम विधि के अन्तर्गत रुचि एक आत्मगत अनुभव है, जिसमें व्यक्ति की रुचि को जानने के लिये अनेक प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से पूछे जाते हैं। लेकिन, अनुसन्धान कर्ताओं का यह निष्कर्ष है कि इस प्रकार आत्मनिष्ठ विधियों के आधार पर ज्ञात की गयी रुचियाँ काल्पनिक, अविश्वसनीय एवं अवैध होती हैं, क्योंकि, व्यक्ति को विभिन्न विषयों अथवा व्यवसायों की पूर्ण जानकारी तो होती नहीं, वह मात्र उन्हीं व्यवसायों में जाना पसन्द करता है, जो सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक (Prestige Symbols) समझे जाते हैं।

यद्यपि इससे पूर्व भी इस दिशा में प्रयास किये गये, किन्तु इस क्षेत्र में व्यापक रूप से अध्ययन करने का श्रेय माइनर महोदय को जाता है, जिन्होंने 'व्यावसायिक प्रवृत्ति प्रपत्र' का विश्लेषण किया तथा सन् 1918 में हाई स्कूल के विद्यार्थियों के लिये एक रुचि-सूची का निर्माण किया, जिसका उद्देश्य व्यक्ति की विशिष्ट रुचियों एवं योग्यताओं को ज्ञात करना तथा यह सुझाव देना था कि एक व्यक्ति किसी अमुक व्यक्ति अथवा वस्तु को पसन्द एवं नापसन्द क्यूँ करता है। अत: इन्हीं उद्देश्यों के कारण इस सूची का शैक्षिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में व्यापकता से प्रयोग होने लगा। सन् 1919-20 में योकम के प्रथम सम्मेलन में भी इस दिशा में सराहनीय कार्य हुआ तथा सन् 1921 में मूर ने इंजीनियरों की यान्त्रिक एवं सामाजिक रुचियों के मापन हेतु एक रुचि-परीक्षण का निर्माण किया जिसमें आकलित फलाँकन विधि (Unweighted Scoring Procedure) को महत्व दिया गया। सन् 1924 में फ्रेड ने मूर के कार्य को आगे बढ़ाया तथा इसी वर्ष रिम ने सफल एवं असफल जीवन बीमा एजेन्टों की रुचियों के मापन हेतु एक रुचि-सूची का निर्माण किया। इसी वर्ष काउड्री एवं काउंड्री ने भी 'कार्नीगी रुचि-सूची' का संशोधन किया। सन् 1927 में इस दिशा में कुछ अच्छे मानकीकृत परीक्षणों का निर्माण हुआ, जिनमें कार्नहॉफर की 'सामान्य रुचि-सूची' (general interest inventory) पैटर्न द्वारा किया गया 'कार्नीगी रुचि सूची' का संशोधित रूप, 'मिनिसोटा व्यावसायिक रुचि-सूची' तथा स्ट्रांग की 'रुचि-सूची' आदि मुख्य हैं।

इसके पश्चात्, सन् 1928 में 'हुब्बार्ड रुचि विश्लेषण प्रपत्र' (Hubbard interest analysis), सन् 1937 में वालर तथा प्रेसले ने व्यावसायिक रुचि जानने एवं संदर्शन प्रदान करने हेतु Occupational Orientation Enquiry, सन् 1938 में 'प्राथमिकता प्रपत्र' (Kuder preference record), सन् 1943 में ली थार्पे ने 'व्यावसायिक रुचि-प्रपत्र', सन् 1948 में गिलफर्ड, नीडमैन एवं जिमरमैन ने 'रुचि-सर्वेक्षण', सन् 1951 में रोपर एवं प्रिडिक्स ने 'व्यावसायिक रुचि-विश्लेषण', सन् 1953 में थर्स्टन ने खण्ड-विश्लेषण विधि के आधार पर 'रुचि-अनुसूची' (interest Schedule) तथा हार्नोल्ड जीस्ट (Harnold Giest) ने कम पढ़े एवं अशिक्षित व्यक्तियों की रुचियों को जानने के लिये एक 'चित्र रुचि-सूची' (picture interest inventory) का निर्माण कर, रुचि-परीक्षण के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया है।

> *क्या आप जानते हैं* रुचि-परीक्षणों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन नहीं है। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम मानकीकृत रुचि परीक्षण का निर्माण सन् 1914 में 'कार्नीगी इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी' में किया गया।

भारतीय सन्दर्भ में रुचि-परीक्षण के क्षेत्र में सर्वप्रथम कार्य मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद ने किया। सन् 1956 में इलाहाबाद ब्यूरो ने हाईस्कूल विद्यार्थियों के लिये 'कूडर रुचि-प्रपत्र' के आधार पर एक 'व्यावसायिक रुचि-प्रपत्र' का निर्माण किया। इसी वर्ष बिहार शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो ने 'कूडर प्राथमिकता प्रपत्र' का भारतीय अनुकूलन किया। इस क्षेत्र में जिन भारतीय विद्वानों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमें, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के रीडर कार्तिक राय चौधरी (वर्नन-रायचौधरी रुचि-सर्वेक्षण), धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़ के प्रिंसीपल बी. जी. झिंगरन (व्यावसायिक रुचि-प्रपत्र), के.जी.के. कालिज, मुरादाबाद के आर. के. ओझा (व्यावसायिक रुचि-प्रपत्र) मुख्य हैं।

नोट

साथ ही, पटना के एस. चटर्जी (चटर्जी अभाषिक प्राथमिकता प्रपत्र (NPR), एस. बी. लाल भारद्वाज (रुचि-प्रपत्र), रामशकल पाण्डेय (रुचि-परीक्षण), रघुराज पाल सिंह (रुचि-प्रपत्र), मीरा जोशी एवं जगदीश पाण्डेय (व्यावसायिक वरीयता सूची), एम. पी. कुलश्रेष्ठ (व्यावसायिक रुचि-प्रपत्र), लाभ सिंह (व्यावसायिक रुचि-प्रपत्र) आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

नोट्स

सन् 1924-25 में ही क्रेग ने विभिन्न व्यावसायिक समूहों की भिन्न-भिन्न प्रकार की रुचियों को जानने हेतु विविध रुचि-परीक्षणों की रचना की तथा शटिल वर्थ ने असायर (Assayer) के रुचि-प्रपत्र का संशोधन किया। अपने संशोधन में उसने द्रव्य दिमागी (money-minded) एवं अद्रव्य दिमागी (non-money-minded) लोगों की धन के प्रति रुचि का मापन किया।

29.2 रुचि-परीक्षणों के प्रारूप (Forms of Interest Inventories)

साधारणतया रुचि परीक्षण दो प्रकार के होते हैं—

1. सामान्य या अव्यावसायिक रुचि परीक्षण (General or Non-Vocational Interest Inventories)
2. व्यावसायिक रुचि-परीक्षण (Vocational Interest Inventories)

सामान्य या असामान्य रुचि परीक्षणों के अन्तर्गत, व्यक्ति के सामान्य जीवन एवं शैक्षिक परिस्थितियों से सम्बन्धित रुचियों का मापन, हम प्रायः जाँच-सूची (Check-list), प्रश्नावली (Questionnaire) एवं लेखन-शैली (Writing Style) द्वारा कर सकते हैं। जाँच-सूची के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की क्रियाओं, जैसे—रेडियो सुनना, खेल खेलना, मैगजीन पढ़ना एवं क्लब जाना आदि को बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत करके, उनकी रुचियों का अध्ययन किया जाता है। जाँच-सूचियों का निर्माण करना अत्यन्त सरल कार्य है तथा इन्हें छोटे बच्चों पर सफलतापूर्वक प्रयोग में लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, प्रश्नावली के माध्यम से भी विभिन्न प्रकार के कथनों को प्रस्तुत करके व्यक्ति के प्रत्युत्तरों के आधार पर उसकी रुचि का अध्ययन किया जा सकता है।

व्यावसायिक रुचि परीक्षणों के अन्तर्गत, व्यक्ति की किसी व्यावसायिक क्षेत्र में रुचि का मापन किया जाता है। अधिकांश व्यक्ति जीवन के चौथे दशक के अन्त तक पहुंचते-पहुंचते ऐसा निश्चय कर लेते हैं कि जिस व्यवसाय क्षेत्र में वे हैं, उसी में अवकाश ग्रहण करने तक रुका जाए, चाहे इस व्यवसाय में उनके लिए कोई उत्साह अथवा स्पन्दन शेष न रहा हो। यद्यपि, वे यह भी देखते हैं कि कुछ लोग न केवल अपने व्यवसाय में पर्याप्त रुचि लेते हैं अपितु वाँछित सीमा के अतिरिक्त भी समय और शक्ति उसमें लगाते हैं। व्यावसायिक रुचि मापन की विधियों का एकमात्र उद्देश्य यही है कि आरम्भ में ही युवा व्यक्तियों की रुचि और रुझान का पता लगाकर उन्हें उसके अनुसार व्यवसाय चयन में सहायता दी जा सके, ताकि, वे आजीवन अपने कार्य में रुचि ले सकें तथा लाभकारी ढंग से कार्य कर सकें।

कुछ प्रमुख रुचि परीक्षण निम्नलिखित हैं—

(1) स्ट्राँग का व्यावसायिक रुचि प्रपत्र (Strong Vocational Interest Blank)

स्ट्राँग ने सन् 1919 में व्यावसायिक रुचि प्रपत्र का निर्माण स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में किया। इस परीक्षण में कुल 420 पद हैं, जो विभिन्न व्यवसायों, मनोरंजन क्रियाओं, व्यक्तिगत विशेषताओं, स्कूली विषयों आदि से सम्बन्धित थे। अपने इस रुचि प्रपत्र को स्ट्रांग ने कई हजार व्यक्तियों से भरवाया, जिनका सम्बन्ध विभिन्न व्यवसायों से था, जैसे—डाक्टर, इन्जीनियर, वकील, विक्रेता, अध्यापक, किसान, सरकारी अफसर, बीमा एजेन्ट, प्रबन्धक, वास्तुकार आदि तथा वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विभिन्न व्यवसायों में कार्य करने वालों की रुचियाँ, अन्य व्यक्तियों की रुचियों से भिन्न होती हैं। इस रुचि-प्रपत्र के चार रूप, स्त्री पुरुषों, छात्रों व स्कूल न जाने वालों के लिये अलग-अलग तैयार किये गये हैं। स्ट्रांग ने इस प्रपत्र का संशोधित रूप सन् 1938 में प्रस्तुत किया तथा इस बार पदों की संख्या 400 रखी।

नोट

इस परीक्षण में प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते समय परीक्षार्थी अपनी पसन्द (L), नापसन्द (D) तथा उदासीनता (I) का प्रदर्शन करता है। L, D तथा I का अर्थ है Liking, Dis-liking तथा In-different।

इस प्रपत्र प्रशासन (administration) सामूहिक रूप से किया जाता है। इस प्रपत्र का प्रयोग 17 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों के लिये उपयुक्त रहता है। 15-16 वर्ष के परिपक्व किशोरों पर भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। चूँकि, यह एक शाब्दिक परीक्षण है अतः इसे शिक्षित व्यक्तियों एवं कालिज विद्यार्थियों पर ही प्रशासित किया जाना चाहिए। कठिन शब्दों के प्रयोग एवं जटिल विचारों के कारण यह परीक्षा हाईस्कूल तथा कम उम्र के बच्चों हेतु अनुपयुक्त रहती है। इस परीक्षण के सम्पादन में लगभग 40-50 मिनट का समय लगता है, कुछ व्यक्ति आधे घंटे में ही उत्तर दे देते हैं और कुछ दो घण्टे से भी अधिक समय लेते हैं। यद्यपि, प्रपत्र की समय-सीमा नहीं है, फिर भी, परीक्षार्थी को यथाशीघ्र प्रपत्र भरने के लिये कहा जाना चाहिए।

प्रपत्र का अंकन (Scoring) अलग-अलग पेशों के लिए किया जाता है तथा प्रत्येक पेशे के अंकन हेतु लगभग 20 मिनट का समय लगता है। अंकन के बाद, प्राप्त अंकों को A, B तथा C इन तीन वर्ग श्रेणियों में बदल दिया जाता है। वर्ग श्रेणी A का अर्थ है कि व्यक्ति की रुचियाँ उन लोगों जैसी हैं जो उस पेशे में लगे हुए हैं, अतः यह व्यक्ति उस कार्य में आनन्द लेगा और सफलता प्राप्त करेगा। वर्ग श्रेणी B का अर्थ है कि यह व्यक्ति उस पेशे में लगे व्यक्तियों जैसी रुचियाँ रखता है और यदि उस पेशे को चुन ले, तो शायद सफल हो जाय। वर्ग श्रेणी C का अर्थ है कि उस व्यक्ति की रुचियाँ उस पेशे से मेल नहीं खातीं, अतः वह उस पेशे में समायोजन स्थापित नहीं कर सकता। B वर्ग श्रेणी B^+ हो सकती है, लेकिन C, श्रेणी A नहीं हो सकती, चाहे C वर्ग श्रेणी वाला व्यक्ति उस पेशे के लिए प्रशिक्षण को क्यों न पा ले और भले ही उसके पास सभी योग्यताएँ भी क्यों न हों।

परीक्षण की वैधता ज्ञात करने के लिए अनेक कसौटियों का प्रयोग किया गया है, जैसे–व्यावसायिक प्रशिक्षण के पश्चात् कार्य में सफलता, विद्यालय एवं कालेज के विभिन्न वर्गों के साथ सह-सम्बन्ध आदि। परीक्षण की विश्वसनीयता पुनः परीक्षण विधि तथा अर्द्ध-विटापन (Split-half) विधि द्वारा ज्ञात की गई तथा विश्वसनीयता गुणांक 85 आया।

सीमाएँ (Limitations)

प्रपत्र की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

1. व्यक्ति अपनी रुचियों के बारे में जो निर्णय देता है, उसकी सत्यता पर प्रश्नचिह्न लगा रहता है।
2. यह अनुमान लगाना कठिन है कि व्यक्ति की रुचि स्थायी है तथा उसके व्यक्तित्व का एक अंग है। हो सकता है, कि किसी व्यवसाय में पड़ जाने के कारण रुचि जागृत हुई हो।
3. रुचियों के अस्थायी स्वरूप के कारण, वर्तमान रुचियों के आधार पर भावी व्यावसायिक सफलता की घोषणा करना सर्वथा अनुपयुक्त है।
4. स्ट्रांग का यह कहना कि प्रत्येक व्यवसाय के लिये अलग रुचियाँ होती हैं, कम विश्वसनीय है, क्योंकि, रुचियों में प्रतिच्छादन (over-lapping) होता है तथा अनेक व्यवसायों में एक-सी ही रुचियों की आवश्यकता पड़ती है।
5. किशोर बालकों की रुचियाँ स्थायी नहीं होतीं, अतः वर्तमान रुचियों के आधार पर ऐसे बालकों की भावी व्यावसायिक सफलता का पूर्वकथन करना अनुचित है।
6. परीक्षार्थी द्वारा किये गये निर्णयों की, पर्याप्तता एवं शुद्धता से जाँच करना सम्भव नहीं है।
7. व्यावसायिक रुचियों का समूहों में वर्गीकरण किया जाना अधिक वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि, अनेक व्यवसायों में एक ही प्रकार की क्रियाएँ एवं रूचियाँ सम्भव हैं।

उपरोक्त सीमाओं के बावजूद भी आज इस प्रपत्र का प्रयोग व्यापकता से किया जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि स्ट्रांग का यह प्रपत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

नोट

> *टास्क* स्ट्रांग ने व्यावसायिक रुचि प्रपत्र का निर्माण कब और किस विश्व विद्यालय में किया?

(2) कूडर—प्राथमिकता प्रपत्र (Kuder-Preference Record)

सन् 1938 में कूडर (Kuder) के प्राथमिकता प्रपत्र का निर्माण हुआ, जिसका संशोधित रूप सन् 1951 में प्रस्तुत किया गया। यह परीक्षण मुख्य रूप से हाईस्कूल विधार्थियों एवं वयस्कों के लिये उपयोगी है। इसके परीक्षण के तीन प्रारूप हैं-

(अ) व्यावसायिक प्राथमिकता प्रपत्र (Vocational preference record)

(ब) औद्योगिक प्राथमिकता प्रपत्र (Occupational preference record)

(स) व्यक्तिगत प्राथमिकता प्रपत्र (Personal preference record)

व्यावसायिक प्राथमिकता प्रपत्र स्कूल के बच्चों के लिए सबसे अधिक उपयोगी है, क्योंकि, यह केवल मात्र व्यावसायिक स्तर के लिए ही नहीं है। इसमें व्यावसायिक रूचियों को निम्नांकित दस क्षेत्रों में वृर्गीकृत किया गया है -

(i) बाह्य कार्यों में रुचि जैसे, खेती करना, बाग लगाना (Out door) आदि।

(ii) यान्त्रिक रुचि जैसे, रेल हवाईजहाज आदि मशीनों के पुर्जे सुधारना।

(iii) गणनात्मक (Computational) जैसे, बहीखाता तैयार करना।

(iv) वैज्ञानिक रुचि (scientific) जैसे, डाक्टरी, इन्जीनियरिंग आदि के कार्यों में रुचि लेना।

(v) प्रभावात्मक (Persuasive) रुचि जैसे, बीमा आदि का एजेन्ट होना।

(vi) कलात्मक रुचि जैसे, मकान, पण्डाल सजाना, फोटोग्राफी आदि में रुचि लेना।

(vii) साहित्यिक—लेखकीय, सम्पादकीय कार्य करना।

(viii) संगीतालय—संगीतज्ञों की संगति, समारोहों में जाना, वाद्य बजाना, गाना।

(ix) समाज सेवा कार्यों में रुचि।

(x) लिपिकीय कार्यों में रुचि।

यह प्रपत्र स्ट्रांग के प्रपत्र से दो रूपों में भिन्न है। प्रथम, कूडर बाह्य चयन त्रिपदों (Triad form) का प्रयोग करते हैं जिनमें परीक्षाओं को यह बताना होता है कि वह तीन क्रियाओं में से किसे सबसे अधिक चाहता है तथा किसे कम। द्वितीय, इसके प्राप्त अंक किसी व्यवसाय विशेष के लिए नहीं होते बल्कि, दस विस्तृत क्षेत्रों के लिए प्राप्त किये जाते हैं। इन दस क्षेत्रों के लिये पदों का निर्माण सामूहिक तथा विषय विश्लेषण के आधार पर किया जाता है तथा पदों का अन्तिम चयन आन्तरिक स्थिरता (Internal Consistency) तथा दूसरे प्रपत्रों से सह-सम्बन्ध के आधार पर किया जाता है।

प्रपत्र के दूसरे प्रारूप 'औद्योगिक प्राथमिकता प्रपत्र' का विकास कसौटी कुँजी प्रक्रिया (Criterion Keying Process) द्वारा किया गया है। इस प्रारूप में 'व्यावसायिक प्राथमिकता प्रपत्र' की तरह सन्दर्भ समूह (reference group) का प्रयोग नहीं किया जाता। इस प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक औद्योगिक मापनी पर प्राप्त अंकों को उस व्यक्ति के रुचि प्रारूप तथा किसी विशेष उद्योग समूह के प्रारूप के बीच सह-सम्बन्ध के रूप में व्यक्त किया जाता है। सह-सम्बन्ध लेम्डा गुणाँक (Lembda Coefficient) के द्वारा ज्ञात किया जाता है। इसका अँकन कम्प्यूटर द्वारा कराया जाता है। कूडर ने इस प्रपत्र में 38 विशिष्ट व्यवसायों जैसे, किसान, सम्पादक, वैज्ञानिक, मन्त्री, यान्त्रिक, इन्जीनियर, निदेशक, मनोवैज्ञानिक आदि का उल्लेख किया है। अब तक कुछ प्रपत्रों को केवल पुरूषों, कुछ को केवल स्त्रियों तथा कुछ को दोनों को ही दिया जाता है, लेकिन, सभी प्रपत्रों पर अंक, पुरूष तथा स्त्रियों दोनों के लिये दिये गये हैं—जैसे, Beautician और Truck-Driver से लेकर Chemist तथा Advocate तक। ऐसा सन्दर्भ समूह की उपेक्षा के कारण ही सम्भव है।

प्रपत्र के तीसरे प्रारूप अर्थात् 'व्यक्तिगत प्राथमिकता प्रपत्र' में कूडर ने व्यक्ति की अन्य प्राथमिकताओं, मूल्यों एवं व्यवहारों की विशेषताओं का मापन किया है, जो विभिन्न पाँच क्षेत्रों, जैसे–सामाजिक, व्यावहारिक, सैद्धान्तिक आदि पर आधारित हैं। इन पाँच क्षेत्रों में व्यक्ति की निम्नलिखित व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रियाओं का मापन किया जाता है।

(*i*) समूह में सक्रिय रहने की प्राथमिकता।

(*ii*) ज्ञात और स्थिर स्थितियों के लिये प्राथमिकता।

(*iii*) विचारों में खोये रहने की प्राथमिकता।

(*iv*) संघर्ष से बचने की प्राथमिकता।

(*v*) दूसरों को निर्देश देने की प्राथमिकता।

उपरोक्त तीनों प्राथमिकता प्रपत्रों में कुल 368 पद हैं तथा प्रत्येक प्रश्न समूह में तीन पद हैं। परीक्षार्थी उस पद को संकेत करता है, जिसको वह सबसे अधिक पसन्द करता है अथवा वह उसको सूचित करता है जिसको वह सबसे कम पसन्द करता है। एक प्रश्न उदाहरणार्थ नीचे दिया जा रहा है –

निर्देश–निम्न कार्य समूह को ध्यान से पढ़िए। इन व्यवसायों में से जो व्यवसाय आपको सबसे अधिक रूचिकर मालूम हो, उसके सामने के गोले को सुई से छेद दीजिए और उस व्यवसाय को भी सुई से छेद दीजिए, जो आपको सबसे कम पसन्द हो।

	पसन्द	नापसन्द
(अ) लोहे के कारखाने में काम करना	o	o
(ब) अखबारों में सुधारात्मक लेख प्रकाशित करना	o	o
(स) सिंचाई के तरीकों की जानकारी प्राप्त करना	o	o

रुचिपत्र में कुछ ऐसे भी प्रारूप हैं जिनमें Pin Pinch के स्थान पर मशीन से अंकन होता है। अंकन की दृष्टि से सर्वप्रथम प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति के अंकों को ज्ञात कर लिया जाता है फिर, उन्हें शतांशीय क्रम में बदल लिया जाता है। व्यक्ति की प्रत्येक क्षेत्र में रूचि एवं प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए, पार्श्वचित्र (Profile) का विश्लेषण किया जाता है। प्रपत्र के किसी भी प्रारूप में उच्च और निम्न अंक इस बात की ओर संकेत करते हैं कि प्रपत्र विभेदीकरण करने में सक्षम है।

विश्वसनीयता की दृष्टि से प्रपत्र अत्यन्त संतोषजनक है। इसकी आन्तरिक संगति विश्वसनीयता 80 से 95 तक प्राप्त हुई है। पुन: परीक्षण विधि से प्रपत्र की विश्वसनीयता पुरूषों के लिये 50 से 80 तक स्त्रियों के लिये 60 से 80 तक प्राप्त हुई। इसी प्रकार 'औद्योगिक रूचि प्रपत्र' की आन्तरिक संगति विश्वसनीयता 48 से 82 तक प्राप्त हुई, जबकि पुन: परीक्षण विधि से स्कूल छात्रों पर 61 से 85 तक तथा कॉलेज छात्रों पर 71 से 85 तक प्राप्त हुई।

(3) थर्स्टन रूचि अनुसूची (Thurston Interest Schedule)

रूचि प्रपत्र तैयार करने वाले सभी मनोवैज्ञानिकों ने व्यावसायिक रूचियों के विविध रूपों को अलग-अलग मानकर रूचि परीक्षण किया। यद्यपि, कूडर ने रूचियों को दस व्यापक क्षेत्रों में बाँटा, फिर भी, रूचियों की अनेकता का आभास उनके रूचि प्रपत्र में मिलता है। रूचियों के अनेक होने पर, रूचियों की प्रतिकृतियाँ (Patterns) अथवा प्रवृत्तियाँ (Trends) अनेक नहीं हैं, यह मनोवैज्ञानिक तथ्य सभी को मान्य था। थर्स्टन ने इस विचार को तत्व-विश्लेषण के आधार पर और भी पक्का कर दिया। उसने कहा कि यदि अनेक विशिष्ट क्षेत्रीय रूचियों का घटक–विश्लेषण किया जाय तो कुछ रूचि घटक (Interest Factors) ऐसे मिलेंगे, जो स्ट्राग द्वारा प्रतिपादित रूचि प्रतिकृतियों की तरह हों, लेकिन, यह निश्चित है कि इन रूचि घटकों की संख्या, रूचि प्रतिकृतियों से कम होगी।

इस उप-कल्पना (Hypothesis) की जाँच करने के लिये सन् 1931 में स्ट्रांग ने 18 व्यवसायों के मध्य सह-सम्बन्ध गुणक ज्ञात किये और इस प्रकार प्राप्त (Correlation matrix) का घटक, विश्लेषण कर उसे ज्ञात हुआ कि निम्नलिखित चार घटकों में रुचि सबसे अधिक थी।

(*i*) विज्ञान में रूचि

(*ii*) भाषा में रूचि

(*iii*) मनुष्यों में रूचि

(*iv*) व्यापार में रूचि

इन चार रूचियों को उसने प्राथमिक रूचियाँ कहकर पुकारा। सन् 1936 में उसने पुनः 80 व्यवसायों का घटक - विश्लेषण किया और निम्नलिखित 8 प्राथमिक रूचि घटकों (Interest Factors) की खोज की।

(*i*) व्यापारिक रूचि

(*ii*) कानूनी रूचि

(*iii*) सौन्दर्यात्मक रूचि

(*iv*) शैक्षणिक रूचि

(*v*) जीव वैज्ञानिक रूचि

(*vi*) कलात्मक रूचि

(*vii*) भौतिक विज्ञान सम्बन्धी रूचि

(*viii*) वर्णनात्मक रूचि

इन रूचि घटकों को ध्यान में रखकर उसने रूचि-अनुसूची (Interest Schedule) तैयार की। इस अनुसूची में, व्यक्ति से उसकी रूचियाँ पूछी जाती हैं कि वह किस व्यवसाय को पसन्द करता है। व्यवसायों को युग्म (Pair) के रूप में दिया गया है। व्यवसायों को युग्म (Pair) के रूप में दिया गया है तथा व्यक्ति को अपनी पसन्द प्रकट करनी होती है। यह चुनाव करते समय व्यक्ति को यह मान लेना होता है कि उन युग्मों वाले दो-दो व्यवसायों के मध्य आय का कोई अन्तर नहीं है।

व्यवसाय चुनने के लिये निम्नांकित चार आदेश दिये जाते हैं-

(अ) 1 को सूचित करो, यदि तुम 1 को पसन्द करते हो।

(ब) 2 को सूचित करो, यदि तुम 2 को पसन्द करते हो।

(स) 1 और 2 को सूचित करो, यदि तुम दोनों को पसन्द करते हो।

(द) 1 और 2 को काट दो, यदि तुम दोनों को नापसन्द करते हो।

इस प्रकार, एक ही पत्र पर दिये गए 100 वर्गों के खानों में लिखे गये दो-दो व्यवसायों में निशान लगाने पड़ते हैं। परीक्षक इन निशानों की सहायता से रूचियों की प्रतिकृति निकालने की कोशिश करता है।

विशेषताएँ (Features)

थर्स्टन की रूचि-अनुसूची की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) इस अनुसूची से रूचि सम्बन्धी 7 घटकों की शक्ति का मापन होता है और साक्षात्कार द्वारा इस बात की पुष्टि की जाती है कि व्यक्ति को किस पेशे में अधिक रूचि है।

(2) यह अनुसूची इस प्रश्न का उत्तर दे सकती है कि किस व्यक्ति में सामाजिक अथवा वैज्ञानिक अथवा अन्य किस प्रकार की रूचियाँ तीव्र हैं लेकिन, स्ट्रांग का प्रपत्र इस बात का उत्तर नहीं दे सकता, वह तो मात्र यह बताता है कि क्या इस व्यक्ति की रूचियाँ अमुक पेशे को अपनाने वाले व्यक्तियों जैसी हैं?

(3) थर्स्टन की अनुसूची कम समय में रूचि सम्बन्धी जानकारी दे सकती है, क्योंकि, इसमें केवल 72 पेशों को ही जाँचना पड़ता है, लेकिन, स्ट्रांग के प्रपत्र में उसे 100 पेशों, 50 मनोरंजन सम्बन्धी कार्यों, 39 स्कूली विषयों, 52 अन्य क्रियाओं, 53 व्यक्तियों की विशेषताओं को जाँचना पड़ता है।

(4) स्ट्रांग के प्रपत्र का मूल्याँकन करने में भी समय अधिक लगता है।

नोट

(5) स्ट्रांग के प्रपत्र सम्बन्धी परिणामों की व्याख्या आसान है, जबकि, थर्स्टन की अनुसूची सम्बन्धी परिणामों की व्याख्या कठिन और जटिल है।

(6) स्ट्रांग का प्रपत्र भरवाने के बाद यदि व्यक्ति से साक्षात्कार किया जाये तो व्यक्ति के विषय में उपयोगी सुचनाएँ प्राप्त होती हैं।

(4) ली-थार्पे रूचिपत्र (Lee-Thorpe Inventory)

ली-थार्पे रूचिपत्री में प्रश्नों का संकलन साँख्यिकीय आधार पर न करके निर्णय के आधार पर किया जाता है। ली-थार्पे ने विभिन्न व्यवसायों की व्याख्या 'यूनाइटेड स्टेट्स एजूकेशनल सर्विस' द्वारा प्रकाशित 'व्यावसायिक शीर्षकों के कोश' (Dictionary of Occupational Titles) के आधार पर की है। इस रूचिपत्री में 6 विभिन्न क्षेत्रों में उच्च, मध्यम तथा निम्न उत्तरदायित्व के स्तरों के प्रतिनिधत्व का निर्णय करने के लिये पदों का संकलन किया गया। इसमें पेशे (Job) का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है और अभ्यर्थी से अपनी प्राथमिकता (Preference) बताने के लिये कहा जाता है।

इस रूचिपत्री में निम्नलिखित छः क्षेत्र हैं–

(*i*) प्राकृतिक (Natural)

(*ii*) यान्त्रिक (Mechanical)

(*iii*) वैज्ञानिक (Scientific)

(*iv*) कला (Art)

(*v*) व्यापार (Trade)

(*vi*) व्यक्तिगत-सामाजिक (Personal-Social)

पेशों के चुनाव के विषय में इस रूचिपत्री में स्ट्रांग के प्रपत्र से बिल्कुल भिन्न प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। इस रूचिपत्री में परीक्षार्थी के समक्ष प्रस्तुत किये गये दो कार्यो में से एक कार्य को चुनने का आदेश दिया जाता है। दो प्रश्न उदाहरणार्थ नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं। आप प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख लिखेंगे। अथवा किसी बड़ी फर्म के लिए बिक्री की पॉलिसियाँ संचालित करेंगे? आप घर-घर जाकर फल या तरकारी बेचते फिरेंगे अथवा किसी स्टोर में वस्तुओं को बंडल में बाँधते रहेंगे?

(5) जीस्ट चित्र रूचि प्रपत्र (Giest Picture Interest Inventory)

जीस्ट चित्र रूचि प्रपत्र ग्यारह सामान्य क्षेत्रों यथा-अनुनयात्मक, लिपिक, यान्त्रिक, संगीतात्मक, वैज्ञानिक, बाह्य, साहित्यिक, गणनात्मक, कलात्मक, समाज सेवा तथा नाटकीय रूचि का मापन करती है। इसमें कुल 44 पद हैं, जिनमें प्रत्येक में तीन-तीन चित्र हैं, जिनका चयन व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक क्रियाओं से किया गया है। इस प्रपत्र का प्रशासन व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों रूपों में किया जाता है तथा प्रशासन की कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है। प्रपत्र का फलाँकन स्टेंसिल (Stencil) की सहायता से करके, भिन्न-भिन्न रूचि क्षेत्रों के प्राप्तांक ज्ञात किये जाते हैं। फिर, इन मूल प्राप्तांकों को (T-Scores) टी-प्राप्तांक में परिवर्तित किया जाता है। यदि आवश्यकता हो तो इन T-Scores के आधार पर रूचि पार्श्व-चित्र (Profile) की भी रचना की जा सकती है। इस रूचि-प्रपत्र के द्वारा यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति ने किन प्रेरणाओं के फलस्वरूप किसी विशिष्ट व्यवसाय में रूचि व्यक्त की है। प्रपत्र का विश्वसनीयता गुणाँक 62 से 84 के मध्य पाया गया।

(6) मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद की रूचिपत्री (Bureau of Psychology Allahabad Interest Inventory)

यह रूचि पत्री कूडर की रूचि पत्री को आधार मानकर बनाई गई है। इसके आधार के अन्तर्गत 80 परीक्षण पदों (Test-items) का समावेश किया गया है। यह परीक्षण 10 भागों में विभक्त है। भाग 3, 8, 9, तथा 1 में से प्रत्येक पर 5 परीक्षण पद, अर्थात् कुल 20 पद तथा शेष भागों में से प्रत्येक पर 10 परीक्षण पद, अर्थात, 60 पद चयन किये जाते

हैं। इन परीक्षण पदों में कुछ व्यावसायिक क्रियायें भी दी होती हैं तथा प्रत्येक परीक्षा पद के सम्मुख अथवा नीचे 2, 1, 0 अंक लिख दिये जाते हैं। इनका तात्पर्य क्रमश: सबसे अधिक पसन्द, साधारण पसन्द तथा बिल्कुल नापसन्द है। परीक्षार्थी इन तीनों में से किसी भी एक के चारों ओर गोला खींचकर अपनी बहुत अधिक पसन्द, साधारण पसन्द या बिल्कुल नापसन्द को अभिव्यक्त करता है। इसमें समय का कोई बन्धन नहीं होता है, फिर भी, परीक्षार्थी से कहा जाता है कि वह परीक्षण को यथाशीघ्र पूरा कर ले।

इस रूचि पत्री के दस भाग उन्हीं दस प्रकार की रूचियों से सम्बन्धित हैं—

1. बाह्य (Outdoor)
2. यान्त्रिक (Mechanical)
3. गुणात्मक (Computational)
4. वैज्ञानिक (Scientific)
5. प्रभावात्मक (Persuasive)
6. कलात्मक (Artistic)
7. साहित्यिक (Literary)
8. संगीत्मक (Musical)
9. समाज सेवा (Social Service)
10. लिपिक सम्बन्धी (Clerical)

भिन्न-भिन्न भागों में प्राप्त अंकों के आधार पर परीक्षार्थी की व्यावसायिक रूचि का पार्श्व चित्र (Profile) निर्मित किया जाता है। परीक्षण की अँकन विधि सरल है। यह रूचि परीक्षण उत्तर प्रदेश की हाईस्कूल तथा इन्टरमीडिएट छात्रों की रूचि का मापन करने के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा वर्तमान समय में विद्यार्थियों का शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन करने में पर्याप्त सहायता मिल रही है।

रूचि-प्रपत्रों की परिसीमाएँ (Limitations of interest Inventories)—रूचि-प्रपत्रों की कुछ प्रमुख परिसीमाएँ निम्नलिखित हैं—

प्रथम, इन रूचि प्रपत्रों में छात्रों द्वारा दिए गये प्रश्नों के उत्तर उनकी वर्तमान मानसिक अवस्था का चित्रण करते हैं। भविष्य में इस मानसिक अवस्था के परिवर्तित होने के साथ-साथ उनकी रूचियों का ढाँचा भी बदल सकता है। भविष्य में नई-नई बातों में रूचि उत्पन्न हो सकती है, पुरानी बातों में रूचि का ह्रास हो सकता है। इसलिए, किसी रूचि प्रपत्र द्वारा किसी छात्र की रूचियों का जो स्वरूप आज है, वही कल बदल भी सकता है।

द्वितीय, जितनी भी रूचि-अनुसूचियाँ अब तक प्रकाशित हुई हैं, उनमें प्रत्येक प्रकार की रूचि का समावेश नहीं हो पाया है। अत: इन अनुसूचियों में छात्रों द्वारा प्राप्त फलांक केवल इतना बता सकता है कि अनुसूची में दी गई रूचियों के स्वरूप में से अमुक रूचि प्रकृति उसके लिए उपयुक्त है, किन्तु यह फलाँक यह नहीं बता सकता कि वास्तव में उसकी सबसे अधिक रूचि किस कार्य अथवा व्यवसाय में है।

तथा तृतीय, ये अनुसूचियाँ व्यक्ति की गुप्त रूचियों के विषय में कोई सूचना नहीं दे पातीं। किसी कार्य में रूचि का प्रस्फुटन अथवा विकास, उस कार्य में संलग्न होने के उपरान्त हुआ है अथवा पहले से ही रूचि विद्यमान थी। किसी कार्य अथवा व्यवसाय में आज का परिचय, कल, उसी कार्य अथवा व्यवसाय में रूचि उत्पन्न कर सकता है।

यद्यपि, रूचि-अनुसूचियाँ छात्रों की वास्तविक रूचियों की जानकारी देने में अपने को असमर्थ पाती हैं, फिर भी, वे अध्यापक के हाथ में ऐसे यन्त्रों का काम करती हैं, जो कई प्रकार से उपयोगी हों। माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की रूचियों का अध्ययन करने के लिए, उत्तर प्रदेश की मनोविज्ञानशाला ने जो बीड़ा उठाया है, उसका परिणाम यह निकला कि अब अपने बहुत से बच्चों का शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन भली-भाँति कर सकते हैं। यदि प्रत्येक विद्यालय में एक मनोवैज्ञानिक (साइकोलोजिस्ट) की नियुक्ति हो जाये, जो इस प्रकार का मार्ग निर्देशन करता रहे, तो आशा की जा सकती है कि हम शिक्षा में हो रहे अपव्यय पर किसी सीमा तक अंकुश लगा पायेंगे।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. ली-थार्पे ने विभिन्न व्यवसायों की व्याख्या "यूनाइटेड स्टेट्स एजुकेशनल सर्विस" द्वारा प्रकाशित .... के आधार पर की है।
2. जीस्ट चित्र प्रपत्र का प्रशासन .... दोनों रूपों में किया जाता है।
3. जीस्ट प्रपत्र का फलाँकन .... की सहायता से करके, भिन्न-भिन्न रूचि क्षेत्रों के प्राप्तांक ज्ञात किये जाते हैं।
4. मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद की रूचि पत्री .... की रूचि पत्री को आधार मानकर बनायी गयी है।
5. इस रूचि पत्री के अंतर्गत .... का समावेश किया गया है।

29.3 सारांश (Summary)

- जहाँ तक रुचि परीक्षणों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का प्रश्न है, व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता ने विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्ति की रुचि जानने हेतु इन परीक्षणों को जन्म दिया। शिक्षा एवं उद्योग के क्षेत्र में इन्हें एक आवश्यक प्रेरक एवं मनोवैज्ञानिक तत्व के रूप में समझा जाने लगा। रुचि एक मनोवैज्ञानिक तत्व होने के कारण सुगमता से नहीं मापी जा सकती। इसके मापन की दो विधियाँ हैं–आत्मनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ। प्रथम विधि के अन्तर्गत रुचि एक आत्मगत अनुभव हैं, जिसमें व्यक्ति की रुचि को जानने के लिये अनेक प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से पूछे जाते हैं। लेकिन, अनुसन्धान कर्ताओं का यह निष्कर्ष है कि इस प्रकार आत्मनिष्ठ विधियों के आधार पर ज्ञात की गयी रुचियाँ काल्पनिक, अविश्वसनीय एवं अवैध होती है, क्योंकि, व्यक्ति को विभिन्न विषयों अथवा व्यवसायों की पूर्ण जानकारी तो होती नहीं, वह मात्र उन्हीं व्यवसायों में जाना पसन्द करता है, जो सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक (Prestige Symbols) समझे जाते हैं।
- सन् 1919-20 में योकम के प्रथम सम्मेलन में भी इस दिशा में सराहनीय कार्य हुआ तथा सन् 1921 में नूर ने इंजीनियरों की यान्त्रिक एवं सामाजिक रुचियों के मापन हेतु एक रुचि-परीक्षण का निर्माण किया जिसमें अकलित फलाँकन विधि (Unweighted Scoring Procedure) को महत्व दिया गया।
- सन् 1927 में इस दिशा में कुछ अच्छे मानकीकृत परीक्षणों का निर्माण हुआ, जिनमें कार्नहॉफर की 'सामान्य रुचि-सूची' (general interest inventory) पेटर्न द्वारा किया गया 'कार्नीगी रुचि सूची' का संशोधित रूप, 'मिनिसोटा व्यावसायिक रुचि-सूची' तथा स्ट्रांग की 'रुचि-सूची' आदि मुख्य हैं।
- इसके पश्चात्, सन् 1928 में 'हुब्बार्ड रुचि विश्लेषण प्रपत्र' (Hubbard interest analysis), सन् 1937 में वालर तथा प्रेसले ने व्यावसायिक रुचि जानने एवं संदर्शन प्रदान करने हेतु Occupational Orientation Enquiry, सन् 1938 में 'प्राथमिकता प्रपत्र' (Kuder preference record), सन् 1943 में ली थापे ने 'व्यावसायिक रुचि-प्रपत्र', सन् 1948 में गिलफर्ड, नीडमैन एवं जिमरमैन ने 'रुचि-सर्वेक्षण', सन् 1951 में रोपर एवं प्रिडिक्स ने 'व्यावसायिक रुचि-विश्लेषण', सन् 1953 में थर्स्टन ने खण्ड-विश्लेषण विधि के आधार पर 'रुचि-अनुसूची' (interest Schedule) तथा हार्नोल्ड जीस्ट (Jarnold Giest) ने कम पढ़े एवं अशिक्षित व्यक्तियों की रुचियों को जानने के लिये एक 'चित्र रुचि-सूची' (picture interest inventory) का निर्माण कर, रुचि-परीक्षण के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया है।
- भारतीय सन्दर्भ में रुचि-परीक्षण के क्षेत्र में सर्वप्रथम कार्य मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद ने किया। सन् 1956 में इलाहाबाद ब्यूरो ने हाईस्कूल विद्यार्थियों के लिये 'कूडर रुचि-प्रपत्र' के आधार पर एक 'व्यावसायिक रुचि-प्रपत्र' का निर्माण किया। इसी वर्ष बिहार शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो ने 'कूडर प्राथमिकता प्रपत्र' का भारतीय अनुकूलन किया। इस क्षेत्र में जिन भारतीय विद्वानों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमें, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के रीडर कार्तिक राय चौधरी (वर्नन-रायचौधरी रुचि-सर्वेक्षण), धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़ के प्रिंसीपल बी. जी. झिंगरन (व्यावसायिक रुचि-प्रपत्र), के.जी.के. कालिज, मुरादाबाद के आर. के.

ओझा (व्यावसायिक रुचि-प्रपत्र) मुख्य हैं।

- साधारणतया रुचि परीक्षण दो प्रकार के होते हैं—
  1. सामान्य या अव्यावसायिक रुचि परीक्षण (General or Non-Vocational Interest Inventories)
  2. व्यावसायिक रुचि-परीक्षण (Vocational Interest Inventories)
- सामान्य या असामान्य रुचि परीक्षणों के अन्तर्गत, व्यक्ति के सामान्य जीवन एवं शैक्षिक परिस्थितियों से सम्बन्धित रुचियों का मापन, हम प्राय: जाँच-सूची (Check-list), प्रश्नावली (Guestionnaire) एवं लेखन-शैली (Writing Style) द्वारा कर सकते हैं। जाँच-सूची के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की क्रियाओं, जैसे—रेडियो सुनना, खेल खेलना, मैगजीन पढ़ना एवं क्लब जाना आदि को बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत करके, उनकी रुचियों का अध्ययन किया जाता है।
- व्यावसायिक रुचि परीक्षणों के अन्तर्गत, व्यक्ति की किसी व्यावसायिक क्षेत्र में रुचि का मापन किया जाता है। अधिकांश व्यक्ति जीवन के चौथे दशक के अन्त तक पहुंचते-पहुंचते ऐसा निश्चय कर लेते हैं कि जिस व्यवसाय क्षेत्र में वे हैं, उसी में अवकाश ग्रहण करने तक रुका जाए, चाहे इस व्यवसाय में उनके लिए कोई उत्साह अथवा स्पन्दन शेष न रहा हो।
- व्यावसायिक रुचि मापन की विधियों का एकमात्र उद्देश्य यही है कि आरम्भ में ही युवा व्यक्तियों की रुचि और रुझान का पता लगाकर उन्हें उसके अनुसार व्यवसाय चयन में सहायता दी जा सके, ताकि, वे आजीवन अपने कार्य में रुचि ले सकें तथा लाभकारी ढंग से कार्य कर सकें।
- स्ट्राँग ने सन् 1919 में व्यावसायिक रुचि प्रपत्र का निर्माण स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में किया। इस परीक्षण में कुल 420 पद हैं, जो विभिन्न व्यवसायों, मनोरंजन क्रियाओं, व्यक्तिगत विशेषताओं, स्कूली विषयों आदि से सम्बन्धित थे। अपने इस रुचि प्रपत्र को स्ट्रांग ने कई हजार व्यक्तियों से भरवाया, जिनका सम्बन्ध विभिन्न व्यवसायों से था, जैसे—डाक्टर, इन्जीनियर, वकील, विक्रेता, अध्यापक, किसान, सरकारी अफसर, बीमा एजेन्ट, प्रबन्धक, वास्तुकार आदि तथा वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विभिन्न व्यवसायों में कार्य करने वालों की रुचियाँ, अन्य व्यक्तियों की रुचियों से भिन्न होती हैं।
- परीक्षण की वैधता ज्ञात करने के लिए अनेक कसौटियों का प्रयोग किया गया है, जैसे—वास्तविक प्रशिक्षण के पश्चात् कार्य में सफलता, विद्यालय एवं कालेज के विभिन्न वर्गों के साथ सह-सम्बन्ध आदि। परीक्षण की विश्वसनीयता पुन: परीक्षण विधि तथा अर्द्ध-विटापन (Split-half) विधि द्वारा ज्ञात की गई तथा विश्वसनीयता गुणांक 85 आया।
- सन् 1938 में कूडर (Kuder) के प्राथमिकता प्रपत्र का निर्माण हुआ, जिसका संशोधित रूप सन् 1951 में प्रस्तुत किया गया। परीक्षण मुख्य रूप से हाईस्कूल विधार्थियों एवं वयस्कों के लिये उपयोगी है।
- रुचि प्रपत्र तैयार करने वाले सभी मनोवैज्ञानिकों ने व्यावसायिक रूचियों के विविध रूपों को अलग-अलग मानकर रूचि परीक्षण किया। यद्यपि, कूडर ने रूचियों को दस व्यापक क्षेत्रों में बाँटा, फिर भी, रूचियों की अनेकता का आभास उनके रूचि प्रपत्र में मिलता है। रूचियों के अनेक होने पर, रूचियों की प्रतिकृतियाँ (Patterns) अथवा प्रवृत्तियाँ (Trends) अनेक नहीं हैं, यह मनोवैज्ञानिक तथ्य सभी को मान्य था। थर्स्टन ने इस विचार को तत्व-विश्लेषण के आधार पर और भी पक्का कर दिया। उसने कहा कि यदि अनेक विशिष्ट क्षेत्रीय रूचियों का घटक-विश्लेषण किया जाय तो कुछ रूचि घटक (Interest Factors) ऐसे मिलेंगे, जो स्ट्राग द्वारा प्रतिपादित रूचि प्रतिकृतियों की तरह हों, लेकिन, यह निश्चित है कि इन रूचि घटकों की संख्या, रूचि प्रतिकृतियों से कम होगी।
- ली-थार्पे रूचिपत्री में प्रश्नों का संकलन साँख्यिकीय आधार पर न करके निर्णय के आधार पर किया जाता है। ली-थार्पे ने विभिन्न व्यवसायों की व्याख्या 'यूनाइटेड स्टेट्स एजूकेशनल सर्विस' द्वारा प्रकाशित 'व्यावसायिक शीर्षकों के कोश' (Dictionary of Occupational Titles) के आधार पर की है।

नोट

- जीस्ट चित्र रूचि प्रपत्र ग्यारह सामान्य क्षेत्रों यथा-अनुनयात्मक, लिपिक, यान्त्रिक, संगीतात्मक, वैज्ञानिक, बाह्य, साहित्यिक, गणनात्मक, कलात्मक, समाज सेवा तथा नाटकीय में रूचि का मापन करती है। इसमें कुल 44 पद हैं, जिनमें प्रत्येक में तीन-तीन चित्र हैं, जिनका चयन व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक क्रियाओं से किया गया है।
- यह रूचि पत्री कूडर की रूचि पत्री को आधार बनाई गई है। इसके आधार के अन्तर्गत 80 परीक्षण पदों (Test-items) का समावेश किया गया है। यह परीक्षण 10 भागों में विभक्त है। भाग 3, 8, 9, तथा 1 में से प्रत्येक पर 5 परीक्षण पद, अर्थात् कुल 20 पद तथा शेष भागों में से प्रत्येक पर 10 परीक्षण पद, अर्थात, 60 पद चयन किये जाते हैं। इन परीक्षण पदों में कुछ व्यावसायिक क्रियायें भी दी होती हैं तथा प्रत्येक परीक्षा पद के सम्मुख अथवा नीचे 2, 1, 0 अंक लिख दिये जाते हैं। इनका तात्पर्य क्रमशः सबसे अधिक पसन्द, साधारण पसन्द तथा बिल्कुल नापसन्द है।
- भिन्न-भिन्न भागों में प्राप्त अंकों के आधार पर परीक्षार्थी की व्यावसायिक रूचि का पार्श्व चित्र (Profile) निर्मित किया जाता है। परीक्षण की अँकन विधि सरल है। यह रूचि परीक्षण उत्तर प्रदेश की हाईस्कूल तथा इन्टरमीडिएट छात्रों की रूचि का मापन करने के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा वर्तमान समय में विद्यार्थियों का शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन करने में पर्याप्त सहायता मिल रही है।

29.4 शब्दकोश (Keywords)

- **परिप्रेक्ष्य**—आसपास का वातावरण।
- **प्रपत्र**—कागजात।

29.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. रुचि परीक्षण के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का उल्लेख कीजिए।
2. प्राथमिकता प्रपत्र के प्रारूपों का वर्णन कीजिए।
3. थर्स्टन रुचि अनुसूचि क्या है? इसकी विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. व्यावसायिक शीषकों के कोश
2. व्यक्तिगत एवं सामूहिक
3. स्टेंसिल
4. कूडर
5. 80 परीक्षण पदों

29.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*— डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*— डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।
3. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*— डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।

नोट

इकाई—30: भारत में निर्देशन तथा परामर्श की समस्याएँ तथा उनका समाधान (Problems of Guidance and Counseling in India and their Solution)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
30.1 भारत में निर्देशन तथा परामर्श की समस्याएँ (Problems of Guidance and Counseling in India)
30.2 निर्देशन तथा परामर्श के सुधार के उपाय (Measures for the improvement of Guidance and Counseling)
30.3 निर्देशन तथा परामर्श की नवीन प्रवृत्तियाँ (New Trends in Guidance and Counseling)
30.4 सारांश (Summary)
30.5 शब्दकोश (Keywords)
30.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
30.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- इस इकाई में भारत में निर्देशन तथा परामर्श से जुड़ी समस्याओं तथा उनके सामाधान के विषय में चर्चा करेंगे

प्रस्तावना (Introduction)

निर्देशन तथा परामर्श की प्रक्रिया अधिक प्राचीन है यह औपचारिक तथा अनौपचारिक ढंग से व्यवस्थित की जाती रही है। महाभारत में कृष्ण ने अर्जुन को निर्देशन तथा परामर्श ही दिया जब उन्होंने कहा कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। गीता धर्मग्रन्थ निर्देशन तथा परामर्श के प्रकरण पर आधारित है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की समस्याओं के लिए दूसरों से विचार-विमर्श करता है। निर्देशन तथा परामर्श का अध्ययन करें अथवा न करें परन्तु सभी को जीवन में इसका उपयोग करना होता है। जीवन की समस्याओं के समाधान तथा समायोजन में इसका विशेष महत्व है। शिक्षा, निर्देशन तथा परामर्श पूर्वक प्रक्रियायें हैं।

परन्तु ईसा शताब्दी के आरम्भ से विश्व के शिक्षाविदों ने ऐसा अनुभव किया है कि शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन की सभी को आवश्यकता है। इसलिए इसकी व्यवस्था औपचारिक ढंग से की जानी चाहिए। क्योंकि जीवन की समस्याएँ दिन-प्रतिदिन जटिल होती जा रही है तथा शैक्षिक तथा व्यावसायिक अवसरों का क्षेत्र अधिक व्यापक होता

नोट

जा रहा है। सामाजिक जीवन में नये-नये आयाम विकसित हो रहे हैं विज्ञान तथा तकनीकी का विकास अधिक तीव्र गति से हो रहा है। व्यक्तिगत भिन्नताओं तथा प्रवणता सम्बन्धी बहुयामी शोध कार्य हुए है।

30.1 भारत में निर्देशन तथा परामर्श की समस्याएँ (Problems of Guidance and Counseling in India)

हमारे देश में, निर्देशन कार्य प्रारम्भ हो चुका है, लेकिन इस कार्य की प्रगति अत्यन्त मन्द एवं अपर्याप्त ही है तथा निर्देशन का जो कुछ भी कार्य किया जा रहा है वह भी दोषयुक्त ही है। इसका मुख्य कारण-निर्देशन कार्य के मध्य आने वाली विभिन्न समस्यायें। इन समस्याओं का उल्लेख निम्नलिखित है–

(1) **अध्यापकों पर अत्यधिक कार्यभार** (Excessive Working Load on Teachers)—अध्यापक पर ही, निर्देशन कार्य का प्रारम्भिक दायित्व होता है, लेकिन हमारे देश में अध्यापक कार्य के बोझ से दबे जा रहे हैं जैसे—कक्षाओं में विद्यार्थियों की अत्यधिक संख्या, परीक्षण सम्बन्धी कार्य, रजिस्टर अभिलेख तथा अन्य अनेक गौण कार्य। यही कारण है कि वे निर्देशन सम्बन्धी उत्तरदायित्व का निर्वाह समुचित रूप से नहीं कर पाते हैं।

(2) **अध्यापकों का रूढ़िवादी दृष्टिकोण** (Traditionalistic outlook of the Teachers)—हमारे देश में अधिकांश वे ही व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र में प्रविष्ट होता है जो अन्य क्षेत्रों में अवसरों से वंचित रह जाते हैं। ऐसे व्यक्ति अत्यन्त कम संख्या में हैं जिनकी शिक्षण के क्षेत्र में रूचि होती है। इसका परिणाम होता है कि वे भी नये व रचनात्मक कार्यो का निर्वाह उत्साहपूर्वक नहीं कर पाते तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त भी उनके शिक्षण का ढंग परम्परागत ही रहता है। यही कारण है कि आज हमारे देश में निर्देशन कार्य इस क्षेत्र में प्रगति नहीं कर पा रहा है।

(3) **अशिक्षित एवं रूढ़िवादी अभिभावक** (Illiterate Parents)—हमारे देश की अधिकांश जनता गाँवों में निवास करने के कारण अशिक्षित एवं रूढ़िवादी है। यहाँ के अधिकांश व्यक्ति निर्देशन के नाम से अनिभिज्ञ हैं। जिन व्यक्तियों ने निर्देशन का नाम तक नहीं सुना, उनसे निर्देशन के महत्व को समझने की अपेक्षा कैसे की जा सकती हैं? इसके अतिरिक्त जो अभिभावक शिक्षित हैं, वे भी अपने बालकों को अपनी परम्परानुसार व्यवसाय-चयन हेतु बाध्य करते हैं। व्यावसाय के चयन में उनका दृष्टिकोण निष्पक्ष होने के बजाय पक्षपातपूर्ण होता है। यह भी निर्देशन की प्रगति में एक महत्वपूर्ण समस्या है।

(4) **अप्रशिक्षित अध्यापक** (Lack of Training on the Past of the Teacher)—भारत में, अप्रशिक्षित शिक्षकों एवं अप्रशिक्षित निर्देशकों के कारण, निर्देशन प्रदान करने में अत्यन्त कठिनाई होती है, क्योंकि निर्देशन प्रदान करना जनसामान्य अथवा सामान्य व्यक्तियों को कार्य नहीं है। इस कार्य को मात्र योग्य, प्रशिक्षित, कुशल एवं धैर्ययुक्त व्यक्ति ही कुशलता के साथ कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि निर्देशन प्रक्रिया में थोड़ी सी असावधानी से एक व्यक्ति का समस्त जीवन नष्ट हो सकता है। अत: अधूरा ज्ञान प्राप्त निर्देशन अथवा शिक्षक को निर्देशन कार्य को नहीं सौंपना चाहिए।

(5) **विद्यालयों में पाठ्यक्रम** (Curriculum in Schools)—स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त हमारे देश में बेसिक शिक्षा एवं बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना तो की जा रही है लेकिन इन विद्यालयों में ज्ञान की विभिन्न शाखाओं (विषयों) के शिक्षण की व्यवस्था का अभाव है, परिणामस्वरूप विद्यार्थियों की उनकी रूचि क्षमता एवं योग्यतानुरूप इन विद्यालयों में शिक्षा प्रदान नहीं की जा सकती है।

(6) **दोषयुक्त परीक्षा प्रणाली** (Defective Examination System)—हमारे देश में प्रचलित परीक्षा प्रणाली अत्यन्त दोषयुक्त है। परीक्षा में वस्तुनिष्ठता एवं वैषयकिता का अभाव है। विद्यार्थी मात्र कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तरों को याद करके ही परीक्षा उत्तीर्ण कर लेते हैं। इस प्रणाली से कोई भी छात्र, किसी भी विषय की परीक्षा को पास कर लेता है। इस प्रकार, विद्यार्थियों की रूचियों, क्षमताओं एवं योग्यताओं आदि के समुचित ज्ञान के अभाव में निर्देशन कार्य सम्भव नहीं हो पाता है।

नोट

(7) **विद्यालयों में विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या** (Increasing Number of Students in School)—हमारे देश में बढ़ती हुई जनसंख्या का प्रभाव, समस्त क्षेत्रों पर पड़ रहा है। इससे शैक्षिक क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा। विद्यालयों में उपलब्ध शैक्षिक सुविधाओं एवं साधनों की अपेक्षा, विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती है। कक्षा में छात्रों की अधिक संख्या होने के कारण शिक्षक को विद्यार्थी से वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करने में अत्यन्त कठिनाई होती है। ऐसी परिस्थिति में छात्र को वैयक्तिक परामर्श अथवा निर्देशन किस प्रकार प्रदान किया जा सकता है।

(8) **विद्यालयों की दयनीय आर्थिक दशा** (Poor Economic Conditions of Schools)—हमारे देश के अधिकांश विद्यालयों की आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय है। इनमें कुछ विद्यालय तो ऐसे भी हैं, जो कि अपने शिक्षकों को वेतन समय पर नहीं दे पाते। ऐसी स्थिति में इन विद्यालयों में, निर्देशन कार्यों में होने वाले व्यय को वहन करने की आशा करना व्यर्थ ही होगी। निर्देशन प्रक्रिया (कार्यो) में बुद्धि, धन एवं परिश्रम तीनों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में विद्यालयों की दयनीय आर्थिक दशा भी निर्देशन प्रगति में कठिनाई पैदा करती है।

(9) **साधनों का अभाव** (Lack of Resources)—भारत में, शिक्षा को आर्थिक साधनों एवं सुविधाओं की दृष्टि से अपेक्षित रखा गया है। हमारे देश में विद्यालयों की आर्थिक स्थिति, विकसित देशों के विद्यालयों के समान नहीं हैं, लेकिन जो भी साधन उपलब्ध है, उनका समुचित रूप से उपयोग न किए जाने के कारण भी निर्देशन के क्षेत्र में प्रगति नहीं हो पा रही है तथा निर्देशन से सम्बन्धित बनाई गयी योजनायें मात्र प्रतिवेदन तक सीमित होकर रह गयी है।

(10) **व्यावसायिक सूचना के संकलन तथा विश्लेषण हेतु संगठित व्यवस्था का अभाव** (Lack of Organised System for Collection and Analysis of Occupational Information)—निर्देशन कार्य, व्यावसायिक सूचनाओं का अत्यन्त महत्व है। व्यावसायिक निर्देशन का आधार ही, व्यावसायिक सूचनाएँ हैं। निर्देशन कार्यकर्त्ताओं एवं सेवार्थी को व्यवस्थित एवं समुचित व्यावसायिक सूचनाओं की प्राप्ति के अभाव में, निर्देशन का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पाता। भारत में सूचनाओं को एकत्रित करने तथा उनका विश्लेषण करने हेतु अभी तक कोई व्यापक एवं संगठित व्यवस्था नहीं की गई है। इसके कारण हमारे देश में व्यावसायिक निर्देशन का कार्य अपूर्ण व प्रभावहीन ही रह जाता है।

(11) **प्रमापीकृत परीक्षणों का अभाव** (Lack of Standard Tests)—निर्देशन कार्यो हेतु सर्वाधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण सामग्री 'परीक्षण' हैं हमारे देश में, योग्यता, निष्पत्तियों एवं अभिरुचियों, अभियोग्यताओं, बुद्धि इत्यादि के मूल्यांकन हेतु प्रमापीकृत परीक्षणों का अभाव है, तथा जो भी परीक्षण उपलब्ध हैं, वे अंग्रेजी भाषा में हैं, अत: ये परीक्षण निर्देशन कार्य को पूरा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि अधिकांश छात्र ऐसे हैं जो अंग्रेजी नहीं जानते। लेकिन यह अत्यन्त दु:खद बात है कि हमारे देश में अभी तक इस क्षेत्र में अत्यन्त सीमित कार्य हो सका है, जिसके कारण, निर्देशन कार्य प्रगति नहीं कर पा रहा है।

(12) **शिक्षा एवं निर्देशन के क्षेत्र में शोध कार्य का अभाव** (Lack of Research Work in the Field of Education and Guidance)—शिक्षा एवं निर्देशन के क्षेत्र में शोध कार्य ने अभी तक प्रवेश नहीं किया है, तथा जो कुछ भी कार्य इस क्षेत्र में हुआ है वह अत्यन्त अल्प है। विश्वविद्यालयों में, निर्देशन के क्षेत्र में, शोध कार्य नहीं के बराबर रहा है। यही कारण है कि हमारे देश में निर्देशन कार्य प्रगति नहीं कर पा रहा है।

(13) **बेकारी, एवं अवसरों का अभाव** (Unemployment, and Lack of Opportunities)—विभिन्न प्रकार के रोजगारों के अभाव में, व्यावसायिक निर्देशन नहीं प्रदान किया जा सकता है। बेरोजगारी की स्थिति में, व्यक्ति को जैसा भी व्यवसाय मिलता है, उसे ही सहर्ष अपना लेता है। हमारा देश अभी अर्द्धविकसित अवस्था में है। यहाँ पर बेरोजगारी की समस्या अत्यन्त गहन है। इसके अतिरिक्त भारत में रोजगार के उपलब्ध अवसरों की अपेक्षा, शिक्षित और अशिक्षित व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है। अत: व्यावसायिक मार्गदर्शन का उद्देश्य इसी असन्तुलन के कारण पूर्ण नहीं हो पाता है।

नोट

(14) **जाति-व्यवस्था** (Cast System)—हमारे देश में निर्देशन कार्य की प्रगति में एक अन्य समस्या है—जाति-व्यवस्था। लेकिन वास्तविक रूप में अध्ययन किया जाए तो हम यह पायेंगे कि भारत में, जाति-व्यवस्था व्यावसायिक निर्देशन का सबसे प्रचीन रूप है। लेकिन यह व्यवस्था अत्यन्त दोषयुक्त थी, क्योंकि इस व्यवस्था में बालक की रुचि, योग्यता तथा क्षमता इत्यादि का ध्यान नहीं रखा जाता था परम्परागत एवं जातिगत व्यवसाय को ही बालक को करना पड़ता है इसके अतिरिक्त अन्य किसी व्यवसाय का चयन करना, उसके लिए केवल कल्पना थी।

(15) **एक राष्ट्रभाषा का अभाव** (Lack of one National Language)—हमारे देश में अनेक प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं। प्रत्येक राज्य एक पृथक राज्यभाषा (State Language) है तथा एक राज्य में भी अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। अत: एक राज्य का रहने वाला निर्देशनप्रदाता को दूसरे राज्य में जाकर निर्देशन कार्य करने में अत्यन्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। यथा—राजस्थान के निदेशक, उत्तर प्रदेश में आकर अपने कार्य को सुचारू रूप से नहीं कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त परीक्षणों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद होना आवश्यक है, लेकिन हमारे देश में, कुछ भाषाएँ ऐसी हैं, जिनमें अभी तक किसी परीक्षण का निर्माण ही नहीं हुआ है। अत: इस कारण भी हमारे देश में निर्देशन कार्य प्रगति नहीं कर पा रहा है।

(16) **व्यक्तियों के जीवन-यापन के स्तरों में असमानता** (Disparity in Standard of Living)—हमारे देश में निर्धन एवं धनवान व्यक्तियों के मध्य अन्तर भी निर्देशन कार्य की प्रगति में एक बाधा है। निर्देशन का लक्ष्य है—निर्देशन समस्त व्यक्तियों को प्रदान किया जाए लेकिन भारत जैसे देश में यह लक्ष्य पूर्ण हो पाना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यहाँ निर्धन परिवारों के बालक उन विद्यालयों में अध्ययन करते हैं जो जन कल्याण हेतु चलाये जाते हैं। शैक्षिक सुविधाओं एवं साधनों का इन विद्यालयों में अभाव होता है। तथा धनाढ्य परिवार अपने बालकों की शिक्षा पर अत्यधिक धन खर्च करते हैं तथा शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् अच्छी सरकारी नौकरी प्राप्त कर लेते हैं। अत: ऐसी स्थिति में निर्देशन कार्य में समरूपता तथा सार्वजनिकता लाना अत्यन्त कठिन है।

30.2 निर्देशन तथा परामर्श के सुधार के उपाय (Measures for the improvement of Guidance and Counseling)

निर्देशन-सेवाओं की स्थिति में सुधार करने हेतु निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं—

(1) निर्देशन के ठोस कार्य हेतु विद्यालयों के पाठ्यक्रम में व्यावसायिक सूचना को एक विशिष्ट विषय के रूप में पढ़ाया जाए।

(2) निर्देशन की आवश्यकता व महत्व की गहनता से प्रशासन को अनुभव करना चाहिए और निर्देशन हेतु आवश्यक सुविधाएँ एवं साधन उपलब्ध कराने में अपनी सहायता प्रदान करनी चाहिए।

(3) निर्देशन के विभिन्न साधनों में सामंजस्य स्थापित करने हेतु निर्देशन का व्यापक संगठन बनाया जाए और अन्य साधनों को उस संगठन से सम्बन्ध किया जाए।

(4) शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निर्देशन अभिमुख (Guidance Oriented) बनाया जाना चाहिए।

(5) अध्यापकों में निर्देशन सम्बन्धी अन्तर्दृष्टि (Guidance Insight) का विकास किया जाना चाहिए।

(6) विद्यार्थियों हेतु व्यावसायिक मार्गदर्शन की व्यवस्था माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करने से पूर्व ही की जानी चाहिए, क्योंकि छात्र ऐसे भी होते हैं, जो परिस्थितिवश माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त ही व्यवसाय की खोज करने लगते हैं।

(7) निर्देशन कार्यक्रमों का गठन, विद्यालयों एवं समाज के व्यक्तियों में निर्देशन सम्बन्ध समझ का विकास करने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए।

(8) निर्देशन सम्बन्धी विशिष्ट विस्तृत पाठ्यक्रम एवं शोध कार्यों को विश्वविद्यालयों में प्रारम्भ किया जाए।

(9) निर्देशन कार्यकर्त्ता के प्रशिक्षण की व्यवस्था प्रशिक्षण महाविद्यालयों अथवा विश्वविद्यालयों में की जानी चाहिए।

अत: सारांश में यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में, निर्देशन की प्रगति हेतु अनेक ठोस प्रयास किए जाने आवश्यक हैं। निर्देशन कार्य हेतु योजना का निर्माण, निर्देशन की विभिन्न समस्याओं को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त अध्यापकों, निर्देशन एवं अभिभावकों को भी इस कार्य हेतु अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करने हेतु तत्पर रहना चाहिए।

नोट्स निर्देशन की प्रगति हेतु अनेक ठोस प्रयास किए जाने आवश्यक हैं। निर्देशन कार्य हेतु योजना का निर्माण, निर्देशन की विभिन्न समस्याओं को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त अध्यापकों, निर्देशन एवं अभिभावकों को भी इस कार्य हेतु अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करने हेतु तत्पर रहना चाहिए।

30.3 निर्देशन एवं परामर्श की नवीन प्रवृत्तियाँ (New Trends in Guidance and Counseling)

प्रगति एवं विकास से सम्बन्धित समस्त क्षेत्रों, व्यक्ति एवं समाज से सम्बन्धित अवधारणाओं, प्रयुक्त की जाने वाली विधियों, युक्तियों आदि पर इनका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। निर्देशन एवं परामर्श के लक्ष्य, कार्यविधि, मूल्यांकन पद्धतियाँ, पारस्परिक सम्बन्धों की भूमिका आदि पर भी इसका प्रभाव होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि निर्देशन सेवाओं की परम्परागत प्रणाली में आज व्यापक स्तर पर परिवर्तन किए जा रहे हैं। आज परामर्श को परामर्शदाता के स्थान पर सेवार्थी—केन्द्रित बना दिया गया है तथा प्रतिभा के प्रत्यय को विशिष्ट महत्व प्रदान करते हुए इसके विकास पर अधिक बल दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त भी अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ इस क्षेत्र में दृष्टिगोचर हो रही हैं, जिनका उल्लेख निम्नलिखित हैं—

(1) **शैक्षिक निर्देशन से सम्बन्धित नवीन प्रवृत्तियाँ** (New Trends Related to the Education Guidance)—वर्तमान समय में निर्देशन को मात्र सावेगिक प्राथमिक चिकित्सा का माध्यम ही स्वीकार नहीं किया जाता है अपितु इसे एक ऐसी प्रविधि के रूप में विकसित किया जा रहा है जो विद्यार्थी के समस्त मनोवैज्ञानिक पक्षों के विकास में सहायक हो। इसी कारण वर्तमान आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में निर्देशन के लक्ष्य में भी परिवर्तन कर दिया गया हैं और इसका लक्ष्य विकासात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति निर्धारित कर दिया गया। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, विद्यार्थियों में सर्जन क्षमताओं के विकास, व्यावसायिक अवसरों की तैयारी व सामाजीकरण पर विशेष बल दिया जाना सुनिश्चित किया गया है।

निर्देशन के लक्ष्य में परिवर्तन के साथ ही निर्देशन से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया है। वर्तमान समय में, प्राथमिक स्तर पर भी परामर्श की भूमिका को महत्व प्रदान किया गया है तथा परामर्श सेवा को परामर्शदाता केन्द्रित बनाने के स्थान पर परामर्श प्रार्थी केन्द्रित बना दिया गया है। निर्देशन सेवाओं के स्थान पर विद्यार्थी व्यक्तिगत सेवा शब्द का प्रचलन इस तथ्य का सूचक है। इसके अतिरिक्त निर्देशन एवं परामर्श को सभी के समन्वित प्रयासों को प्रतिफल भी स्वीकार किया गया है।

(2) **परामर्शदाता के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में परिवर्तन** (Changes in Counsellors Training Programmes)—परामर्शदाता के प्रशिक्षण में सम्बन्धित पाठ्यक्रम में भी आज व्यापक स्तर पर परिवर्तन किए गए हैं। आज मनोविज्ञान के प्रत्येक पहलू का ज्ञान, प्रत्येक परामर्शदाता के लिए सर्वाधिक आवश्यक स्वीकार किया जा रहा है। स्नातक एवं स्नातकोत्तर दो भागों में निर्देशन सम्बन्धी पाठ्यक्रम को विभिक्त करके विदेशों में बड़ी संख्या में परामर्शदाताओं को प्रशिक्षित के अनुभव को भी महत्व प्रदान किया गया है। तकनीकी विकास के फलस्वरूप यह भी आवश्यक स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक परार्शदाता को कम्प्यूटर प्रणाली का प्रर्याप्त

नोट

ज्ञान हो। अनुसन्धान की नवीन एवं प्राचीन विधियों एवं प्रविधियों की जानकारी भी परामर्शदाताओं को प्रदान की जा रही है।

(3) मूल्यांकन के नवीन धारणाओं का विकास (Development of New Concept in Evaluation)–निर्देशन एवं परामर्श की प्रक्रिया, किस सीमा तक अपने लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त कर सकी है? इस ज्ञान के अभाव में निर्देशन प्रक्रिया को प्रभावी बना पाना असम्भव है। अत: निर्देशन की प्रचलित मूल्यांकन पद्धतियों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रविधियों एवं धारणाओं के विकास पर बल दिया जा रहा है। इस सन्दर्भ में नवीन परिवर्तन निम्नलिखित हैं–

1. निर्देशन लक्ष्यों के पुनर्निर्धारण, उनकी वैधता, विश्वसनीयता एवं सार्थकता के सम्बन्ध में पुनर्विचार किया जा रहा है।
2. आवश्यकता के अनुपात में निर्देशन कार्यकर्त्ताओं की संख्या निर्देशन में उनकी रूचि तथा प्रशिक्षण आदि के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के सर्वेक्षण किए जा रहे हैं।
3. इस सम्बन्ध में विभिन्न शोधों को प्रोत्साहित किया जा रहा है कि निर्देशन एवं परामर्श की प्रक्रिया को, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सुचारू रूप से सम्पन्न करने के लिए किन सुविधाओं की आवश्यकता है।
4. उपलब्ध आलेखों की पर्याप्तता, उपलब्धता आदि के सम्बन्ध में भी वांछित निर्णय लिए जा रहे हैं।
5. सेवार्थी के सम्बन्ध में अधिक प्रदत्तों के संकलन एवं उनके वस्तुनिष्ठ विश्लेषण को महत्व प्रदान किया जा रहा है।
6. निर्देशन कार्यक्रमों में आवश्यक सहभागिता अथवा विभिन्न कर्मिया समन्वित प्रयासों पर भी पुनर्विचार किया जा रहा है।

(4) निर्देशन के क्षेत्र में तकनीकी की भूमिका (Role of Technology in Guidance)–तकनीकी के व्यापक विकास के परिणामस्वरूप परामर्शदाताओं के द्वारा किए जाने वाले अनेक कार्य, अब मशीनों के द्वारा किए जा सकते है। संगणक एवं कम्प्यूटरों का उद्भव इस क्षेत्र के लिए वरदान हो सकेगा। परामर्शदाताओं का प्रमुख कार्य मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रशासन तक ही सीमित हो जाने की सम्भावना है। यह भी सम्भव है कि कालान्तर में परामर्श की समग्र प्रक्रिया पर ही कम्प्यूटर का नियन्त्रण हो जाए। कम्प्यूटर के भावी प्रयोग पर आधारित इन सम्भावनाओं ने परामर्शदाता की भूमिका को सुनिश्चित करने के लिए विवश कर दिया है, और इस दिशा में चिन्तन, मनन, विचार-विमर्श की प्रक्रिया चल रही है। अब कम्प्यूटर का प्रयोग भी निर्देशन में किया जाने लगा है।

(5) मानव व्यवहार से सम्बन्धित नवीन धारणाओं का विकास (Changing Concepts of Human Behaviour)–सामाजिक विज्ञानों के निरन्तर विकास के फलस्वरूप, मानव की प्रकृति एवं उसके विकास पर अनेक नई खोजें हुई हैं। नव फ्रायडवादी विचारधारा के अन्तर्गत, मानव व्यवहार के जैविक एवं सामाजिक तत्वों पर विशेष बल दिया जा रहा है, बुद्धि एवं अभिरूचि के स्थान पर, प्रतिभा के विकास एवं प्रयोग को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। यदि किसी व्यक्ति में कोई प्रतिभा है तो उसके विकास एवं उपयोग के समुचित अवसर प्रदान किए जाने चाहिए और व्यक्ति एवं समाज की प्रगति की दृष्टि से इसी का सर्वाधिक महत्व है। निर्देशन एवं परामर्शदाताओं को इन नवीन धारणाओं से परिचित होना आज नितान्त आवश्यक है।

इन नवीन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त **रूथ स्ट्रैंग** ने निर्देशन की निम्नलिखित नवीन प्रवृत्तियों को विकसित करने पर विशेष बल दिया है–

1. **सेवार्थी-केन्द्रित उपबोधन**–परामर्श को परामर्शदाता केन्द्रित बनाने के स्थान पर सेवार्थी-केन्द्रित बनाया जाना चाहिए। यह परामर्श, प्रार्थी की आवश्यकताओं, विकास के स्तर एवं वस्तुनिष्ठ आधारों पर सम्पन्न किया जाना चाहिए।
2. **विकासात्मक निर्देशन पर बल**–व्यक्ति का समग्र व्यक्तित्व अखण्ड है तथा उसकी विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्यायें भी, परस्पर एक-दूसरे से सम्बद्ध होती हैं। अत: निर्देशन प्रदान करते समय व्यक्ति के व्यक्तित्व के

नोट

समग्र पक्षों पर समन्वित रूप से ध्यान किया जाना चाहिए। साथ ही व्यक्ति की एक समस्या का अध्ययन करते समय अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित पक्षों का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

3. **निर्देशन कार्यक्रमों में शिक्षकों का सहयोग**—यह प्रयास किया जा रहा है कि निर्देशन एवं परामर्श कार्यक्रमों में शिक्षकों की सहभागिता में वृद्धि हो सकें। इसका कारण यह है कि निर्देशन शिक्षा की प्रक्रिया का एक सह अंग है। शिक्षा में निर्देशन निहित है। अत: यह अपेक्षा की जाती है कि एक परामर्शदाता को शिक्षण की प्रक्रिया से भी परिचित होना चाहिए।

क्या आप जानते हैं सर्वाधिक उचित यही है कि एक शिक्षक को ही निर्देशन एवं परामर्श की प्रक्रिया से परिचित कराकर उनका इस दिशा में उपयोग किया जाए। निर्देशन शिक्षा एक सशक्त सहायक प्रणाली है।

4. सामूहिक कार्य का महत्व—वर्तमान समय में यह अनुभव किया जा रहा है कि सेवार्थी को समुचित निर्देशन एवं परामर्श देने के लिए उससे सम्बन्धित अभिभावकों, शिक्षकों, प्राचार्यो, मित्रों का भी सहयोग प्राप्त किया जाए। मात्र परामर्शदाता के द्वारा ही इस भूमिका का निर्वाह सार्थक रूप से किया जाना कठिन है। अत: निर्देशन व परामर्श के क्षेत्र में सामूहिक कार्य को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

रूथ स्ट्रैंग के समान ही **आर्थर ई. ट्रेक्सलर** ने भी निर्देशन एवं परामर्श को प्रभावी बनाने के लिए अधोलिखित नवीन प्रवृत्तियों को उपयोग करने पर बल दिया है—

1. निर्देशन-दाताओं के प्रशिक्षण पर अधिकाधिक ध्यान देने की प्रवृत्ति अब देखने में आ रही है।
2. निर्देशन कार्यक्रम में वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन प्रविधियों को प्रयुक्त किया जा रहा है।
3. निर्देशन सम्बन्धी सूचनाओं के संकलन एवं उनके आलेख रखने पर विशेष बल दिया जा रहा है।
4. निर्देशन की औपचारिक सेवाओं एवं अन्य अभिकरणों के समन्वित प्रयासों पर बल दिया जा रहा है।
5. विद्यार्थियों की योग्यताओं एवं क्षमताओं के समुचित मापन एवं उनकी असमायोजन की अयोग्यता का उपचार करने की दिशा में विशेष रूचि प्रदर्शित की जा रही है।
6. सेवार्थी की सफलता के सम्बन्ध में भावी कथन को विशेष महत्व दिया जा रहा है।
7. निर्देशात्मक एवं अनिदेशात्मक निर्देशन को समान रूप से महत्व दिया जा रहा है।
8. अनुवर्ती अध्ययन को विशिष्ट स्थान दिया जा रहा है।
9. व्यावसायिक सूचनाओं से सम्बद्ध स्रोतों के विकास व उन्हें सर्वसुलभ बनाने में रूचि प्रदर्शित की जा रही है।
10. व्यक्तिगत अध्ययन की विधियों का समुचित प्रयोग करने पर बल दिया जा रहा है।
11. सुधारात्मक कार्यों (Remedial Work) की निर्देशन सेवाओं में प्रयुक्त करने पर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है।

निर्देशन एवं परामर्श के क्षेत्र में विकसित उपरोक्त प्रवृत्तियों का अध्ययन करने से यह सहज ही विदित हो जाता है कि निर्देशन सेवाओं में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं। फिर भी हमारे देश में इन सेवाओं का प्रयोग व्यापक स्तर पर करने की अभी अत्यन्त आवश्यकता है। देश के अधिकांश विद्यार्थी एवं नव युवक अभी इनका समुचित लाभ उठा पाने का अवसर प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं।

नोट

टास्क दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली किस प्रकार निर्देशन तथा परामर्श की प्रगति में बाधक हैं?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में 'सही' तथा 'गलत' पर चिन्ह लगाइये।

1. अध्यापक विद्यालय में अध्यापन के अतिरिक्त कई गौण कार्य करने के कारण निर्देशन तथा परामर्श का निर्वाह समुचित रूप से नहीं कर पाते हैं।
2. हमारे देश में विद्यालयों की दयनीय आर्थिक दशा का निर्देशन तथा परामर्श सेवाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
3. निर्देशन तथा परामर्श कार्यों हेतु सर्वाधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण सामग्री 'परीक्षण' है।
4. निर्देशन तथा परामर्श के संबंध में अनुवर्ती अध्ययन को किसी प्रकार का महत्व नहीं दिया गया है।

30.4 सारांश (Summary)

- हमारे देश में, निर्देशन कार्य प्रारम्भ हो चुका है, लेकिन इस कार्य की प्रगति अत्यन्त मन्द एवं अपर्याप्त ही है तथा निर्देशन का जो कुछ भी कार्य किया जा रहा है वह भी दोषयुक्त ही है। इसका मुख्य कारण-निर्देशन कार्य के मध्य आने वाली विभिन्न समस्यायें। इन समस्याओं का उल्लेख निम्नलिखित है।
- **अध्यापकों पर अत्यधिक कार्यभार** (Excessive Working Load on Teachers)—अध्यापक पर ही, निर्देशन कार्य का प्रारम्भिक दायित्व होता है, लेकिन हमारे देश में अध्यापक कार्य के बोझ से दबे जा रहे हैं जैसे—कक्षाओं में विद्यार्थियों की अत्यधिक संख्या, परीक्षण सम्बन्धी कार्य, रजिस्टर अभिलेख तथा अन्य अनेक गौण कार्य।
- **अध्यापकों का रूढ़िवादी दृष्टिकोण** (Traditionalistic outlook of the Teachers)—हमारे देश में अधिकांश वे ही व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र में प्रविष्ट होता है जो अन्य क्षेत्रों में अवसरों से वंचित रह जाते हैं। ऐसे व्यक्ति अत्यन्त कम संख्या में हैं जिनकी शिक्षण के क्षेत्र में रूचि होती है। इसका परिणाम होता है कि वे भी नये व रचनात्मक कार्यों का निर्वाह उत्साहपूर्वक नहीं कर पाते।
- हमारे देश की अधिकांश जनता गाँवों मे निवास करने के कारण अशिक्षित एवं रूढ़िवादी है। यहाँ के अधिकांश व्यक्ति निर्देशन के नाम से अनिभिज्ञ हैं। जिन व्यक्तियों ने निर्देशन का नाम जो अभिभावक शिक्षित हैं, वे भी अपने बालकों को अपनी परम्परानुसार व्यवसाय-चयन हेतु बाध्य करते हैं।
- **अप्रशिक्षित अध्यापक** (Lack of Training on the Past of the Teacher)—भारत में, अप्रशिक्षित शिक्षकों एवं अप्रशिक्षित निर्देशकों के कारण, निर्देशन प्रदान करने में अत्यन्त कठिनाई होती है, क्योंकि निर्देशन प्रदान करना जनसामान्य अथवा सामान्य व्यक्तियों का कार्य नहीं है।
- **विद्यालयों में पाठ्यक्रम** (Curriculum in Schools)—स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त हमारे देश में बेसिक शिक्षा एवं बहुउद्देश्यीय विद्यालयों की स्थापना तो की जा रही है लेकिन इन विद्यालयों में ज्ञान की विभिन्न शाखाओं (विषयों) के शिक्षण की व्यवस्था का अभाव है
- **दोषयुक्त परीक्षा प्रणाली** (Defective Examination System)—हमारे देश में प्रचलित परीक्षा प्रणाली अत्यन्त दोषयुक्त है। परीक्षा में वस्तुनिष्ठता एवं वैषयिक्ता का अभाव है।
- **विद्यालयों में विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या** (Increasing Number of Students in School)—हमारे देश में बढ़ती हुई जनसंख्या का प्रभाव, समस्त क्षेत्रों पर पड़ रहा है। इससे शैक्षिक क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा। विद्यालयों में उपलब्ध शैक्षिक सुविधाओं एवं साधनों की अपेक्षा, विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती है।
- **विद्यालयों की दयनीय आर्थिक दशा** (Poor Economic Conditions of Schools)—हमारे देश के अधिकांश विद्यालयों की आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय है। इनमें कुछ विद्यालय तो ऐसे भी हैं, जो कि अपने शिक्षकों को वेतन समय पर नहीं दे पाते।

नोट

- **साधनों का अभाव** (Lack of Resources)—भारत में, शिक्षा को आर्थिक साधनों एवं सुविधाओं की दृष्टि से अपेक्षित रखा गया है। हमारे देश में विद्यालयों की आर्थिक स्थिति, विकसित देशों के विद्यालयों के समान नहीं हैं, लेकिन जो भी साधन उपलब्ध है।
- निर्देशन कार्य, व्यावसायिक सूचनाओं का अत्यन्त महत्व है। व्यावसायिक निर्देशन का आधार ही, व्यावसायिक सूचनाएँ हैं।
- **प्रमापीकृत परीक्षणों का अभाव** (Lack of Standard Tests)—निर्देशन कार्यों हेतु सर्वाधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण सामग्री 'परीक्षण' हैं हमारे देश में, योग्यता, निष्पत्तियों एवं अभिरुचियों, अभियोग्यताओं, बुद्धि इत्यादि के मूल्यांकन हेतु प्रमापीकृत परीक्षणों का अभाव है।
- **शिक्षा एवं निर्देशन के क्षेत्र में शोध कार्य का अभाव** (Lack of Research Work in the Field of Education and Guidance)—शिक्षा एवं निर्देशन के क्षेत्र में शोध कार्य ने अभी तक प्रवेश नहीं किया है, तथा जो कुछ भी कार्य इस क्षेत्र में हुआ है वह अत्यन्त अल्प है।
- विभिन्न प्रकार के रोजगारों के अभाव में, व्यावसायिक निर्देशन नहीं प्रदान किया जा सकता है। बेरोजगारी की स्थिति में, व्यक्ति को जैसा भी व्यवसाय मिलता है, उसे ही सहर्ष अपना लेता है। हमारा देश अभी अर्द्धविकसित अवस्था में है।
- निर्देशन-सेवाओं की स्थिति में सुधार करने हेतु निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं—
  (1) निर्देशन के ठोस कार्य हेतु विद्यालयों के पाठ्यक्रम में व्यावसायिक सूचना को एक विशिष्ट विषय के रूप में पढ़ाया जाए।
  (2) निर्देशन की आवश्यकता व महत्व की गहनता से प्रशासन को अनुभव करना चाहिए और निर्देशन हेतु आवश्यक सुविधाएँ एवं साधन उपलब्ध कराने में अपनी सहायता प्रदान करनी चाहिए।
  (3) निर्देशन के विभिन्न साधनों में सामंजस्य स्थापित करने हेतु निर्देशन का व्यापक संगठन बनाया जाए और अन्य साधनों को उस संगठन से सम्बन्धित किया जाए।
  (4) शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निर्देशन अभिमुख (Guidance Oriented) बनाया जाना चाहिए।
  (5) अध्यापकों में निर्देशन सम्बन्धी अन्तर्दृष्टि (Guidance Insight) का विकास किया जाना चाहिए।
- आज परामर्श को परामर्शदाता के स्थान पर सेवार्थी—केन्द्रित बना दिया गया है तथा प्रतिभा के प्रत्यय को विशिष्ट महत्व प्रदान करते हुए इसके विकास पर अधिक बल दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त भी अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ इस क्षेत्र में दृष्टिगोचर हो रही हैं, जिनका उल्लेख निम्नलिखित है—
- **शैक्षिक निर्देशन से सम्बन्धित नवीन प्रवृत्तियाँ** (New Trends Related to the Educational Guidance)—वर्तमान समय में निर्देशन को मात्र सांवेगिक प्राथमिक चिकित्सा का माध्यम ही स्वीकार नहीं किया जाता है अपितु इसे एक ऐसी प्रविधि के रूप में विकसित किया जा रहा है जो विद्यार्थी के समस्त मनोवैज्ञानिक पक्षों के विकास में सहायक हो।
- **परामर्शदाता के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में परिवर्तन** (Change in Counselors Training Programmes)—परामर्शदाता के प्रशिक्षण में सम्बन्धित पाठ्यक्रम में भी आज व्यापक स्तर पर परिवर्तन किए गए हैं। आज मनोविज्ञान के प्रत्येक पहलू का ज्ञान, प्रत्येक परामर्शदाता के लिए सर्वाधिक आवश्यक स्वीकार किया जा रहा है।
- **मूल्यांकन की नवीन धारणाओं का विकास** (Development of New Concept in Evaluation)—निर्देशन एवं परामर्श की प्रक्रिया, किस सीमा तक अपने लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त कर सकी हैं?
- इस सन्दर्भ में नवीन परिवर्तन निम्नलिखित हैं—

नोट

1. निर्देशन लक्ष्यों के पुनर्निर्धारण, उनकी वैधता, विश्वसनीयता एवं सार्थकता के सम्बन्ध में पुनर्विचार किया जा रहा है।
2. आवश्यकता के अनुपात में निर्देशन कार्यकर्त्ताओं की संख्या निर्देशन में उनकी रूचि तथा प्रशिक्षण आदि के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के सर्वेक्षण किए जा रहे हैं।
3. इस सम्बन्ध में विभिन्न शोधों को प्रोत्साहित किया जा रहा है कि निर्देशन एवं परामर्श की प्रक्रिया को, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सुचारू रूप से सम्पन्न करने के लिए किन सुविधाओं की आवश्यकता है।

- **निर्देशन के क्षेत्र में तकनीकी की भूमिका** (Role of Technology in Guidance)–तकनीकी के व्यापक विकास के परिणामस्वरूप परामर्शदाताओं के द्वारा किए जाने वाले अनेक कार्य, अब मशीनों के द्वारा किए जा सकते है। संगणक एवं कम्प्यूटरों का उद्‌भव इस क्षेत्र के लिए वरदान हो सकेगा। परामर्शदाताओं का प्रमुख कार्य मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रशासन तक ही सीमित हो जाने की सम्भावना है।
- कम्प्यूटर के भावी प्रयोग पर आधारित इन सम्भावनाओं ने परामर्शदाता की भूमिका को सुनिश्चित करने के लिए विवश कर दिया है।
- **मानव व्यवहार से सम्बन्धित नवीन धारणाओं का विकास** (Changing Concepts of Human Behaviour)–सामाजिक विज्ञानों के निरन्तर विकास के फलस्वरूप, मानव की प्रकृति एवं उसके विकास पर अनेक नई खोजें हुई हैं। नव फ्रायडवादी विचारधारा के अन्तर्गत, मानव व्यवहार के जैविक एवं सामाजिक तत्वों पर विशेष बल दिया जा रहा है, बुद्धि एवं अभिरूचि के स्थान पर, प्रतिभा के विकास एवं प्रयोग को सर्वाधिक महत्व दिया गया है।
- **सामूहिक कार्य का महत्व**–वर्तमान समय में यह अनुभव किया जा रहा है कि सेवार्थी को समुचित निर्देशन एंव परामर्श देने के लिए उससे सम्बन्धित अभिभावकों शिक्षकों, प्राचार्यो, मित्रों का भी सहयोग प्राप्त किया जाए।
- नर्देशन एवं परामर्श को प्रभावी बनाने के लिए अधोलिखित नवीन प्रवृत्तियों को उपयोग करने पर बल दिया है–

1. निर्देशन-प्रदाताओं के प्रशिक्षण पर अधिकाधिक ध्यान देने की प्रवृत्ति अब देखने में आ रही है।
2. निर्देशन कार्यक्रम में वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन प्रविधियों को प्रयुक्त किया जा रहा है।
3. निर्देशन सम्बन्धी सूचनाओं के संकलन एवं उनके आलेख रखने पर विशेष बल दिया जा रहा है।
4. निर्देशन की औपचारिक सेवाओं एवं अन्य अभिकरणों के समन्वित प्रयासों पर बल दिया जा रहा है।

30.5 शब्दकोश (Keywords)

- **कार्यभार**–अतिरिक्त कार्य लेना।
- **अप्रशिक्षित**–अकुशल, प्रशिक्षण के बिना।

30.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारत में निर्देशन तथा परामर्श से संबंधित क्या समस्याएँ हैं?
2. जाति व्यवस्था तथा बेकारी, निर्देशन तथा परामर्श के क्षेत्र में किस प्रकार बाधा उत्पन्न करती हैं?
3. निर्देशन तथा परामर्श की स्थिति में सुधार के विभिन्न उपायों का उल्लेख कीजिए।
4. निर्देशन तथा परामर्श की नवीन प्रवृत्तियाँ क्या हैं?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य।

30.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *शिक्षा मनोविज्ञान*– डॉ. राम शकल पाण्डेय (Educational Psychology), आर. लाल बुक डिपो।
2. *शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान*– डॉ. आर. एण्ड शर्मा, आर. लाल बुक डिपो।
3. *शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन तथा परामर्श (Educational Vocational Guidance and Counseling)*– डा. आर. ए. शर्मा, डा. शिखा चतुर्वेदी, आर लाल बुक डिपो।

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in